गोस्वामी तुलसीदास

लेखक

स्व० बाबू शिवनन्दन सहाय

सम्पादक

श्रीनलिनविलोचन शर्मा

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

पटना

प्रकाशक
बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना

संशोधित पुनर्मुद्रित संस्करण
शकाब्द १८८८, विक्रमाब्द २०१७, खृष्टाब्द १९६१
मूल्य ५.५० न० पै० मात्र

मुद्रक
सर्वोदय प्रेस
आजकुमार पथ, पटना–४

वक्तव्य

परिषद् के संचालक-मंडल ने, कई वर्ष पूर्व, एक प्रस्ताव द्वारा यह निर्णय किया था कि बिहार के प्राचीन सुलेखकों की अप्राप्त कृतियों के पुनर्मुद्रण की व्यवस्था परिषद् द्वारा की जाय। उक्त निर्णय के अनुसार पुनर्मुद्रण के योग्य पुस्तकों के चुनाव के लिए परिषद् ने जो समिति बनाई थी उसने स्व० बाबू शिवनन्दन सहाय की अधुना अप्राप्य पुस्तक 'गोस्वामी तुलसीदास' को चुना।

स्व० बाबू शिवनन्दन सहाय की साहित्य-सेवा और उनके हिन्दी उत्थान के कार्य विशिष्ट स्थान रखते हैं। जीवनी-लेखकों में उनका नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। सच तो यह है कि जीवनी-लेखन में वे मार्ग-दर्शक थे। गोस्वामी तुलसीदास, मीराबाई, चैतन्य महाप्रभु और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की प्रामाणिक जीवनियाँ स्व० बाबू शिवनन्दन सहाय की अमर देन हैं, जिन्हें हिन्दी-भाषाभाषी श्रद्धा और आदर से सदा स्मरण करेंगे। अपने समय में यह 'गोस्वामी तुलसीदास' बहुविख्यात ग्रंथ था और बड़े-बड़े विद्वानों द्वारा यह प्रामाणिक माना गया था। यही कारण था कि इस पुस्तक को पटना विश्वविद्यालय ने बी० ए० की परीक्षा में पाठ्य-पुस्तक के रूप में स्थान दिया था तथा युक्तप्रदेश (उत्तरप्रदेश), मध्यप्रदेश तथा पंजाब की सरकारों ने अपने-अपने पुस्तकालयों के लिए इसे स्वीकृत किया था।

प्रस्तुत पुस्तक की प्रेस-कॉपी लेखक ने अपने जीवन-काल में ही तैयार कर दी थी, किन्तु हमें खेद है कि वे इसे पुनर्मुद्रित रूप में स्वयं देख न सके। उन्होंने अपनी प्रेस-कॉपी में स्थान-स्थान पर अपने हाथों चिटें साट-साटकर और मुद्रित पृष्ठों की पंक्तियाँ काट-छाँटकर आवश्यक परिवर्द्धन और परिवर्त्तन किया था। हमने उनके द्वारा प्रस्तुत प्रेस-कॉपी की बड़ी सावधानी से नकल कराई और फिर उसका सम्पादन कराया। इस प्रकार, हमें प्रसन्नता है कि १९१६ ई० की

यह प्रथम प्रकाशित कृति लेखक द्वारा संशोधित और परिवर्द्धित तथा विद्वान् सम्पादक के द्वारा सम्पादित होकर, पैंतालीस साल के बाद एक नये रूप में, प्रकाशित हुई है। लेखक के जीवन और उनकी कृतियों पर प्रस्तुत ग्रंथ के सम्पादक श्रीनलिनविलोचन शर्मा ने यथास्थान प्रकाश डाला है। इस सम्पादन-कार्य के लिए प्रो० शर्माजी के प्रति आभारी हैं।

विश्वास है, परिषद् के अन्य प्रकाशनों की तरह यह पुस्तक भी हिन्दी संसार में आदर पाने की अधिकारिणी होगी।

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्-कार्यालय पटना
हरिशयनी एकादशी २०१८ वि

भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'
संचालक



सम्पादकीय

[एक]

कवि शिवनन्दन हैं पिता, लेखक जगविख्यात — स्व० ब्रजनंदन सहाय की अपने महान् पिता के सम्बन्ध में यह उक्ति श्रद्धा-भक्ति या परोक्षित अत्युक्ति मात्र नहीं है। भारतेन्दु सखा शिवनंदन सहाय जीवनी तथा आलोचना के पाश्चात्य लेखकों की तरह कवियों तथा महापुरुषों के जीवन और कृतित्व के हिन्दी के आद्य व्याख्याता तो थे ही, साथ ही साथ नाथूराम शर्मा 'शंकर', जगन्नाथदास 'रत्नाकर' एवं नवनीत चतुर्वेदी जैसे पुरानी शैली के श्रेष्ठ समसामयिक कवियों के भी समकक्ष थे। वे हिन्दी-जग-विख्यात तो थे ही।

बिहार-राज्य के शाहाबाद जिला के अन्तर्गत आरा नगर के पश्चिम प्रायः दो मील दूर कुंवर नदी के तट पर अख्तियारपुर ग्राम है। यह ग्राम श्रीवास्तव कायस्थों का प्राचीन केन्द्र रहा है। इसी ग्राम में शिवनंदन सहाय का जन्म संवत् १९१७ की आश्विन शुक्ल द्वितीया सोमवार, को एक कायस्थ-परिवार में हुआ था। अख्तियारपुर का इतिहास शिवनंदन सहाय तथा हरनंदन सहाय ने 'History of Akhtiyarpur' नामक अँगरेजी पुस्तिका में १८८२ ई० में लिखा था। इसके आधार पर मेरे एक छात्र श्रीहरिहरनाथ ने मेरे निर्देशन में ब्रजनंदन सहाय पर लिखित अपने शोध प्रबन्ध में अख्तियारपुर का प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत किया है।[1]

शिवनन्दन सहाय ने स्वयं ही अपने पूर्वजों तथा उनके मूल निवास-स्थान आदि का संक्षिप्त विवरण अपने ग्रन्थों में उपस्थित किया है—

कवित्त

(क) सिरी भगवान सिंह भये एक जन जहाँ करत मझौली रह नगर भवनपुरा।
तासु लघु भ्राता भे गनेश परसाद जौन भये विद्यावान गुनवानहु निपुन पर॥
पुत्र गुरुसहाय सो तसिल्दार गाजीपुर जाहि गुनागार सुभ भार दिन्हें ईसाधर।
सिरी हरिबंश भगवन, रामानुग्रह भी अरु सिरी कालो चारों भाइ भये नेहधर॥

---

१ पटना विश्वविद्यालय की १९६६ की एम्० ए० परीक्षा के लिए लिखित शोध प्रबन्ध।

प्रथम द्वै भाई नहिं पायो कोऊ पुत्ररत्न तीसरे को पांच नाम नीके मो गनायो है।
रघु, हरि, राम हर, श्याम इन शब्दन में 'नन्दन' लगाये नाम पूरन सुहायो है।।
करैं श्यामनन्दन वकीली, रामनन्दन जू बांकीपुर अफिसों किरानी काम पायो है।
रघु,हर रहे मुनसिफी के सिरिश्तेदार, हरिलो जवानी सुरधाम को सिधायो है।।

उल्लाला

सुधन रामनन्दन सुखद, श्रीमहेशनन्दन धरैं।
सुत हरनन्दन मीतपर श्रीसुरेशनन्दन कहैं।।

दोहा

द्वै सुत काशिसहाय को, शिवनन्दन इक नाम।
अपर महानन्दन गयो, बालकाल सुरधाम।।

सवैया

मतिन पांहि सुनावत हौं सुवृतान्त कछु अब आपन खास।
सम्वत उन्निस से दस सात भयो मम जन्म सुआसिन मास।।
वार निशाकर दूज तिथी रितु शारदि पक्ष अँजोर प्रकास।
याम चतुर्थ भयो अति मोद हिये उमग्यो सब केर हुलास।।

आदि पढ्यो पारसी करामत बख्श के पास, पुनि पूज्यपाद पितु नेह सों पढ़ायो है।
पाछ पढ़ि बांकीपुर कियो इन्टरेन्स पास, शीघ्र प्रभु दोयम किरानी बनवायो है।।
भयो एकवंट पुनि अव्वल किरानी तिनि अब मुसरिम को पदवर पायो है।
'शिव' की कृपातें कन्या तीन युग पुत्र पायों ज्येष्ठ सुत सुख जगदीश ने दिखायो है।'[1]

(ख) आरा तें पश्चिम निकट,
अख्तियारपुर ग्राम।
नदी कुंडमर पर बसत
सोभा ललित ललाम।।

× ×

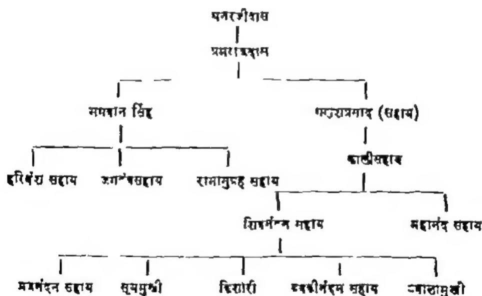
यहै पुरातन गाँव यह, कायथ कर अस्थान।
जँह श्रीवास्तव दूसरे, बसत प्रसिद्ध महान।।

---

१ श्रीभोलाप्रसाद श्रीवास्तव की 'बोलती भाषा' हिन्दी सेवकों का परिचय पृ० ११०—११२।

'छोसैया' पश्चो ग्रहें, दिल्लीपति प्रदत्त।
कोउ कोउ कानुन गोय पुनि, म कछु काल विगत्त॥
महामान्य भगवान सिंह रहे तहाँ गुनवान।
नगर अधनपुर में हुत करत पकाबत काम॥
गुरुसहाय तिनके तनय तासु कालिसहाय।
पूज्यपाद मो मम पिता, कहत चित्त हरषाय॥
दिय सुवन जो दास को, सानुकूल हरि होइ।
करत पकाशी कहत विहि, ब्रजनंदन सब कोइ॥[1]

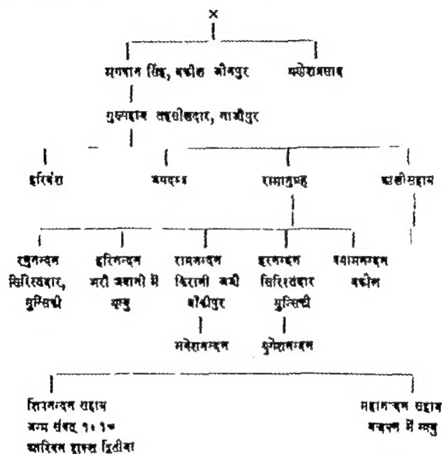
श्रीहरिहरनाथ ने ब्रजनन्दन सहाय का यह वंश-वृक्ष, अपने पूर्वोक्त प्रबन्ध में प्रस्तुत किया है—



किन्तु यहाँ यह विचारणीय है कि स्वयं शिवनन्दन सहाय ने अपने पूर्वजों के जो विवरण दिए हैं उनसे इस वंश-वृक्ष से भिन्नता है। शिवनन्दन सहाय के विवरण के अनुसार उनके पूर्वज भगवान सिंह थे उनके पुत्र थे गुरुसहाय जिनके पुत्र हुए शिवनंदन सहाय के पिता कालीसहाय। जान पड़ता श्रीहरिहरनाथ का ध्यान इस भिन्नता की ओर नहीं गया और उन्होंने इसकी ओर छान-बीन न की। मेरे निर्देशन में शोध-कार्य करनेवाले श्रीगोपालजी

१ श्रीगौरांग महाप्रभु १ १ १।

'स्वर्गकिरण' ने शिवनंदन सहाय द्वारा प्रस्तुत विवरणों के आधार पर मेरी सुविधा के लिए यह वंश-वृक्ष तैयार किया है, जिसे प्रामाणिक माना जा सकता है—



ब्रजनन्दन सहाय वकील आरा
(तथा अन्य अनेक संतान)

शिवनंदन सहाय की संक्षिप्त जीवनी श्यामसुन्दर दास ने लिखी है।[1] उनके निधन के बाद 'सुकवि'[2] में श्रीव्रजविहारी शरण ने सुन्दर जीवनी लिखी थी जिसका एक अंश यहाँ दिया जा रहा है—

१ संक्षिप्त हिन्दी-कोविद-रत्नमाला द्वि० भा० पृ० ३० ३१।
२ वर्ष १ अक्टूबर १९३० ई०।

"इनके पिता मुंशी कालीसहाय अपनी परिपाटी के अनुकूल फारसी भाषा में निपुण और निष्णात थे। तदनुकूल बालक शिवनन्दन सहाय भी तेरह वर्ष की अवस्था तक अपने पूज्य पिता के अधीन फारसी भाषा का अध्ययन करते रहे। परन्तु उस समय तक अँगरेजी भाषा की प्रधानता सर्व-स्वीकृत हो चुकी थी अतएव ये भी अँगरेजी पढ़ने के लिए पटना भेजे गये और वहाँ इनका नाम पटना कालिजियट में लिखाया गया। विद्याध्ययन में इनकी अभिरुचि स्वाभाविक थी। यथासमय परीक्षाओं को उत्तीर्ण करते सन् १८८० ई० में इन्होंने इण्ट्रेन्स परीक्षा पास की। परन्तु परिवार की उस समय आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि कॉलेज में इनके पढ़ने का प्रबन्ध हो सके, अतएव इन्हें कॉलेज की पढ़ाई का विचार छोड़ देना पड़ा।

कॉलेज तो छूटा परन्तु इनका विद्याध्ययन आजीवन बना रहा। परिवार के विचार से इन्होंने नौकरी कर ली। पटना में जजी कचहरी में सेकण्ड क्लर्क का पद इन्हें मिला। यथासमय ये एकाउण्ट्स हेड क्लर्क और अन्त में अनुवादक (ट्रांसलेटर) हुए। कुछ काल के लिए ये सरिश्तेदार के पद पर भी प्रतिष्ठित हुए थे। परन्तु ऊँचा सुनने के कारण स्थायी रूप से यह पद प्राप्त न कर सके। नौकरी के काल में सदा ये उच्च पदाधिकारियों की प्रतिष्ठा के भाजन बने रहे। अन्त में, सन् १९१५ ई० में पेंशन लेकर अपने सुयोग्य पुत्र तथा सुसेवक बा० ब्रजनन्दन सहाय वकील के साथ आरा में निवास करने लगे।

स्कूल में इनकी अतिरिक्त भाषा फारसी थी। पहले इनके यहाँ हिन्दी का आदर बहुत कम था। उस समय भी साहित्य से इनको प्रेम था। उसका विकास अँगरेजी निबन्धों में होता था। इनके लेख 'इण्डियन क्रॉनिकल', 'बिहारी' तथा 'लाइट ऑव दि ईस्ट' में प्रकाशित होते थे। बाद को हिन्दी के अनन्य प्रेमी प० अम्बिकादत्त व्यास, साहित्याचार्य, प्रोफेसर पटना कॉलेज तथा बा० रामदीन सिंह अध्यक्ष तथा अधिष्ठाता खड्गविलास प्रेस, के समागम से हिन्दी का प्रेम इनके हृदय में अंकुरित हुआ। पहले तो इन्होंने पं० अम्बिकादत्त व्यास-रचित गोसङ्कट नाटक का अनुवाद अँगरेजी में किया। आगे चलकर हिन्दी के अविरत अध्ययन से इनका रचना प्रवाह भी इसी स्रोत में प्रवाहित हुआ।'

इनके धर्म-गुरु उदासीन पंथ के साधु, रियासत पटियाला के अंतर्गत भाटिंडा निवासी बाबा अमरदासजी थे। इस पंथ के अनुयायी होने के कारण शिवनन्दन सहाय ने गुरुमुखी का भी अध्ययन किया था। ये बँगला भी जानते थे और प्रारंभ में तो ज्यादा अँगरेजी में ही लिखते थे। इनकी आरंभिक रचनाएँ इण्डियन क्रॉनिकल 'बिहार टाइम्स', 'बिहार हेराल्ड' 'लाइट ऑव एशिया' आदि समसामयिक अँगरेजी पत्रों में प्रकाशित होते थे।

किन्तु ब्रजबिहारी शरणजी ने अपनी उपर्युक्त जीवनी में ठीक ही लिखा है—हिन्दी-साहित्य के अग्रगण्य महाकवि श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी तथा कविकेसरी बा० भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी के ग्रन्थों ने इनके हृदय पर पूरा प्रभाव डाला। इन दोनों आदर्श कवियों के ये आदि से अन्त तक भक्त बने रहे। भारतेन्दुजी की नाटकावली से प्रभावित हो

इन्होंने अपने ग्राम में एक नाटक-मण्डली स्थापित की। इस प्रकार, अपने ग्राम-नि
हिन्दी की शिक्षा तथा नाटकमंडली का उपदेश हिन्दी में प्रदान किया।

इन कवियों की कविताओं ने पद्य-रचना की ओर इनकी प्रवृत्ति कराई।
पटना में सिखों के दशम गुरु के स्थान 'हर मन्दिर साहेब' में बाबा सुमेरसिंह
ये स्वयं तृतीय गुरु श्रीअमरदास के वंशधरों में थे और काव्यशास्त्र के अच्छे
श्रीशिवनन्दन सहायजी ने इन्हीं को अपना काव्यगुरु बनाया। आपने अपने गुरु की
इस प्रकार की है —

> श्री गुरु-नन्द गुन-गाम करत गुन-ग्रन्थ कथत नित।
> जप पूजा सों ध्यान भजन मों सदा निरत चित॥
> काव्य-शास्त्र-मर्मज्ञ कुशल कविता रचना महँ।
> वृहद लघु बहु ग्रन्थ रचित परकाशित जिन्ह कहँ॥
> श्री गुरु दसम जनम थल पटना नगर उजागर।
> तिहि गद्दी पर हुते महन्त महा पण्डित वर॥
> दास दीन पै दया नेह सब दिन दिखरावत।
> कविहिं प्रीति सों काव्यरीति हूँ कछुक सिखावत॥

काव्य-सुधा का स्वाद मिलने पर इसकी प्रधानता इनके हृदय में बराबर
समस्या-पूर्ति से इनकी तृप्ति कदापि नहीं होती थी और यह व्यसन अन्त काल
पहले काशी में 'कविमण्डल' और 'कविसमाज' नामी दो संस्थाओं में समस्या-पूर्
करती थी। बाबू शिवनन्दन सहाय अपनी समस्या-पूर्तियों को इन्हीं दोनों में भेज
दिनों के उपरान्त पटना से ही 'समस्या-पूर्ति' प्रकाशित करने का प्रबन्ध किया
संचालक तो ये थे, परन्तु सम्पादक इनके सुयोग्य बालसखा उपन्यास-लेखक कवि बाबू
सहाय थे।

बा० शिवनन्दन सहाय १ मई १९१२ को पक्षाघात से आक्रान्त और
१९३२ को ४२ संख्या में दिवंगत हुए थे। जब इस अन्तिम रोग का आक्र
हुआ था, वे 'सुकवि' के लिए समस्या-पूर्ति कर रहे थे।

[दो]

सहायजी की कृतियों की तालिका नीचे प्रस्तुत है। इसे यथासंभव प्रामाणि
मुझे डॉ० माताप्रसाद गुप्त, श्रीगोपालजी 'स्वर्णकिरण' अनुसंधायक, पटना-विश्वविद
श्रीहरिहरनाथ से जो साहाय्य प्राप्त हुआ है उसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

१ History of Akhtiyarpur (महेश्वर दयानन्दन सहाय)—बिहार
पटना—१८८५।

२ विचित्र संग्रह (कुछ अँगरेजी कविताओं का अनुवाद)—खड्गविलास प्रेस, पटना, १९०० (प्रथम संस्करण), १९०५ (द्वि० संस्करण), १९०६ (तृ० संस्करण)।
३ सचित्र हरिश्चन्द्र (जीवनी)—खड्गविलास प्रेस, पटना, १९०५।
४ श्रीसीतारामशरण भगवानप्रसादजी की सचित्र जीवनी—खड्गविलास प्रेस, पटना, १९०७।
५. सुदामा (नाटक)—खड्गविलास प्रेस पटना १९०७।
६ स्व० बाबू साहिबप्रसादसिंह की जीवनी—१९०७।
७ कृष्ण सुदामा (पद्य)—खड्गविलास प्रेस, पटना १९०७।
८ उद्धव नाटक (तथा सुदामा नाटक)—सं० शिवनन्दन सहाय खड्गविलास, प्रेस, पटना, १९०९।
९ गोस्वामी तुलसीदास (भूमिका में दी हुई तिथि २४ ११ १९१६)—१९१७।
१० गत पचास वर्षों में हिन्दी की दशा—आरा-नागरी प्रचारिणी सभा, १९२०।
११ श्रीचैतन्य महाप्रभु—खड्गविलास प्रेस पटना, १९२७।
१२ कविमित्र, अर्थात् भारतेन्दु काव्य-संग्रह—खड्गविलास प्रेस, पटना, १९२७।
१३ स्वामी दयानन्दमतभ्रमोच्छेद—(दो भाग)।
१४ अम्बिकादत्त व्यास-कृत गोसंकट नाटक का अँगरेजी में अनुवाद।
१५. सिक्ख गुरुओं की जीवनी—आरा-नागरी-प्रचारिणी सभा।[1]
१६ बंगाल का इतिहास।

[तीन]

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध के अंतिम वर्षों में जब जीवनी और आलोचना विषयक पुस्तकें हिन्दी में लिखी जाने लगीं, तब यह भी स्वाभाविक था कि उनके विषय प्रधानतः वे भक्त होते जो अपने आदर्श चरित्र तथा उत्कृष्ट काव्य दोनों के लिए ही समान रूप से स्मरणीय माने जाते थे और आज भी माने जाते हैं। इनमें भी तुलसीदास ऐसे थे, जिनपर अधिकाधिक लेखकों का लिखना सर्वथा स्वाभाविक था। विश्वेश्वरदत्त शर्मा का तुलसी-चरित्र प्रकाश १८७७ में और कमलकुमारी देवी लिखित गोस्वामी तुलसीदास का जीवन चरित्र १८९५ में प्रकाशित हुए थे। शिवनन्दन सहाय के प्रस्तुत ग्रंथ, गोस्वामी तुलसीदास के १९१७ में प्रकाशित होने के पूर्व तुलसीविषयक उपर्युक्त दो ही स्वतन्त्र पुस्तकें उपलब्ध हैं,

---

१ इसमें इनकी जीवनियाँ तथा कुछ अन्य विवरण हैं, नानक गुरु अंगद गुरु अमरदास गुरु रामदास गुरु अर्जुन गुरु हरगोविन्द गुरु हरिराय गुरु हरिकृष्ण गुरु तेगबहादुर गुरु गोविन्दसिंह बंदावीर बाबा सहजानन्द बाबा इन्द्रभानसिंह बाबा साधूसिंह बाबा सुमेरसिंह तथा बाबा केसरासिंह की जीवनियाँ बाबा सुमेरसिंह कृत ग्रन्थों की समालोचना तथा उपसंहार में जोधपुर के विजनसिंह गुरु ग्रन्थ साहब इसमें पाठ्यभाग का ग्रन्थ और ग्रन्थकर्त्ता का परिचय। ब्रजबिहारी शरण द्वारा लिखित जीवनी में ऐसा संकेत है कि इसमें सिक्ख गुरुओं की जीवनी है पुस्तक में वस्तुतः अन्य विषय भी हैं जैसा ऊपर दी गई सूची से स्पष्ट होगा।

यद्यपि इसमें भी तुलसी का जीवन-चरित ही वर्णित है, जब कि तीसरी पुस्तक में विस्तृत जीवनी तो है ही साथ ही साथ कृतियों का विशद विवरण और साधिकार मूल्यांकन भी है।

शिवनन्दन सहाय ने उन सभी प्राचीन भक्त-चरित-लेखकों तथा समसामयिक विद्वानों एवं टीकाकारों आदि के मत-मतांतरों का यथास्थान उल्लेख कर अपने ग्रंथ को प्रामाणिक बनाने की चेष्टा की है, जिन्होंने सविस्तर या संक्षेपतः पुस्तकों या पत्र-पत्रिकाओं में तुलसीदास के जीवन या साहित्य पर कुछ लिखा था। इनमें निम्नलिखित का उल्लेख किया जा सकता है भक्तमाल प्रियादास-कृत भक्तमाल की टीका, श्रीसीताराम भगवान प्रसाद-कृत भक्तमाल की टीका, बेनीमाधवदास-कृत मूल गोसाइँचरित शिवसिंह सरोज इंपीरियल गजेटियर, महादेव प्रसाद-कृत भक्तिविलास श्रीराधाचरण गोस्वामी-कृत नवभक्तमाल, तुलसीराम अग्रवाल-कृत उर्दू भक्तमाल, राजाप्रतापसिंह-कृत भक्तकल्पद्रुम, भक्तिसिंधु वृहद् रामायण-माहात्म्य रघुवरदास-कृत तुलसीचरित महाराज रघुराजसिंह-कृत भक्तमाला राम-रसिकावली हिंदी नवरत्न 'हरिहर'-कृत भक्तमाला हरिभक्तिप्रकाशिका, बलदेवदास-कृत राजापुर माहात्म्य आदि तथा रेवरेंड एडविन ग्रीव्ज एफ० एस० ग्राउज विलसन ग्रियर्सन श्यामसुन्दरदास, रानी कमलकुँमरी (कमलकुमारी) रामगुलाम द्विवेदी सुधाकर द्विवेदी, रघुराजकिशोर, गौरीशंकर द्विवेदी गोविन्दवल्लभ शास्त्री, योगेन्द्रमोहन दत्त ज्वालाप्रसाद रामेश्वर भट्ट, बैजनाथदास रघुवरशर्मा, शिवनन्दन मिश्र रोशनलाल काष्ठजिह्वा स्वामी दुलारेप्रसाद सक्सेना रामचरणदास शिवरामसिंह गुरुसहाय लाल, स्वामी संतसिंह शिवप्रसाद पाठक आदि।

इनके अतिरिक्त काल-क्रम की दृष्टि से शिवनन्दन सहाय के पूर्व तुलसीदास पर विचार करनेवाले दो ही अन्य विद्वान् हैं, जिनका उल्लेख वे नहीं कर पाये हैं। वे विद्वान् हैं—गार्सां द तासी तथा एफ० पी० टेसीटरी पहले फ्रांसीसी और दूसरे इतालवी और दोनों सहायजी के सम्बन्ध में दुष्प्राप्य। सहायजी के बाद तुलसीदास पर जो अध्ययन-अनुसन्धान हुए हैं उनपर यहाँ कुछ कहना अनावश्यक है।

शिवनन्दन सहाय-लिखित यह पुस्तक ही वस्तुतः तुलसीविषयक प्रथम सर्वांगपूर्ण पुस्तक है और सत्य तो यह है कि इसके पूर्व हिन्दी के किसी प्राचीन कवि पर हिन्दी में इतनी वृहद् एवं ऐसी सुविचारित पुस्तक नहीं लिखी गई थी। यहाँ यह उल्लेख अप्रासंगिक न होगा कि शिवनन्दन सहाय की ही पुस्तक सचित्र हरिश्चन्द्र, जो १९०५ में प्रकाशित हुई थी हिन्दी के किसी आधुनिक साहित्यकार पर भी लिखित सर्वप्रथम तथा परिपूर्ण पुस्तक है यद्यपि पुस्तक का यह बहुत बड़ा भाग वस्तुतः प्रकाशित हो ही नहीं पाया जिसे प्रकाशक उस समय प्रकाशित करने का साहस न कर पाया होगा, और बाद में जिसे सहायजी के घनिष्ठ मित्र 'हरिऔध' जी सहायजी के पुत्र ब्रजनन्दन सहाय से माँगकर ले गये तो उसके लौटाये जाने की नौबत ही न आई और जिसे अब लुप्त ही समझना चाहिए।[1]

इसमें सन्देह नहीं कि शिवनन्दन सहाय तुलसीदास तथा हरिश्चन्द्र-विषयक अपने दो ग्रन्थों के कारण हिन्दी में चिरस्मरणीय बने रहेंगे।

१ आचार्य शिवपूजन सहाय से श्रुत।

[चार]

श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी नामक प्रस्तुत पुस्तक में दो खंड हैं। पहले खंड में बड़े विस्तार से, सत्रह परिच्छेदों में तुलसीदास के जीवन पर प्रकाश डाला गया है। इन परिच्छेदों के शीर्षक तुलसी के जीवन के निरूपित विभिन्न पक्षों को स्पष्ट द्योतित करते हैं। शीर्षक हैं—जन्मकाल और जन्मस्थान, जाति और जनक जननी, बाल्यावस्था विवाह रामापुरवास श्रीरामदर्शन श्री हनुमानजी विषयक दो-एक अन्य बातें काशीवास-वृत्तांत मिथिला-गमन ब्रज-गमन चित्रकूट तथा अवध-वास मित्र और सम्मान, बंधु और देशाज, भ्रमण, स्वभाव तथा स्वर्गप्रयाण। तुलसी की जीवनी के पुनर्निर्माण के इस प्रयास की सर्वातिशायी विशेषता यह है कि लेखक ने प्राचीन कवियों के जीवन-वृत्त के लेखन में जनश्रुतियों का जो महत्त्व है उसे ठीक-ठीक समझा है और इस रूप में प्राप्य सामग्री का सम्यक् उपयोग किया है। प्राचीन साहित्य के इतिहास में जन श्रुतियों का केवल इसी कारण महत्त्व नहीं होता कि उनके अतिरिक्त प्रायः अन्य कोई आधार प्राप्य रहता ही नहीं। इस पुस्तक के प्रथम खंड के संबंध में डॉ० माताप्रसाद गुप्त की यह आलोचना कि इस खंड को ध्यानपूर्वक पढ़ने पर कुछ ऐसा लगता है कि जनश्रुतियों को उनकी योग्यता से अधिक महत्त्व दिया गया है, युक्ति-रहित है और यह क्षमा-दान अनावश्यक कि 'यह सही है कि उस समय तक जनश्रुतियों के अतिरिक्त कवि के जीवनवृत्त-संबंधी सामग्री बहुत कम थी।'[1] प्राचीन कवियों के सम्बन्ध में सब प्राय यही स्थिति पाई जाती है कि उनके सम्बन्ध में, प्रामाणिक जीवनी या आत्मचरित के अभाव में अंतस्साक्ष्य तथा उनसे समरस जनश्रुतियों का ही एकमात्र आधार सुलभ रहता है। बहुधा अंतस्साक्ष्य से कवि वृत्त का वह कंकाल प्राप्त होता है, जिसे जनश्रुतियों की सहायता से ही मांस और रक्त कि बहुधा स्पंदन तक प्राप्त हो जाते हैं। इसी कारण परम्परया प्राप्त प्राचीन जनश्रुतियों का बड़ा ही महत्त्व है, यद्यपि यह भी ठीक है कि उनमें भी प्राचीन अर्वाचीन की दृष्टि से चुनाव करना पड़ता है यह देखना पड़ता है कि दृष्टिकोण-विशेष की पुष्टि के लिए तो कोई जनश्रुति आधुनिक काल में गढ़ नहीं ली गई है, और अंततः यह भी कि अंतस्साक्ष्य के प्रतिकूल तो वे नहीं हैं। यदि जनश्रुतियों को सर्वथा महत्त्वशून्य मान लिया जाय तो प्राचीन कवि-वृत्त के पुनर्निर्माण का प्रयास ही व्यर्थ है।

अद्वैतक शिवनन्दन सहाय के द्वारा तुलसी-सम्बन्धी जनश्रुतियों के उपयोग का प्रश्न है उनके प्रयास का यही महत्त्व नहीं है कि उन्होंने बिखरी तथा लुप्त होने के खतरे में पड़ी हुई अनेकानेक जनश्रुतियों का संकलन-मात्र कर दिया है, बल्कि यह भी कि उन्होंने इन जन श्रुतियों का सतर्कतापूर्ण उपयोग किया है और इस प्रकार तुलसी का सजीव व्यक्तित्व पुनर्निर्मित कर सकने में सफलता पाई है। उन्हें इसका श्रेय भी है कि उन्होंने एक ओर जनश्रुति विशेष को अंतस्साक्ष्य से समर्थित किया है और दूसरी ओर, अंतस्साक्ष्य से उपलब्ध तथ्य विशेष में जनश्रुति की सहायता से प्राण-संचार कर दिया है। यही कारण है कि इस पुस्तक का जीवनी-खंड भक्तमाल' प्रकार का न होकर वास्तविक जीवनी की कोटि में परिगणनीय है।

---

1 तुलसीदास प्र० सं० भूमिका पृ० ११ १२।

[पाँच]

इस पुस्तक के द्वितीय खंड में तुलसीदास की कृतियों के साहित्यिक महत्त्व पर साधारणतः पृथक् कृतियों को ध्यान में रखते हुए तथा समवेत रूप से भी विचार किया गया है। जैसा इस खंड के तीस परिच्छेदों के प्रस्तुत शीर्षकों से स्पष्ट है। शीर्षक ये हैं—कवितारम्भ तथा भाषा, गोस्वामी तुलसीदास कृत ग्रन्थावली, रामायण की सृष्टि, रामायण का रचना काल, रामायण का मूलाधार, रामायण का वास्तविक नाम, रामायण का विषय, रामायण में त्रुटियों का आभास, रामायण में नवों रस, रामायण में रूपकादि की बहार, रामायण में राजनीति विचार, रामायण के पात्र-धर्म, रामायण का आधार और प्रचार, क्षेपक और काटछाँट, रामचरितमानस के संस्करण तथा टीकाएँ, कवित्त रामायण तथा कवितावली, गीतावली, विनयपत्रिका, दोहावली, रामाज्ञा प्रश्न, जानकीमंगल, पार्वतीमंगल, कृष्णगीतावली, वैराग्य संदीपिनी, रामललानहछू, सतसई या रामसतसई, गोसाईं जी की संस्कृतज्ञता, गोसाईं जी का मत और वाल्मीकीय तथा अध्यात्म रामायण।

इस खंड के संबंध में डॉ॰ माताप्रसाद गुप्त का यह कथन उचित है कि "समालोचना बहुत कुछ बहिरंग है, अन्तरंग नहीं, तथा कहीं-कहीं लेखक ने तुलसीदास की तुलना शेक्सपियर से करके अपने कवि को दूसरे से श्रेष्ठ सिद्ध करने का यत्न किया है।"[1] फिर भी तुलसी के आलोचक शिवनन्दन सहाय की इन दो त्रुटियों के संबंध में यह भी अविचारणीय नहीं है कि उस युग में यदि एक हद तक भी अंतरंग आलोचना हुई, केवल बहिरंग ही नहीं, तो वह भी अपवाद ही है। इसके साथ ही साथ यह भी उल्लेखनीय है कि बहिरंग हो या अन्तरंग और पूज्य श्रद्धा-भावना के बावजूद आलोचक प्रशंसनीय मात्रा में वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण बनाये रख सका है, यह दूसरी बात है कि आलोच्य की अपनी महत्ता के कारण आलोचक की पक्षपात की विशेष अपेक्षा थी भी नहीं।

दूसरी त्रुटि—शेक्सपियर से अनावश्यक तुलना आदि—के संबंध में भी हमें यह स्मरण रखना होगा कि पद्मसिंह शर्मा या कृष्णबिहारी मिश्र जैसे परवर्ती आलोचकों की तथाकथित तुलनात्मक आलोचना के असंयम और मार-धाड़ की तुलना में जो और भी बाद के उन विद्वानों की अपेक्षा जो तुलसी तथा विश्व-साहित्य पर विचार करते पाये जाते हैं, शिवनन्दन सहाय के अतिरेक भी नियमित और सीमित ही हैं।

पूर्ण रूप में लेने पर पुस्तक की विशेषताओं के संबंध में डॉ॰ गुप्त के इन शब्दों की आवृत्ति पर्याप्त है "ग्रंथ दो दृष्टियों से उपादेय है: एक तो इसके पहले कवि के संबंध में जो कुछ लिखा गया था इस ग्रंथ में उस पर गंभीरतापूर्वक विचार किया गया है, और दूसरे 'मानस' में अपने पूर्ववर्ती संस्कृत ग्रंथों की जो प्रतिच्छाया मिलती है उसकी ओर स्पष्ट रूप से पहले-पहल इसी ग्रंथ में तुलसीदास के पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है।"[2]

---

1 तुलसीदास प्र० सं० भूमिका पृ० १२।

2 उपरिवत्।

[छह]

शिवनन्दन सहाय की इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक के पुनर्मुद्रण के सम्पादन का भार देकर परिषद् के अधिकारियों ने मुझे गौरवान्वित किया है। पुस्तक और पहले ही सुलभ हो सकती थी किन्तु मेरे कारण अत्यधिक विलंब हो गया है, जिसके लिए मैं खेद प्रकट करने के अतिरिक्त और कर ही क्या सकता हूँ।

पुनर्मुद्रण में यथासंभव पुस्तक के मूल रूप को सुरक्षित रखा गया है। मूल पुस्तक से यत्र-तत्र जो थोड़ी-बहुत भिन्नताएँ हैं वे इस कारण कि मूल पुस्तक की जो प्रति आचार्य शिवपूजन सहायजी को स्व० ब्रजनन्दन सहायजी से मिली थी उसमें शिवनन्दन सहायजी ने स्वयं कहीं-कहीं कुछ आवश्यक संशोधन और परिवर्तन कर दिये थे और इनका ध्यान रखना तथा इन्हें यथास्थान सम्मिलित कर लेना आवश्यक समझा गया।

मैं परिषद् के वर्तमान संचालक डॉ० भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव' का आभारी हूँ कि उन्होंने इस भूमिका की प्रतीक्षा की कोई अवधि निर्धारित नहीं की। परिषद् के प्रकाशनाधिकारी श्रीजनार्दनप्रसाद मंडल का जब धैर्य समाप्त ही हो गया तब यह भूमिका तैयार हुई, सो उनके प्रति भी मेरी अनन्त कृतज्ञता है। सहधर्मिणी श्रीमती कुसुम शर्मा ने वे सारी पुस्तकें बार-बार जुटाई न होतीं, जिनमें से दो-चार का ही उपयोग मैंने किया तो सब होने पर भी मैं ये कुछ पृष्ठ लिख न पाता। प्यारी बेटी मीनू से भी पान खिलाने में मैंने काम लिया है जिसका मूल्य उसे मालूम नहीं।

—नलिनविलोचन शर्मा

समर्पण

श्रीमान् बनैलीनरेश

आनरेबुल राजा कीर्त्यानन्द सिंह जी

के

कमनीय करकमलों में

श्रीमान् की क्षमामय आज्ञा से

यह तुच्छ ग्रंथ

अत्यन्त श्रद्धा और नम्रतापूर्वक

सादर समर्पित।

ग्रन्थकर्त्ता

प्रथम संस्करण की भूमिका

प्रिय पाठकवर्ग,

श्री गोस्वामी तुलसीदास जी के विषय में जो कुछ पुस्तकों तथा लेखों में लिखा गया है प्रायः सबों को देखकर प्रायः कई वर्ष हुए यह जीवनी तैयार की गयी थी। सामग्रियों के प्रस्तुत करने में बनौं (जिला सारन) निवासी बाबू गोविन्द नारायण बी० ए० ने बहुत परिश्रम किया था। इस पुस्तक के प्रकाशक होने की भी उनकी इच्छा थी, किन्तु यह अभिलाषा पूरी होने के पूर्व ही वे इस संसार से चल बसे। उनके स्वर्गवास के अनन्तर उनके परम स्नेही बाबू ब्रजेन्द्रप्रसाद, एम० ए० बी० एल०, मुन्सिफ, बाबू अयोध्याप्रसाद, एम० ए०, डिपुटी कलक्टर तथा बिहार के विख्यात अँग्रेजी कवि बाबू रघुवीर नारायण प्रभृति इस के शीघ्र प्रकाशित होने के प्रयत्न में प्रवृत्त हुए और सफलतापूर्वक यथासाध्य उनलोगों ने इस कार्य में हमलोगों की सहायता की।

हिन्दीरसिक श्रीमान् आनरेबुल राजा कीर्त्यानन्द सिंहजी बनैलीनरेश ने कृपा-पूर्वक इस के प्रकाशन में यथेष्ट आर्थिक साहाय्य प्रदान कर हमलोगों को बाधित किया है। यह कहना बाहुल्य है कि यदि श्रीमान् की दया नहीं होती, तो आज इस पुस्तक को हमलोग पाठकों को भेंट नहीं कर सकते। हमलोग श्रीमान् को हार्दिक धन्यवाद देते हुए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि मातृभाषा में नित्य प्रति उनका स्नेहवर्द्धन होता रहे और आप इस की उन्नति में सदैव बद्धपरिकर रहें।

ईस्वी सन् १९१४ के सेप्टेम्बर के अन्त में प्रेस में यह पुस्तक छपने के लिए दी गयी। उस समय तक बहुत सी अन्य बातों की जानकारी हो जाने से पूर्व लिखित कापी में यथावश्यक काटछाँट और परिवर्द्धन कर दिया गया। प्रेस ने वादा किया था कि दो मास में पुस्तक छापकर तैयार कर दी जायगी, किन्तु यह प्रतिज्ञा कार्य में परिणत नहीं हो सकी। लगभग एक बरस में पूरी हुई।

इधर ग्रंथकार को आँख का पट्टर खुलवाना पड़ा और तत्पश्चात् वे ज्वर से पीड़ित हो गये। परिणाम यह हुआ कि वे प्रूफ स्वयम् नहीं देख सके और उन के हाथ से प्रूफ का संशोधन निकल गया।

पुस्तक में शुद्धाशुद्ध पत्र देने में हमलोग व्यर्थ का क्लेश तथा व्यय समझते हैं। आजकल किसी को नहीं देखा गया कि उसके अनुसार पुस्तक को शुद्ध कर पाठ करे।

अब तो जैसा है आप लोगों के आगे है। आशा है कि पाठक वर्ग इसकी त्रुटियों की ओर ध्यान नहीं देकर इस के विषय के नाते इसे अपनावेंगे।

बाबू बाजार—आरा
२४ नवम्बर, १९१६ ई०।

विनीत
रघुनाथप्रसाद सिंह

विषयानुक्रमणी

प्रथम खण्ड

द्वितीय खण्ड

गोस्वामी तुलसीदास

श्री सीतारामजी ।

श्री गोस्वामी तुलसीदास जी

छप्पै

श्री सियराम अनन्य उपासक परम मतव्यर ।
ध्यायो आठो जाम युगल पद पदुम नेहघर ।।
श्री रामायण, विनय आदि रचि हरि गुन गायो ।
भवसागर के तरन हेतु दृढ़ पोत बनायो ।।

श्री तुलसी के परताप तें, कलि हूँ ग्राम ग्राम नित ।
सियराम नाम कल्यान हित, कहत सकल उमहाव चित ।।

प्रथम परिच्छेद

जन्मकाल और जन्मस्थान

जगदादरणीय परम पूजनीय प्रातःस्मरणीय श्रीरामचरितमानस के उत्कृष्ट लेखक वैष्णव शिरोमणि महात्मा गोस्वामी तुलसीदास जी का जन्म लगभग संवत् १५८९[1] में हुआ। जैसे 'ईलियड' नामक सुविख्यात वीररसात्मक काव्य के रचयिता यूनान-देशीय प्रसिद्ध कवि 'होमर' की जन्मभूमि कहलाने के लिये उस की मृत्यु के अनन्तर सात गाँव[2] आपस में झगड़ने लगे थे वैसे ही हस्तिनापुर चित्रकूट निकटस्थ हाजीपुर राजापुर तथा तारी ये कई एक गाँव हमारे चरित्रनायक के जन्मस्थान कहलाने का दावा करते हैं। ग्रियर्सन साहब ने तारी का दावा जबरदस्त समझा है। परन्तु उन्हों ने इस का कोई कारण नहीं बताया है। हाँ! श्री सीतारामशरण भगवानप्रसाद जी[3] ने

---

१ शिवसिंह सरोज में सं० १५८३ के लगभग लिखा है। श्री रामी कमल[illegible]पुरी ने भी यही संवत् माना है। रेवरेण्ड एडविनग्रीव्स् ने जन्मकाल सं० १६०० —१० के मध्य में लिखा है और मानसमयंक के प्रेमी लोग इस दोहे के आधार पर "मन ऊपर सर जानिये सर पर दीजै एक। तुलसी प्रगटे रामवत राम जनम की टेक॥" सं० १५५४ मानते हैं (मयंक का ११५वाँ दोहा देखिये)। परन्तु अधिकांश लोगों ने सं० १५८९ माना है।

२ इस के सम्बन्ध में यह पद बहुत प्रसिद्ध है—

"Seven rival towns contend for Homer dead,
Through which the living Homer begged his bread."

"पादड़ी जे० एम० बार्कमन एम० ए० द्वारा सम्पादित पोपकृत 'ईलियड' के अनुवाद में उन स्थानों के नाम स्मर्ना रोड्स कोलोफन सलामिस किआस आर्गोस तथा एथेन्स दिए हुए हैं। और पादड़ी थियोडोर एलाइस बकली एम० ए० द्वारा सम्पादित ग्रन्थ में लिखा है कि होमर की अनाथा माता अगस में रहती थी बोएतिया में नदी किनारे होमर का जन्म हुआ और स्मर्ना (स्मर्ना) में एक शिक्षक के गृहिकाम इस की माता सम्हालने लगी। उस शिक्षक ने पीछे उस से अपना विवाह कर होमर को अपना पोष्यपुत्र बना लिया।" इत्यादि।

३ इस प्रबन्ध के लेखक ने इन की भी जीवनी लिखी है जिसे [illegible] धर्माभिमानी स्वर्गीय बाबू शालिग्राम नारायण जी ए० ने प्रकाशित किया है।

सुरचित 'भक्तमाल की टीका'[1] में लिखा है कि राजापुर में जाकर यह बात भलीभाँति निश्चय की गयी है कि गोसाईं जी का जन्म तारी में हुआ था और विरक्त होने के पीछे राजापुर में निवास कर उन्होंने वहाँ भजन किया है। इसी से वहाँ गोस्वामी जी की स्थापित की हुई संकटमोचन श्रीहनुमान जी की मूर्ति है और श्री रामायण अयोध्याकांड भी है। और इस विषय में पत्र द्वारा पूछने पर उन्होंने कृपापूर्वक हमें लिख भेजा है कि "तारी में जन्म बूढ़े २ भक्तमाली बताते हैं, कई एक प्रसिद्ध रामायणी लोगों ने अपने २ रामायणी गुरुओं से सुना है; संस्कृत में जो भक्तमाल का सत्था है उस में भी तारी ही लिखा है राजापुर के बूढ़ों से भी सुना गया है कि तारी ही में गोस्वामी जी का जन्म हुआ था राजापुर में नहीं। अयोध्यानिवासी श्री रामरसरंगमणि जी ने भी कवित्त रामायण की टीका में तारी ही को जन्म-स्थान माना है।"

जो लोग यमुनातटवर्ती राजापुर को यह गौरव प्रदान करते हैं उनका यह कथन है कि शिवसिंह ने गोस्वामी जी के सहवासी पसकानिवासी श्रीबेणीमाधव दास कृत 'गोसाइंचरित' के आधार पर राजापुर को जन्मस्थान माना है प्रसिद्ध रामायणी पण्डित रामगुलाम द्विवेदी जी[2] ने भी उसी को जन्मस्थान बताया है; रामायण की भाषा भी राजापुर प्रान्त ही की है। गोसाइं जी की हस्तलिखित रामायण अयोध्याकाण्ड अद्यावधि वहाँ वर्तमान है और लोग आज भी वहाँ गोसाईं जी का स्थानादि एवं आप की संस्थापित श्री महावीर जी की मूर्ति दिखलाते हैं। परन्तु जब ठाकुर शिव सिंह जी का लिखा जन्म संवत् मानने में राजापुर के पक्षपाती असम्मत दीखते हैं तो उनका लिखा हुआ जन्मस्थान क्योंकर ठीक समझा जायगा। उन्हों ने गोस्वामी जी के साथी बेणीमाधव दास जी का ग्रन्थ देखकर जैसे जन्मस्थान लिखा है वैसे ही जन्म संवत् भी। फिर एक को प्रामाणिक और दूसरे को अप्रामाणिक मानना क्या न्यायसंगत होगा?

---

१ श्री सीतारामशरण भगवानप्रसाद कृत भक्तमाल की टीका प्रथम संस्करण, पृ० १०६६ देखिए।

२ पं० मिरजापुर के रहनेवाले प्रसिद्ध रामायणी थे। रामचरित मानस के विद्यार्थी मण्डली में ये गोस्वामी जी से छठीं पीढ़ी में थे। परन्तु बनारस के स्वर्गीय सुप्रसिद्ध ज्योतिषी महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी जी कहते हैं कि 'तुलसीदास जी के कोई चेले नहीं थे यदि होते तो वे लोग कबीरपंथी, दरियादासी इत्यादि के समान अपने को 'तुलसीदासी' के नाम से प्रसिद्ध करते। उस रीति के सम्प्रदायी चेले न हों (और इन का चलाया कोई सम्प्रदाय सुना भी नहीं जाता) परन्तु इनसे किसी को इन से रामायण पढ़ने या शिष्य ही होने की बात अप्रामाणिक नहीं हो सकती। क्योंकि किसी के पास कुछ पढ़ने से कोई उस व्यक्ति का सम्प्रदायी शिष्य नहीं हो सकता। यदि ऐसी बात होती तो मिशन स्कूल के पढ़नेवाले अपने को 'मिशनवादी' और मदरसा के पढ़नेवाले अपने को 'मौलवीवादी' प्रसिद्ध करते। और शिष्य तो सभी ब्राह्मण बिना अपना कोई सम्प्रदाय चलाए बना सकते हैं। पण्डित रामगुलाम जी का वृत्तान्त अन्यत्र लिखा गया है।

और जैसे पं० रामगुलाम जी ने इस विषय में अन्वेषण कर राजापुर को जन्मस्थान माना है वैसे ही औरों के अन्वेषण से तारी जन्मभूमि सिद्ध हुई है और बहुत से लोग तारी को प्रधानता देते हैं।[1] एवम् राजापुर के कई बूढ़े भी गोसाइं जी का वहां जन्मस्थान नहीं मानते हैं।

रामायण की भाषा राजापुर के प्रान्त की भाषा होने से भी लोगों को कुछ सहायता नहीं मिल सकती। कोई किसी विशेष भाषा में ग्रन्थ लिखने के कारण जहां की वह भाषा है वहां का निवासी नहीं कहा जा सकता। ऐसा मानने से कितने भारतवासी विलायती कहलाने लग जायेंगे। और कितने विलायतियों की भी गिनती हिन्दुस्तानियों में होने लगेगी भारतवर्ष के भिन्न २ प्रान्तों के निवासियों की बात तो दूर रहे।

फिर राजापुर से तारी ५, ६ ही कोस पर यमुना के एक ही तीर पर है[2] एवम् दोनों स्थानों की भाषा भी एक ही है। और अधिक अन्तर भी हो तो क्या विरक्त होने के बाद वहाँ निवास करने के समय वहाँ के लोगों के संसर्ग से गोस्वामी जी को उस प्रान्त की भाषा जान लेने में कोई कठिनाई हुई होगी? और रामायण में सर्वत्र एक ही भाषा देखी भी तो नहीं जाती। इसी से सुकवि भिखारी दासजी ने कहा है "तुलसि गंग दोऊ भये सुकविन के सरदार। जिनकी कविता में मिली भाषा विविध प्रकार।" और स्वयं गीतावली की भाषा ब्रजभाषा होने से क्या गोसाइं जी का जन्मस्थान ब्रजदेश में माना जायगा?

विचार कर देखने से रामायण अयोध्याकाण्ड की प्रति और श्री हनुमान जी की मूर्ति आदि राजापुर में होने से गोसाइं जी का वहां जन्मस्थान सिद्ध नहीं होता वरन् विरक्त होने के पश्चात ही इनका वहां निवास करना अधिकतर प्रतिपादित होता है। क्योंकि लड़कपन में तो गोसाईं जी वे सब करने के योग्य थे ही नहीं और विवाह के अनन्तर तो इन्हें पत्नीप्रेम ही में आसक्त पाते हैं। तब इन सब बातों के होने की विशेष सम्भावना इनके विरक्त होने पर ही है और जो घर छोड़कर विरक्त हो जाता है वह प्रायः गाँव ही में आकर डेरा नहीं जमाता और वहीं देवमन्दिर आदि संस्थापित नहीं करता।

फिर रामायण की रचना इन्होंने ४१ वर्ष की अवस्था में की है। तो क्या वे गाँव ही के नाते रामायण लिख कर एक प्रति वहाँ दे आये और मन्दिर आदि बना आये जिसमें लोग जानें कि यही इनकी जन्म भूमि थी। यदि इन को यह बात प्रसिद्ध करने की

---

1 काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित रामायण पृष्ठ ८ देखिये।

२ यह पुस्तक छपने पर और छपे पत्र एक सज्जन ने इलाहाबाद से प्रकाशित ११ अगस्त १९१० ई० के अंगरेजी पत्र 'लीडर' में लिखा था कि बांदा जिला की मऊ तहसील से प्रायः ३ मील पर और राजापुर से १५ मील पूर्व यमुना के दाहिने तट पर तारी एक बड़ा ग्राम अवस्थित है। डाक्टर ग्रियर्सन के कथनानुसार यह दोआब में नहीं है यद्यपि यह असम्भव नहीं कि ३०० वर्षों के मध्य में नदी का प्रवाह बदल गया हो।

इच्छा होती तो व इस विषय में कोई कविता ही कर देते जिस से यह बात और भी दृढ़ हो जाती।'

अतएव जिन कारणों से लोग राजापुर को इनका जन्मस्थान होना बताते हैं उनसे यह बात प्रमाणित नहीं होती। परन्तु राजापुर गोस्वामी जी को अपनाने की चेष्टा में बहुत तत्पर है। बहुत लोगों को भिन्न पक्ष का प्रतिपादक बनाता आता है और उस ने अपने निकटवर्ती कटवार ग्रामनिवासी बलदेव कवि से अपने माहात्म्य की कविता में अपने यहाँ यमुना के तट पर गोस्वामी जी का 'श्रागार' होना कहलवाया है।

उक्त पुस्तक में राजापुर मण्डल एवम् राजापुर ग्राम की सीमा इस प्रकार वर्णित हुई है।

अथ राजापुर मण्डल की सीमाएं

"दक्खिन में बाल्मीक सैल एक योजन[२] पै नैऋत[३] में चित्रकूट योजन अढ़ाई है। सात कोस पच्छू अमरे ही नाय दुइ कोस यमुना में आय पयस्वनि समाई है। उत्तर में चंडिका भवानी सात कोस ही पै पूरब मऊ में सियाराम दोऊ भाई हैं। एते बीच धांदा प्रान्त माहिं बलदेव कहैं राजापुर मंडल की अधिक बड़ाई है।"

अथ राजापुर की सीमाएं

"पूरब में प्रभुघाट तुलसी गोसाई थान जासु कृत रामायण जाहिर तमाम है। दक्खिन शिवाला पाठशाला डाकखाना थाना जा सो एक मील लटवार नाम ग्राम है। पश्चिम में संकट मोचन महावीर मठ सोहै सियारामानुज झाँकी अभिराम है। उत्तर यमुना जी की धारा जल सियाम रंग दास बलदेव दास करत प्रणाम है।"

राजापुर में श्री हनुमान स्थान सिद्धिदायिनी भवानी श्री राम और श्री भैरवादि के कई एक मन्दिर हैं और प्रति वर्ष कार्तिक और वैसाख की पूर्णिमा को वहाँ मेला भी हुआ करता है।

---

१ १२ सितम्बर १९१० ई० के उक्त 'लीडर' में श्री रघुराज किशोर बी० ए० ने लिखा था कि यह सम्भवपूर्ण बात है, कि गोसाईं जी कभी फिर अपनी जन्मभूमि पर गये। क्योंकि उन्होंने स्वयम् कहा है—

तुलसी तहाँ न जाइये, जहाँ जन्म को ठाँव।
गुन औगुन जानै नहीं धरै पाछिला नाँव॥'

इससे अनुमान होता है कि गोसाईं जी पुनः अपने ग्राम में गये नहीं और गये तो वहाँ उन के साथ सद्व्यवहार नहीं हुआ। उर्दू कवि ज़ौक़ ने भी कहा है:—

बाइसे ज़िल्लत का वतन में कुछ कुछ होती थी मगर
लाल क्यों हम रंग में आता बदख़्शाँ छोड़कर।

२ चार कोस परिमाण।

३ दक्षिण-पश्चिम कोण।

१५ दिनों तक मेला रहता है। कई हजार मनुष्य आस पास के ग्रामों से आकर रोट आदि चढ़ाते हैं।

निस्सन्देह ज़िला बान्दा[1] परगना मऊ में यमुना तट पर राजापुर एक प्रसिद्ध ग्राम है और करवी मानक (जी आई पी०) रेलवे स्टेशन से उत्तर-पूर्व ८ कोस पर बसा है। एक समय राजापुर वाणिज्य का एक प्रधान स्थान था। परन्तु अब वह बात नहीं है। 'इम्पीरियल गजेटियर' में लिखा है कि 'दन्त कथा के अनुसार यह गाँव भाषा रामायण' के सुविख्यात रचयिता तुलसीदास ने बसाया—और वहाँ उन्होंने कई एक अपूर्व नियम प्रचलित किये जो अभी तक माने जाते हैं। वहाँ (सिवाय देवमन्दिरों के) कोई अन्य मकान पत्थर का नहीं बनाया जाता और वेश्यादि वहाँ रहने नहीं पातीं।[2]

यह भारी भेद ध्यान देने के योग्य है। लेखक ने दन्तकथा राजापुर के प्रान्त ही में सुनी होगी और दन्तकथा के अनुसार राजापुर गोस्वामी जी का बसाया हुआ है (जन्मभूमि नहीं है)। इसका ग्राम बसाना और वहाँ कई एक कठिन नियमों का प्रचार करना जो आज तक माने जाते हैं केवल साधु होने के अनन्तर वास करने के प्रमाण हो सकते हैं। क्योंकि साधु

---

१ श्री ज्ञानेन्द्र मोहनदत्त ने बङ्गला मासिक पत्र 'प्रवासी' भाग ११ खण्ड २ में राजापुर ज़िला और बान्दा ग्राम लिखा है। अजानकारी के कारण उन्होंने ऐसी भूल की है।

२ Rajapur town (or Majhgawan)—Town in the main Tahsil of Banda District U P situated on the bank of Jamuna 18 miles North East of Karwi, population (1901) 5491 Rajapur is the name of the town, and Majhgawan that of the Mouza or village area within which it is situated. According to tradition the town was founded by Tulsidas the celebrated author of the vernacular version of the Ramayan and his residence is still shown. He is said to have established several peculiar restrictions which are scrupulously observed no houses (except shrines) are built of stone and potters, barbers and dancing girls are rigorously excluded. The only public buildings are police station, P office, school and dispensary Rajapur was for a time chief commercial centre of the District. Owing to its position on the Jamuna, but many of the merchants have migrated to Karwi and the place is declining Besides the export of country produce, there is a small manufacture of shoes and blankets.—Imperial Gazetteer of India Vol XXI

महात्माओं की आज्ञा के अनुसार कार्य करने को लोग शीघ्र ही उद्यत हो जाते हैं। कोई बालक या स्त्री स्नेहरत युवक का बनाया ऐसा नियम नहीं चल सकता।

हमारे स्वर्गीय युवक मित्र बाबू गोवर्धन सिंह २५वीं अक्तूबर से १० नवम्बर १६११ ई० तक राजपुर में ठहरे थे। उनसे भी ज्ञात हुआ है कि राजापुर में कवि मंगलदीन शर्म्मा एवम् कई एक बूढ़ा स्त्रियाँ आज भी वर्तमान हैं जो राजापुर को गोस्वामी जी का जन्म स्थान होना नहीं बताती। कई महीने हुये कि हम को आरा निवासी स्वर्गीय बाबू सीताराम महाफ़िज़ दफ्तर कलक्टरी के मकान पर राजापुर के प० रघुनन्दन जी से भेंट हुई थी वे भी कहते थे कि राजापुर में गोसाईं जी का जन्म नहीं हुआ था।

इन्हीं सब कारणों से हम राजापुर को गोस्वामी जी का निवास स्थान मानते हैं जन्म स्थान मानने को तैयार नहीं हैं।"

इसमें सन्देह नहीं कि तारी एक छोटा सा गाँव है और वहाँ गोसाईं जी के स्थान का कोई चिन्ह नहीं है। परन्तु चिन्ह नहीं रहना स्वाभाविक बात है, क्योंकि गृहस्थावस्था में तो वे पत्नी प्रेम ही में मग्न रहते थे और विरक्त होने के पीछे इनका वहाँ रहना कहा नहीं जाता जो बात भी स्वाभाविक है, तब कोई अवशिष्ट चिन्ह आवे तो कहाँ से ?

राजापुर में गोस्वामी जी के स्थान पर चन्दे से ४५००) लगा कर श्रीराम जी का एक मन्दिर बना है। उस में गोस्वामी जी की मूर्ति भी स्थापित हुई है और विधिपूर्वक पूजा हुआ करती है। ७५०) प्रान्तिक सरकार से भी मिला है और सरकार की ओर से उन की यादगार में एक संगमरमर की तख्ती लगाई गई है और चन्दा देनेवालों का नाम दूसरे पत्थर पर खुदा है।

राजापुर में गोसाईं जी के स्मारक चिन्ह संस्थापित होने एवं उसके सम्मानित किये जाने में कोई आपत्ति नहीं क्योंकि गोस्वामी जी का वहां कुछ काल निवास करने से उस को भी इन से निश्चय सम्बन्ध है। हम तो यही कहेंगे कि जिन २ स्थानों को गोस्वामी जी से किसी प्रकार का सम्बन्ध था उन सब स्थानों में इन का स्मारक चिन्ह स्थापित होना चाहिए।

पण्डित महादेव प्रसाद जी ने 'भक्ति विलास' में राजापुर में गोस्वामी जी का मानिवास और जन्म माना है और लिखा है कि "गोस्वामी जी के पिता माता का स्थान परवौंका था,

---

१ अब लखनऊ से प्रकाशित 'माधुरी' वर्ष ७ खण्ड २ पृष्ठ ७६१ में एक महाशय गौरीशङ्कर द्विवेदी ने सोरों निवासी पण्डित गोविन्द बल्लभ जी शास्त्री के किसी लेख के आधार पर लिखा है कि गोसाईं जी का जन्म सोरों (शूकर क्षेत्र) मुहल्ला योगमार्ग में हुआ था।

सोरों कासगंज के पास ऐटा जिला में है। शास्त्री जी वहीं के रहने वाले हैं।

रामचरित मानस के अँगरेजी अनुवादक प्रथम साहब ने पहले पहल सोरों को शूकर क्षेत्र ठहरा लिया और तब से देशीय विदेशीय सब लोग उनका अनुकरण करते हैं।

सोरों के बयान में ऐटा के डिस्ट्रिक्ट गजटियर में लिखा जाता है कि वाराह रूप धारी भगवान ने यहाँ हिरण्याक्ष्य का वध किया। यह ऐसा अनुसन्धान और जानकारी है।

धर्मस्थिति अन्तरवेद तारी में हुई और वहीं से उनलोगों के आने पर राजापुर में गोसाईं जी का जन्म हुआ।' इसमें गोसाईं जी का तारी और राजापुर से सम्बन्ध तो अच्छे ढंग से जोड़ा गया परन्तु ऐसा लिखने का पण्डित जी ने क्या प्रमाण पाया यह बात ज्ञात नहीं होती। अतएव इस की समालोचना की आवश्यकता नहीं।

द्वितीय परिच्छेद

जाति और जनक जननी

गोस्वामी जी ने जन्म ग्रहण कर किसी ब्राह्मण के कुल को पवित्र किया था इसमें तो सन्देह नहीं क्योंकि यह बात इन के लेखों ही से प्रकट है। परन्तु आप कौन ब्राह्मण थे इस में मतभेद है। मिरजापुरनिवासी तुलसीराम अग्रवाल कृत उर्दू भक्तमाल तथा राजा प्रताप सिंह[1] कृत 'भक्तकल्पद्रुम' में आप को कान्यकुब्ज ब्राह्मण लिखा है। किन्तु ठाकुर शिवसिंह पंडित राम गुलाम द्विवेदी, डाक्टर ग्रियर्सन एवम् बहुत से अन्य महाशय आप को सरवरिया (सरयूपारी) ब्राह्मण बताते हैं और उस में कोई शुक्ल गर्गगोत्री और कोई पराशरगोत्री द्विवेदी पत्यौजा के मानते हैं। पत्यौजा के दूबे से यह तात्पर्य होगा कि वे उस दूबे श्रेणी में थे जिन के पूर्वपुरुषगण पत्यौजा स्थान में रहते थे और वहाँ से इधर उधर फैल एवम् भिन्न २ स्थानों में जा बसे। 'तुलसी पराशर गोत दूबे पतिऔजा के' ऐसा भी काष्ठजिह्वा स्वामी[2] ने भी लिखा है।

फिर कोई २ रामपुर प्रान्त में कान्यकुब्ज ब्राह्मणों का अभाव बता कर गोसाईं जी को सरयूपारी ब्राह्मण होना और कोई बांदा जिला भर में कान्यकुब्जों ही की अधिकता दिखा कर इन्हें कान्यकुब्ज होना बताते हैं। परन्तु जिस नगर में पहले एक बंगदेशीय बन्धु का दर्शन भी दुर्लभ था वहाँ आज बड़ा २ बंगाली टोला देखा जाता है एवम् जहाँ एक दिन मुसलमान भाइयों का घना आवास था आज वहाँ उन की सूरत भी नजर नहीं आती। तब किसी विशेष स्थान में किसी विशेष जाति के आधुनिक अभाव या आधिक्य से वहाँ की प्राचीन (३०० वर्ष पूर्व की)

---

१ "पडरौना नृप प्रताप हरि भक्तमाल कीर्तिक भनित।
राम धाम जनधाम अवध को अनुभव कीनो॥
स्याम धाम ब्रजभूमि रसिकजन को सुख दीनो॥
रसिक उपासक अतुल प्रेम पद्धति पहचाने।
जनकराज सम भगत भक्ति आगील बखाने॥
भक्तकल्पद्रुम नामधरि लिखा प्रेम समन्वित।
पडरौना नृप"

(श्री वृंदावन निवासी श्रीराधाचरण गोस्वामी कृत नव भक्तमाल छप्पये।)

२ जय काष्ठजिह्वा देव पद काष्ठजिह्वा स्वामीरूपाय। पाखण्डन ध्वान्त हरण भास्कर वेदान्त परायण प्रभु। करत बाद अनुवाद पण्डितन संग सदा प्रभु। शुक्ल कही भगवान कृपा क्यों काठ जिह्वा धारि। जीभ काठ की राखि नहीं क्यों हरि गुण गावत। तब जीभ काठ सो भई राम नाम बिनु सब जंजाल।

(श्री राधाचरण गोस्वामी कृत 'नवभक्तमाल' पृ० १८)

सरस्ता निर्णय नहीं की जा सकती जब तक इस कार्य के साधन के लिये अन्य सामग्री नहीं हो एवम् उस समय की कुछ चार बातें न्यूनाधिक ज्ञात न हों।

हमारे एक सुहृद पंडित मिश्र ने हम से कहा है (और स्मरण आता है कि हम ने किसी पुस्तक में भी पढ़ा है) कि सरयूपारीण ब्राह्मण भी कान्यकुब्ज ही हैं, क्योंकि जो कनौजिया ब्राह्मण श्री रामचन्द्र जी के यहाँ यज्ञ में दान ग्रहण कर सरयूपार ही में बस गये थे वही लोग सरयूपारीण और सरवरिया नाम से प्रसिद्ध हुये। वाल्मीकीय रामायण में कनौज से ब्राह्मणों के बुलाये जाने का हाल स्पष्ट नहीं लिखा हुआ है किन्तु उस में अश्वमेध यज्ञ के समय जब कि रामचन्द्र को सब ओर कुश से मिलन हुआ देश देशान्तरों से ब्राह्मणों के बुलाये जाने की बात देखी जाती है।[1] इस से कनौज के ब्राह्मणों का भी वहाँ आना निश्चय है। यद्यपि उस में दानादि धन का विशेष वर्णन नहीं है कि किस को क्या दिया गया परन्तु इतना अवश्य लिखा है कि लोगों को प्रचुर दान दिया गया। जिस ने जो मांगा उसे वही मिला, मांगते देर हुई देते विलम्ब नहीं हुआ।[2] यदि उस समय न मिला हो तो उन्हें जागीर आदि किसी अन्य अवसर पर मिली होगी क्योंकि वाल्मीक जी ने लिखा है कि रामचन्द्र ने अनेक बार अश्वमेधादि यज्ञ[3] सम्पन्न किये थे यद्यपि उन्हों ने सबों का सविस्तर विवर्ण (विवरण) नहीं दिया है।

कनौज के ब्राह्मणों का अन्य प्रदेशों में बुलाये जाने का प्रमाण बंगाल के इतिहास में भी वर्तमान है। बंगदेशाधिपति आदिसूर ने भी वेदानुसार के निमित्त ५ ब्राह्मणों को कनौज ही से बुलाया था और पूछने पर हमारे यहाँ एक ब्राह्मण बंगाली मित्रों ने कहा है कि वे लोग अपने को कान्यकुब्ज भी कहते हैं। बिहार के प्रायः सभी अनपढ़े तथा पढ़े लिखे सरवरिया ब्राह्मण भी अपने को कान्यकुब्ज कहते हैं और कोई २ सरयूपारी कनौजिया कहते हैं। हम ने ऐसे कई लोगों से पूछ कर इस बात का निश्चय किया है और कदाचित् इसी कारण से किसी लेखक ने गोस्वामीजी को कान्यकुब्ज और किसी ने सरयूपारीण लिखा है। हमारी समझ में यह बात उत्तम होगी कि हमलोग इन्हें सरयूपारी कान्यकुब्ज कहें।

कोई २ कहते हैं कि पहले अर्थात् रामचन्द्र के समय कनौज का नाम महोदय था और वहाँ के लोग उस समय कान्यकुब्ज (कनौजिया) नहीं कहलाते होंगे। रामचन्द्र के समय यह स्थान किस नाम से प्रख्यात था यह बात तो रामायण से विदित नहीं होती। परन्तु उसका कोई अन्य नाम होने से भी वहाँ के ब्राह्मणों को यज्ञ के अवसर में आने और दान पाने में कोई बाधा नहीं हुई होगी। फिर उस समय वहाँ के ब्राह्मण जिस नाम से प्रसिद्ध हों किन्तु गोस्वामी जी के जन्म के से बहुत दिन (पहले) सरवरिया कनौजिया आदि पदवियां सुख्यात हो रही थीं और यज्ञ सम्बन्धी पूर्वोक्त कथा से भी लोग परिचित थे।

भक्ति सिन्धु तथा 'शरद रामायण माहात्म्य' के अनुसार इन के पिता का नाम आत्माराम माता का नाम हुलसी एवम् इन का बालपन का नाम रामबोला था। इनके लेखों में

---

१ 'देशान्तरगता ये च द्विजा धर्मसमाहिताः। आमंत्रयस्व तान्सर्वानश्वमेधाय मखमध्य॥' उत्तर काण्ड सर्ग ९१ श्लोक १२।

२ उत्तर काण्ड सर्ग ९२।

३ उत्तर काण्ड सर्ग ९९ श्लोक ८६।

इनके पिता के नाम का तो कहीं प्रमाण नहीं मिलता। किन्तु इन की माता के नाम का प्रमाण लोग इस चौपाई में 'सम्भु प्रसाद सुमति हिय हुलसी' और रहीम खान खाना[1] के 'इस चर्चा रा दोहे में "गोद लिये हुलसी फिरै तुलसी से सुत होय' बताते हैं एवम् इन का पहला 'रामबोला' नाम होने का प्रमाण 'कवित रामायण तथा विनय पत्रिका' के इन पदों में पाते हैं "साहब सुजान जिन स्वान हू को पक्ष कियो 'रामबोला'। नाम हौं गुलाम राम साही को" (क० रा० उ० काण्ड कवित्त नम्बर ९४), और "राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यो राम काम यहै नाम द्वै हौं कबहू कहत हौं" (विन० पद ७५)।

ये पद केवल यही बात प्रकटित नहीं करते कि इन का आदि में रामबोला नाम था वरन् इन से यह भी सिद्ध होता है कि विरक्त होने और तुलसीदास नाम पाने के पूर्व भी ये कविता किया करते थे एवम् बालकाल ही से इन की इस ओर प्रवृत्ति थी तथा स्त्री के उपदेश के पूर्व भी इन का भी राम में अवश्य स्नेह था। स्त्री का वाक्य अग्निकुंड में आहुति के समान होकर उस स्नेह को पूर्णरूप से प्रज्वलित और प्रकाशित कर दिया। कवितावली तथा विनय पत्रिका में इन के भिन्न २ समय के बनाये कवित तथा पद समावेशित हैं।

ग्रियर्सन साहब ने १८९३ के 'इंडियन एण्टिकुएरी (Indian Antiquary) पत्र के पृ ५१ टिप्पणी में तीन दोहे दिये हैं। उन में इन की माता पिता, गुरु,गुरु पत्नी श्वसुर सब के नाम वर्णित हुये हैं। परन्तु ये किस ग्रंथ के या किस के रचे दोहे हैं यह बात आपने नहीं लिखी है। कवि इन ग्रंथों में तो ये दोहे अवश्य नहीं देखे जाते। हम उन दोहों को नीचे उद्धृत कर देते हैं—

"दूबे आत्मा राम हैं, पिता नाम जग जान।
माता हुलसी कहत सब तुलसी के सुत मान॥
प्रह्लाद उधारन नाम है गुरु का सुनिये साध।
प्रगट नाम नहीं कहत जो, कहत होय अपराध॥
दीन बन्धु पाठक कहत ससुर नाम सब कोइ।
रत्नावलि तिय नाम है सुत तारक गत होइ॥"

इन सब नामों की सत्यता में हम चाहे कोई अन्य व्यक्ति शंका करें, किन्तु इस बात में सभी सहमत होंगे कि आप की माता निस्सन्देह परम धन्य और पुण्यवति (ती) थी जिन के उदर से ऐसे महान महात्मा का जन्म हुआ कि जिन की रचनायें इस अधर्मपरायण (परायण) समय में भी लाखों मनुष्यों को सदाचारी जगहितकारी भक्तिप्रभावी बना रही हैं। और ईश्वर प्रेमियों को तो वे सदा हितकारिणी हुई हैं आप ने रामायण में स्वयम् भी लिखा है और बहुत ठीक लिखा है "पुत्रवती युवती जग सोई। रघुपति भक्त जासु सुत होई। आप ने इसी चौपाई में अपनी पूजनीय माता की गुप्तरूप से स्तुति भी की है कि 'तू धन्य है जिस की पवित्र कोख से जन्म ग्रहण करने से मेरा मन ईश्वरपादपद्म का अनुरागी हुआ है।"

1 इन का वृत्तान्त १३वें परिच्छेद में लिखा गया है।

तृतीय परिच्छेद

बाल्यावस्था

प्रवाद है कि गोसाईं जी का जन्म अभुक्तमूल में हुआ था और मुहूर्त (मुहूर्त) चिन्तामणि[1] में लिखा है कि "मूल के आदि की ८ घड़ी और ज्येष्ठा के अन्त की तेरह घड़ी 'अभुक्तमूल' है। इस में जो बालक उत्पन्न हो उसे त्याग दे अथवा आठ वर्ष तक उसका मुँह न देखे क्योंकि ऐसा बालक पितृहन्ता होता है।"[2]

आज कल तो कोई ऐसे बालक को त्याग नहीं सकता क्योंकि ऐसा करने वाले को ताजिरातहिन्द I. P. C. की ३१७ धारा (दफा) के अनुसार कारागार की विपत्ति अवश्य झेलनी पड़ेगी। कदाचित् मुसलमानी शासनकाल में ऐसा किया जाता हो। पर उस समय भी क्या सब माता पिता का ऐसा वज्र हृदय होता था कि ऐसे पुत्र को जन्म लेते ही वे परित्याग कर देते थे। यह बात माता पिता के स्वाभाविक अनिर्वचनीय पवित्र स्नेह के विरुद्ध प्रतीत होती है। प्रतिदिन देखा जाता है कि सन्तान के सुख के लिये माता पिता कैसा २ कष्ट उठाने को सदा तत्पर रहते हैं। कहीं २ तो ऐसी कथा देखने सुनने में आती है जिस से मन क्षुब्ध हो जाता है और बुद्धि चकित हो जाती है।

हमारे बहुत से पाठक यह बात जानते होंगे कि हुमायूँ के रोगग्रस्त होने पर उन के पिता बाबर ने रोगी की चारपाई के चतुर्दिक परिक्रमा करके ईश्वर से यह प्रार्थना की थी कि "हे प्रभो इस के बदले मेरा प्राणान्त हो पर यह निरोग हो जाय"। परम करुणामय ईश्वर ने उनकी निश्छल प्रार्थना सुन भी ली। हुमायूँ निरोग हो गये और बाबर को स्वयं इस संसार से प्रयाण करना पड़ा।

मिनहाज उद्दीन सिराजने 'तबकाते नासरी' में लिखा है कि जब बंगाल प्रदेश के अन्तिम हिन्दू राजा लखमनिया (या सुसेन या लक्ष्मणसेन) की माता को प्रसवपीड़ा होने लगी तो ज्योतिषियों ने कहा कि यदि बालक इस क्षण ही जन्मा तो वह शीघ्र ही मर जायगा। किन्तु यदि अमुक समय जन्म हो तो १[illegible] वर्ष पर्यन्त राज्यसुख भोगेगा। यह सुनकर उनकी माता ने अपने को उलटा टँगवा दिया और शुभ घड़ी उपस्थित होने पर वे उतारी गईं। पुत्र का जन्म तो शुभमुहूर्त में हुआ सही परन्तु पुत्र के कल्याणार्थ उन्हें अपना प्राण न्योछावर करना पड़ा।

---

१ इस ग्रंथ की रचना गोसाईं जी ही के समय में हुई थी।

२ "अभोक्तुमूलं प्रथमाष्टघट्यो मूलस्य शाक्रान्तिमपञ्चनाड्यः।
जातं शिशुं तत्र परित्यजेद्वा मुखं पितास्याष्टसमा न पश्येत् ॥"

जब माता पिता का दृश्य होवे हों या नहीं परन्तु अभुक्तमूल में जन्मे हुए बालकों की मूलशान्ति और गोमुख प्रसवशान्ति विधि भी शास्त्रानुसार की जाती है। और अब गोस्वामी जी के जन्म संम(व)त् ही में विवाद है और कोई उसे 1554, कोई 1583 कोई 1589 और कोई 1600—1610 बतलाते हैं और मास दिवस का कुछ पता ही नहीं तो अभुक्तमूल की बात उठानी ही अनुचित है। क्या किसी वर्ष, किसी मास किसी दिवस में इन का जन्म क्यों न हुआ हो 'अभुक्तमूल' इन के पीछे लगा ही हुआ था ? यह तो बड़ा आश्चर्य जनक कौतुक है। जो लोग 'अभुक्तमूल' की कथा कहते हैं उन्हें प्रथम स्वामी जी की जन्म कुं(कुं)डली हस्तगत कर के उसे सर्वसाधारण को दृष्टिगोचर कराना चाहिए। हमारी समझ में सबसे लोगों का ध्यान गोस्वामी जी कृत नीचे लिखी हुई कविताओं पर गया है 'अभुक्तमूल' की बात उठाई गई है।

"मातु पिता जग जाय तज्यो विधिहूँ (हि) न लिखी कछु भाल भलाई। नीच निरादर भाजन कादर कूकुर टूकन लागि ललाई॥ राम सुभाय सुन्यो तुलसी प्रभु सों कह्यो बारक पेट खलाई। स्वारथ को परमारथ को रघुनाथ सु साहब खोर न लाई॥"

(क० रा० उ० कां० 57)

"जाति के सुजाति के कुजाति के पेटागि बस पाए टूक सब के विदित बात दुनि सो। मानस वचन काय किये पाप सत भाय राम को कहाय दास दगाबाज पुनि सो। राम नाम को प्रभाउ पाउ महिमा प्रताप तुलसी सो जग मानियत महा मुनि सो। अतिहि अभागो अनुरागत न राम पद मूढ़ ऐसो बड़ो अचरज देखि सुनि सो।"

(क० उ० कां० 72)

"जननि जनक तज्यो, जनम करम बिनु बिधि सिरज्यो अवडेरे। मोहि सो कोउ २ कहत राम को सो प्रसंग केहि करे॥ फिर्‌यो ललात बिनु नाम उदर लगि दुखहु दुखित मोहि हेरे। नाम प्रसाद लहत रसाल फल अब हौं बबुर बहेरे

(विनय० प० 227 पद)

"जायो कुल मंगन बधावो न बजायो सुनि भयो परिताप पाप जननी जनक को। बारे त ललात बिललात द्वार २ दीन जानत हौं चारि फल चारहि चनक को॥ तुलसी सो साहिब समर्थ को सुसेवकहि सुनत सिहात सोच विधि हू गनक को। नाम राम रावरे सयानो कैधों बावरो जो करत गिरी त गरु तिन त तनक को।"

(क० रामायण उ० कां० 73 कवित्त)

ग्रियर्सन साहब लिखते हैं कि "बाप के मा बाप के त्याग किये पर रमता साधु ने आप को धारण उठा लिया होगा क्योंकि कोई भद्र गृहस्थ तो ऐसे बालक से कोई सम्बन्ध ही नहीं रख सकता था और बचपन में यह अवश्य उसी साधु के साथ रहते और भारतवर्ष में भ्रमण

करते होंगे और उसी साधु से या उनकी मंडली के किसी अन्य साधु से रामचरित सुने होंगे जैसा कि इन्होंने स्वयं कहा है।[1]

"मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकरखेत।
समुझी नहीं तस बालपन, तब अति रहेउँ अचेत॥

पादरी एडविन ग्रीव्स साहब का यह कथन कि 'एक दो पदों के आधार पर इतनी लम्बी चौड़ी व्याख्या उठानी उचित नहीं'[2] बहुत ठीक है। और सोचकर देखने से उपर्युक्त पदों से यह सिद्ध भी नहीं होता कि इनके पिता माता ने जन्म ग्रहण करते ही इन्हें कहीं फेंक दिया और कोई साधु या गृहस्थ ने इन्हें उठाकर अपने पास रखा। इन पदों से तो इतना ही विदित होता है कि—

(१) भिखमंगे (ब्राह्मण कुल) में इनका जन्म हुआ।

(२) इन के जन्म के समय आनन्दोत्सव नहीं हुआ, चाहे माता पिता की दरिद्रता के कारण हो चाहे जन्मग्रह के परिताप के क्षोभ ही के कारण हो।

(३) बाल्यावस्था ही से पेट के कारण इन्हें सब प्रकार के लोगों का द्वार खटखटाना पड़ा।

(४) माता पिता ने इन्हें जन्मा कर तज दिया और ब्रह्मा ने इन्हें भाग्यहीन बनाया।

यदि सचमुच इनके (के) माता पिता इन्हें फेंक देते या त्याग देते तो इन्हें अपनी जाति पाँति का हाल और जन्मसमय बधावा नहीं बजने का हाल कैसे ज्ञात होता? ये बातें न इन्हें स्वयम् ही ज्ञात होतीं और न इन्हें कोई बता ही सकता। क्योंकि उन लोगों ने यदि इन्हें फेंका या त्यागा होगा तो जन्म देते ही। कुछ काल पोषण पालन करने पर एवम् स्नेह उत्पन्न होने पर त्यागना संभव नहीं दीखता। और जब लोग पहिले इन्हें घर ही में रखते तब फिर कुछ दिनों के बाद त्याग ही क्यों देते? यह बात दूसरी है कि श्री हनुमान जी या श्री रामचन्द्र जी की कृपा से इन्हें सब बातें ज्ञात हो गईं। अथवा महान् महात्मा ईश्वर के सच्चे प्रेमी और सच्चे भक्त त्रिकालज्ञ होते हैं अतएव भूत भविष्य और वर्तमान सब जानने को ये समर्थ हो गये। यहाँ पर इस विषय की आलोचना इस ढंग पर नहीं हो रही है।

'तजने' से केवल फेंक देने या त्याग देने ही का बोध नहीं होता। इस से उन दोनों के परलोक गमन का भी आशय निकल सकता है। इस से निश्चय होता है कि इन के पिता माता ने इन्हें फेंक नहीं दिया था और वे लोग इन के जन्म के पश्चात् कुछ दिन जीवित भी रहे[3] जिन से इन को अपना हाल जानने का अवसर मिला।

---

१ तुलसीदास के विषय में नोट इण्डियन एण्टिक्वेरी सन् १८९३ ई० के पृ० २१ में देखिए।

२ काशी नागरी प्रचारिणी-पत्रिका भाग ३ सन् १८९९ ई० पृ० २७ देखिये।

३ डा० ग्रियर्सन भी स्पष्ट लिखते हैं कि माता पिता तुलसीदास को जन्म देकर थोड़े समय में ही स्वर्गवासी हो गये थे।

हाँ! यह हो सकता है कि अल्पावस्था में मातृ-पितृ-विहीन होने के कारण उदरपोषण के लिए इन्हें इधर उधर भटकना पड़ा हो। एवम् उसी अवस्था में ये सोरों (शूकरक्षेत्र वा वाराहक्षेत्र) जा पहुँचे हों और वहाँ पर रामचरित्र श्रवण का आनन्द उठाये हों।

अथवा पं॰ महादेवप्रसाद के लेखानुसार जब इन के पिता माता इन को साथ लेते मालवा जाते समय सोरों गये थे उसी अवसर में वहीं उन लोगों का सचमुच स्वर्गवास हो गया हो और जैसा कि पंडित जी ने लिखा है इन्हें निस्सहाय देख कर साधुओं ने इन पर दया की हो। कदाचित इसी से इन्हों ने कहा भी है कि—

"द्वार २ दीनता कही काढ़ि रद परि पाहूं।
है दयालु दुनी दसों दिसा दुख दोष दलन छमि कियो न संभाषन काहूं॥
तनु तज्यो कुटिल कीट ज्यों, तज्यों मातु पिता हूं।
काहे को रोस दोस काहि धौं मेरे ही अभाग मोसों सकुचत सब छुई छाहूं॥
दुखित दखि संतन कह्यो सोचे जनि मन माहूं।
तोसे पसु पांवर पातकि परिहरे न सरन गये रघुबर ओर निबाहूं॥"

अर्थात् जब इनके पिता माता ने इन त्याग किया जसे एक कुटिल [कु (कु) ट] कीट (अनायास) तन त्याग देता है तब इन्हें दरिद्रता के कारण दीनतापूर्वक दाँत निकाले द्वारद्वार भटकना पड़ा और ऐसी अवस्था में इन्हें पूछता ही कौन ? क्योंकि —

"किसी का कब कोई रोजे सियह में साथ देता है।
कि तारीकी में साया भी जुदा हर शय से रहता है॥"

हाँ! सन्तों की बात न्यारी है। वे भला क्यों न दया दिखलावें ? वे तो परोपकार के निमित्त शरीर ही धारण करते हैं। इसी से सन्तों ने इन पर दयादृष्टि की।

और यह पद —

"पूछ्यो ज्योंहि कह्यो मैं हूं चेरो ह्वैहों रावरेजू
मेरे कोउ कहूं नाहिं चरन गहत हों।
मींज्यो गुरु पीठ अपनाई गहि बांह बोलि
सेवक सुखद सदा बिरद बहत हों॥
लोग कहैं पोच सो न सोच न सँकोच
मेरे ब्याह न बरेखी जाति पाति ना चहत हों।
तुलसी अकाज काज रामहि के रीझ खीझ
प्रीति की प्रतीति मन मुदित रहत हों॥"—

यदि इस के सन्तों से प्रथम भेंट से सम्बन्ध रखता है और उसी घटना का इन्हों ने इस में उल्लेख किया है तो इस से इन के होश सम्हालने ही पर इन का अपने पिता माता से वियोग

होना स्वतः प्रमाणित होता है और उन लोगों का इन्हें त्यागना नहीं वरन् अपना ही उन त्यागना प्रतिपादित होता है। क्योंकि यदि वे शैशवावस्था में परित्यक्त होते तो इन्हें सन्तों से बात चीत करने की कहाँ से सामर्थ्य (धर्म) होती ?

और इस पद में 'ब्याह न बरेखी' से लोगों का यह अनुमान करना कि इन का विवाह नहीं हुआ था असत्य मूल है। इस का कटाक्ष उन लोगों पर है जो इनके काशीवास के समय इनसे द्वेष भाव रखते थे। उन्हीं के सम्बन्ध में ये कहते हैं कि 'लोग हम को पोच कहते हैं तो उस का हमें सोच और संकोच नहीं क्योंकि हम को किसी के यहाँ ब्याह बरेखी नहीं करनी है" (।) इसी आशय को इन्हों ने इस कविता में और भी स्पष्ट रूप से वर्णन किया है :—

"धूत कहो अवधूत कहो रजपूत कहो जोलहा कहो कोऊ।
काहु की बेटी सों बेटा न ब्याहब काहु की जाति बिगार न सोऊ ॥"

(क० रा० उत्तर कांड क० नं० १०८)

और बालपन में राम के सम्मुख होना और फिर संसार में फँसना यह बात भी इन्हीं की कविता से ज्ञात होती है।

"बालपने सूधे मन राम सनमुख भयों राम नाम लेत
माँगि खात टूक टाक हौं।
पर्यो लोकरीति में पुनीत प्रीति राम राय मोह बस
बैठ्यो तोरि तरकि तराक हौं॥
खोटे २ आचरन आचरत अपनायो अंजनीकुमार
सोध्यो राम पानिपाक हौं।
तुलसी गोसाईं भयों भोंड़े दिन भूलि गयों ताको
फल पावत निदान परिपाक हौं ॥"

(बाहुक क० नं० ४०)

राम राय की पुनीत प्रीति मोहवश चट तोड़ कर लोक रीति में फँसने का तात्पर्य सिवाय विवाह के और किसी बात की ओर नहीं हो सकता क्योंकि मातृ-पितृ-हीन होने पर तो बालपन में वे राम के सम्मुख हुए थे जैसा कि इन की स्वरचित कविता से प्रगटित होता है, तब रही तो स्त्री का साथा सम्भार था। विवाह द्वारा जो प्राप्त कर उस के संग लोकरीति में फँसे। और पं॰ महादेवप्रसाद जी ने 'भक्ति विलास' ग्रंथ में लिखा है कि —

"इहि विधि कछुक काल सुख पावे।
मातु पिता परलोक सिधाये॥
तिनका कर्म कीन्ह यहु भाँती।
मन में सोच करत दिन राती॥

तहँ गुरु कहि पुनि कथा पुरानी।
नरहरि दास मनोहर बानी॥
सुन तुलसी भय सोच बिहाई।
सब के मातु पिता रघुराई॥

सो तुम मानहु विप्र वर, राजापुर को जाहु।
चेतहु मेरे वचन अब, करहु आपनो ब्याह (ब्या) हु॥

यह सुन तुरत चले ननियावर।
पहुँच गृही मेरे सब पांवर॥
पुनि सुन्दर कुल दस वरावा।
मातुल ने तिहि ब्याह करावा॥
करहिं रमन गुरुज्ञान भुलाना।
पत्नी सहित परम सुख माना॥"[1]

और श्री प्रियादास जी ने भी 'भक्त माल' की टीका में लिखा है कि —

"तिया सों सनेह बिनु पूछे पिता गेह गई,
भूली सुधि देह भजे वाही ठौर आये हैं।
वधु अति लाज भई रिस सों निकसि गई,
प्रीति राम नई तन हाड़ चाम छाये हैं॥
सुनी जब बात मानो ह्वै गयो प्रभात (त)
वह पाछे पछिताय तजि काशीपुरी आये हैं।
कियो तहाँ वास प्रभु सेवा लै प्रकास
कीन्हों लीन्हों दृढ़ भाय नेम रूप के तिसाय हैं॥"

लोगों का यह कहना कि 'गोसाईं जी के सौ वर्ष पीछे प्रियादास जी ने 'भक्त माल' की टीका में विवाह की कथा लिखी है और तभी से गोसाईं जी के चरित्र लेखकों ने इस बात की वर्णना की है' हमारी समझ में ठीक नहीं। यदि यह कथा उनके पूर्व से प्रचलित नहीं होती तो प्रियादास जी को क्या पड़ा था कि वह एक मनकल्पित कहानी अपनी पुस्तक में घुसा देते। जब तक कोई व्यक्ति श्री प्रियादास जी के पूर्ववर्ती किसी लेखक के प्रामाणिक लेख से

1 मातृ-पितृ-विहीन होने पर मामा का इन का विवाह कर देना कोई असम्भव की बात नहीं है, परन्तु यह सविस्तर वर्णन कहाँतक ठीक है सो नहीं कह सकते।

यह न छिन्न पर है कि उसके पहिले विवाह की कथा नहीं मानी जाती थी तब तक इसमें लोगों को भी प्रियादास जी के लेख का प्रमाण ही मानना चाहिए और किसी के लेख को माने या नहीं।

सम्भव है कि वेणीमाधव जी का 'गोसाईं चरित'[1] तथा कोई अन्य गोसाईं चरित प्राप्त होने पर इन की जीवन कथा सर्वथा परिष्कृत हो जाय।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित रामचरितमानस में भी प्रियादास जी के लेख पर विश्वास नहीं करते हुए भी सम्पादकों ने पाद टिप्पणी पृ० १४ में लिखा है कि "यदि बाल्यावस्था से उन्होंने ग्रन्थावस्था का आरम्भ करें तो संभव है कि विवाह इत्यादि हुआ हो। एक शास्त्र को पार कर जब मनुष्य दूसरे शास्त्र का आरम्भ करता है तब कहता है कि मैं इस शास्त्र में बालक हूँ। संस्कृत के ग्रंथों में प्रायः बहुत स्थानों में ऐसे प्रयोग मिलते हैं। हाँ बहुत से कवियों ने अपने को अचेत बालक लिखा है।

श्री अयोध्यानिवासी श्री सीताराम शरण भगवानप्रसाद जी सुप्रसिद्ध विरक्त वैष्णव महात्मा ने भी 'भक्त माल' की टीका में लिखा है कि "आप का प्रादुर्भाव में संवत् १५८६ में

---

१ यह पुस्तक तो अभी तक प्राप्त नहीं हुई। किन्तु इसी का सार स्वरूप और इन्हीं की लिखी 'मूल गोसाईं चरित' नाम की एक दूसरी पुस्तक की उपलब्धि हुई है। बाबू श्यामसुन्दर दास ने 'काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका' भाग ७ अङ्क ४ में उसे छपवाया है उसपर एक नोट लिखा है और उसपर अपनी भी सम्मति लगाी है।

उसके प्रामाणिक होने में बहुतों का सन्देह है। उस में लिखा है कि "गोसाईं जी बारहों मास गर्भ में रहे, जन्म होते ही रामनाम बोल उठे और रोये नहीं। चार वर्ष के समान धारण की शंख-ध्वनि सुनने में आई। इन्हें राक्षस समझ इन के पिता तथा अन्य लोगों के मन में महापरिताप हुआ। इन के जन्म के पांचवें दिन इन की माता मर गई किन्तु उस के एक दास ने इन्हें अनुपम विषय में अपनी दाई चुनिया शिशु को लेकर उसके पालन पोषण के लिये अपने ससुराल चली गयी थी। ५२ महीना बाद सांप काटने से वह दाई भी मर गई। इन के पिता के पास सम्वाद जाने से उन्हीं ने कहा कि ऐसा बालक जिये या मरे मुझे सोच नहीं। पुनः दो वर्षों तक भवानी का रूप धारण कर शिशु गोसाईं जी को भी मीठी माता खिला जाया करती थी। पीछे यह बात प्रकट हो जाने पर भी शिवजी के आदेश और प्रेरणा से नरहरि दास ने इन्हें लेकर इनका संस्कारादि किया रामचरित मानस कथा सुनाई और इन्हें काशी में विद्याध्ययन के लिए शेषसनातन के स्थान लिवाकर चले गये इत्यादि। इसमें असम्भव की बात नहीं है। इसके इसके विषय में मर्यादा' वर्ष १ भाग २ सं० १ पृ० २६१ में एक लेख लिखा है। गोसाईं जी के एक दूसरे चेले पंच मंगी श्री रघुवरदासजी कृत 'तुलसी चरित' एक वृहत् ग्रंथ भी प्राप्त हुआ है—जिसका कुछ हाल इस औपत्री के प्रथम वर्ष चरित्र ७ और २ में छिपा गया है। किन्तु श्री वेणीदास प्रणीत 'मूल गोसाईं चरित और श्री रघुवरदास विरचित 'तुलसी चरित' के वर्णनों में बात बात में भेद देखा जाता है।

जन्म हुआ यज्ञोपवीत होने पर विद्याध्ययन किया, विवाह गौना भी हुआ और स्त्री का वाक्य सुनकर संसार से विरक्त होने पर (इन्होंने) नरहरिदास से राममंत्रादि ग्रहण किया और रामचरित सुना।"

इससे भी बाल्यपन से उपदेशावस्था का आरंभ ध्वनित होता है। निस्संदेह बिना कोई प्रबल प्रमाण के श्री प्रियादास जी के स्पष्ट लेख के खण्डन करने का भी तो किसी को साहस नहीं होता। और ऐसा करना उचित भी नहीं है।

इन के विवाह की कथा पर नहीं विश्वास करनेवालों को यह भी विचार करना चाहिए कि इन्हों ने अपने ग्रंथों में विवाहादि एवम् अन्यान्य गृहस्थाश्रम की बातों का कैसा सच्चा और सुन्दर वर्णन किया है। क्या कभी सम्भव है कि जिस व्यक्ति ने गृहस्थाश्रम के सुख दुख का स्वयम् अनुभव न किया हो वह उस का ऐसा सच्चा चित्र खींच सके? क्या वह व्यक्ति जो बाल्यपन ही से केवल साधुओं के संग काल व्यतीत करता रहे और उन्हीं की मंडली के साथ देशाटन करता हरिभजन में मग्न रहे गृहस्थ के घरों की रीति रस्म, रहन सहन तथा गृहस्थाश्रम के कार्यों से कभी पूरा परिचित हो सकता है? पूरा परिचित होना तो दूर रहे उसे उन बातों की साधारण जानकारी होने की भी सम्भावना नहीं। और लोगों से पूछ कर उन विषयों का वर्णन करनेवाला अपनी रचना ऐसा सुन्दर और मनोहारिणी नहीं बना सकता।

यहीं पर पाठकों से यह निवेदन कर देना अनुपयुक्त नहीं होगा कि यदि गोस्वामी जी की या किसी अन्य कवि की प्रत्येक कविता का भाव और आशय उन्हीं पर घट कर उनका इतिहास लिखने का उद्योग किया जाय या उनकी कवितावर्णित सब घटनाओं का सम्बन्ध उन्हीं के साथ जोड़ने की चेष्टा की जाय तो यह परिश्रम सर्वथा व्यर्थ ही होगा। क्योंकि कवि कभी अपनी कथा दूसरों को लक्ष्य बना कर वर्णन करता है और कभी अपने ही को लक्ष्य बनाकर दूसरों के सिर की बीती बातें लिख देता है। और यह भी स्मरण रहे कि जैसे एक दो ईंट से कोई गृह निर्माण नहीं कर सकता। वैसे ही किसी कवि की एक दो कविता के आधार पर उस का जीवन वृत्तान्त नहीं लिखा जा सकता।

गोसाईं जी के विवाह की कथा बड़ी मनोहर है, वरन गोसाईं जी को गोसाईं जी बनानेवाली यही कथा है। अतएव अब हम आगे वही कथा वर्णन करते हैं।

चतुर्थ परिच्छेद

विवाह

किसी के विवाह की कथा सुनने में लोग पहिले उसके ससुरार एवम् ससुर आदि का नाम जानने को उत्सुक रहते हैं। परन्तु जिसके जन्म स्थान ही में विवाद है उसके ससुरार का नाम क्या पूछना ! क्या वह कभी निर्विवाद हो सकता है ! 'राजापुर माहात्म्य' में राजापुर के पास ही इन का ससुरार भी बताया गया है "राजापुर यमुना अपार पर अगार रह्यो उत्तर के पार सोई रही ससुरार है"। राजापुर के सामने ससुरार मानना उन लोगों के लिये तथा ही उपयोगी है जिन लोगों ने यमुना[1] तैरकर अन्धेरी रात में गोसाईं जी को ससुरार पहुँचाया है (जिस की समालोचना इसी परिच्छेद में अन्यत्र की गई है)। हम को पूरा स्मरण है कि हमने अपने एक मित्र अमहरा, जिला पटना निवासी बाबू काशीचरण सिंह विरचित 'अमहरा' नामक ग्रन्थ में देखा है कि रामायण तथा महाभारत की अनेक घटनाओं का स्थान 'अमहरा' ही के आस पास बतलाया गया है। वैसे ही 'राजापुर माहात्म्य' के लेखक ने भी कदाचित् घर और ससुरार आमने सामने बना दिया है। राजापुर के निकट निवासी होने पर और राजापुर के सामने ही गोसाईंजी का ससुरार रहना कह कर भी आप ने उस ग्राम का नाम लिखने की कृपा नहीं की है यद्यपि आप ने एक कवित्त में राजापुर के अंतरस्थ सब गाँवों का नाम कह डाला है। इससे निश्चय है कि राजापुर के निकटवर्ती लोगों को भी इन के ससुरार का नाम नहीं ज्ञात है।

किसी[2] का मत है कि 'तारी' और 'सोरों' के बीच में कहीं पर गोसाईंजी का ससुरार था। परन्तु गाँव का नाम वे लोग भी नहीं बतलाते।

पाठक वृन्द ! आप लोग ससुराल के झमेले में कहाँ पड़ियेगा। गाँव का नाम न सही श्वशुर का नाम तो लेखकों ने 'दीनबन्धु पाठक'[3] लिख रखा है चाहे वह कल्पित हो चाहे यथार्थ। यह क्या थोड़ी कृपा है !

---

१ शर्मा कमल कुमारि ने इन्हें गङ्गा पार उतारा है। इस से उन के अनुसार इन का ससुरार गङ्गा पार होता है।

२ अब देखते हैं कि पं० गौरी शंकर जी अपने 'माधुरी' वाले लेख में सोरों के ही एक उपनगर बदरिया नामक ग्राम में गोस्वामी जी का विवाह होना बताते हैं। यह देखकर हम ने सोरों निवासी गोविन्द वल्लभ जी से पूछा था कि सोरों तथा बदरिया के मध्य कोई नदी प्रवाहित है या नहीं। उस के उत्तर में आपने २१ अक्तूबर १९२९ ई०

कहते हैं कि दीनबन्धुजी दीनबन्धु थी सीताराम के परम भक्त थे, सदा पूजा पाठ में लगे रहते थे। इसी से गोस्वामी जी की स्त्री को भी प्रभु के पाद पद्म में बचपन ही से प्रीति हो गई थी और उन्हें सन्त सेवा में अनुराग जमा था। ऐसा क्यों न हो! यह तो प्रत्यक्ष ही देखने में आता है कि जिस घर में जिस बात की विशेष चर्चा रहती है उस घर के छोटे २ बालकों और बालिकाओं को भी उसी का अनुराग उत्पन्न हो जाता है। इसी से यह परमावश्यक है कि जो लोग अपनी सन्तति को सदाचारी और सद्गुण सम्पन्न बनाने की इच्छा रखते हैं वे स्वयम् भी अपना आचरण स्वच्छ और अनुकरणीय रखा करें जिस में उन की सन्तान उन का अनुकरण कर के सुखपूर्वक जीवन यात्रा निर्वाह करने में समर्थ हो सके।

दीनबन्धु कौन ब्राह्मण थे क्या करते थे और उन की क्या अवस्था थी ये बातें भी कहीं किसी ने नहीं लिखी हैं। केवल उन की कन्या रत्नावली से गोसाईं जी का विवाह बताया गया है। गोसाईं जी का अनन्त प्रेम अनन्त ही की ओर जानेवाला था किन्तु वह मार्ग अभी अवरुद्ध था। अतएव इनका वह भगवत्प्रेम जो भविष्यत् में भारतवर्ष को भक्तिप्रवाह से प्लावित करने वाला हुआ इन के युवाकाल में भिन्न रूप धारण कर प्रगट हुआ। वह प्रेमस्रोत स्त्री ही को परिवेष्ठित कर प्रवाहित होने लगा। अर्थात् विवाह होने पर जब इन की स्त्री इन के घर आई तब ये उस के प्रेम में ऐसे आसक्त हुए कि क्षण-मात्र भी उस से विलग होना नहीं चाहते थे। जहां बैठें वहां उसी का गुण गान और जहां रहें वहां उसी का ध्यान। सच है – 'जिस ने कभी उलफत का मज़ा पाया है। कुछ न आराम में उस भाया है।" इसी से स्त्री की आंखों की ओट होते ही से ये उन्मत्त के समान व्यग्र हो जाते थे। इस से यह भी निश्चय होता है कि इन की स्त्री परम सुन्दरी थी और कदाचित् सुन्दरता ही के कारण ये रत्नावली के नाम से भी प्रसिद्ध थीं चाहे वह उन का वास्तविक नाम हो या न हो, क्योंकि सुन्दरता से बढ़कर चित्ताकर्षण की शक्ति और किसी वस्तु में नहीं देखी जाती यह बात सभी स्वीकार करते हैं। और गोस्वामीजी सौंदर्य्योपासक थे इस में भी सन्देह नहीं। तभी तो वैराग्यवती कवि वर्ड्सवर्थ के समान सहज सौंदर्य्यमयी प्रकृतिरूपी पुस्तक के पाठ के सहारे से अपनी रचनाओं को इस भांति मनोहारिणी बनाने को समर्थ हुये। एक

के बारे में कृपा पूर्वक लिखा है कि "सारो और बदरिया के बीच वृद्ध गंगा (बूढ़ी गंगा) का एक सदा प्रवाही नाला है जो कि बदरिया को मोरों [illegible] मिले रस हुए है। परन्तु कभी भागीरथी गंगा जी की एक धारा वृद्ध गंगा के मार्ग में मिल कर सदा प्रवाहित रहती थी। पीछे तीन कोस पर धारा चली गई। पहले चौमास में बदरिया जाने में नौका से काम लिया जाता था परन्तु अब तो पुल बन गये । बदरिया में जिस स्थान पर गोस्वामी जी की ससुराल थी वहाँ पर एक पीपर का वृक्ष अवस्थित है। आसपास अब मुसलमानों की आबादी हो गई है।'

जो हो इससे गोसाईं जी के ससुराल का एक नाम तो ज्ञात हुआ।

१ अभी माधवदास जी तथा रघुवरदास जी की पुस्तकों में ये नाम नहीं पाये जाते।

ग्रंथ से अपनी पुस्तक में समावेशित किया है और ग्रंथ के अमुक २ विषयों में आप सम्मत नहीं हैं ? इस की सूचना तो आप ने उस में कहीं नहीं दी है।

श्री रानी कमल कुँवरि ने गोसाईं जी को मुरदे पर चढ़ाकर गंगा[1] पार उतार कर लटकते हुये साँप के सहारे छत पर से जाकर स्त्री के निकट पहुँचाया है। पूर्वोक्त पंडित जी ही ने रानी साहबा के ग्रंथ को भी शोधा है। यह बात आप ने स्पष्ट ही हमलोगों को जनाई है। परन्तु क्या शोधा सो जाना नहीं जाता। गोसाईं जी का गंगा पैरना या यमुना पैरना कौन ठीक है ?

गोस्वामी जी किसी रीति से ससुरार पहुँचे हों किन्तु इनका वहां पहुँचना देख कर इन की स्त्री को स्वभावतः बड़ी ही लज्जा हुई। अतएव भेंट होने पर उन्होंने कदाचित् इन दोहों को कहा —

"लाज न लागत आप को, दौरे[2] आयहु साथ।
धिक २ ऐसे प्रेम को, कहा कहौं मैं नाथ॥
अस्थि-चर्म-मय देह मम, ता में जैसी प्रीति।
तैसी जो श्री राम महँ होति न तौ भवभीति॥"[3]

बस उसी क्षण सर्वमङ्गलमूल घड़ी पहुँच गयी। आप का पूर्व संचित सुसंस्कार फलीभूत हुआ उसी रात को आप के पवित्र जीवन का मानो प्रभात हुआ। उसी क्षण आप के चित्ताकाश में ज्ञान मार्तण्ड का उदय हुआ और आप का सौभाग्यकमल विकसित हो गया। स्त्री न बोली, वरन् सृष्टि आनन्द-दायक सुन्दर आवागमनमुक्त पक्षी का कलरव हुआ। स्त्री वाणी ने 'अगामी' का पूरा काम दिया। आप की मोहनिद्रा भङ्ग हो गई। आप उसी शुभमुहूर्त में वैराग्य के गुरुगामी पथिक होने को कटिबद्ध हो गये। विचारा, कि अब इस संसार में मेरा कौन है ? मन की ऐसी अवस्था होने ही से वैराग्य उदय होता है वैराग्य होने ही से

---

१ न जाने किसी कारण स्त्री से भेंट करने के लिए इन्हें मुर्दा और सर्प ने पार क्यों नहीं उतारा ?

२ कदाचित् इसी से श्री भागवतमाहात्म्य ने लिखा है कि स्त्री का पितालय जाना सुनकर ये दौड़े हुए रात में दोनों के पास पहुँचे और द्वार का दरवाजा खोल कर उस में रहा था इन्हें उस से बातचीत की अभिलाषा से स्त्री के साथ दौड़ने लगा। इस पर लज्जित और क्रोधित होकर भी इन की स्त्री ने साध्वी स्त्री के स्वभाव इन्हें उपदेश किया। इत्यादि 'प्रभा' भाग ११ खंड २ पृष्ठ १२१।

३ श्री सीतारामशरण भगवान प्रसाद ने 'भक्त माल' की टीका में इस स्थान पर एक और दोहा लिखा है :—"राम नाम की प्रीति जग, निज निज हित पुरान। राम प्रीति निज ही भई, देइ पुराण प्रमाण। भ० मा० टीका प्रथम संस्करण पृ० १०६४। यह निश्चय है कि यह कथा दोहों में नहीं हुई थी। पीछे लोगों ने इसे दोहाबद्ध कर दिया है।

सत्यस्वरूप की ओर मन जाता है और तभी मनुष्य साधक होने के योग्य होता है। आप दाम्पत्य स्रोत में प्रागाढ़ प्रेमप्रवाह की गति स्त्री वाक्य द्वारा अकस्मात् अवरोधित होने से, प्रेमधारा पलट गई और प्रभु-पद अनन्त-सागर की ओर सवेग प्रधावित हुई। उपासना वही सौंदर्यदेव ही की रही परन्तु प्रतिमा बदल गई। आपने निज हृदयमन्दिर से रूपिमयी स्त्रीविग्रह को बहिष्कृत कर उसे विस्मृति तड़ाग में बहा दिया और उसके स्थान में शोभाभिधाम श्री भगवान की परम मोहिनी मूर्ति स्थापित की और अब उसी की अखण्ड आराधना में आप मग्न हुए। धन्य आप की स्त्री! और धन्य आप! दोनों ही एक समान प्रशंसनीय और पूजनीय हैं इस में संदेह नहीं।

सारांश यह कि स्त्री वाक्य से आप को उसी क्षण वैराग्य उत्पन्न हो गया। आप उसी दम वहाँ से उठ चले हुए। यह देख स्त्री को बड़ा ही पश्चाताप हुआ कि "हा! हम ने यह क्या किया! क्यों ऐसी बात कहने गये जिस से हमारे प्रेम में विह्वल हमारे परम पूजनीय पतिदेव हमें त्यागने पर उद्यत हो गये।" वे पैरों पर गिर कर विनती करने लगीं, अपराध क्षमा कराने लगीं; भोजनान्तर साथ जाने की प्रतिज्ञा करने लगीं। पर आप ने एक भी न सुनी। सुनें तो कैसे! हृदय के अन्तरतम प्रदेश में प्रवेश कर स्त्री वाक्य ने सोते हुए वैराग्य को जगा दिया था, हृदय की ज्ञानतंत्री को हिला दिया था। उस से 'हरि प्रेम प्रभु प्रेम' इत्यादि स्वर निकल रहे थे। अब दूसरी ध्वनि कहाँ! स्त्री भी अनुनय विनय कर हार मान चुप बैठ गईं। विशेष आग्रह करना कदाचित् उन्हें व्यर्थ जान पड़ा। उन्होंने कदाचित् सोचा होगा कि आप रुख कर घर चले आवेंगे और यदि इन के सचमुच विरक्त होने की इच्छा उनपर प्रगट भी हो गई हो, तो उन्होंने अब इस काम में बाधा डालना अनुचित समझा होगा क्योंकि जिस के मुख से सहज ही ऐसे वाक्य स्फुरित हों उस का हृदय भी निश्चय वैराग्यमय होगा, वह हरि प्रेम से कदापि शून्य नहीं होगा और कोई सच्चा हरिप्रेमी किसी हरिभक्त के प्रेम भजन में कदापि बाधक भी नहीं हो सकता।

कहते हैं कि आप के घर छोड़ने पर आप की स्त्री ने एकबार आप के पास यह दोहा लिख भेजा था —

"कटि की छीनी कनक सी, रहत सखिन सँग सोइ।
मोहि फटे की डर नाहीं, अनत कटत जनि होइ॥"

कदाचित् यह दोहा उन्हों ने उस समय भेजा था जब उन्हें इस बात की निश्चय खबर नहीं थी कि आप गृहत्यागी होने पर किस रङ्ग में रंगे थे। अतएव स्वामी जी ने भी अपनी यथार्थावस्था इस दोहा में उन्हें जना दी :—

"कटे एक रघुनाथ सों, बाँधि जटा सिर केस।
हम तो चाखा प्रेम रस, पत्नी के उपदेस॥"

यह उत्तर पाकर स्त्री बड़ी प्रसन्न हुई होंगी। ईश्वर से इन के भक्तिपथ में अविचल रहने की प्रार्थना भी की होगी। एवम् यह बात निश्चय ज्ञात होने पर कि उन के स्वामी प्रभु प्रेम में

मत हो शुद्ध चित्त से ईश्वराराधना में रत हैं वे भी अधिकतर भाव से सन्तसेवामृत अवलम्बन कर दिन बिताने लगी होंगी।

कथित है कि एक दिन चित्रकूट या राजापुर से लौटते समय ईश्वरध्यान में निमग्न गोसाईं जी अनजानते अपने ससुराल पहुँच गये थे। उस समय आप की वृद्धावस्था हो गई थी। आप की स्त्री भी निश्चय बूढ़ी हो गई थीं। उन्होंने अपने मतानुसार चौका आदि का प्रबन्ध कर दिया। आप पाकधर्म में प्रवृत्त हुये और वे वहीं बैठकर कुछ बातें करने लगीं। दो चार बातों से ही उन्हें ज्ञात हो गया कि ये अवश्य उनके परमपूजनीय ईश्वरस्वरूप स्वामी ही थे। अहा उस समय उन को कैसा अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त हुआ होगा! जिस सुख की उन्हें स्वप्न में भी कभी आशा नहीं थी आज उन्हें वह सुख आप ही आप अकस्मात् प्राप्त हुआ। पतिपरायण—इस के समान आर्य्य महिलाओं को संसार में क्या कोई अन्य सुख हो सकता है! पति आनन्ददाता पति सुखदाता, पति प्राणदाता पति देवता पति परमेश्वर—अहा उसके दर्शनसुख की सीमा कहाँ! उस में भी जब यह दर्शन चिरविछोह के अनन्तर हो आशातीता-वस्था में हो पति के ईश्वर की अनन्य भक्ति प्राप्त होने पर हो। क्योंकि एक पति दूसरे हरिभक्त सन्त—सोना में सुगन्ध। पति को पहचानकर उन के चित्त की कैसी दशा हुई होगी उन के मन में कैसे २ भावों की तरंगें उठने लगी होंगी यह तो सहृदय पाठक सहज ही में अनुभव कर सकते हैं। पूर्व घटनायें स्मृतिपथ में एक १ करके आने लगीं। वह दिन जब वे उन के मुख से ज्ञानोत्पादक विरागजनक, यद्यपि मर्मभेदक, वाक्य सुनकर निकल चले हुये थे, उन के अनुनयविनय पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया था उनकी प्रार्थना कुछ भी कान नहीं की थी, भोजन तक भी नहीं ग्रहण किया था आज वह चित्र उन के नयनों के सामने खड़ा होकर उन के चित्त को व्यथित और बुद्धि को भ्रमित करने लगा। अपने ही को पति विछोह का कारण (मान) उन्होंने अपने को आज भी कितना धिक्कार दिया होगा। जिस सजीव प्रतिमा की सेवा से उन्हें दोनों लोकों में स्वर्ग सुख प्राप्त होना था उस को उन्होंने कठोर वाक्य कहकर स्वयम् ही विलग कर दिया था। इस का सोच उन के हृदय में कभी २ तरंगें उठाती होंगी। प्रेम ने चाहा कि झट दौड़ कर प्राणाधार के चरणों में लिपटकर क्षमाप्रार्थना करें। परन्तु पूर्व अपराध ने साहस नहीं दिलाया। किन्तु स्वामी के चरणों को धोकर चरणोदक पान करने का तो दृढ़ विचार हुआ और उन्हों ने चरण धोना चाहा। दुर्भाग्यवश स्वामी ने उन्हें इस सुख से वंचित रक्खा। मन में मरोर खाकर वे बैठ गई। वे जानती थीं कि स्वामी को मलाई मिठाई की बड़ी रुचि थी अतएव उन्हों ने पूछा कि मिठाई चाहिये। गोसाईं जी ने उत्तर दिया कि 'मेरी झोली में है।' फिर जब मलाई एवम् पूजा के निमित्त कपूरादि सामान के लिये उन्हों ने पूछा तब गोस्वामी जी ने उन वस्तुओं को भी झोली (मरिका) में रहना कहा। निदान गोसाईंजी भोजन कर चुके और भोजन के अनन्तर विश्रामार्थ भी चार में जा रहे। परन्तु इन की स्त्री नाना भांति के सङ्कल्प विकल्प का तिरछीला वन आच्छादित करती रहीं। कभी प्रेम जाने की मनसा करतीं और कभी सोचतीं कि स्वामी विरक्त हो निर्द्वन्द्व भाव से ईश्वर भजन में रत हैं अब हम भारस्वरूप होकर उन के संग रहकर उन्हें क्यों कष्ट दें। फिर विचार करतीं कि जब झोली में मलाई मिठाई आदि सब स्वामी का कष्ट नहीं होगा तो हमारे साथ रहने से क्यों

भार होगा ! इसीप्रकार सोचते विचारते भागा पीछा करते भोर हुआ। प्रातःकाल उन्हों ने गोसाईं जी को कुछ दिन वहीं ठहरने और पूजापाठ करने के लिये विनीत भाव से प्रार्थना की। गोसाईं जी ठहरने पर सम्मत नहीं हुये। तब इन के चरणों में गिरकर अति नम्र भाव से अपना परिचय दे इन की स्त्री ने परम पूजनीय स्वामी की चरण सेवा के लिये एवम् पति के साथ २ श्री रामचन्द्र के भजन करने के लिये साथ चलने की इच्छा प्रकट की और प्रार्थना की। परन्तु स्वामीजी इसपर भी सम्मत न हुए। तब उन्होंने कहा कि

खरिया खरी कपूर लौं, उचित न पिय तिय त्याग।
कै खरिया मोहि मेलिके, अचल करो अनुराग॥

अर्थात् जब खरी से कपूर तक झोरी में रखे फिरते हैं तब स्त्री को परित्याग करना उचित नहीं। यातो मुझे भी साथ लीजिये या झोरी को भी परित्याग कीजिये।

यह सुनते ही स्वामी जी ने सब वस्तुओं के समेत अपनी झोली वहीं पटक दी। स्त्री का यह दूसरा उपदेश हुआ और आप ने इसे भी मान लिया। यह देख कर स्त्री को अति आनन्द हुआ और निज कल्याणार्थ पति से आशीर्वाद की प्रार्थी हुई। स्त्री के सम्बन्ध में ये ही सब कथाएँ प्रचलित हैं। इन की सत्यता का कोई प्रबल प्रमाण नहीं होने पर भी हम इतना अवश्य कहेंगे कि धर्म्मवती पत्नी होने से पति का बहुत कुछ सुधार और उपकार होता है, और हो सकता है, इस में तनिक भी सन्देह नहीं। इस का बहुतेरों को अनुभव होगा यद्यपि वे इस विचार से कि स्त्री से उपदेश पाने तथा उसके उपदेशानुसार काम करने की बात जनाने में लज्जास्पद होना है इस बात को किसी पर प्रगट नहीं करते हों। परन्तु बङ्गदेशीय प्रसिद्ध उपन्यास लेखक स्वर्गीय बाबू बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ने अपनी स्त्री के विषय में स्पष्ट लिखा है कि 'हमारे जीवन पर सब से अधिक प्रभाव हमारी पत्नी का पड़ा है। हमारी जीवनी लिखने के लिये बढ़ने पर उसकी भी जीवनी लिखनी पड़ेगी। यदि हमारी पत्नी नहीं रहती तो आज हम क्या हो जाते सो नहीं कहा जा सकता। नीति-गुरु, धर्म्मगुरु हमारे लिये सब वही है।" उन्हीं के लिय क्यों ? कितनों के लिये स्त्री गुरु होती है चाहे कोई स्वीकार करे वा न करे।

परन्तु यह बात तभी संभव है जब स्त्री धर्म्म शिक्षा प्राप्त और लिखी पढ़ी हो। बकनुवाली और बाहकवाली की उतनी आवश्यकता नहीं। स्वामी जी की स्त्री रूपवती, गुणवती, विद्यावती बुद्धिमती धर्म्मरती सभी थीं। इस का प्रमाण क्या पाठकों को ऊपर नहीं मिला है ?

पंचम परिच्छेद

गुरु

यह बात अभी कही गई है कि गोस्वामीजी को अपनी प्रेममयी पत्नी का उपदेशमय वाक्य सुनकर वैराग्य उत्पन्न हुआ और उसी क्षण संसार से मुँह मोड़ कर एवम् ऐसी प्रिय सहधर्मिणी को, जिस के निमिष विछोह से इन का चित्त व्यथित होने लगता था परित्याग कर वे गृहत्यागी हो गये।

किसी २ के लेखानुसार आप ससुराल से लौटकर घर गये और तब काशी आये। हमारी समझ में यह ठीक नहीं जचता। स्त्री की चोखी वाणी से इन का मर्मस्थल बिंध गया था। उस समय इन्हें क्या घर बार ही की सुधि रही होगी? इन का जीवनधन तो केवल स्त्री थी जब उसी को त्याग करके तब घर में था ही क्या जिसके लिये वहां जाते? प्रियादास जी ने भी लिखा है 'सुनी जब बात मानो ह्वै गयो प्रभात वह पाछे पछिताय तजि काशीपुरी आये हैं।'

इससे भी ससुराल से काशीपुरी जाना सिद्ध होता है। घर जाना और तब वहाँ से काशी जाना यह बात नहीं पाई जाती।

प्रवाद है कि ससुराल से निकल चलने पर राह में एक ठिकाने थकावट पाकर वे सोये हुये थे स्वप्न में शिव जी ने इन्हें राम जी के षडाक्षर (षडक्षर) मन्त्रराज का उपदेश कर आदेश किया कि "यही मंत्र तथा श्रीरामनाम तुम जपा करो, इसी से श्रीरामचन्द्र दर्शन देंगे।" आप जाग उठे एवम् उसी क्षण से श्रीराम नाम जपने में उत्साहपूर्वक प्रवृत्त हुये। इसी से इन्होंने भी शिवजी को गुरुदेव करके माना है जैसा कि 'हनुमान बाहुक' में देखा जाता है— 'सीतापति साहब सहाय हनुमान नित हित उपदेश को महेश मानो गुरु है।'

स्वप्न की बात ठीक हो या नहीं परन्तु 'हितोपदेश' में ये महेश को गुरु के सदृश अवश्य मानते थे। गुरु ही क्यों? इन्हों ने तो ऐसा भी लिखा है 'गुरु पितु मातु महेस भवानी।'

किसी ने स्त्री के उपदेश के अनन्तर 'सूकर खेत'[1] में गुरु का रामायण का उपदेश देना लिखा है और किसी ने काशी में आना और फिर सूकर खेत में जाकर गुरु से रामायण

१ सूकर खेत कई हैं। एक तो जिला एटा वाला सोरों जिसके विषय में ११ अगस्त १९१०ई० के लीडर में एक महाशय ने लिखा था कि गोसाईं जी के वहाँ आवासित होने का कोई चिन्ह या निशान नहीं पता है और न उनके बारे में वहां कोई दन्तकथा ही प्रचलित है।

किन्तु अब देखना है कि यहां वाले (सूकर खेत) गोसाईं जी का सर्वथा अपनाने के यत्न का विचार कर रहा है।

सुनना लिखा है। महात्मा श्री सीतारामशरण भगवान प्रसाद जी ने भक्त माल की टीका में लिखा है "कि तद(न)न्तर (स्त्री के उपदेश के पीछे) वाराह क्षेत्र में आकर श्री रामानन्दीय महात्मा नरहरिदास जी से श्रीराममंत्रादिक पंच संस्कार ग्रहण कर श्रीरामायण जी सुना, फिर आज्ञा लेकर वहाँ से श्री काशी आये।"[1]

उन के लेख से प्रतीत होता है कि ससुरार से आते समय इन को राह ही में वाराह क्षेत्र पड़ा था। परन्तु यह राह ही में मिला हो या ये काशी आकर वहाँ गये हों यह बात इतनी विवेचनीय नहीं है। बात विचारने की यह है कि गोसाईं जी ने कहा है "मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकर खेत। समुझी नहिं तस बालपन, तब अति रहेउँ अचेत।।"

इस से इन का शूकर क्षेत्र में आना तथा वहाँ रामायण श्रवण करना सिद्ध होता है। यह तो निर्विवाद है चाहे ये कभी और कहीं से गये हों। परन्तु साथ ही साथ इन की अति अचेतन्यावस्था में रामायण श्रवण करना पाया जाता है। लोग कहते हैं और यह हो भी सकता है कि इस विषय में उस समय अबोधावस्था के कारण इन्हों ने ऐसा लिखा है। किन्तु आप की अन्य कविताओं से भी जो अन्यत्र उद्धृत हुई हैं आप का बाल्यावस्था में सन्तों का साथ होना प्रकाशित होता है। सब ठौर यही अबोधावस्था कह कर हमारी जान का छुटकारा नहीं होगा।

श्री भगवान प्रसाद जी ने यह भी लिखा है कि 'यज्ञोपवीत होने पर विद्याध्ययन किया विवाह गौना भी हुआ।'[2] इस से स्पष्ट विदित होता है कि विवाह गौना के पूर्व ही शिक्षा हुई और विवाह गौना या की में देखी आसक्ति एवम् विरक्त होना कब सम्भव है। साधारणतः कम से कम ९ वर्ष की अवस्था के ऊपर होने पर। तब लड़कपन में ही विद्याध्ययन आरम्भ करने पर उस अवस्था में तो कभी ये ऐसे निर्बोध नहीं हो सकते थे कि रामचरित सम्बन्धी बातें समझने में 'अतिअचेत' हों तथा गुरु के बारंबार कहने पर भी कुछ नहीं समझे हों।

हमारी समझ में यह बात आती है कि बालपन ही में सन्तों के संग रह कर इन्हों ने शूकर क्षेत्र में अपने गुरु—विद्या गुरु—से रामायण भी सुनी हो,फिर गृहित्यागी होने के अ(न)न्तर वहाँ पुन जा कर उन्हीं महात्मा से इन्हों ने राममन्त्रादिक संस्कार ग्रहण किया हो एवम् उन सब बातों की शिक्षा पाई हो जो गृहित्यागी होने पर विरक्त साधुओं को करना आवश्यक है। क्योंकि भारतवर्ष में शिष्य तो सभी होते हैं, परन्तु गृहस्थ चेला तथा विरक्त चेला में बहुत अन्तर होता है। गृहस्थ शिष्य की अपेक्षा विरक्त शिष्य को गुरु से आचार व्यवहार सम्बन्धी अधिक शिक्षा लेनी पड़ती है। अतएव हम न गृहस्थाश्रम के समय के गुरु, या विद्यागुरु जोरों में से जिन से इन्हों ने बालपन ही में रामायण भी सुनी (पढ़ी) थी। जब गृहित्यागी हो विरक्त होने चले

इस के सिवाय सनि और वाराह क्षेत्र हैं जिन में गोंडा जिला में सरयू तथा घाघरा का संगमस्थ स्थान सबों से अधिक प्रसिद्ध है। यह अयोध्या के समीप एक पुराना स्थान है और वहाँ आज भी बहुत साधु रहते हैं।

[1] श्री सीतारामशरण भगवानप्रसाद लिखित 'भक्त माल की टीका' प्रथम संस्करण, पृ० १०६३ देखिए।

[2] वही ग्रन्थ पृ० १०६४।

तो अन्य गुरु क्यों, और कहाँ खोजने जायें, अतः वहीं पूर्व गुरु की सेवा में उपस्थित हो उन्हीं से आवश्यकीय संस्कारादिक ग्रहण कर काशी पधारे। यही अनुमान अवलम्बन करने से गोस्वामीजी तथा अन्यान्य लेखकों के परस्पर विरोध का निपटारा हो सकता है, अन्यथा नहीं। श्रीभगवान प्रसाद जी ने भी हमारे इस अनुमान को असंगत नहीं समझ कर लिख भेजा है कि "यह कहा बहुत ठीक है यथार्थ हो सकता है।" अस्तु।

अब देखना होगा कि गोस्वामी जी के गुरु कौन थे? गुरु का नाम तो प्रत्यक्ष कहीं नहीं मिलता, परन्तु इन्होंने 'रामचरित मानस' बालकाण्ड में गुरु की वंदना में लिखा है—

"बन्दौ गुरु पद कंज, कृपा सिंधु नररूप हरि।[1]
महा मोह तम पुंज, जासु वचन रविकर निकर॥"

इसी वन्दना से लोग अनुमान करते हैं कि इन के गुरु श्री नरहरिदासजी थे और गुरु का नाम स्पष्ट नहीं कहना चाहिये इसी कारण से इन्होंने 'नर' तथा 'हरि' इन शब्दों के मध्य में 'रूप' शब्द रख दिया है।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित रामायण में लिखा है कि इसी नर रूप हरि से लोगों ने निकाला है कि "नरहरिदास इन के गुरु थे। नरहरिदास श्री रामानन्द जी के बारह शिष्यों में से थे।" यह लिख कर ग्रियर्सन साहबवाली गोस्वामी जी की गुरु परम्परा की सूची जो 'इण्डियन एन्टीक्वेरी' में प्रकाशित हुई है ज्यों की त्यों इस टिप्पणी के साथ कि 'यह ठीक नहीं है' उस में उद्धृत कर दी गई है। परन्तु सूचीपत्र ठीक हो या नहीं, सम्पादक महाशयों ने यह स्पष्ट नहीं लिखा है कि श्री १०८ रामानन्द स्वामी जी के शिष्य नरहरिदास गोसाईं जी के गुरु नहीं थे। ऐसा नहीं करने से उन के लेख से यह अनुमान किया जा सकता है कि उन लोगों ने भी उन्हीं को गोसाईं जी का गुरु माना है।

निःसन्देह श्री रामानन्द स्वामी के मुख्य १२ शिष्यों में[2] से एक नरहरियानन्द थे। उन्हीं को किसी ने नरहरिदास किसी ने नरहरि आचारी एवम् किसी ने नरहरि स्वामी लिखा है। किन्तु श्री १०८ रामानन्द जी के चेले श्री नरहरि दास गोसाईं जी के गुरु नहीं हो सकते

---

[1] 'नररूप हरि' गुरु का विशेषण भी हो सकता है। जैसे गुरु हैं कि नर के रूप तो हैं पर साक्षात् ईश्वर ही हैं। गुरु में ऐसी बुद्धि रखनी ही चाहिये। या सूर्यवत् हैं जैसे सूर्य अपनी रश्मिराशि से जगत का अन्धकार नाश कर देता है वैसे ही गुरु शिष्य के हृदय के अज्ञानान्धकार को अपने उपदेशरश्मि से नाश कर उसे सुगम पहुँचाते हैं। कहा भी है:— गु शब्दस्त्वन्धकारस्य रु शब्दस्तन्निरोधकः। अन्धकार निरोधत्व गुरु — रित्यभिधीयते।

[2] श्री अनन्तानंद, श्री सुरेशानन्द (सुरसुरानन्द), श्री कबीरजी, श्री सुखानन्द, श्री पद्मावती, श्रीनरहरियानंद (नरहरिदास) श्री पीपाजी, श्री भावानन्द श्री रामदास (रैदास रविदास) श्रीधना, श्री सेन तथा श्री सुरसुरी (सुरेसरी जी) यही बारह मुख्य चेले हैं। और भी अनेक चेले सुने जाते हैं।

क्योंकि श्री रामानन्द जी का जन्म १३५६ संवत्[1] में बताते हैं। अधिकांश इतिहासवेत्ताओं ने भी इन का समय १४वीं शताब्दि माना है और कोई २ चौदहवीं का अन्त भाग वा १५वीं शताब्दि का आरम्भ मानते हैं। यदि हम श्री रामानन्द जी का समय १५वीं शताब्दि का आदि ही मान लें और गोसाईं जी का जन्म मयंक ही के अनुसार १५५४ संवत् स्वीकार कर लें तो भी दोनों महापुरुषों की सुख्याति के समय में सवा सौ डेढ़ सौ वर्षों का अन्तर हो जाता है। इतने समय में केवल एक ही पीढ़ी कदापि नहीं हो सकती।

अतएव गोस्वामी जी के गुरु वे नरहरिदास हो सकते हैं (यदि इनके गुरु का सचमुच यही नाम हो।) जो श्री १०८ रामानन्द जी के चेले श्री अनन्तानन्द के मंत्र शिष्य तथा उन्हीं के दूसरे चेले सुरसुरानन्द जी के साधक चेले थे अर्थात् जो श्री १०८ रामानन्द स्वामी के पोते चेले, श्री अनन्तानन्द के चेले एवम् श्री सुरसुरानन्दजी के भतीजे तथा साध(ध)क चेले थे।

किसी २ ने नरहरिदास जी को श्री अनन्तानन्द जी का पौत्र श्री रंग जी का शिष्य लिखा है। यह बात हमारे पक्ष में हानिकारिणी नहीं वरन् इस से उस को लाभ ही पहुँचता है कि एक या दो पीढ़ियां और बढ़ जाती हैं।

किसी १ के मत से वाराह क्षेत्र-निवासी गोपालदास जी के चेले नरहरि दास गोसाईं जी के गुरु थे; और 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित रामायण में जो ग्रियर्सन साहबवाली सूची समावेशित की गई है उस में भी गोपालदास जी को नरहरिदास जी का गुरु लिखा है। परन्तु यह बात ठीक नहीं प्रतीत होती, क्यों कि श्री नाभा जी गोसाईं जी के समसामयिक थे और दोनों में भेंट की भी बात कही जाती है। वे श्री १०८ रामानन्द जी से ५वीं पीढ़ी में हैं और पूर्वोक्त सूची के अनुसार गोसाईं जी श्री रामानन्द जी से ८वीं पीढ़ी में होते हैं। इस से इन दोनों महानुभावों में ४ पीढ़ियों का अन्तर होता है। तब श्री नाभाजी कितने दिन जीवित रहे होंगे कि गोसाईं जी ने ७२[2] वर्ष की अवस्था के बाद दिल्ली दरबार से लौटने पर व्रजप्रदेश में आकर उन से साक्षात्कार का आनन्द उठाया।

---

१ विलसन साहब ने इन का जन्म ११वीं (?) अन्त में और इन की सुख्याति का समय १२वीं शताब्दि का प्रथम चतुर्थांश माना है। परन्तु श्री रामानुज जी का समय ११वीं शताब्दि माना जाता है तब श्री रामानन्द जी का समय भी ११वीं सदी नहीं हो सकता क्योंकि श्री १०८ रामानन्द जी श्री १०८ रामानुज स्वामी से पाँच पीढ़ी नीचे हैं। यहाँ हमें सुख्याति के समय से प्रयोजन नहीं क्योंकि सुख्याति के बहुत दिन पूर्व आप किसी के शिष्य हुए होंगे।

२ नाभाजी का जन्म १५८३ संवत् में माना जाता है और इन का दिल्ली दरबार में जहाँगीर बादशाह के समय जाना कहा जाता है अतएव इन का दिल्ली जाना १६०५ ई० (सं० १६६२) के अनन्तर ही हुआ होगा। दशम परिच्छेद देखिए।

क		ख[1]	
१	श्री १०८ रामानन्द स्वामी।	१	श्री १०८ रामानन्द स्वामी।
२.	श्री अनन्तानन्द जी।	२	श्री सुरसुरानन्द जी।
३	पौहारी श्री कृष्ण दासजी।	३	श्री माधवानन्द जी।
४	श्री अग्रदास जी।	४	श्री गरीबानन्द जी।
५.	श्री नाभा जी।	५.	श्री लक्ष्मी दास जी।
	—	६	श्री गोपाल दास जी।
	—	७	श्री नरहरि दासजी।
	—	८	गोसाईं तुलसीदास जी।

श्री स्वामी नाभा जी कृत मूल भक्त माल' में दोनों नरहरिदास का वर्णन आता है।

अतएव यदि नरहरिदास नामक महात्मा गोस्वामी जी के गुरु थे तो वे श्री रामानन्द स्वामी के पोते शिष्य नरहरि दास जी थे। अन्य कोई नरहरिदास नहीं थे।[2]

हां! इतना और भी कह देना है कि कोई २ महाशय श्री रामदासजी को इनका गुरु मानते हैं; परन्तु वे रामदास जी कौन थे सो नहीं बताते। यों तो रामदास सभी साधु महात्मा हैं।

---

१ मिर्जापुर वाली सूची का यह अनुमान है।

२ पं० गौरी शंकर जी कोई नरहरिदास साधु की बात नहीं कहते। यह लिखते हैं कि 'गोसाई जी के माता पिता के स्वर्गवास पर उन की बाल्यावस्था में (सोरों) नगर के चौधरी सनाढ्य कुलरत्न महात्मा श्री पं० नरसिंह जी ने इन का पालन-पोषण पढ़ाया-लिखाया और सुदृढ़ बनाया था।"

षष्ठ परिच्छेद

राजापुर वास

स्त्री के वाक्य से विरक्त होकर गुरु से राममंत्रादि ग्रहण कर गोस्वामी जी काशी में आ बसे। किसी के मत से अयोध्या होते काशी आये। यह बात असम्भव नहीं। अपने प्रभु के जन्म स्थान में कुछ काल निवास कर यदि काशी आये तो इस में सन्देह ही क्या है? और प्रियादास जी जो ससुरार से इन्हें काशी लाये हैं यह भी ठीक ही है। वहाँ से चल कर यथायोग्य अन्य स्थानों में ठहरते काशी आये। प्रियादास जी ने यह कहा ही नहीं है कि राह में कहीं नहीं ठहरे। उनके कथन का आशय यही है कि ससुरार से तुरत काशी की ओर चल निकले।

गोस्वामी जी प्रायः काशी में रहते थे। परन्तु अयोध्या जी भी विशेषतः जाते और रहते थे एवम् चित्रकूट मथुरा वृन्दावन, कुरुक्षेत्र, पुरुषोत्तमपुरी प्रयाग आदि स्थानों में भी पहुँच जाते थे और तीर्थयात्रा के समय मार्गस्थ छोटे बड़े अन्य गाँवों के निवासियों को भी अपने दर्शन से कृतार्थ किया करते थे। विरक्त होने पर ही कुछ काल राजापुर में भी ठहरे थे और वहाँ पीछे भी आया करते थे।

काशी तथा अयोध्या एवम् गंगा तथा सरयू के तट, को छोड़कर ये राजापुर में आकर क्यों भजन करने लगे थे यह प्रश्न पाठकों के मन में उठ सकता है। महात्माओं का तो कथन यह है कि किसी कारण से इन के लिये वहीं कुछ काल भजन करना उपयुक्त विचार कर प्रभु व हनुमान जी तथा शिव जी के द्वारा इन के मन में प्रेरणा कराई थी। यह गुप्त रहस्य है। हमारी समझ में साधुओं की मौज। आर भजन करने में यह कुछ नियम नहीं कि अमुक स्थान ही में रह कर भजन किया जाय। आप रमता साधु थे। भारतवर्ष के भिन्न २ प्रान्तों में विचरण किया करते थे। जहाँ मन की मौज हुई वहीं कुछ दिन ठहर गये, कहीं चित्त नहीं लगा किसी के अनुनय विनय पर भी वहाँ नहीं ठहरे—यह बात तो साधुओं में प्रायः देखी जाती है। ऐसा लोग क्यों करते हैं इस का हाल वे ही जानें। परन्तु यहाँ पर हम पाठकों को एक अपनी जानी हुई कथा सुनाते हैं।

आज से ४० वर्ष हुये कि पंजाबदेशीय उदासी साधु बाबा गरीब दास जी प्रायः हमारी बस्ती[1] में आकर एक पाकर के वृक्ष के तले ठाकुरद्वारी के समीप महावीर स्थान में ठहरा

---

१ अप्रतिहारपुर आरा नगर से लगभग डेढ़ कोस सीधे पश्चिम है।

करते थे। आप की दशा विचित्र थी। कभी महीनों तक धूनी की राख घोल छान कर शर्बत की नाईं पीया करते, कभी दिनों तक कच्चे आम की खटाई खाया करते कभी कोई जो कुछ श्रद्धापूर्वक भोजन के लिये ले आता उसे सहर्ष खा लेते कभी किसी का लाया भोज्य पदार्थ देखकर उसे गाली देने लगते और भय कर से भोजन ले आने का किसी को साहस नहीं होता एवम् कुछ दिन गांव से भोजन आना बन्द हो जाता तब भी गाली देना आरंभ करते। एक दिन हमारे नगर निवासी एक भद्र पुरुष मु० गोपाल लाल जो सबदा सत्संगति में रहा करते थे उन्हें गाली देते सुनकर विनीत भाव से दोनों हाथ जोड़कर बोले कि 'महाराज! जब लोग आप की सेवा में भोजन लाते हैं तब आप दुर्वाच्य कहते हैं और जब नहीं लाते तब भी गाली सुनाते हैं आप के लिये तो संसार ही घर है; तब यहां विराजमान होकर अपने पर क्यों कष्ट उठाते हैं?' यह सुनकर महात्मा जी खूब हंसने लगे और बोले 'गोपाल! तू क्या समझेगा! जो काम हमारा अन्यत्र एक दिन में होगा वह यहां छः महीने में होगा। यहां कुछ दूर से एक बड़े महात्मा विराजमान हैं। यह बात श्रवण करने से सभी लोग चकित तथा स्तम्भित हो गये। क्योंकि इतने दिनों तक नगर-निवासियों को कभी उनका दर्शन नहीं हुआ था। दर्शन कैसे हो! जब उस रीति की बातें बनाई जायं वैसा चित्त बनाया जाय तब तो। और यदि किसी को सामान्यतः हुआ भी तो उसने दूसरों पर यह बात कभी प्रगट भी नहीं की थी।

सारांश यह कि हमारा गांव कोई तीर्थस्थल नहीं, यहां कोई पवित्र नदी नहीं वन पर्वत नहीं परन्तु बाबा नरहरि दास जी ने ईश्वर की प्रेरणा से यहीं ठहर कर कुछ काल भजन करना उपयुक्त समझा था। और रामापुर के निकट तो कृष्णप्रिया, कृष्णसलिला कलकलनादिनी परमानन्द प्रदायिनी रविजा लाखों मनुष्यों का पाप प्रहार कर उन्हें गोलोक में पहुँचाने वाली प्रवाहित है। यहां कुछ दिन रह कर भजन करने में क्या सन्देह हो सकता है।

परन्तु काशी से गोस्वामी जी का भारी सम्बन्ध है। काशी ही में आप को रघुनायक-पायक हनुमान का दर्शन हुआ है। यहीं भवभीत-मुनिजननायक भोलानाथ के दर्शन का सुख प्राप्त हुआ है और यहीं सकल भवभारक भक्तसुखदायक श्री रघुनायक के दर्शन का सुअवसर हुआ है। काशी में आप के बड़े बड़े चमत्कार देखे गये हैं। काशी में अस्सी पर आप के नाम का एक घाट है एक कोठरी में आप की चरणपादुका गद्दी, बैंगर, इत्यादि तथा आप की संस्थापित हनुमान जी की मूर्तियां विराजमान हैं।

सप्तम परिच्छेद

श्री रामदर्शन

"आशिकों रा सूए जानां इश्क रहबर कामिलस्त।
आशिक अर सादिक बवद मंजिल ब मंजिल मीरसद॥"

प्रेमियों का प्रेम ही उसे प्रेमपात्र के निकट पहुँचाने के लिये पथप्रदर्शक होता है यदि प्रेमी सच्चा हो तो क्रमशः वह अपने अभीष्ट स्थान को पहुँच ही जाता है। यह बात गोस्वामी जी में प्रत्यक्ष देखी जाती है। विरक्त हो काशी में वास करने के अनन्तर इन के निष्कपट प्रेम के कारण इन्हें प्रभु के पादपद्म के दर्शन का भी सुअवसर मिला।

कहते हैं कि काशी में गोस्वामी जी गंगा[1] पार शौच के निमित्त जाया करते थे और रास्ते में शौच का शेष जल एक आम के पेड़ की जड़ में डाल दिया करते थे। उस पेड़ पर एक प्रेत[2] रहता था। इस के वहां नित्य जल डालने से सन्तुष्ट हो और एक दिन प्रगट हो उसने

---

१ श्री सीतारामशरण भगवान प्रसाद ने अस्सी पर शौच के लिये जाना व्यर्थ बहर कूप के नीचे जल गिराना लिखा है। किसी २ ने बबूर का पेड़ कहा है।

२ यह पुस्तक छपने के समय हमें अपने एक मित्र जिला मुजफ्फरपुर मन्दबारा ग्राम निवासी बाबू नरेन्द्र नारायण सिंह जी से ज्ञात हुआ है कि गोस्वामी जी के जीवनकाल ही में उनके एक चेले ने उन के निषेध करने पर भी उनकी यथावत् वृहद् जीवनी कोई एक लाख दोहे चौपाइयों में तैयार की थी। गोसाईं जी ने इस का हाल जानकर लेखक को यह कहकर ऐसा करने से निषेध किया कि ईश्वर का गुणानुवाद छोड़कर मनुष्य का चरित्र लिखना ठीक नहीं, पर उन्हों ने उन की बात न मानी। इस पर कुपित होकर गोसाईं जी ने शाप दे दिया कि उस पुस्तक का प्रचार नहीं होगा। यह चेला मनस्ताप से अत्यन्त पीड़ित हो श्री नाभा जी या किसी अन्य महापुरुष के शरणागत हुआ और उन के आग्रह तथा प्रार्थना से गोस्वामी जी ने संवत् १६६७ के अन्त में शाप मोचन का वचन दिया। और यह प्रश्न उठने पर कि इतने दिनों तक उस हस्तलिखित पुस्तक की रक्षा कौन करेगा यह काम इसी प्रेत को सौंपा गया। यह बात शायद उसी पुस्तक में लिखी है। यह पुस्तक सुदूर राज्य में किसी ब्राह्मण के घर में पड़ी रही। बलरामपुर (गोंडा) के एक मुनशी जी उस ब्राह्मण के घर उस के बालकों को शिक्षा देने पर नियुक्त हुए। उन्हीं बालकों के यह पुस्तक दिखाने पर उन्हों ने धीरे धीरे उर्दू में उस की नकल उतार डाली। यह बात प्रकट होने पर जब वह ब्राह्मण बड़ा क्रोधित हो उनका प्राण लेने पर उद्यत हुआ तब वे वहाँ से चम्पत हुए।

उन से कहा कि "मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हुआ तुम कहो क्या चाहते हो ?" आप ने उत्तर दिया कि "मुझे श्री रामचन्द्र के दर्शन के अतिरिक्त इस जीवन तथा इस संसार में कोई दूसरी इच्छा और लालसा नहीं है तुम मुझे उन्हीं का दर्शन करा कृतार्थ करो।" वह प्रेत हँस पड़ा और उस ने बहुत ही यथार्थ बात कही कि "यदि मुझ में यही सामर्थ्य होती तो क्या मैं प्रेतयोनि का दुःख भोगा करता ? यह बात मेरी शक्ति के बाहर है; भगवद्भक्त की सहायता बिना भगवान का दर्शन दुष्कर है। तौ भी मैं आप को एक उपाय बताता हूँ यदि भाग में दर्शन बदा होगा तो हो ही जायगा। कर्णघंटा स्थान पर रामायण की कथा होती है, श्रीहनुमान जी एक कोढ़ी का भेष बनाये मैला-कुचैला वस्त्र पहने नित्यप्रति वहाँ सबसे पहले आते हैं एवम् कथा विसर्जन होने पर सब से पीछे वहाँ से जाते हैं। आप उन्हीं को घेरिये उन्हीं का चरण पकड़िये। यदि उन की कृपादृष्टि हो गई तो श्री राम का दर्शन कुछ दुर्लभ नहीं है।"

गोसाईं जी नियत समय पर प्रेत के बताये हुये स्थान पर उपस्थित हुये। कोढ़ी के भेष बनाये हनुमान जी भी वहाँ पहुँचे। उस कोढ़ी को देख इन के आनन्द की सीमा नहीं रही। कथा समाप्त होने पर जब वह व्यक्ति वहाँ से चला तो आप भी उसके पीछे-पीछे चले और एक

उन से वह पुस्तक बलरामपुर के किसी राजकर्मचारी को मिली। उन से वह बलरामपुर राज के गुरु स्वामी हंसस्वरूप जी को मिली और अब वह पुस्तक केसरिया (चम्पारन) निवासी बाबू इन्द्रदेव नारायण के घर है।

किन्तु प्रेत ने कैसे उस जीवनी की रक्षा की और उस ब्राह्मण के घर वह पुस्तक कैसे पहुँची, यह किसी को मालूम नहीं। तुलसी जी के घर में कोई नहीं और उस ब्राह्मण का नाम तथा निवास लोगों को ज्ञात नहीं। उस दीर्घकाय पुस्तक के प्रकट होने पर लोग देख सकेंगे कि उस के उदर में क्या क्या वस्तुएं भरी हैं। परन्तु तब तक हम तुलसी जी की बहादुरी की अवश्य प्रशंसा करेंगे कि आप ने सारी पुस्तक नकल कर ली। तब तक बाबा जी को खबर नहीं हुई, और इस अवसर में जब उनकी जान की बारी आ गई थी वे अपने माल असबाब के साथ पुस्तक का बोझा भी लेकर भाग निकले और उस ब्राह्मण ने उनके पकड़ने का कदाचित् यत्न भी नहीं किया और उन्हें वह पकड़ भी नहीं सका। किन्तु खेद इस बात का है कि गोसाईं जी का परमोपकारी वह प्रेत उस समय तक प्रेत ही बना रहा। गोसाईं जी ने नैमिषारण्य के एक प्रेत को तथा केशव दास को (जैसा कि आगे विदित होगा) प्रेतयोनि से मुक्त किया, और इस प्रेत के साथ जिस की बदौलत उन्हें सब कुछ हुआ कुछ भी प्रत्युपकार नहीं देखा वरन् इस के माथे १०० वर्ष तक निज जीवन ग्रंथ की रक्षा का भार डाल दिया। सिवाय श्याम मोहन बाबू के किसी पाठक को भी उस के उद्धार का ध्यान नहीं आता है।

'मर्यादा' में 'मानस' की समालोचना में इसी जीवनी से दिखलाया गया था कि गोस्वामी जी की तीसरी शादी में १००० तिलक चढ़ा था। लोग अब भी कहते हैं कि तब प्रथम विवाह में दस हजार से तो कम नहीं मिला होगा ? परन्तु हमें तो उस पुस्तक का दर्शन ही नहीं हुआ, हम क्या कहें ?

निर्जन स्थान पाकर, आप ने बड़े प्रेम तथा दृढ़ता से उस पुरुष के पैरों को पकड़ लिया। कोढ़ी भेषधारी हनुमान जी [1] ने अपना पैर छोड़ा कर इन से जान बचाने का बहुत उद्योग किया परन्तु ये कब छोड़नेवाले थे। इन का हठ तथा प्रेम देख कर अन्त में हनुमान जी ने अपना रूप प्रगट किया और रामदर्शन के लिये इन के बहुत विनय करने पर कहा कि "जाओ, चित्रकूट में दर्शन मिलेगा। कोई-कोई कहते हैं कि शिव जी का मंत्र देकर चित्रकूट जाने का आदेश किया।

लोग कहते हैं कि गोस्वामी जी के शौच का शेष जल पाने से वह प्रेत इसलिये संतुष्ट हुआ कि प्रेतगण अपवित्र ही जल पान के अधिकारी होते हैं। परन्तु ज्ञानेन्द्र मोहन दत्त ने लिखा है कि "गोस्वामी जी यथारीति जल से एक बदरी वृक्ष के तले पैर धोया करते थे। साधु के चरण धोये हुए जल स्पर्श से पवित्रता लाभ कर वह प्रेत स्वर्ग जाने के लिये उपयुक्त हुआ। उस समय उस ने गोसाईं जी से बातें कीं एवम् इन्हें हनुमान जी का पता बताया।" इस आख्यायिका की यह व्याख्या उपयुक्त तथा उत्तम प्रतीत होती है और इससे सन्त माहात्म्य प्रतिपादित होता है।

हम तो उस प्रेत को भी प्रेत नहीं कहेंगे। उसे एक महात्मा ही कहेंगे। ईश्वरप्राप्ति का पथप्रदर्शक कैसा ही निकृष्ट जीव क्यों न हो, वह हमारे लिये महात्मा ही है। यदि वह अपवित्र प्रेत माना जाय तो महात्मा कौन कहा जायगा? केवल लम्बा-लम्बा तिलकधारी मुंडमुंडे बाबा जी।

इस में जिसका जो विचार हो परन्तु गोस्वामी जी ने हनुमान जी की आज्ञा पाकर चित्रकूट चलने की तैयारी की।[2]

---

1 श्रीहनुमान जी का कल्याणकारक दर्शन कहाँ हुआ इस विषय में 'माधुरी' वर्ष २, खंड २, पृष्ठ १८७ में रायबहादुर श्री यमुना स्वामी लाला सीताराम का एक छोटा लेख छपा है। उस से जाना जाता है कि यह घटना लखीमपुर-खीरी के जिले में खीरी से १२ कोस पूर्व धौरहरा के पास जो अयाम बरी के नाम से प्रसिद्ध है यह घटना हुई थी। इस समय धौरहरा कपूरथला राज्य के अधीन है। उस स्थान पर हनुमान जी की एक विशाल मूर्ति अभी तक स्थापित है। वहां श्री राम जानकी का एक मन्दिर और एक पक्की कोठरी का भग्नावशेष है।

लाला साहब को ये बातें एक महन्त माधव प्रसाद जी से मालूम हुई हैं।

परन्तु पंजाब की ओर इनके पर्यटन की बात किसी पुस्तक में नहीं लिखी गई और उधर वैष्णवों का प्रधान स्थान ही सुना गया जिस कारण से इन के उधर जाने की सम्भावना होती। यों साधुओं का मौज। जो हो यह कथा कहाँ तक सत्य है नहीं कह सकते।

2 त्रिपथगा के तनय विनय गुनगन समर्जित। शास्त्र पुरान प्रवीन नीति अनुगत बुद्धिजुत॥ श्री भागवत पुराण सरल भाषा में भाख्यो॥ पद पद्मावली परम मरम रसिकन रस चाख्यो॥ नारायन पद पंकज भ्रमर पूर्व पुण्य प्रकृति गय। रघुराज सिंह रीवाँ भूपती कृष्ण कृपा भाजन भय॥ —भक्तमाल।

श्रीमान् महाराजा रघुराज सिंह जी [1] ने 'भक्तमाला रामरसिकावली' में लिखा है कि चित्रकूट चलते समय गोस्वामी जी श्री विश्वेश्वर नाथ के मन्दिर में गये, किन्तु शिव जी ने दर्शन नहीं दिया। काशी के बाहर आने पर एक ब्राह्मण के भेष में शिवजी ने इन से कहा कि 'काशी छोड़ कर अनत मत जाओ, यहाँ से जाने में तुम्हारा निर्वाह नहीं है। और गोसाईं जी के यह कहने पर कि इतने दिन सेवा करने पर भोलानाथ प्रसन्न नहीं हुये वह ब्राह्मणवेषधारी बोले कि मैं ही शिव हूँ और फिर निज रूप में गोसाईं जी को दर्शन देकर उन्हों ने कहा कि 'चित्रकूट चलो वहां रामचन्द्र का दर्शन पाओगे।'[2] यह क्या ? अभी शिवजी कह रहे थे कि काशी से अनत जाने में तुम्हारा निर्वाह नहीं और तुरत ही आप ने चित्रकूट चलने की सम्मति दी। शिव के मुख में बालक बचों की नाईं क्षण में कुछ और क्षण में कुछ बातें कहानी उत्तम प्रतीत नहीं होता। तब रघुवर राम्मा का कथन युक्तियुक्त पाया जाता है कि श्री शिवजी का दर्शन पाने पर गोस्वामी जी ने स्वयम् कहा कि जब आप का दर्शन प्राप्त हुआ तब श्री रामजी के दर्शन का सुख भी अवश्य प्राप्त होगा' और यह कह कर गोसाईं जी चित्रकूट सिधारे एवम् वहां पहुच कर भी राम भजन में प्रवृत्त हुए।

कुछ काल के अनन्तर आप एक दिन क्या देखते हैं कि दो सुन्दर युवक—एक मेघ विनिन्दक श्याम तथा दूसरा विद्युत्‌द्युति विमर्दक गौर—धोमस करों में धनुष बाण लिये एक मृग के पीछे घोड़ा फेंकते चले जा रहे हैं। रूप-लावण्यता देख गोस्वामी जी विमोहित हो गये। पर यह नहीं जान सके कि जिन के दर्शन के लिये आप उत्कण्ठित थे वे सुखधाम शोभाभिराम श्री राम भ्राता सहित ये ही दोनों सवार थे बरन् उन्हें कोई घुड़सवार पुरुष जान कर इन्हों ने कोई लीला करली। थोड़ी देर के बाद श्री हनुमान जी ने प्रकट होकर पूछा कि 'श्री रामचन्द्र का दर्शन हुआ या नहीं ?' इन्हों ने कहा कि उन का दर्शन तो नहीं हुआ परन्तु अभी दो सुन्दर युवक घुड़सवार इसी राह से गये हैं।" यह ज्ञात होने पर कि वे ही श्री रामचन्द्र तथा लक्ष्मण लाल थे आप उन्हीं मूर्त्तियों को हृदय में स्थापित कर उन्हीं के ध्यान में मग्न हो गये एवम् यह पद रचकर प्रेमपूर्णहृदय से इस का गान करने लगे—

"लोचन रहे बैरी होय। जान बूझे अकाज कीन्हों गये भू में गोय॥
अपगति जो तरी गति न जान्यौ यहीं जागत सोय। गये छवि की अवधि में हौ

---

१ ज्ञात होता है कि गोसाईं जी का जो यथार्थ जीवनचरित्र इस पुस्तक में दिया हुआ है उसी को मुरादाबादनिवासी पण्डितवर ज्वालाप्रसाद जी ने अपनी बड़ी रामायण में अविकल उद्धृत कर दिया है।

२ रानी कमलकुँवरी लिखती हैं कि बहुत दिन काशी में रहने पर भी रामदर्शन की लालसा से गोस्वामी जी व्याकुल रहने लगे तब इनका विश्वास देख हनुमान जी ने दर्शन देकर चित्रकूट में प्रभु दर्शन का वरदान दिया और काशी से जाते समय श्री शिवजी ने संन्यासी के रूप में दर्शन दिया।' और उन से वैसी ही बातें हुई जैसी कि महाराजा साहब ने लिखी हैं।

निकसि गे ढिग होय ॥ करमहीन मैं पाय हीरा दियो पल में खोय। दास तुलसी राम बिछुरे कहो कैसे होय ॥"

भक्त कल्पद्रुम' भक्तमाल हरिभक्ति प्रकाशिका[1] तथा मु० तुलसीरामकृत उर्दू भक्तमाल में श्रीरामदर्शन की केवल यही कथा लिखी हुई है और श्री प्रियादास जी ने भी यही कथा इन दोनों कवित्तों में वर्णन की है।

"सौचजल सेष पाय भूत हू बिशेष कोऊ बोल्यो सुखमान हनुमान जू बताए हैं।
रामायण कथा सो रसायन है कानन को आवत प्रथम पाछे जात घृना छाए हैं॥
जाइ पहचान संग चले उर आनि आए वन मधि जान धाइ पांय लपटाए हैं।
करे सीत कार कहीं सकोगे न टारि मैं तो जान्यो रससार रूप धर्‍यो जैसे गाए हैं॥"
"मांग लीजै वर कही दीजै राम भूप रूप अति ही अनूप नित नैन अभिलाषिए।
कियो लै संकेत वाही दिन ही सो लाग्यो हेत आई सोई समय चेत कपि छवि चाखिए॥
आए रघुनाथ साथ लछमन चढ़े घोड़े पट रंगदार हरे कैसे मन राखिए।
पाछे हनुमान आए बोले देखे प्रान प्यारे, नेकु न निहारे मैं तो, भले फेर भाषिए॥"

परन्तु बहुत से लोग कहते हैं कि 'फेर भाषिए' से प्रियादास जी का अभिप्राय पुन दर्शन से है। अर्थात् गोसाईं जी ने सविनय हनुमान जी से प्रार्थना की कि इस दर्शन से तृप्ति नहीं हुई कृपया एक बार फिर दर्शन कराइए एवम् पवननन्दन ने इन का गूढ़तम इच्छा इन का मनोरथ सफल करने की प्रतिज्ञा की और चित्रकूट ही में उन की प्रतिज्ञा पूरी हुई।

'भक्तमाला रामरसिकावली' तथा प० ज्वालाप्रसाद सम्पादित बड़ी रामायण में दर्शन की दूसरी कथा यों लिखी है कि स्वामी जी एक बार स्नान कर चित्रकूट के रामघाट पर बैठे पूजा के लिये चन्दन रगड़ रहे थे इतने में श्याम गौर दो ब्राह्मण बालक वहाँ पहुँचे और उन्हों ने तिलक करने के लिए गोसाईं जी से चन्दन मांगा। उन्हों ने स्वयम् लगा देने को कहा। अन्ततः चन्दन लगा दोनों बालक चल गये। पीछे हनुमान जी के बताने तथा ध्यान का हाल पूछने पर गोस्वामी जी ने कहा चित्रकूट के घाट पर भई सन्तन की भीर। तुलसिदास चन्दन घिसैं तिलक देत रघुबीर। भार पंडितजी ने अपनी छोटी (छोटी) रामायण[2] में लिखा है कि 'चन्दन घिसते समय ८ ६ वर्ष के बालकरूप में भगवान गोस्वामी जी के समीप आये और उन्हों ने कहा कि "बाबाजी हम अपने हाथ से आप को चन्दन लगा दें एवम् जब वे चन्दन लगाने लगे, तब हनुमान जी एक तोता बन कर एक पेड़ पर बैठ पूर्वोक्त दोहा पढ़ने लगे।

---

1 ममर्ड़ी निवासी हरिपरिपथ रामानुजदास उपनाम 'हरिवर' कायस्थ माथुर मानिक्य भंडार कृत यह पुस्तक प० ज्वालाप्रसाद द्वारा संशोधित होकर श्रीवेंकटेश्वर यन्त्रालय में संवत् १९५६ में छपी है। वही हमारे देखने में आई है।

२ यह रामायण संवत् १९६१ में श्री वेंकटेश्वर यन्त्रालय में छपी है।

कदाचित् इस लोकप्रसिद्ध दोहा को सार्थक करने ही के लिये इस आख्यायिका की कल्पना हुई है। परन्तु पंडित जी की एक पुस्तक का लेख दूसरे के लेख से सर्वथा भिन्न है। आप की पुस्तकें व आख्यायिकाओं में से कौन सी प्रामाणिक है यह बात वे ही जानते हैं।

उपर्युक्त ग्रन्थों के अनुसार गोस्वामी जी को चित्रकूट में भी राम लक्ष्मण का तीन बार दर्शन हुआ है। एक बार अहेरी के भेष में, दूसरी बार चन्दन रगड़ते समय एवम् तीसरी बार कामता में। इन दोनों महानुभावों ने यहाँ पर श्री रामचन्द्र को सब भाइयों तथा हनुमानादि के सहित मदि हाथियों के साथ बुलाया है और गोसाईं जी ने आरती की है एवम् रामचन्द्र ने इन के माथे पर करकमल रख कर इन्हें कृतार्थ किया है।[1]

ग्रियर्सन साहब ने एक और ही कथा लिखी है। वह यह है कि एक दिन गोस्वामी जी ने चित्रकूट में उत्तरते से हुए घूमते समय रामलीला होते देखा कि लङ्काविजय के अनन्तर विभीषण को राजतिलक देकर श्री राम, लक्ष्मण हनुमान अन्यान्य भालु वानरों के संग श्री अवध लौटे जा रहे हैं। लीला देख कर इन का मन महानन्दित हुआ। वहाँ से लौटते समय ब्राह्मणभेषधारी श्री हनुमान जी से भेंट हुई। उन से आप उस रामलीला की बड़ी प्रशंसा करने लगे। ब्राह्मणदेवता ने कहा कि 'महाराज आप सनक तो नहीं गये हैं? भला आज कहाँ रामलीला होती है! रामलीला होने का समय कुआर कातिक है।'

इस पर गोसाईं जी बोले कि "आंखों में धामी दिखा देता है।" परन्तु फिर रामलीला स्थान पर जाने पर कहाँ रामलीला और कहाँ लीलामूर्त्तियाँ! लीला होने का चिन्हमात्र भी वहाँ नहीं दीख पड़ा। वहाँ के लोगों से पूछने पर सभों ने कहा "सब भक्ती बाबा जी आजकल रामलीला! तब गोस्वामी जी का ज्ञानचक्षु खुला और आप ने सोचा कि 'हो न हो वे ही राम लक्ष्मण अपनी अमीम कृपा से मुझे दर्शन दिये हैं। हा! धिक्कार! कि उन के चरणकमलों में गिरकर दंडप्रणाम भी मैं ने नहीं किया।' खिन्न हो कर अपने स्थान पर आ पश्चात्ताप और रोदन करते २ आप निद्राभिभूत हुये। स्वप्न में हनुमान जी ने कहा कि "पछताने की कोई बात नहीं, कलि में किसी को प्रभु का प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होता। तुम बड़े भाग्यवान हो कि तुम्हें इस प्रकार से दर्शन हो गया। अब भजन में लगे रहो।" वहाँ से काशी छोड़ कर आप अधिकतर प्रेमानुराग से प्रभु की अर्चना सेवा में समय बिताने लगे।

पं० रामेश्वर भट्ट ने अपनी रामायण में लिखा है कि गोसाईं जी इस प्राकृत पद को प्रकट कर और अति प्रसन्न हो हनुमान जी ने पुन: दर्शन कराने का वचन दिया था और रामलीला के बहाने दर्शन कराया।

---

1 बैजनाथ दास तथा रानी कमल कुँवरी ने श्री रामचन्द्र को लक्ष्मण हनुमानादि समेत विमानस्थित देवताओं से वन्दित सिंहासन पर बैठाकर उन्हें गोसाईं जी से तिलक कराया है। और उन लोगों ने यह दोहा लिखा है:—

रामघाट अनुराग़ि मौं भई विमानन भीर।
तुलसीदास चन्दन घिसी तिलक देत रघुबीर॥

सोचने से प्रतीत होता है कि कामना स्याम-वाला दर्शन एवम् रामलीला द्वारा दर्शन दोनों एक ही हैं। भिन्न २ लेखकों ने भिन्न २ रीति से एक ही कथा को हेर फेर कर वर्णन किया है। ऐसा अनुमान करने से प्रथम बार दर्शन पाकर श्री रामचन्द्र को नहीं पहचानने के कारण गोस्वामी जी का पुनः दर्शन के लिये प्रार्थी होना एवम् दर्शन लाभ करना संगत बोध होता है, तो भी तोता पढ़ाने की बात विलक्षण ही रह जाती है। परन्तु इस के लिये आपत्ति उठाने से क्या लाभ? जिस की जैसी इच्छा हुई है कागज पर रंग डाला है। सारांश इतना ही है कि परम दयालु भक्तवत्सल भगवान ने अपनी असीम कृपा से किसी बहाने दर्शन देकर गोस्वामीजी को कृतार्थ किया यो बात असम्भव नहीं।

महात्माओं से यह भी सुना है कि गोसाईं जी की विनयपत्रिका का यह पद "हे हरि कवन दोष तोहि दीजै" (पद नम्बर ११७) रचने पर भी इन्हें श्रीराम लक्ष्मण तथा हनुमान का साक्षात दर्शन हुआ था।

एकबार, दोबार, तीनबार चारबार, पाँचबार कलि-कलुष-निकन्दन श्री रघुनन्दन का साक्षात दर्शन होने में आश्चर्य ही क्या? हम तो समझते हैं कि भक्ति, प्रेम तथा भजन के प्रभाव से गोसाईं जी को प्रभु का प्रत्यक्ष दर्शन प्रतिक्षण हुआ करता था। प्रकृति की विचित्र-विचित्र चित्रकारियों में वे सदा चित्रकार ही को देखा करते थे आध्यात्मिक (आभ्यांतरिक) दृष्टि से भी वे प्रत्येक पदार्थ को उसी का प्रत्यक्ष-कारक-रूप या प्रतिरूप देखते थे।[1] इन की पवित्र भक्ति ही ऐसी थी, इन का स्वच्छ प्रेम ही ऐसा था। श्री गुरु नानक जी का वचन है कि "संसार में बहुत-से लोग उस का अन्वेषण करते हैं किन्तु कदाचित् कोई २ उस को पाते हैं क्योंकि तीव्र वैराग्य और एकान्त अनुराग बिना मनुष्य भगवत्कृपा का भाजन नहीं हो सकता।' गोसाईं जी आत्मविरक्त हो उसी तीव्र वैराग्य तथा एकान्त अनुराग के साथ ईश्वराराधना में प्रवृत्त हुये थे। यह इसी सच्चे प्रेम का प्रभाव था कि वे ईश्वर को इस प्रकार सर्वत्र साक्षात देखने लगे थे। उसी में यह शक्ति है कि अनहोनी का होनी कर दिखावे। कवि ने सच कहा है "जिसे देखना हो मुहाल था न था जिसका नामो निशां कहीं। सो हरेक शै में इश्क ने मुझे जिलवा उस का दिखा दिया।"

गोसाइं जी की स्त्री, गुरु प्रेत, हनुमानजी तथा शिवजी सभी लोग इन के अनुराग तथा स्तुति के प्रभाव ही से यथा समय उस नित्यधाम की ओर इन्हें अग्रसर करते गये एवम् उस अगाध अनुराग हो के कारण हनुमान जी की इन पर सदा अनन्य कृपा बनी रही।

---

१ 'कि बबरमाने दिल मो की जुज़ दोस्त। हर्चे बीनी बिदां कि मज़हरे ऊस्त॥" आपकी यही अवस्था थी।

अष्टम परिच्छेद

श्रीहनुमानजी विषयक दो-एक अन्य बातें

कहते हैं कि रामायण बालकाण्ड में गोसाईं जी ने जो लिखा है 'बन्दउँ कपा हरि पद धरि सीसा' उस में हनुमानजी की वन्दना की गई है क्योंकि हरि शब्द का अर्थ वानर भी है। इस में आश्चर्य ही क्या है? गोस्वामी जी कृतघ्न थोड़े ही थे कि जिन के अनपेक्षित असीम तथा अपूर्व अनुग्रह से आप को प्रभुपादपद्मों के प्रत्यक्ष दर्शन का अलभ्य सुखानन्द प्राप्त हुआ उनकी वन्दना भी नहीं करें। यही क्यों आप ने अनेक स्थानों में भी हनुमान की वन्दना की है, आप निरन्तर उन की वन्दना स्तुति किया करते थे। उनकी वन्दना में आप ने 'हनुमान बाहुक' पुस्तक ही रच डाली है।

ऐसा भी कथन है कि रामायण में 'पूरे सकल समाज' लिखकर गोसाईं जी अकबका गये कि इस समाज में तो श्री राम, लक्ष्मण तथा सज्जनगण भी हैं ऐसा लिखना बड़ा अनर्थ हुआ। उस समय श्री हनुमान जी की आकाशवाणी हुई कि "इसके मत आगे लिख दो 'चढ़े प्रथम जो मोह बस।'" दोहा १. ऐसा भी कहते हैं कि हनुमान जी गोसाईं जी का रूप धारण कर यह स्वयम् ही लिख गये थे।[1]

---

१ ऐसी ही कथा श्री जयदेव जी कृत गीतगोविन्द के विषय में भी प्रसिद्ध है। प्रवाद है कि श्रीजयदेवजीके इस अष्टपदी में 'स्मरगरलखण्डनं मम शिरसि मण्डनं' के आगे जयदेवजी ने 'देहि पदपल्लवमुदारं' लिखना चाहा परन्तु प्रभु के विषय में ऐसा पद देने का उन्हें साहस नहीं हुआ और आप लिखना छोड़ कर स्नान करने चले गए। भक्तवत्सल भक्त-मनोरथ पूरक भगवान स्नान से लौटे हुए जयदेव के भेष में आकर पहले भोजन कर उस पुस्तक में 'देहि पदपल्लवमुदारं' लिखकर शयन करने लगे और जयदेव जी की स्त्री भी भोजन करने लगीं। इतने में जयदेवजी स्नान कर के घर लौट आये। स्त्री को भोजन करते देख उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि वह इन को भोजन कराये बिना स्वयम् जल भी नहीं पीती थी। अतएव उन्हों ने इसका कारण पूछा। स्त्री ने सब वृत्तान्त कह सुनाया। तब जयदेव जी जाकर देखें तो पुस्तक में वही पद लिखा हुआ है। तब आप ने सब लीलाएं श्रीकृष्ण का समझ कर परमानन्द को प्राप्त हुए वरन् अपनी धर्मपत्नी पद्मावती की थाली का शेष भोजन कर आप ने जन्म को कृतार्थ माना।

श्री जयदेवजी का जीवनवृत्तान्त जानने के लिये श्री भारतेन्दुकृत चरितावली, श्री भगवद्भक्तमाहात्म्य भक्तमाल की टीका, श्री रमेशचन्द्रदत्त कृत 'लिटरेचर ऑफ बंगाल'

रामायण में धनुषभंग प्रकरण देखने से सहज ही ज्ञात होता है कि जिन्हें डुबोना था उन्हें गोसाईं जी पहले ही अपजहाज पर बिठा चुके थे। फिर रामादि के डूबने के भय से इन्हें ढ़ेकमी रोकने की क्या आवश्यकता थी? वे लोग तो जहाज पर चढ़ाये नहीं गये थे। और रघुवर का बाहुबल ही तो सागर था। सागर जहाज के संग में कैसे और कहाँ डूबता?

यह कथा भी प्रसिद्ध है कि हनुमान जी को अपना अनन्य सेवक जान कर श्री रामचन्द्र जी ने उन से एक बार कहा था कि "मैं वाल्मीकीय रामायण के अनुसार कार्य्य कर रहा हूँ।" इस पर हनुमान जी पत्थरों पर अपने नखों से रामायण लिख कर उसे रामचन्द्र के पास सही कराने को गये। श्री रामचन्द्र ने कहा कि "हम वाल्मीकिकृत रामायण पर सही कर चुके हैं, तुम उन्हीं से सही करा लो।" वाल्मीकिजी ने हनुमान जी विरचित ग्रंथ देखकर विचारा कि उस के प्रचार से उनकी रामायण का गौरव नष्ट हो जायगा, अतएव वे हनुमान जी की स्तुति करने लगे और वर माँगने की आज्ञा होने पर उन्होंने यही वर माँगा कि "आप अपनी रामायण को समुद्र में फेंक दीजिये।" हनुमान जी ने कहा "इस को तो मैं सागर में डुबो देता हूँ परन्तु कलियुग में तुलसी नामक एक ब्राह्मण की जिह्वा पर बैठ कर भाषा रामायण कहूँगा जिसके प्रचार से तुम्हारी रामायण नष्टप्राय हो जायगी।"

यह कदापि सम्भव नहीं कि वाल्मीकि जी के समान महान कवि और प्रभुपरायण एवम् हनुमान जी के समान प्रभुभक्त एक दूसरी की कीर्ति को जिस में रामचन्द्र की कीर्ति का कीर्तन किया गया हो लोप और नष्ट करने को सलबात हों। और परम स्वामी-भक्त श्री हनुमान जी ऐसी पुस्तक को जिस पर उन के स्वामी की सही हो चुकी हो नष्टप्राय कराने की मनसा करें।

फिर कलि में गोसाईं जी तो कोई दूसरे ब्राह्मण नहीं हुये। स्वयम् वाल्मीकि जी ही ने गोस्वामी जी का शरीर धारण कर भाषा में श्रीरामचन्द्र की लीलाएँ वर्णन कीं और उन का गुणगान किया। उन्हीं के द्वारा संस्कृत जाननेवाले तथा केवल भाषा जाननेवाले दोनों ही का उपकार हुआ। वाल्मीकीय संस्कृत रामायण नष्ट भी नहीं हुई। संस्कृतज्ञ आज भी उस का आदर करते हैं, सर्वसाधारण भी पण्डितों के मुख से उस की कथा सुना ही करते हैं, वह रामायण लोप क्यों हो और कैसे हो? जिस में रामयश वर्णन हुआ हो और जिस पर रामचन्द्र का हस्ताक्षर हुआ हो भला वह वस्तु भी कभी लोप हो सकती है?

पूर्णम् इस प्रबन्ध के लेखक की लिखी हुई 'हरिश्चन्द्र' नामक पुस्तक पृष्ठ १५४ पाठ कीजिये।

ऐसा भी कहते हैं कि श्री सूरदास जी ने सवा लाख पद रचने का संकल्प किया था, किन्तु पचहत्तर हजार ही पदों की रचना करने पर उन का गोलोकवास हो गया। तब श्रीकृष्णचन्द्र ने शेष पदों की रचना कर अपने भक्त का संकल्प पूरा किया।

गोस्वामी जी का वाल्मीकि जी का अवतार होना तो सभी के मुख से सुना जाता है। इस का ग्रंथों में भी प्रमाण पाया जाता है। श्री नाभा जी ने भी स्वरचित भक्तमाल[1] में लिखा है।

भविष्य पुराण[2] भी इस बात को सिद्ध करता है और स्वयम् गोस्वामी जी भी यह बात एक रीति से कह रहे हैं "जन्म जन्म जानकीनाथ के गुनगन तुलसी दास गायो।"

हाँ यह शंका हो सकती है कि वाल्मीकि जी मुक्तजीव होकर फिर क्यों शरीर धारी हुये? श्री सीताराम शरण भगवानप्रसाद जी इसके उत्तर में लिखते हैं कि "ईश्वर को तथा साकार मुक्तजीवों को ऐसी सामर्थ्य होती है कि पूर्वरूप से ज्यों के त्यों बने भी रहें और अपने सत संकल्प से रूपान्तर तथा अवतार भी धारण कर लें।" दुखी जगत के हितसाधन की इच्छा उन्हें फिर इस संसार में आने को और अपने ऊपर कष्ट उठाने को बाधित करती है। सृष्टि की स्थिति के दृढ़ रखने वाले नियमों में विघ्न तथा हलचल उपस्थित होने से जगत को दुखी देख कभी करुणानिधान भगवान् स्वयम् भिन्न २ रूप धारण कर एवं स्वधर्म्म द्वारा धर्मानुष्ठानाचार की शिक्षा दे संसारी जीवों का कल्याण करते तथा धर्म्म संस्थापन करते हैं एवम् कभी अपने परम प्रिय भक्तों ही को भेजकर यह कार्य्य साधन करते हैं। क्योंकि उच्च आदर्श पुरुष ऐसे शक्ति-सम्पन्न होते हैं कि मृतप्राय व्यक्ति और जाति में भी पुनः जीवन प्रदान कर उसे उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित कर देते हैं।

और हनुमान जी गोसाइं जी के सिंहासन पर बैठे हों वा नहीं, अथवा आकाशवाणी द्वारा अनुष्टुप बताये गये हों या नहीं अथवा स्वयम् आकर लिखाये गये हों वा नहीं परन्तु उन की कृपा से ही रामायण की रचना हुई इस में सन्देह किस को हो सकता है? बिना दैवकृपा के कोई कार्य्य भी नहीं होता यह हिन्दुजाति की धारणा है। अंग्रेजी कवि लोग भी मियुज (Muse) की मर्जी (कृपा) ही से कविता करने में समर्थ होते हैं।

परन्तु हम हनुमान जी सम्बन्धी पूर्वकथित बातों को सारहीन मनोकल्पित ही समझते हैं। अन्य लोगों का जैसा विचार हो वैसा समझा करें।

---

1 "कलि कुटिल जीव निस्तार हित वाल्मीकि तुलसी भयो। त्रेता काव्य निबन्ध करी सत कोटि रमायन। इक अच्छर उच्चरै ब्रह्म हत्यादि परायन। अब भक्तन सुख दैन बहुरि लीला बिस्तारी। रामचरन रस मत्त रटत निसि दिन ब्रतधारी॥ संसार अपार के पार को सुगम रूप नौका लयो। कलि कुटिल जीव निस्तार हित वाल्मीकि तुलसी भयो।"

2 "वाल्मीकिस्तुलसी दासः कलौ देवि! भविष्यति।
रामचन्द्रकथा साध्वी भाषारूपेण करिष्यति॥"

नवम परिच्छेद

काशी वास वृत्तान्त

यह बात ऊपर कही जा चुकी है कि वैराग्य जन्मने पर गोसाइं जी काशी में रहने लगे थे। किसी २ के मत से पहिले श्री अवध जाकर तब ये काशी आये और किसी के मत से काशी आकर तब श्री अवध गये और वहाँ इन्होंने रामायण लिखना आरम्भ किया किन्तु वहाँ की कुछ असह्य कुरीतियाँ देख फिर आप काशी आकर रहने लगे। गृहत्यागी होने पर ये पहिले कहीं गये हों परन्तु काशी में इन का विशेष रहना पाया जाता है। और यहीं से इन्हों ने साकेत की भी यात्रा की है।

यद्यपि ये अयोध्या से काशी चले आये थे तथापि काशी में भी ये निश्चिन्त नहीं रहने पाते थे। इसी से काशी में भी कई बार एक स्थान को परित्याग कर दूसरे स्थान में इन्हें रहना पड़ा था। काशी में पंडितों ने भी इन्हें नीचा दिखलाना चाहा, गोसाइयों ने भी इन से विरोध किया और चोर, बादशाह भी इन के पीछे पड़े। परन्तु जिन के रखवारे श्री रामदूत पवनपूत हों उन का किसी के बिगाड़े क्या हो सकता है ! 'बाल न बांका करि सकै जो जग बैरी होय।' असम्मानित करना या क्षति पहुँचाना तो दूर रहे अंग्रेजी कवि गोल्डस्मिथ के कथनानुसार "जो आए उपहास करन हित नमन लगे पद सोऊ।"[1] काशी में भी विश्वेश्वरनाथ की कृपा से इन की सुकीर्तिलता दिनदिन लहलहाती बढ़ी और सुयशसुगन्ध चतुर्दिक फैलती ही रही।

देखिये एक बार एक हत्यारा भ्रमण करता, राम राम मुख से कहता भीख मांगता स्वामी जी के स्थान पर आ पहुँचा और बोला— 'राम ! राम ! हत्यारे को भीख डाल दीजिये।' गोसाइं जी उस के मुख से श्री राम का नाम सुनकर प्रसन्न चित्त कुटी से निकल आये और इन्हों ने उस से उस का वृत्तान्त पूछा। उसने अपना सब हाल कह सुनाया। इन्हों ने कहा कि— 'जब तुम इस प्रकार ग्लानियुक्त दीनतापूर्वक हमारे प्राणप्रिय श्री राम का नाम उच्चारण करते हो तो तुम शुद्ध हो गये।' और इन्हों ने उसे अपनी कुटी में ले जाकर और अपने साथ बैठाकर ठाकुर जी का भोग लगाया, प्रसाद भोजन कराया। हत्यारे को साथ खिलाने की चर्चा सर्वत्र फैल गई। यह बात यहाँ के ब्राह्मणों[2] को जो ईर्ष्यावश इन से अकारण

---

१ "Those who came to scoffer remained to pray" —Goldsmith.

२ 'भक्तमाला रामरसिकावली' तथा पं० 'बालाप्रसाद' जी के अनुसार मित्र कुटुम्बियों से जाति बाहर किये जाने पर एक हत्यारे ने गोस्वामी जी के पास अपना दुख

गोस्वामी जी का वाल्मीकि जी का अवतार होना तो सभी के मुख से सुना जाता है। इस का ग्रंथों में भी प्रमाण पाया जाता है। श्री नाभा जी ने भी स्वरचित भक्तमाल[1] में लिखा है।

भविष्य पुराण[2] भी इस बात को सिद्ध करता है और स्वयम् गोस्वामी जी भी यह बात एक रीति से कह रहे हैं "जन्म जन्म जानकीनाथ के गुणगण तुलसी दास गायो।

हाँ यह शंका हो सकती है कि वाल्मीकि जी मुक्तजीव होकर फिर क्यों शरीर धारी हुये? श्री सीताराम शरण भगवानप्रसाद जी इसके उत्तर में लिखते हैं कि "ईश्वर की तथा साधार मुक्तजीवों की ऐसी सामर्थ्य होती है कि पूर्वरूप से ज्यों के त्यों बने भी रहें और अपने सत संकल्प से रूपान्तर तथा अवतार भी धारण कर लें।" दुखी जगत के हितसाधन की इच्छा उन्हें फिर इस संसार में आने को और अपने ऊपर कष्ट उठाने को बाधित करती है। सृष्टि की स्थिति के दृढ़ रखने वाले नियमों में विघ्न तथा हलचल उपस्थित होने से जगत को दुखी देख कभी करुणानिधान भगवान् स्वयम् भिन्न २ रूप धारण कर एवं सत्कर्म द्वारा धर्मोपदेशाचार की शिक्षा दे संसारी जीवों का कल्याण करते तथा धर्म संस्थापन करते हैं एवम् कभी अपने परम प्रिय भक्तों ही को भेजकर यह कार्य्य साधन करते हैं। क्योंकि सच्चे भागवत पुरुष ऐसे शक्ति-सम्पन्न होते हैं कि मृतप्राय व्यक्ति और जाति में भी पुनः जीवन प्रदान कर उसे उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित कर देते हैं।

और हनुमान जी गोसाइं जी के सिंहासन पर बैठे हों या नहीं अथवा आकाशवाणी द्वारा अनुभूत बताते गये हों या नहीं, अथवा स्वयम् आकर लिखाते गये हों या नहीं परन्तु उन की कृपा से ही रामायण की रचना हुई इस में सन्देह किस को हो सकता है! बिना ईश्वरकृपा के कोई कार्य्य भी नहीं होता यह हिन्दुमात्र की धारणा है। अंग्रेजी कवि लोग भी मिउज (Muse) की मर्जी (कृपा) ही से कविता करने में समर्थ होते हैं।

परन्तु हम हनुमान जी सम्बन्धी पूर्वकथित बातों को सारहीन, मनोकल्पित ही समझते हैं। अन्य लोगों का जैसा विचार हो वैसा समझा करें।

---

१ "कलिकुटिल जीव निस्तार हित वाल्मीकि तुलसी भयो। त्रेता काव्य निबन्ध करी सत कोटि रमायन। इक अच्छर उच्चरे ब्रह्म हत्यादि परायन। अब भक्तन सुख दैन बहुरि लीला विस्तारी। रामचरन रस मत्त रटत निसि दिन व्रतधारी॥ संसार अपार के पार को सुगम रूप नउका लयो। कलि कुटिल जीव निस्तार हित वाल्मीकि तुलसी भयो।"

२ वाल्मीकिस्तुलसी दासः कलौ देवि! भविष्यति।
रामचन्द्रकथा साध्वी भाषारूपेण करिष्यति॥"

नवम परिच्छेद

काशी वास वृत्तान्त

यह बात ऊपर कही जा चुकी है कि वैराग्य जन्मने पर गोसाईं जी काशी में रहने लगे थे। किसी २ के मत से पहिले श्री अवध जाकर तब ये काशी आये और किसी के मत से काशी आकर तब श्री अवध गये और वहाँ इन्होंने रामायण लिखना आरम्भ किया किन्तु वहाँ की कुछ असह्य अनरीतियाँ देख फिर आप काशी आकर रहने लगे। गृहत्यागी होने पर ये पहिले कहीं गये हों परन्तु काशी में इन का विशेष रहना पाया जाता है। और वहीं से इन्हों ने साकेत की भी यात्रा की है।

यद्यपि ये अयोध्या से काशी चले आये थे तथापि काशी में भी ये निश्चिन्त नहीं रहने पाते थे। इसी से काशी में भी कई बार एक स्थान को परित्याग कर दूसरे स्थान में इन्हें रहना पड़ा था। काशी में पंडितों ने भी इन्हें नीचा दिखलाना चाहा, गोसाइयों ने भी इन से विरोध किया और चोर, चाण्डाल भी इन के पीछे पड़े। परन्तु जिन के रखवारे श्री रामदूत पवनपूत हों उन का किसी के बिगाड़े क्या हो सकता है! 'बाल न बाँका करि सके जो जग बैरी होय।' अपमानित करना या क्षति पहुँचाना तो दूर रहे अंग्रेजी कवि गोल्डस्मिथ के कथनानुसार 'जो आए उपहास करन हित नमन लगे पद सोऊ।'[1] काशी में भी विश्वेश्वरनाथ की कृपा से इन की सुकीर्तिलता दिनदिन लहलहाती बढ़ी और सुयशसुगंध चतुर्दिक फैलती ही रही।

देखिये एक बार एक हत्यारा भ्रमण करता, राम राम मुख से कहता भीख माँगता स्वामी जी के स्थान पर आ पहुँचा और बोला—"राम! राम! हत्यारे को भीख डाल दीजिये।' गोसाईं जी उस के मुख से श्री राम का नाम सुनकर प्रसन्न चित्त कुटी से निकल आये और इन्हों ने उस से उस का वृत्तान्त पूछा। उसने अपना सब हाल कह सुनाया। इन्हों ने कहा कि—'जब तुम इस प्रकार ग्लानियुक्त दीनतापूर्वक हमारे प्राणप्रिय श्री राम का नाम उच्चारण करते हो तो तुम शुद्ध हो गये।' और इन्हों ने उसे अपनी कुटी में ले जाकर और अपने साथ बैठाकर ठाकुर जी का भोग लगाया, प्रसाद भोजन कराया। हत्यारे को साथ खिलाने की चर्चा सर्वत्र फैल गई। यह बात वहाँ के ब्राह्मणों[2] को जो ईर्ष्यावश इन से अकारण

---

1 "Those who came to scoffer remained to pray'
—Goldsmith.

2 'भक्तमाल रामरसिकावली' तथा पं० ज्वालाप्रसाद जी के अनुसार मित्र कुटुम्बियों से जाति बाहर किये जाने पर एक हत्यारे ने गोस्वामी जी के पास अपना दुख

द्वेष रखते थे बहुत बुरी लगी। इसी महा अनर्थ समझकर उन लोगों ने सभा की गोसाईं जी को वहां बुलवा भेजा और उन से प्रश्न किया कि 'आप ने ऐसा अनुचित और अधर्म कार्य क्यों किया ?" इन्हों ने उत्तर दिया कि "महाराज ! शास्त्रज्ञ होकर भी आप लोगों ने शास्त्र का यथार्थ मर्म नहीं जाना। आप लोग उस की मर्यादा घटाने चले हैं; कृपा कर अपनी पोथियां पसार कर देखिये तो उन में 'राम नाम का क्या माहात्म्य लिखा हुआ है। इस हत्यारे का हत्यापाप यदि रामनामोच्चारण से भी नहीं छूटा तो रामनाम की महिमा क्या ? इस पर भी जिस प्रकार आप लोगों को इसका पापक्षय होने का विश्वास हो वह कहते जाइये, मैं करने को प्रस्तुत हूं।' उन लोगों ने कहा कि "रामनाम की महिमा पोथियों में लिखी है सही परन्तु इस ने प्रायश्चित्त नहीं किया। अच्छा अब यदि इस के हाथ का छूआ हुआ पाक श्री विश्वनाथ जी के नन्दी भोजन करें तो हमलोगों को इस के हत्यापाप से मुक्त होने का विश्वास हो।" निदान ऐसा ही हुआ। प्रसाद तैयार कराकर हत्यारे ब्राह्मण के हाथ से नन्दी के सामने रखवाया गया और गोसाईं जी ने नन्दी के प्रति कहा कि "रामनाम के प्रताप से मति को सरस कर इस हत्यारे का प्रसाद पाइये क्योंकि श्री रामनाम का माहात्म्य आप के समान मैं नहीं जानता हूं।' यह सुनते ही नन्दी प्रसाद खा गये और ब्राह्मणवर्ग लज्जित हो अपने २ घर सिधारे। यहां श्री विश्वनाथ जी के पत्थर के बैल ने उन पंडितों को "लिख लोढ़ा पढ़ पत्थर" सिद्ध कर दिया। सच है 'न मोदकैः भवद न शान्तिरमन्त्र। पारयावे वरो त्रियावे अन्य ।' अनुवाद—होम न चतुर न पंडित ज्ञानी। नर पशु, पुस्तक पीठ ठगानी। जब शास्त्र पढ़ कर उस के यथार्थ मर्म का ज्ञान नहीं हुआ तो उस से नहीं पढ़ना ही उत्तम है।

हां ! हां ! जिस समय अवध का एक मंत्री रामनौमी के अवसर पर या किसी अन्य समय काशी में आया था एवम् अवधवासी जान कर इन्हों ने उसे स्नेहपूर्वक छाती से लगाया था उस समय फिर लोगों ने सभा करने का साहस किया था या नहीं, यह बात हमें कोई प्राचीन लेखक स्पष्ट नहीं बताते। हत्यारे ब्राह्मण से भी तो कम अपवित्र नहीं था। जो हो इस हत्यारे की कथा से यह स्पष्ट फलित होता है कि अपने कुकर्मों पर सच्चे हृदय से पश्चात्ताप करने तथा ग्लानि मानने से प्रभु अवश्य दयार्द्र हो अपराध क्षमा करते हैं। गोसाईं जी ने इस उदाहरण से यही सिद्ध कर दिया।

पंडितों ने गोस्वामी जी कृत रामचरित मानस (रामायण) के प्रचार में बाधा डालने की भी चेष्टा की थी परन्तु वे उस में भी कृतकार्य्य नहीं हुये। इस का सविस्तर वर्णन अन्यत्र किया जायगा।

फिर बहुत से अधम पुरुषों ने इन की निन्दा कर इन से सर्वसाधारण का मन

निवेदन किया कि इन्हों ने उस के कुटुम्बियों को बुलवा कर कहा कि रामनाम कहने से इसका पाप छूट गया जिस प्रकार से तुम लोगों को इस का विश्वास हो सो करो।" तब उन लोगों के कहने से नन्दी को पना खिला गया और वे उसे खा गये।

किसी के कहने से नन्दी को पेड़ा या कोई अन्य पदार्थ दिया गया हो, परन्तु इस परीक्षा में गोस्वामी जी पास तो हो गये न।

फेरने का उद्योग किया था। किन्तु उस में भी सफलता प्राप्त नहीं हुई। रानी कमला कुँवरी के लेखानुसार एक पंडित ने इन के निधन का जो प्रयोग किया था और इन्होंने बाहुक[1] के द्वारा उस का निवारण किया।

तुलसी राम जी ने उर्दू भक्तमाल में लिखा है कि एक तांत्रिक ने इनकी मृत्यु के निमित्त जप किया था और श्री शंकर की स्तुति में इन के एक भजन बनाने से तांत्रिक का उद्योग विफल हुआ। किसी ने मारणमंत्र का प्रयोग किया हो और बाहुक या भजन किसी से उसका निवारण हुआ हो गोसाईं जी की जान तो बची। यही बड़े आनन्द की बात है। नहीं तो रामायणसा अमूल्य रत्न हिन्दी-साहित्य-भण्डार में कहां से दृष्टिगोचर होता।

यह भी कहा जाता है कि एक बार क्रूर प्रकृति के कई एक मनुष्य इन के प्राणघात की मनसा से एक जगह इन के आने-जाने की राह में छिप कर बैठे थे और इन को आते देख उन लोगों ने इन पर आक्रमण करना चाहा था। परन्तु उसी क्षण हनुमान जी की विशाल मूर्ति देख सबों का हृत्पिंड कम्पायमान हो गया और सब के सब भयभीत हो वहाँ से भाग गये। कदाचित् इसी घटना को ग्रियर्सन साहब ने रात को गोसाईं पर चोरों का आक्रमण लिखा है। उसका वर्णन आगे मिलेगा।

ऐसे ही लोगों से दुखित तथा पीड़ित होकर इन्हों ने कई एक कवितों की भी रचना की थी। तो भी वे लोग अपने कुकर्म से बाज नहीं आये। और इन्हें सताने पर कटिबद्ध ही रहे। सच है— 'हासिद को एक दम न लेहत है जहान में। रंजो हसद है जान है जब तक कि जान है।'

परन्तु जब उन लोगों का सब चाल विफल होता गया तब अन्त में हार मानकर लोगों ने किसी प्रकार इन्हें काशी से बाहर करना चाहा और इसी विचार से कई एक कुविचारियों ने इन के पास आकर यह प्रार्थना की कि "आप काशी छोड़ कर कहीं अनत बसे जाइये।" गोसाईं जी इस पर सम्मत हो गये और नीचे लिखा हुआ पद बना कर एवम् उसे श्री विश्वनाथ जी के मन्दिर द्वार पर साट[2] कर आप प्रातःकाल वहाँ से चल बसे —

"सुरसरि सेइ त्रिपुरारि हौं बिहारे ग्राम गर्माहिं को नाम लै लै बसर भरत हौं।
तुलसी न चवे योगसेस ना काहु सों कहु लिन्धी न मसाइ भाल सोयो ना करत हौं॥
मतहुँ पे जुरि के जोराबर जो जोर करें ताफ जोर देय दरबार गुदरत हौं।
पाइ के उराहनो उराहनो न दीजे मोहि कालि कला कासीनाथ कहे निपरत हौं॥

---

१ गोसाईं लिखित एक पुस्तक है। पुस्तकों की समालोचना देखिये।

२ बैजनाथदास ने मंदिर में रख कर आना लिखा है। परन्तु यदि मंदिर खुला रहने पर रखते तो उसी समय या मन्दिर बन्द होने के पूर्व पुजारी आदि उस पत्रक को देख लेते और मन्दिर बन्द होने पर तो उस में रखना ही असम्भव था। अतएव द्वार पर या दिवार पर साट ही देना ठीक जान पड़ता है। हाँ यदि किवाड़ की कोई सन्धि या किसी खिड़की से उसे भीतर गिरा दिये हों तो यह बात न्यारी है पर वह रखना नहीं कहलावेगा।

रानी कमला कुँवरी ने विश्वनाथ को पत्र पर मुनना लिखा है।

प्रातःकाल जब वे पंडितगण श्रीविश्वनाथ जी के दर्शन के लिये गये तो अकस्मात् फाटक बन्द हो गया और ऐसी सकोप वाणी हुई कि 'तुम लोग एक हरिजन को कष्ट देने और अपमानित करने पर कटिबद्ध हुये हो इस का फल तुम लोगों को अवश्य भोगना पड़ेगा। यदि तुलसीदास फिर आवें तभी तो कुशल है अन्यथा नहीं।' यह वाणी सुनते ही लोगों ने दौड़कर गोसाईं जी को राह में घेरा और वे बहुत अनुनय विनय करके उन्हें काशी में फेर लाये। कर्मफल तो निश्चय भोगना होता है। यदि आकाशवाणी न भी हुई होती और न भी हुई हो, तो आज तीन सौ वर्ष पीछे गोसाईं जी के चरित्र लेखकों ने जो उन महापुरुषों के दुर्व्यवहार का वर्णन किया या कर रहे हैं यह क्या कर्मफल भोगना नहीं कहलावेगा?

काशी के पंडित ही लोग गोसाईं जी को कष्ट नहीं देते थे। परन्तु पूर्ववर्ती लेखकों के अनुसार काशी के कोतवाल कालभैरव भी गोसाईं जी के कभी उनकी वंदना नहीं करने से कुपित होकर एक बार इन्हें भय दिखलाने और कष्ट पहुँचाने के लिये उद्यत हुये थे और उस समय भी श्री हनुमान जी ने वहाँ उपस्थित होकर उन का हाथ-पांव बन्द कर दिया था; और पीछे श्री शिव जी ने भी भैरव जी से कह दिया कि "तुलसीदास जी एक सच्चरित्र हरिभक्त हैं, तुम उन्हें कदापि दुख मत दो। रानी कमल कुँअरी के अनुसार हनुमान जी और कालभैरव में वार्तालाप भी हुआ एवम् हनुमानजी ने श्री शिव जी को भी उस का समाचार बताया था।

'भक्तमाला रामरसिकावली' में श्री महाराज रघुराज सिंह कह रहे हैं कि "भैरव जी ने गोस्वामी जी की बाँह में पीड़ा दी थी और गोसाईं जी ने (पूर्वोक्त) 'बाहुक' से उस का निवारण किया। और शिवजी ने भी भैरव को इन्हें पीड़ा देने से निषेध किया एवम् स्वप्न में गोसाईं जी को भी भैरव की स्तुति करने का आदेश किया।"

शिव जी ने दोनों को समझा बुझाकर अच्छी पंचायती की। परन्तु हम कहते हैं कि पशुपति के एक मुख्य पद एवम् सिद्धपीठ विश्वनाथपुरी (काशी) के कोतवाल भैरव जी को सज्जन और असज्जन पहचानने की भी योग्यता न हो इतनी भी खबर न हो कि गोसाईं जी सच्चे हरिभक्त थे या नहीं यह बड़े आश्चर्य की बात है, एवम् स्तुतिरूपी घूस (रिश्वत) नहीं पाने से सांसारिक किसी २ कोतवाल के समान एक सज्जन तथा निरपराधी साधु को पीड़ित करने पर उद्यत हो जावें यह भी हम के विषय में कहने का साहस हम को नहीं होता। हमारी समझ में भैरव को हनुमान जी से नीचा दिखलाने ही के निमित्त किसी ने इस कथा की सृष्टि की है।

फिर रानी साहबा 'बाहुक' से एक पंडितरूप गोसाईं जी के निंदक का प्रकोप निवारण कराती हैं और महाराजा साहब भैरव प्रेरित बाँह की पीड़ा। यह विरोध कथन भी सन्देहजनक ही है।

महामारी तथा दैत्यकृत उत्पातों की कथा तो [illegible] चुकी अब चोरों का वृत्तान्त सुनिये।

गोसाईं जी की यह बान थी कि अपनी चीज वस्तु अपने निवासस्थान में जहाँ का तहाँ छोड़कर ही रहते थे। गोसाईं जी की सेवा में बहुत पूजा चढ़ते जान कर एक रात कई

चोर [1] चोरी करने की इच्छा से इन की कुटी पर पहुँचे तो क्या देखते हैं कि एक श्याम सुन्दर दूसरे गौर सलोने बालक हाथ में धनुषबाण लिये पहरा दे रहे हैं। रात्रि में वे जब जब २ और कुटी की जिस ओर गये उन मनोहर बालकों को पहरा देते देखा। पूर्व संस्कार के उदय होने से एवम् बारम्बार युगलकिशोर का दर्शन पाने से उन सबों के मन की मलीनता दूर हो गयी। प्रातःकाल उन चोरों ने गोस्वामी जी के पास रात की घटना ज्यों की त्यों वर्णन की और पूछा कि 'महाराज! वे दोनों मनोहर किशोर जो आपके यहाँ रात को पहरा देते हैं कौन हैं!' यह सुनते गोसाईं जी यह जान कर कि उनके लिये श्री प्रभु नित्यप्रति ऐसा कष्ट उठाते हैं विह्वल चित (चित्त) हो गये। नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लगा एवम् अनुतापपूर्वक यह सोचकर कि न कोई पदार्थ रहेगा और न उसके लिये प्रभु को कष्ट उठाना पड़ेगा। इन्हों ने अपने पास का पदार्थ ब्राह्मणों को दे दिया। रात को वे मनोहारिणी मूर्तियाँ एवम् भोर की यह लीला देख कर चोरों का भी ज्ञानचक्षु उघर गया। वे सब भी अपने कल्याणार्थ गोसाईं जी के पैरों पर गिर कर इन के शरणागत हुए। गोसाईं जी ने कहा कि "तुम्हीं लोग धन्य हो जिन्हें बिना परिश्रम प्रभु का साक्षात दर्शन हुआ।" तो भी वे सब इन के शिष्य हो चौर्यकर्म परित्याग कर रामभजन में लग गये। ईश्वरकृपा ने क्षण ही में चोरों को साधु बना दिया। धन्य ईश्वर की कृपा तथा भक्तवत्सलता! प्रिय पाठकवृन्द! यदि हम लोग भी स्वच्छ हृदय से प्रेमपूर्वक ऐसी प्रार्थना करते रहें—

"अति सुन्दर रूप अनूप महा छवि कोटि मनोज लजावनहारे।
उपमा न कहूँ सुखमा के सुमन्दिर मन्दिर हूँ के बसावनहारे॥
दिननायक हूँ निसिनायक हूँ मदनायक के मदतावनहारे।
साँवरे राजकिसोर बसो चित चोरन हूँ के चोरावनहारे॥"

तो क्या वह करुणाभिधान भगवान हमलोगों पर कृपादृष्टि नहीं करेंगे? और यों तो सर्वदा हमारी रक्षा करते ही हैं चाहे यों ही करें चाहे कोई विशेष रूप धारण कर के करें।

अपने साथ लोगों का ऐसा २ दुर्व्यवहार होने पर भी गोसाईं जी काशी में ठहरे रहे। यहां पर आपने जो कई एक चमत्कार दिखलाया था अब उन का वर्णन किया जाता है।

---

1 ग्रियर्सन साहब ने यह कथा भी लिखी है कि एक बार अन्धेरी रात में घर आते समय चोरों ने इन्हें रास्ते में रोका था। परन्तु गोस्वामी जी ने अचल तथा निर्भीक भाव से हनुमान जी का स्मरण कर यह दोहा पढ़ा:—

'नामर कामिनि के कहा रजनी चहुँ दिसि चोर।
रक्षक कृपानिधि देखिये, कपि केसरी किसोर॥

बस गोसाईं जी के पुकारने पर हनुमान जी प्रकट हो चोरों को मार भगाये।

उपर्युक्त दोहे के विषय में ऐसा भी कहा जाता है कि हनुमान फाटक पर रहने के समय मलदहपुर के जुलाहों से नाकों दम आकर इन्हीं ने इस की रचना की थी। परन्तु यदि जुलाहों के कारण यह दोहा बनाया जाता तो रजनी तथा चोर की बात इस में कैसे आती? हाँ, यदि वे जुलाहे इन के यहाँ चोरी भी करते हों तो हो सकता है।

एक दिन शीतकाल में गोसाईं जी गंगा स्नान कर के छाती भर पानी में खड़ा हो प्रभु का ध्यान कर रहे थे। उसी समय कोई वेश्या पसीने के वस्त्रों से सजी हुई मित्र समाजी के साथ कहीं जा रही थी। इन की दशा देख चकित हो वहीं ठठक गई और मनही मन कहने लगी कि 'यह विचित्र जीव है जो इस जाड़े में स्नान कर फिर पानी ही में नेत्र बन्द किये खड़ा है। कहाँ मेरा यह सुख आनन्द ! और कहाँ इसकी यह दशा !' इतने में ध्यान से निवृत्त होकर लोटा जल हाथ में लिये गोसाईं जी बाहर किनारे पर आये और उस जल को उन्होंने अपने पहनने के वस्त्र पर छींटा। कहते हैं कि जल की कई एक बूँदें उस वेश्या के शरीर पर भी जा पड़ीं जिस से उस की दिव्यदृष्टि हो गई और उसे नर्क स्वर्ग का दुख सुख प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होने लगा और उसी दम वह अपनी सब कीमती वस्तुएँ समाजी को देकर आप विरक्त हो गयी। परन्तु वह समाजी भी विरक्त होकर सन्तसेवी बन गया। सारांश यह कि गोसाईं जी के दर्शन से एक वेश्या और उस का समाजी भगवद्भक्ति के रंग में रंग गये।

सत्संगति और संतदर्शन की महिमा अपार है। जहाँ सच्चे महात्मा रहते हैं निस्सन्देह वहाँ के जलवायु में प्रभु-प्रेम-उपजानेवाली कुछ विचित्र शक्ति आ जाती है फिर सन्तजनों का पूछना ही क्या है ?

एक बार एक नामनाम का कलविया फकीर 'मस्तक नवाता हुआ' अर्थात् 'मस्तक २ करता हुआ गोसाईं जी के पास पहुँचा। उससे गोसाईं जी ने कहा:—

"हम लख, हमें, हमार, लख, हम हमार के बीच।
तुलसी अलखहिं का लखै, रामनाम जपु नीच ॥"

यह सुनकर उस को भी रामनाम का अनुराग हो गया। अर्थात् इन्हों ने अपने उपदेश से एक कलविया को शीघ्र ही वैष्णव बना दिया।

कहते हैं कि एक तांत्रिक दरवेश (या फकीर) देशाटन को गया था। उसके परोक्ष में कोई वैरागी उस की स्त्री को भगा ले गया। दरवेश को दरविनी सिद्ध थी। उस के द्वारा उस ने सम्राट को पकड़वा मंगाया और उन से सब वैष्णवों की माला-कंठी उतारने और तिलक मिटाने की आज्ञा करा दी। जब राज्यकर्मचारी-गण यह घृणीय कार्य्य करते गोसाईं जी के स्थान के निकट पहुँच तब वहाँ एक भारी भयङ्कर मूर्ति देख और भयभीत हो सब के सब भाग गये और गोसाईं जी के प्रताप से उतारी हुई कंठीमाला आप से आप लोगों के पास पहुँच गयी।[1]

---

[1] पं० रघुनाथ शर्म्मा की रामायण में वैरागियों तथा योगियों में झगड़ा होना और योगियों के गुरु का योगबल से सम्राट को बुलाना लिखा है।

'भक्तमाला रामरसिकावली' तथा पण्डित ज्वालाप्रसाद जी की बड़ी रामायण में बादशाही सेना का जमकर गङ्गा जी में डूब जाना बैठकी का रुधिर वमन करते किसी प्रकार किनारे पहुँच कर क्षमाप्रार्थी होना, गोसाईं जी के आज्ञानुसार वर्ष भर साधुओं की जूठ खाकर उस का एक रामदास बन जाना एवम् उसके साथ यवनियों का भी—पतिव्रताचारिणी हो जाना लिखा है।

आज भी तेजस्वी और प्रतापी महात्माओं के सामने बड़े उद्दण्ड उत्पाती अत्याचारियों को कोई अनुचित कार्य करने का साहस नहीं होता। उन के समीप बड़े २ भयानक हिंसक जन्तु भी अपना क्रूर स्वभाव परित्याग कर देते हैं।

इस के सिवाय हम यह समझते हैं कि इस आख्यायिका को उस काल से अवश्य [illegible] सम्बन्ध है जब कि जहांगीर बादशाह की आज्ञा से बनारस में मन्दिरों के तोड़े जाने का उपद्रव हुआ था। यह अत्याचार आरम्भ होने का आदि कारण कोई दंगी हुआ हो तो सन्देह नहीं।

उसी उत्पात के समय उत्पाती राजकर्मचारी यदि वैष्णवों की कंठीमाला भी उतारने लग गये हों और कोई दंगी या योगी पन्थ की साक्षी या किसी बैरागी के छल भर ही के कारण कुछ झूठ सच बातें सम्राट के कानों तक पहुँचा कर ऐसा कार्य्य कराने का कारण हुआ हो आगे २ बढ़ कर वैष्णवों का स्थान धवस्त करना चला हो और गोसाईं जी के सामने आने पर उन के तेज प्रताप से उन सबों को आगे बढ़ने का वा कोई अनुचित कार्य्य करने का साहस न हुआ हो वरन् गोसाईं जी के उपदेशामृत बातों को सुन कर अत्याचारी सब भी अपने घृणित कर्म से रुक गये हों तो इस में कोई आश्चर्य की बात नहीं है। ऐसा होना एवम् ज्ञानेन्द्र बाबू के लेखानुसार काशी के सूबेदार से सहायता लेनी सम्भावित और स्वाभाविक है। उसी घोर उत्पात निवारण के लिये कदाचित गोसाईं जी ने भी विश्वनाथ से भी बड़ी प्रार्थना[1] की थी।

श्री गङ्गा जी की स्तुति करके एक जीविका-हीन दुखी पंडित को काशी के उस पार कुछ भूमि छोड़वा देने (अर्थात् दियाराभूमि उसे दिलवा देने) की भी बात सुनी जाती है। गङ्गा जी की कृपा और गोसाईं जी की स्तुति के प्रभाव में तो सन्देह नहीं परन्तु क्या उस समय भूमि के बन्दोबस्त का कोई नियम नहीं था? जो जहां चाहता था वहां की भूमि अपने अधिकार में कर लेता था? हम तो यही कहेंगे कि गोसाईं जी ने उस बिचारे दुखी ब्राह्मण पर दया कर किसी यत्न से गङ्गा पार की फिर नई बनी हुई भूमि उसे दिलवा दी। जिन के सेवक तथा मित्र दिल्ली के बड़े २ राजकर्मचारी हों उन को ऐसा कार्य्य कर देने में कठिनाई ही क्या हो सकती थी और वे एक दरिद्र दुखपीड़ित ब्राह्मण का दुख दूर करने में यत्नवान ही क्यों नहीं होते?

रानी कमल कुँवरि के ग्रंथ में सम्राट का ससैन आकर गोसाईं जी का आश्रम स्थान घेरना और वहां हनुमान जी को देखते ही प्राण लेकर भागना एवम् फिर सम्राट का इन के पास आकर अपराध क्षमा कराना कहा गया है।

बाबू ज्ञानेन्द्रमोहन दत्त ने बैरागियों तथा वैष्णवों में विवाद होने एवम् बैरागियों का काशी के सूबेदार से सहायता लेने की बातें कही हैं।

बात जो कुछ हो परन्तु लेखकों ने भिन्न २ रीतियों से सम्राट की दुर्गति कराने में त्रुटि नहीं की है।

1 देखिये कवितावली, उत्तर कांड।

बैजनाथ दास और रानी कमल कुँअरी की पुस्तकों में एक और दरिद्र ब्राह्मण को, इन के शरणापन्न हो भी राम भजन में प्रवृत्त होने पर, श्री हनुमान जी की कृपा से बहुत सा द्रव्य प्राप्त होने की बात देखी जाती है।

चित्रकूट में भी आप ने एक धनहीन ब्राह्मण के दुःख निवारण का यत्न किया था। वाम्स्वाता से भी एक ब्राह्मण की सहायता कराई थी। इन दोनों का हाल आगे प्रकट होगा।

गोसाईं जी ब्राह्मणों के शुभचिन्तक थे यह बात हमलोगों को रामायण से भी विदित होती है। परन्तु 'केशवदास'[1] के समान वे किसी विशेष श्रेणी के ब्राह्मण के 'पक्षपाती नहीं थे।

कहते हैं कि एक भाट के काशी आकर इन की सेवा में एक कविता प्रस्तुत करने पर इन्होंने उसे श्री राम भेंट दे काशीवास के लिये अपने साथ रहने की आज्ञा दी थी। वह कवित यह है —

स०—"पन दो इक भोग विषय विषया अब जो यही सो न लसाइये जू।
अपनों सब इन्द्रिन लोग हत्यो अब सो जनि नाथ हंसाइये जू॥
मदमोह महा मद काम धनी मन मानस ते निकसाइये जू।
रघुनन्दन के पद के सबके तुलसी मोहि कासि बसाइये जू॥"

बैजनाथ दास तथा रानी कमल कुँअरी ने यह भी लिखा है कि एक निन्दक भाट गोसाईं जी के दर्शनार्थ काशी आया। इन का दर्शन नहीं पाने से उस ने इन की निन्दा में एक कविता की। वह कविता रामनाम युक्त होने से इन की प्रशंसासूचक हो गई। फिर गोसाईं जी का दर्शन पा कर वह निन्दा वृत्ति त्याग कर हरियश गान में प्रवृत्त हो गया।

यह बात हम ऊपर ही कह चुके हैं कि विलायती कवि गोल्डस्मिथ के कथनानुसार, जो इन की निन्दा भी करने आते थे, उन्हें भी इन का आचार-व्यवहार देख इन की स्तुति ही करनी पड़ती थी। हमें वह कविता देखने में नहीं आई। वह निन्दा के मिस स्तुति की कविता होगी।

एक बार गोस्वामी जी के पास एक सिद्ध तपस्वी के आने की तथा अपनी सिद्धता सिद्ध करने के लिये अपने योगबल से आगरा से चार साहूकारों को काशी में बुला लेने की बात भी कही जाती है। जब बिचारे सम्राट् ही को [illegible] सिंहासन सहित घसीट २ कर काशी लाते हैं तब साहूकारों की क्या गिनती है।

पूर्वोक्त दोनों लेखकों ने यह भी बताया है कि नैमिषारण्य का एक प्रेत प्रेतयोनि से मुक्ति पाने के लिये काशी के [illegible] नामक एक ब्राह्मण को लिये काशी पहुँचा। [illegible] ब्राह्मण में

---

१ इन्होंने 'रामचन्द्रिका' में सनाढ्य ब्राह्मणों ही के गुणगान का बड़ा पक्ष किया है :— 'सनाढ्यजात की भक्ति आजीव जावे। महादेव की पूज्यता को न पावे॥ सनाढ्य वृत्ति जो हरै। सदा समूल सो जरै॥ अकाल मृत्यु सो मरै। अनेक नर्क सो परै॥ सनाढ्य जाति सर्वदा। यथा पुनीत नर्मदा॥ भजै सजै ते संपदा। विरुद्ध ते असंपदा॥

(उसी प्रेत के कन्धे पर सवार) दृष्टिगोचर हुआ, किन्तु वह प्रेत दीख नहीं पड़ता था। आकाश में एक मनुष्य को निरावलम्ब स्थित देख सब काशी-निवासी भयभीत हो दौड़े २ गोस्वामी जी की सेवा में उपस्थित हुये और उन्हें विनय पूर्वक उसी स्थान पर—जहाँ वह अपूर्व दृश्य दीखता था ले गये। गोसाईं जी को देखते ही प्रेत ने इन्हें साष्टांग दंड-प्रणाम किया और इन के मुख से हरिनाम उच्चारण सुन कर इन की कृपा से प्रेतयोनि से मुक्त हो उस ने स्वर्ग की राह ली। तब वनखंडी सुस्थिरचित्त हो गोसाईं जी के संग इन के स्थान पर गया। कुछ काल वहाँ रह कर गोसाईं जी के साथ वह नैमिषारण्य पहुँचा और उस धन से जो उस प्रेत ने उसे स्वामी जी के सम्मुख कर देने के पुरस्कार में पहले ही बता दिया था वनखंडी ने गोसाईं जी की सहायता से वहाँ के तीर्थस्थानों का जीर्णोद्धार किया।

कोई प्रेततुल्य पापग्रस्त व्यक्ति किसी सज्जन के द्वारा गोस्वामी जी का दर्शन पा कृतार्थ हो अपने कुकर्मों तथा पापों से मुक्त हो गया तो इस में सन्देह की बात कुछ नहीं है। "सन्त-सरनि जो जन परै सो जन उधरनहार" ऐसा श्री गुरु नानक का कथन है। और इस से यह सार बात भी ध्वनित होती है कि गोस्वामी जी की सहायता से एक द्विज वनखंडी ने नैमिषारण्य के प्राचीन लुप्त तीर्थों का जीर्णोद्धार किया।

कवि गङ्ग[1] अकबर बादशाह के प्रसिद्ध कविराजों में थे। कहते हैं कि एक बार वे गोसाईं जी से मिलने काशी आये और गोसाईं जी को माला जपते देख उन्होंने एक निरादरसूचक कवित्त में कहा कि हाथी तुलसी की माला क्या खटखटाता है। इस पर गोसाईं जी ने कहा कि 'मेरा तो यही जीवनाधार है, तुम जाओ और तुम्हारा हाथी जाने'। इसके अनन्तर उन के दिल्ली लौट जाने पर उन की एक कविता[2] में कोई अयोग्य कथन पा अकबर बादशाह ने बेगम की सम्मति से उन्हें हाथी के पैरों से कुचलवा दिया और इसके प्रमाण में

---

१ कवि गङ्ग (गङ्गा प्रसाद ब्राह्मण) और गाँव जिला इटावा के रहनेवाले थे। इन का जन्म संवत् १५९५ में हुआ था। बीरबल ने इन्हें एक छप्पै पर एक लाख पारितोषिक दिया था (शिवसिंहसरोज पृष्ठ ३९५ ३९६)। रहीम खानखाना के भी ये सम्मानपात्र थे। जन्मकाल के हिसाब से भी सूरदास जी के समय इन की अवस्था २४ २५ वर्ष की होगी। परन्तु भारतेन्दु हरिश्चन्द्र संग्रहीत 'साहित्य-लहरी' सटीक के अन्त में बाबू रघुनाथ सिंह ताल्लुकेदार भदवर जिला शाहाबाद से प्राप्त, जो श्री सूरदास जी के समसामयिक कवियों की दोहाबद्ध तालिका छपी है, उस में कवि गङ्ग का नाम नहीं दृष्ट आता। सम्भव है कि वह नामावली अपूर्ण थी।

२ कविता यह है:—'सब जग्य प्रमुख्य सुगन्ध सम्दार कै भार सो चित्त रहत महन्यो। करि सोरहो सिंगार चढ़ा पै चढ़ि एक लालन को जियरा लहन्यो॥ कर कंकन हाथ से छूटि गयो सिरिफल २ जो फिरयो चढ़न्यो। कवि गङ्ग कहै इक ब्याह भयो झननन झननन झननन बहन्यो।" यह सवैया हम को रानी कमल कुँवरी के ग्रंथ में देखने में आयी। परन्तु यह शुद्ध नहीं प्रतीत होती। इस के चारों चरण चार तरह के हैं अतएव नियम भी ठीक नहीं। लोगों ने निश्चय इस बिगाड़ दिया है।

लोग 'गङ्ग ऐसे गुनी को गयन्द सो चिरायो है' यह पद सुनाते हैं, और कोई नूरजहाँ के भाई बेगखाँ के गङ्ग को हाथी से मरवा डालने की बात कह कर उस के प्रमाण में 'बेगखाँ खुनारवार मार्‌यो एक तीर सो' यह पद सुनाते हैं। परन्तु इतिहास पढ़नेवाले यह बात भली भाँति जानते हैं कि बेगखाँ अकबर का दामाद था और उस से ४ वर्ष पूर्व ही संवत् १६५८ में परलोकगामी हुआ। तब नूरजहाँ के भाई बेगखाँ की बात गप्प ही निकली। इस के सिवाय जोधपुर निवासी मु० देवीप्रसाद निम्नोद्धृत छप्पै का उल्लेख करके गङ्ग कवि का औरङ्गज़ेब के समय तक रहना बताते हैं और कहते हैं कि अकबर की मृत्यु के ५१ वर्ष पीछे औरङ्गज़ेब बादशाह हुये। यदि अकबर की मृत्यु के समय कवि गङ्ग की अवस्था २५-३० वर्ष की हो तो ७५-८० वर्ष जीवित रहना कुछ आश्चर्य की बात नहीं और औरङ्गज़ेब ने इन्हें महावृद्ध ही देखकर इन्हें उपहास से वैसी हथिनी दी थी जिस के बदले इन्होंने भी उस के उपहास में यह कविता कही[1]—

छप्पै —तिमिरलंगसाह भोस्त चली बब्बर के हलके।
साह हुमायूँ साथ गई फिर सहर बलक्के[2]॥
अकबर करी अजाप भात जहँगीर खिलाये।
शाहजहाँ सुलतान पीठ कै मार ओलाये॥
औरङ्गजेब यलासिस किये, अब आई कलिगङ्ग घर।
उन छाड़ दई ज्यान बन, असत फिरति है च्यार घर॥

परन्तु मिश्रबन्धु "समालोचक भाग १, संख्या १ पृ० १ ११ में इस छप्पै का पाठान्तर दे कर इसे कवि गङ्गकृत होना और औरङ्गज़ेब के उपहास में इस का रचा जाना स्वीकार करने में सम्मत नहीं हैं तथा औरङ्गज़ेब के समय तक गङ्ग के जीवित रहने के विषय में कहते हैं कि "अब कोई नवयुवक कवि खानखाना ऐसे गुणी और सत्कवि को कविता द्वारा ऐसा प्रसन्न तो कर ही नहीं सकता कि उन से अच्छा सम्मान पाता तो इस ऊँचे दरजे पर पहुँचने के लिये गङ्ग एक ऐसे साधारण श्रेणी के मनुष्य को बहुत काल लगा होगा। इस से निश्चय होता है कि गङ्ग अवस्था में रहीम से बड़े नहीं तो बराबर अवश्य ही होंगे और रहीम का जन्म संवत् १६१० में हुआ और मृत्यु-संवत् १६८२ में हुई। इस से उस समय गङ्ग की अवस्था लगभग ७५ वर्ष की होगी। तब संवत् १७१४ तक इन का जीवित रहना असम्भव जान पड़ता है।"

इसका संभव या असंभव होना यही बात मान लेने पर या न मान लेने पर निर्भर है कि कोई नवयुवक कवि खानखाना ऐसे पुरुष को कविता द्वारा प्रसन्न कर सम्मानित हो सकता था या नहीं।

यहाँ पर हमें इस विषय में विशेष विचार की आवश्यकता नहीं क्योंकि हम गङ्ग की जीवनी लिखने नहीं बैठे हैं।

---

1 सरस्वती' भाग ८ संख्या [illegible] पृष्ठ ५०१ देखिये।

2 बलख।

परन्तु यह ऐसे प्रसिद्ध कवि और सदा सज्जनों के सहवासी, भावों से दर्शन करने और जाते ही, स्वयम् एक ब्राह्मण सन्तान होने पर भी, गोस्वामी जी के समान महात्मा की कटी-माता की निन्दा करने लगे, यह बात मानने योग्य प्रतीत नहीं होती। ऐसा तो कोई महामूर्ख भी नहीं कर सकता। और यदि उन्हों ने सचमुच ऐसा किया तो उन की ऐसी ही दशा होनी उचित था। क्योंकि 'सन्त के दूषणि आरजा घटै' अर्थात् सन्तों की निन्दा से आयुर्बल का ह्रास होता है।

कथित है कि एक बार निज पति के मर जाने पर एक ब्राह्मणी[1] सर्व शृंगारों से भूषित हो पति की सहगामिनी होने जा रही थी। रास्ते में गोसाईं जी का स्थान था उस ने हाथ जोड़ आप को प्रेमपूर्वक प्रणाम किया। गोसाईं जी ने उसे सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद दिया। इसपर उस के साथियों ने गोसाईं जी से उसके पति के जीवन विसर्जन की बात कही और साथ ही साथ यह भी कहा कि 'आप का आशीर्वाद भी तो व्यर्थ नहीं जा सकता। गोसाईं जी ने अपने करुणामय स्वामी को स्मरण कर कहा कि "जब तक मैं लौटकर न आऊँ इस के स्वामी की दाहक्रिया न की जाय।' यह कह कर आप गंगास्नान करने चले गये और वहां भगवान की स्तुति में मग्न हो रहे। तीन घंटे के अनन्तर वह मृतक ब्राह्मण जैसे कोई सोकर उठा हो उठ बैठा, और लोगों से अपने यहाँ लाये जाने का कारण पूछने लगा। सब वृत्तान्त अवगत होने पर प्रभु का और गोसाईं जी का सपरिवार भक्त हो वह रामभजन में लग गया। इस कथा का उल्लेख करते हुए बहुत से रामप्रेमियों ने यह भी लिखा है कि "पहिले गोसाईं जी ने उस स्त्री से और उस के साथियों से रामभजन की प्रतिज्ञा करा ली थी तब उसके पुनर्जीवन के हेतु ईश्वर से प्रार्थना की थी।" परन्तु हमारी समझ में गोसाईं जी ने ऐसी प्रतिज्ञा नहीं कराई होगी क्योंकि वे इतना अवश्य समझ सकते थे कि वह प्राणी निश्चय अधम और महा अभागा होगा जो ईश्वर और ईश्वरभक्त की ऐसी अद्भुत कृपा और महिमा देखकर भी आप ही आप ईश्वर भजन और प्रभु गुणगान में प्रवृत्त न हो। और यदि वह इसी प्रकृति का जीव होता तो उस प्रतिज्ञा भंग करने ही में कितनी देर लगती ?

---

1 पंडित रघुवंश शर्मा ने इस एक रामनिन्दक साहूकार की स्त्री होना और गोसाईं जी का मुरदे के कान में 'राम कहो' कहकर उसे जिलाना लिखा है।

रानी कमल कुँवरि ने गंगा जल मँगवाकर शव के मुँह पर हाथ फेरना लिखा है।

'भक्तमाल रामरसिकावली और पण्डित ज्वालाप्रसाद जी की बड़ी रामायण में लिखा है कि 'उस स्त्री के गोसाईं जी से निज वचन सत्य करने के लिये कहने पर गोसाईं जी उस शव के समीप गये और उन्हों ने उस स्त्री से आँखें मूँद कर बाँह पसार कर पति से मिलने और रामनाम उच्चारण करने का आदेश दिया। उस स्त्री के और सब लोगों के जय राम' कहने पर वह मृतक भी हाथें उठाकर 'जय राम जय राम' बोल उठा। तब गोसाईं जी ने यह कह कर कि हे ईश्वर, तुम जाना, उस शव पर हाथ रखा और वह तुरत जी उठा। पंडित जी की छोटी रामायण में भी प्रायः यही आशय प्रगट किया गया है।

अतएव राममन्त्र की प्रतिष्ठा कराने की बात हम को उपयुक्त प्रतीत नहीं होती। हाँ, श्री ज्ञानेन्द्र मोहन दत्त ने जिस प्रकार से इस उपाख्यान का वर्णन किया है वह बहुत ही स्वाभाविक और सम्भाविक है। उसमें गोसाईं जी का जी को ज्ञान और भक्ति का उपदेश करना और ईश्वर कृपा से उस मृतक ब्राह्मण का पुनर्जीवित होना पाया जाता है। उन्हों ने लिखा है कि उस का आरम्भ यह है कि 'गोसाईं जी के सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद देने पर वह रमणी बोली कि जब हमारे स्वामी ही देरा गये तब मैं सौभाग्यवती कैसे हुई मैं तो आप की प्रदपूलि लेकर सहमरण के लिये जाती हूं। गोस्वामी जी ने प्रश्न किया कि सहमरण के लिये क्यों जायगी? उस ने उत्तर दिया कि स्वामी के साथ स्वर्ग जा सकूंगी। गोस्वामी जी ने कहा कि स्वर्ग जा कर क्या होगा उस का भी तो शेष होता है? रमणी ने उत्तर दिया कि 'जब शेष होगा तब होगा इस समय तो स्वामी के साथ रहूंगी। तब गोसाईं जी ने कहा कि "हे रमणी यदि तू राम का भजन कर तो उस से रामचन्द्र को भी पावेगी और अपने स्वामी को भी पा सकेगी। अर्थात् इन्हों ने राम भक्ति विषयक नाना तत्त्वज्ञान का वही उपदेश दिया जिस से वह स्त्री राममन्त्रनामिलाषिणी हो सहमरण का संकल्प परित्याग कर रामनाम उच्चारण करती अपने स्वामी के देह सत्कार के लिये शव के पास पहुंची और वहां अपने पति को उस ने जीवित पाया। तब अधिकतर उत्साह से रामनाम कहने लगी और उस का पति भी रामनाम उच्चारण करते उठ बैठा।' और दोनों व्यक्ति गोसाईं जी के शिष्य हो रामभजन में प्रवृत्त हुये।

इस में केवल गोसाईं जी का साधु योग्य उपदेश करना और ईश्वर की उस पतिव्रता स्त्री पर कृपा प्रदर्शन ही पाया जाता है जो दोनों बात आश्चर्य जनक नहीं हैं। सावित्री आदि की कथाओं में हम लोग पतिव्रता के प्रभुत्व को जान चुके हैं।

हम अनुमान करते हैं कि कदाचित् उसी समय से शव के साथ 'रामनाम सत्य है, रामनाम सत्य है' कहते जाने की रीति प्रचलित हुई है।

ऐसा भी कहते हैं कि मृतक ब्राह्मण को पुनर्जीवित करने पर इन के यहां दर्शकों की बड़ी भीड़ होने लगी जिस कारण से वे गुफा में रहने लगे। दिन में एक बार निकल कर लोगों को दर्शन दिया करते थे। ऐसे दर्शकों में तीन बालक थे जिन में एक मणिकर्णिका घाट, दूसरा देवी (या अन्नपूर्णा) मंडप और तीसरा विश्वेश्वरनाथ के पास रहता था। वे तीनों स्वामी जी से बहुत प्रेम रखते थे। एक दिन उन लोगों के नहीं आने से गोसाईं जी न गुफे से निकले और न उन्हों ने किसी को दर्शन दिया, जिस से जो लोग आये थे अपना अपमान समझकर बहुत रुष्ट हुये पर करें तो क्या? दूसरे दिन फिर वे बालक भी आये और अन्य लोग भी एकत्रित होते गये। परन्तु स्वामी जी ने लोगों को यह दिखलाने के लिये कि उन बालकों का कैसा निश्छल प्रेम था उस दिन भी गुफा से नहीं निकले और सब दर्शनाभिलाषियों को अपने-अपने घर लौट जाना पड़ा। लौट जाने पर और लोग तो अपने २ काम धन्धे में लग गये परन्तु वे तीनों बालक दर्शन नहीं पाने के परिताप से तड़प २ कर मर गये। फिर उन लोगों के

इच्छा[1] होने पर उन बालकों का हाल सुन गोसाईं जी ने प्रभु का चरणामृत भेजा जिस के प्रताप से वे बालक फिर उठ कर आप के दर्शन को आये। उन के शुद्ध प्रेम की सब लोगों ने बड़ी प्रशंसा की। अवध में भी एक मृतक ब्राह्मण बालक के पुनर्जीवित करने की बात कही जाती है, जिसका विवरण अवध के प्रसङ्ग में दिया जायगा।

काशी जी में गोसाईं जी श्री रामलीला और कृष्ण लीला भी कराते थे। परन्तु गोसाईं जी के पूर्व से भी काशी में रामलीला होना कहा जाता है। कहते हैं कि काशी में एक जन मेघाभगत[2] के श्री रामचन्द्र के दर्शनार्थ अनशन-व्रत करने पर उनको स्वप्न में आज्ञा हुई कि साक्षात् दर्शन दुर्लभ है तुम मेरी लीला का अनुकरण करो। तभी से रामलीला आरम्भ हुई और कदाचित् भरतमिलाप के दिन श्री रामचन्द्र की कुछ झलक अब भी आ जाती है। मेघाभगत जी से भारतवर्ष में पहिले पहल रामलीला का सूत्रपात हुआ। मेघाभगत के समय की लीला अब काशी में चित्रकूट के नाम से प्रसिद्ध है और यही लीला प्राचीन है। परन्तु वर्तमान ढंग से गोसाईं जी की रामायण गा गा कर उसके अनुसार रामलीला करने की प्रथा गोसाईं जी ही के समय से प्रचलित हुई है। उन के समय की लीला अभी तक अस्सी पर होती है और गोसाईं जी की रामलीला कहलाती है। इस की रामलीला में खरदूषण की सेना के राक्षसगण भैंसे, घोड़े आदि पर सवार हो कर निकलते हैं और दूसरी रामलीलाओं में विमान पर निकलते हैं। गोसाईं जी की रामलीलावाली लङ्का अभी तक लङ्का कहलाती है।

गोसाईं जी केवल रामलीला ही नहीं कराते थे वरन् श्री रामचन्द्र के उपासक होकर आप कृष्णलीला के भी अनुरागी थे। हो क्यों नहीं? राम और कृष्ण में भेद ही क्या है? सच्चे ईश्वरानुरागी प्रेमियों के सामने तो भेद कुछ नहीं है। हाँ कोरे आडम्बर-कलेवर बकवादियों के लिए तो अवश्य ही दो हैं। काशी में तुलसी घाट पर कार्तिक-कृष्णाष्टमी को 'कालीयदमन' लीला अभी तक बड़ी मनोहारिणी हुआ करती है।

कहते हैं कि नैमिषार से लौटती समय मिसरिख से पूर्व अदराम गाँव में आकर गोसाईं जी ने एक सूखी डाली गाड़ दी थी वह एक पूरा पेड़ हो गया। आपने उस पेड़ का नाम पंचवट रक्खा क्योंकि आप श्री वृन्दावन से वह वट की डाली लाये थे और उन्होंने उस स्थान के निवासियों को वहाँ रामलीला कराने का आदेश किया। तब से बराबर श्री रामविवाहोत्सव के दिन अगहन सुदी पंचमी को वहाँ पर रामलीला हुआ करती है।

1 रानी कमल कुँवरि ने तीन दिन दर्शन नहीं पाने से बालकों का प्राण त्याग करना और गोसाईं जी के पूछने पर किसी का उनके मरने का हाल नहीं कहने से आप का अपने शिष्य को भेजकर यह समाचार जानना और तब उसके द्वारा श्रीरामचन्द्र का चरणामृत भेज कर उन सबों का पुनर्जीवित करना लिखा है।

2 "मेघाराम भक्त श्री गोसाईं जू के प्रेमीवर मानस के नेमी कथा सुन मन लाय के।
उठी सुनि कथा लेनी चेत कर तथा मनफूली मग ज्यथा कथा रक्त घन पाय कै॥
दरस पियास चरणामृत प्रसाद नेम नैन अभय लेवत चरन दिय लाय कै।
आतुर उपाय पायें पनु पतिन पर आँवें नहीं वदि कै न्हाय मानसी में रह पाय कै॥"

—भक्तिसुधास्वादमणिमाल भाग 1 टीका कवित्त 125

बहुत से लोग कहते हैं कि कवितावली का निम्नलिखित कवित्त तथा इस के ऊपर वाले दो कवित्त गोसाईं जी ने कलिकाल के प्रति उस समय कहा था जब पूर्वोक्त मेघाभगत की स्त्री इन की परीक्षा लेने गयी थी।

"भागीरथी जल पान करौं अरु नाम द्वै राम के लेत नितै हौं।
मो सों न लेनो न देनो कछू कलि भूलि न रावरी ओर चितै हौं॥
जानि कै जोर करो परिनाम तुम्हीं पछितैहौ पै मैं न भितै हौं।
ब्राह्मन ज्यों उगल्यो उरगारि[1] हौं त्यों ही तिहारे हिये नहिं है हौं॥"

मेघाभक्त की स्त्री का गोसाईं जी की परीक्षा लेने की कथा 'रसिक प्रकाश भक्तमाल' की टीका के १२२—१२२ कवित्तों में यों लिखी है कि भक्त मेघाराम गोसाईं जी के बड़े प्रेमी और मानस की कथा सुनने के बड़े अभिलाषी थे। जो कथा सुनें उसे कण्ठस्थ कर लेते थे, सदा गोसाईं जी की सेवा में लगे रहते थे और उन से आज्ञा पा कर जब घर जाते तब एकान्त में बैठ कर ध्यानावस्थित हो जाते। यद्यपि उनका घर धन धान्य से पूर्ण था और शीलवती, गुणवती रूपवती भाग्यवती और स्नेहवती स्त्री भी थी जो सदा तन से सुखप्रेम की लालसा रखती थी तथापि वे सदैव संसार से विरक्त रहते और पत्नी को भक्तिभेद का उपदेश किया करते थे। एक बार गोसाईं जी कर में माला लिये और मुख से रामनाम उच्चारण करते गंगा तट पर तरंगों का कल्लोल देख रहे थे कि उसी समय मेघाभक्त की स्त्री गंगास्नान करने गयी और 'यही इन्हें भक्तप सुन्दरी निहार डर जाऊं सबि दंपति को भले ए अचेत हैं' और 'न्हाई के निहारि इन्हें भूमि दृष्टि जोरी तिया नीके हम जाने सब फंद धर देत हैं।' उसी दिन घर आकर सायंकाल में पति की आज्ञा से एक दासी के साथ वह स्त्री कपटयुत स्वामी जी की परीक्षा के हेतु भलीभांति सज धज कर मनोमोहिनी रूप बनाकर उन की कुटी पर गयी। उस को देखते ही गोसाईं जी ने उठकर उसे दंडवत किया और 'आई पाँच बार दासी दीनी है बताय आई दरसन हेतु नीके नाहिन पठाये हैं।' तब "मोको गुरु स्वामी हम एक मिल वानी जो पै भक्तराज तिया तऊ माय अधिकाने हैं।" यह सुनकर वह स्त्री लज्जित हो माथा अवनत किये घर लौट गयी। मेघाभक्त को दासी से परीक्षा का सब वृत्तान्त ज्ञात हुआ। अन्त में वह स्त्री भी ईश्वर भक्त हो गयी और दम्पति हरिप्रेमानन्द में कुछ काल मग्न रह कर परमधाम सिधारे।

---

१ कथा ऐसी है कि जब अमृत हरने को गरुड़ चले तो अपने क्षुधित होने का हाल अपने पिता से कहा और उनकी आज्ञा से उत्तर तटवर्ती पापी निषादों को उन्हों ने भक्षण किया। उन निषादों में एक भ्रष्ट ब्राह्मण भी था। गरुड़ के पेट में जाने पर वह ब्राह्मण उन के हृदय में अटका और भीतर ही जलाने लगा। अगत्या गरुड़ को निषादों के साथ उस ब्राह्मण को उगल देना पड़ा। कवि के कहने का भाव यह कि जैसे भ्रष्ट ब्राह्मण को भी गरुड़ नहीं पचा सके वैसे हे कलि! तू मुझे (नाममात्र के रामभक्त को) भी नहीं पचा सकेगा।

यह सम्भव है कि मेघाभगत की भी इन की परीक्षा करने गई हो और इन का बर्ताव देख हरिपरायणा हो गई हो। परन्तु इस भक्तमालिका का यह वाक्य "वाही समै मनमथ सुन्दरी निहार उर धाई कवि दपति की मये पग अचेत हैं" गोसाईं जी की प्रतिष्ठा में कहा गया है या क्या, यह अवश्य विवेचनीय है। कदाचित इस के रचयिता कवि स्वयम् अचेत हो गये हैं और उन्हों ने उमंग में यह लिख मारा है। इस के हानिकारक फल का विचार नहीं किया है। गोसाईं जी अचेत नहीं हुये।

काशीजी में गोसाईं जी का वास स्थान

'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित रामायण के अनुसार काशी जी में गोस्वामी जी के चार स्थान वर्तमान हैं, अर्थात्—

(१) अस्सी पर तुलसी दासजी का घाट प्रसिद्ध है। इस स्थान पर गोसाईं जी के स्थापित हनुमान जी[1] हैं और उन के मन्दिर के बाहर शिलापत्र लिखा हुआ है जो पढ़ा नहीं जाता है। यहाँ गोसाईं जी की गुफा है। यहाँ पर विशेष करके गोसाईं जी रहते थे और अन्त समय में भी यहीं थे।

(२) गोपाल मन्दिर—यहां भी मुकुन्द राय जी के बाग के पश्चिम दक्षिण के कोने में एक कोठरी है, यह तुलसीदासजी की बैठक है, यह सदा बन्द रहती है झरोखे में से लोग दर्शन करते हैं। केवल श्रावण शु ७ को खुलती है और लोग जाकर पूजा आदि करते हैं। यहाँ बैठकर यदि सब 'विनयपत्रिका' नहीं तो उस का कुछ अंश इन्हों ने अवश्य लिखा है क्योंकि यह स्थान बिन्दुमाधव जी के निकट है और पंचगंगा बिन्दुमाधव का वर्णन गोसाईं जी ने पूरा पूरा किया है। बिन्दुमाधव जी के श्री अङ्ग के चिन्हों का जो वर्णन गोसाईं जी ने किया है वह पुराने बिन्दुमाधव जी से जो अब एक गृहस्थ के यहाँ हैं, अविकल मिलता है।

(३) प्रह्लाद घाट पर।

(४) 'संकट मोचन हनुमान'—यह हनुमान जी नगवा के पास अस्सी के नाले पर गोसाईं जी के स्थापित हैं। कहते हैं कि प्रह्लाद घाट के ज्योतिषी गंगाराम ने जो राजा के यहां से द्रव्य पाया था उसमें से उन्हों ने १२ हजार गोसाईं जी को सामह भेंट किया। गोसाईं जी ने उस से भी हनुमानजी की बारह मूर्त्तियाँ स्थापित की थीं जिन में से एक यह भी है।[2]

---

१ राजापुर में भी आप के स्थापित संकटमोचन महावीर जी का मन्दिर है। 'नीड के पूब तरे पथमे तुमकी हनुमंत की मूरति भारी। प्रात प्रतिदिन करी नित पूजत दूर से प्र ति प्रतिति प्रनारी। रात्रि को स्वप्न भयो तिनको बसरूप प्रमान गए तट भारी। दामिनी सी दमकी दुति श्री तन देखत ही प्रतिमा जिय प्यारी॥'—बलदेवदासकृत 'राजापुरमाहात्म्य'।

२ 'रामाज्ञा' पुस्तक की समालोचना देखिए।

पहले आप हनुमान फाटक पर रहते थे। मुसल्मानों के उपद्रव से वहाँ से उठ कर गोपालमन्दिर में आये। वहाँ से भी वल्लभकुल[1] के गोस्वामियों से विरोध के कारण अस्सी पर चले आये और मरण पर्यन्त वहीं रहे। किन्तु ग्रियर्सन साहेब ने अयोध्या से लाकर आप को पहले ही अस्सी पर बैठाया है।

---

१ ११ बदी वैशाख सं० १५३५ में श्री वल्लभाचार्य का प्रादुर्भाव हुआ था। आप के पिता का नाम लक्ष्मण भट्ट था। आप द्राविड़ ब्राह्मण थे मंद्राज हाते के चाक सिंह जिला के कांकरवाडी गाँव में आप का घर था। आप महान पंडित तथा वक्ता थे। आप ने सारे भारतवर्ष की तीन बार परिक्रमा तथा दिग्विजय किया था। आप ही वल्लभीय सम्प्रदाय के संस्थापक तथा शुद्धाद्वैत मत के प्रचारक हुये। आप के बनाये २० ग्रंथ ऐसे कहे जाते हैं जिन में दो सूत्रों का भाष्य एवम् भागवत की टीका बहुत बड़े ग्रंथ हैं। आषाढ़ २ सं० १५८७ में काशी में आप गोलोकवासी हुये। आप के पुत्र श्री विट्ठलनाथ जी के ७ पुत्रों में से सबसे बड़े श्री गिरधरदास जी एवम् छोटे पुत्र यदुनाथ जी के वंशज अभी तक वर्तमान हैं। वल्लभीय सम्प्रदाय में श्री कृष्ण जी की उपासना की जाती है। आचार्य लोग गृहस्थाश्रमी होते हैं। ईश्वर भजन के लिये गृहत्यागी होने की विशेष आवश्यकता भी नहीं यदि घर में इस काम में कोई बाधा न हो।

दशम परिच्छेद

दिल्ली-गमन

कहते हैं कि गोस्वामी जी के मुर्दा जिलाने की बात फैलते २ जब दिल्लीश्वर (जहांगीर) के कानों तक पहुंची तो सम्राट ने इन्हें अपने दरबार में बुला भेजा। इन के बड़े २ प्रेमी तथा सहायक इन के दिल्ली जाने में सहमत नहीं थे वरन् इन के लिये युद्धक्षेत्र में अवतीर्ण होने को उद्यत थे। परन्तु सुविख्यात धर्म्म शिक्षक तथा नीतिज्ञ गोसाईं जी यह कहकर कि राजाज्ञा उल्लंघन करना उचित नहीं नाव पर चढ़ दिल्ली पहुंचे। वहां दिल्लीश्वर ने इन का आदर स्वागत सत्कार कर इन्हें एक उच्च आसन पर बैठा इन से कुछ करामात दिखाने की प्रार्थना की। "गुरु बाशिष्ठ व्यास तिविल्ले जहां कहां। आंखों में जिस के जल्वा हक है बड़ा हुआ॥' इन्हों ने स्पष्ट कह दिया कि "हम तो केवल श्री सीताराम को जानते हैं। भला करामात से हमें क्या काम?'[1] सम्राट ने इन का यह यथार्थ उत्तर करामात नहीं दिखलाने का बहाना समझकर इन्हें कारागार में स्थान प्रदान किया और कहा कि 'बिना करामात दिखलाये जान का छुटकारा नहीं होगा।' गोसाईं जी को काशीवास के बदले कारागार का वास मिला। सम्राट के इस अयोग्य व्यवहार से गोसाईं जी का चित्त बहुत उदास और दुखित हुआ। इन्हों ने बन्दीगृह में अपने दुख सुख के एक मात्र सहायक श्री रघुनायक पायक पवनकुमार की स्तुति की।[2] कहते हैं कि उन की वानरी सेना दिल्ली के कोट में प्रवेश कर उत्पात मचाने और उसे तहस नहस करने लगी। बन्दरों का ऐसा उत्पात देख सम्राट की आंखें खुलीं और एक महान् महात्मा को क्लेश देना ही इसका कारण समझ कर वे घबराये हुए श्री गोसाईं जी के पैरों पर गिर कर रक्षा तथा अपराध क्षमा के प्रार्थी हुए।[3] गोसाईं जी ने कदाचित् कहा कि आप श्री रामचन्द्र को देखना चाहते थे। उन्हों ने पहले अपनी सेना भेजी है पीछे आप आते होंगे, उन्हें भी तो देख लीजिये।" परन्तु सम्राट को अब उन के दर्शन का साहस और उत्साह नहीं रहा। उन्हों ने वानरों के प्रकोप

---

१ इस सम्बन्ध में फारसी तुज़ुकए जहांगीर में लिखा है कि 'फकीर गोसाईं जी। यार ने अच्छा कहा। बादशाह अकबर खुदा का अपमान कर के और विरली चुनरी वाले बना कर गोसाईं जी की प्रशंसा करते हैं और गोसाईं जी उन को मूर्ख बनाते हैं कि मनुष्य की झूठी प्रशंसा मत कर, एक ही परमेश्वर को पहिचान।

२ रानी कमला कुंवरी के अनुसार 'हनुमान चालीसा' की रचना इसी समय हुई।

३ पं० रघुवर शर्मा तथा रानी कमला कुंवरी के अनुसार सम्राट दरबारियों के साथ गोस्वामी जी के पैरों पर गिरे थे। यह भी सन्देहजनक ही प्रतीत होता है।

उत्पात से रक्षा की चाही। निदान यथास्तुति श्री गोसाईं जी के पुनः वन्दना करने पर भी हनुमान जी ने वानरी सेना का निवारण किया। कथित है कि माया का बाधा होने पर सम्राट ने गोसाईं जी से प्रेमपूर्वक अपने योग्य सेवा के निमित्त सविनय प्रार्थना की। गोसाईं जी ने कहा कि 'अब यह दुर्ग भी हनुमान जी का हो गया तुम इसे छोड़ दो नया कोट बनवाओ।' और सम्राट ने ऐसा ही किया।

परन्तु इस घटना को सत्य मानने में इतिहास हमारी सहायता नहीं करता और हमें साहस नहीं दिलाता। प्रथम तो मुसलमानी औलिया (सिद्धमहात्मा) सलीम चिश्ती के आशीर्वाद से उन्हीं के स्थान पर फ़िरोज़पुर सिकरी में जहाँगीर का जन्म हुआ था जिस के आनंद में अकबर ने वहाँ एक दुर्ग निर्माण किया। अकबर के शरीर त्यागने पर वे आगरा (अकबराबाद) में जहाँ अकबर ने अपनी नई राजधानी बनाई थी सिंहासनारूढ़ हुए। दिल्ली में उनका आना कम होता था। यात्रा को निकलते थे तो कभी राह चलते वहाँ दो एक दिन ठहर जाते थे। आगरा में रहने पर गोस्वामी जी को वहाँ न बुलावें और वहाँ से आगे सफ़र में दिल्ली आने पर वहाँ बुला भेजें इस का कोई कारण नहीं दीखता।

दूसरे तुज़ुक जहाँगीरी (वाक़आतजहाँगीरनामा) में उनके शासनकाल के साल-साल का हाल लिखा हुआ है। उस में लगभग १८ वर्ष का वृत्तान्त जहाँगीर बादशाह ने स्वयम् लिखा है। शेष समय का विवरण उनकी आज्ञा तथा कथन के अनुसार मोतमिद खाँ द्वारा लेखबद्ध हुआ है। इस ग्रंथ में हिन्दू साधु महात्माओं से भेंटादि की बहुत सी बातें देखी जाती हैं। जहाँगीर ने अपने प्रथम चरण (राज्य के प्रथम वर्ष) के विवरण में अपने एवम् अपने हिन्दू तथा मुसलमान कर्मचारियों के सलोनो में रक्षाबन्धन का हाल लिखा है और उस स्थान पर सलोनो दशहरा दिवाली तथा होली का विवरण दिया है। ग्यारहवें चरण में यात्रा के वर्णन में लिखा है कि 'इसी मस्जिद (सिकन्दर) में 'शिवरात' हुई बहुत-से योगियों का संघटन हुआ। इस सम्प्रदाय के महानुभावों से वार्तालाप रहा।'[१] सोलहवें चरण के सम्बन्ध में लिखा है कि 'कोट कांगड़ा की सैर के बाद दुर्गा के दर्शन को गये। मूर्तिपूजकों के सिवाय जिन का दुर्गा-पूजन धर्म है, कुछ के कुछ मुसलमान दूर दूर से नज़रें लाकर पूजा किया करते हैं'।[२] फिर उज्जैन में जदरूप (चिदरूप) संन्यासी से भेंट का विवरण विस्तारपूर्वक ग्यारहवें चरण के वर्णन में देखा जाता है।[३] पीछे यह महात्मा मथुरा चले आये थे। वहाँ भी अपने शासन के चौदहवें वर्ष में जहाँगीर ने उन से भेंट की थी। इस का वर्णन सविस्तर लिखा गया है।[४]

उस में ये सब बातें लिखी हैं। सिक्खों के पाँचवें गुरु श्री अर्जुन जी का हाल एवम् अपने राज से सेवकों के निकल देने की आज्ञा के प्रचार का हाल भी लिखा है, किन्तु गोस्वामी

---

१ सन् १८६३ ई० का अलीगढ़वाले सय्यद अहमद द्वारा सम्पादित 'तुज़ुक जहाँगीरी' का पृष्ठ १०८ देखिये।

२ उसी ग्रंथ का पृ० ३१ देखिये।

३ उसी ग्रंथ का पृष्ठ १७५-७६ देखिये।

४ उसी ग्रंथ का पृष्ठ २७६ २८० देखिये।

जी से भेंट की बात कुछ नहीं। यह बड़े आश्चर्य की बात है। इससे इस घटना में प्रबल सन्देह होता है। और जब भेंट ही प्रमाणित नहीं होती तो यह क्रिया कलाप की आलोचना व्यर्थ ही होगी। यह तो इसे और भी कमज़ोर कर देती है तथापि उसका हाल भी कुछ लिख दिया जाता है।

बेनीमाधव दास एवम् रानी कमल कुँवरी कहती हैं कि जहाँगीर बादशाह ने अपने पुत्र शाहजहाँ के नाम से (शाहजहाँबाद) नगर बसाया और वहाँ (अपनी प्रतिज्ञानुसार) नवीन दुर्ग निर्माण कराया। परन्तु यह बात भी इतिहास के विरुद्ध पाई जाती है। ८ वीं जमादिउस्सानी हिजरी १०१४ (=१६०५ ई० =१६६२ संवत) में बृहस्पतिवार को जहाँगीर सिंहासनारूढ़ हुए और लगभग २१ वर्ष तक राजदण्ड उन के हाथ में रहा। और शाहजहाँबाद के नये किले की नींव हिजरी सन् १०४८ में डाली गई। शाहनवाज़ खाँ विरचित 'मासिर उमरा' नामक फ़ारसी के एक प्राचीन ऐतिहासिक पुस्तक में यह बात लिखी देखी जाती है। इस प्रकरण का कुछ अंश उस ग्रंथ से यहाँ पर उद्धृत कर दिया जाता है—

"कार आगाज़ान इमारत बाद पज़ोहश बिस्यार किला ज़मीनी (कि दर ज़ाहिर दारुलमुल्क देहली व्यों नाम यड़ व अगाज़ आं मामूरह बाशद बूद) बिस्त पञ्जुम ज़िलहिज्जा साल हज़ारदुम सन (१०४८) हज़ार चेहल व हश्त हज़ारी मुताबिक़ तरह (कि दर वेरायाह मिनाफ़ मुकर्रर गश्तह) बसरकारी गैरतखान मिरावर आरा मम्मुरताह आं फ़ीरोज़ जंग (कि नज़्म सूबा देहली बदो मुताबक़ बूद) रंग रेख़्तह शहरे बनों आं परदाख़्तह व मुहुर्रम मुहर्रम शाह मशहूर मसाह आं बिनाय ममत्र शौ निहादन्द।

मैदीदी कश्ती तारीख इत्तमाम् ई बिनाए आली बुनी यास्तह—मिसरह—

शुद शाह जहाँ आबाद अज़ शाहजहाँ आबाद १०५८ हिजरी।"

पं० शिवनन्दन मिश्र ने 'बन विहार' एक द्विभाषा पत्र[1] में शाहजहाँ बादशाह का गोसाईं को दिल्ली में बुला भेजना लिखा है। आप ने इतिहास तथा गणित की ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया है। १९ जनवरी १६२८ ई० (संवत् १६८५) को शाहजहाँ तख्त पर बैठे और सं० १६८० के श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि को गोसाईं जी का परमधाम सिधारना पंडित जी ने स्वयम् ही लिखा है।[2] तब इन के स्वर्गवास के अनन्तर शाहजहाँ ने क्या इन्हें स्वर्ग से बुला भेजा था?

प्रोफेसर विल्सन ने भी 'दी रेलिजियस सेक्टस आफ हिन्दूज़' (The Religious Sects of Hindus) नामक ग्रन्थ में किसी महात्मा के आधार पर यही बात लिखी है। उस को गोस्वामी जी कृत 'मानस रामायण' के अंगरेज़ी अनुवादक ग्राउस साहब ने भी स्वलिखित अनुवाद के आरम्भ में उल्लिखित किया है।[3] उस की पुनरालोचना की आवश्यकता नहीं।

1 'बंगविहार' प्रथम भाग, सं० १६६६ पृ० ७३ द्वितीय।

2 'बंगविहार' भाग ३, सं १६६६, पृ० ८९।

3 Vide F. S. Growse's Introduction to his Translation of Ramayan, P. X of the 6th Edition published by Ram Narayan Lal of Allahabad.

चूक चपलता मेरई तू बड़ो बड़ाई।
हौं तो आदरे ढीठ हौं अति नीच निचाई॥
बन्दिछोर बिरदावली निगमागम गाई।
नीको तुलसीदास को तेरिये निकाई॥

प्रवाद है कि दिल्ली से आते समय राह में एक वन के पास सन्ध्या हो गई। वहाँ गांव का कोई चिह्न भी नहीं था। वहीं एक ग्वाला अपना पशु चरा रहा था। उस ने दूध प्रस्तुत कर गोसाईं जी का सादर सत्कार किया। गोसाईं जी ने वह दूध श्री रामचन्द्र को भोग लगाकर स्वयम् पान किया और उस ग्वाले को भी थोड़ा सा प्रसाद दे उसको प्रेमपूर्वक ऐसा उपदेश दिया कि वह प्रभु के अनुराग में मत्त होकर उन्हीं के ध्यान में लवलीन हो गया। कदाचित् वह स्थान अद्यापि वर्तमान है। परन्तु इस प्रवाद के लेखकों ने उस का नाम नहीं बताया है।

फिर वहां से रास्ता तय करते वे काशी लौट आये और श्री प्रियादास के लेखानुसार काशी से श्री नाभा जी से मिलने के लिये वृन्दावन गये जिस का पूरा वर्णन आगे किया गया है।

कोई २ लेखक इन्हें दिल्ली से सीधे वृन्दावन ले गये हैं।

एकादश परिच्छेद

ब्रज-गमन

हिन्दी भक्तमाल'[1] के सुप्रसिद्ध रचयिता श्री नाभा स्वामी से भेंट करने के लिये गोसाईं जी एक बार ब्रज देश में पधारे थे।

कथा ऐसी है कि श्री नाभा जी इन से मिलने काशी आये थे। उस समय उन के ध्यानावस्थित रहने से किसी ने श्रीनाभाजी के शुभागमन का समाचार इन्हें नहीं बताया और वे

---

१ श्री नाभाजी, श्री गोस्वामी तुलसी दास तथा श्री गोस्वामी विट्ठल नाथ जी के पुत्र श्री गिरिधरदास जी ये समसामयिक महापुरुष थे। इसी से श्री नाभा जी ने इन लोगों के सम्बन्ध में वर्तमान क्रिया का प्रयोग किया है। श्री गोस्वामी गिरिधरदास जी को निज पिता के गोलोकवास के अनन्तर सं० १६४२ में श्री नाथ जी की गद्दी की टिकैती मिली थी और गोसाईं जी का साकेतवास सं० १६८० में हुआ। इसी से लोगों का अनुमान है कि 'भक्तमाल' की रचना संवत् १६४२ के अनन्तर और सं० १६८० के पहले हुई थी। ग्राउस साहब ने लिखा है कि यह महा कठिन ग्रन्थ है।

श्री प्रियादास जी ने सं० १७६९ में कवित्त में इस का भाष्य किया। उन्होंने इस कवित्त में यह बात स्वयम् ही लिखी है। नाभाजी को अभिलाष पूरन लै किया मैं तो ताकी साखी प्रथम सुनाई नीके गाइ के। भक्ति विसवास जाके ताहि को प्रकास कीजै भीजै रंग हियो लीजै सन्तनि लड़ाइ के॥ सम्वत प्रसिद्ध दस सात सत उनहत्तर फाल्गुन मास बदी सप्तमि बिताइ के। नारायन दास सुखरासि भक्तमाल लै कै प्रियादास दास उर बसौ रहौ छाइ के॥

मैथिल पंडित चन्द्रदत्त ने भक्तमाल का संस्कृत में अनुवाद किया है। कैथल ज़िला मुज़फ्फरनगर के रहनेवाले लालजी कायस्थ ने १८४५ ई० में 'भक्त उर्वशी' नामक भक्तमाल की टीका लिखी है। १८५४ ई० में मिरज़ापुरनिवासी तुलसीराम अग्रवाला ने इस का उर्दू अनुवाद किया है। मु० तुलसी राम जी कायस्थ ने १८७६-८० में इसकी उर्दू टीका लिखी है। और उन के पुत्र सुप्रसिद्ध महात्मा श्री सीतारामशरण भगवानप्रसाद ने हिन्दी भाषा में इस का तिलक किया है जिस में पहले नाभा जी का छप्पै फिर प्रियादास जी का कवित्त और तब वार्तिक तिलक है। चम्पारन ज़िला से आठ कोस पूर्व मिमनारा गाँव के रहनेवाले भगवानदास वा भगवतीदास मौलिक कायस्थ के पुत्र श्री कृष्णदास ने इस का बंगभाषा में अनुवाद किया है और गुरुमुखी तथा गुजराती भाषा में भी इस का उल्था होना सुना जाता है।

कुछ देर प्रतीक्षा कर इन के स्थान से चले गये। ध्यान से निवृत्त होने के अनन्तर श्री नाभाजी के आने और लौट जाने का हाल सुन कर इन को अत्यन्त खेद और पश्चात्ताप हुआ। वे उसी समय मग की ओर चल खड़े हुये। जिस समय आप नाभा जी के स्थान पर पहुँचे थे वहां सन्तों का भंडारा था। कहते हैं कि बिना निमंत्रण वहां आने से (या बदला चुकाने के लिये) नाभाजी ने जानबूझ कर पहिले इन का आदर सत्कार नहीं किया। भोजन के समय जब तस्मई (खीर) बांटने के लिये बर्तन खोजाने लगा तो गोसाईं जी ने चट एक साधु का जूता लेकर कहा कि इस से बढ़ कर और क्या पात्र होगा और स्वयम् भी पंक्ति के एक किनारे खीर लेने के लिये किसी बैरागी का जूता लेकर बैठ गये। इन का ऐसा सरल स्वभाव देख कर श्री नाभा जी ने इन्हें हृदय से लगाया और कहा कि "आज मुझे भक्तमाल का सुमेर मिल गया।"

इस प्रसङ्ग में पं० ज्वाला प्रसाद जी ने लिखा है कि 'निमंत्रण आया था, परन्तु गोसाईं जी यह विचार कर कि कच्चा अन्न सब के साथ बैठ कर कैसे खायेंगे वहां जाने से हिचकते थे। परन्तु हनुमान जी के स्वप्न में यह कहने से कि 'नाभाजी परम भक्त हैं तुम जाओ' गोसाईं जी उन के स्थान पर गये और इन्होंने पत्तल नीचा हो जाने से सब के नीचे जूता रख कर उसे बराबर कर लिया।' जब गोसाईं जी सब के साथ कच्चा अन्न खाने के भय से नाभाजी के स्थान पर जाने से हिचकते थे तब उन्होंने पत्तल के नीचे जूता कैसे रखा? क्या जूता पवित्र पदार्थ है? इस की व्यवस्था पंडित ही लोग करें दूसरा कौन कर सकता है?

और 'नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित रामायण में लिखा है कि "ऐसा न हो कि वे मुझे अभिमानी समझें और [illegible] क्या भक्तमाल में विचार कर लिखें इसी लिये तुलसीदास भण्डारे में बैरागियों की पंक्ति के अन्त में बैठे और खीर पा और लेने के लिये एक बैरागी की एक जूती लेकर बैठे। बहुत से लोग आज तक कहते हैं कि नाभा जी का बनाया 'कलि कुटिल जीव तुलसी भये वाल्मीकि अवतार धरि' यह पाठ है। इस पाठ से वाल्मीकि के साथ तुलसी की पूर्णोपमा हो जाती है" क्योंकि वाल्मीकि भी पहले कुटिल थे और तुलसी में भी पहले नाभा से कुटिलता थी।"

धन्य है! ऐसे कहनेवालों की बुद्धि की बलिहारी है। पुराणवर्णित कथा के अनुसार तो भी वाल्मीकि जी लोगों का गला घोंट कर उन का द्रव्य अपहरण करते थे, इस से आदि में वह कुटिल कहलाने के योग्य थे पर गोसाईं जी ने भी नाभा जी के साथ क्या कुटिलता की? नाभा जी के धन पर कब चोट की? या धन का कहां और कब अपमोचन किया? कुटिलता तो दूर रहे, केवल नाभा जी के आगमन और बिना भेंट लौट जाने का हाल सुनकर आप उन से मिलने के लिये काशी से सीधे व्रजदेश पहुंचे। तौ भी कुटिल? और नाभा जी ऐसे विचार शून्य पुरुष, कि जिसे 'भक्तमाल का सुमेर' कहें और आनन्दपूर्वक छाती से लगावें उसी को कुटिल लिखें? कुटिल न गोसाईं जी और न थे नाभाजी। कुटिल क्या महाकुटिल, इस आख्यायिका के गढ़ने वाले लोग हैं जिन्हों ने एक ही वाक्य में दो दो परम पूजनीय महापुरुषों की निन्दा कर डाली है। गोसाईं जी ने ऐसे ही लोगों को रामायण में बारम्बार नमस्कार किया है और ऐसे लोग दूर से ही नमस्कार के योग्य हैं भी।

फिर गोसाईं जी के मन में यह भय उत्पन्न होना कि कहीं भक्तमाल में इन की निन्दा न लिखी जाय इन के जैसे महात्मा के विषय में कहना सर्वथा अनुचित है। क्या वे प्रशंसा के भूखे थे? यदि सचमुच यही बात थी तो इन में और सर्वसाधारण में प्रभेद ही क्या था? भाई! ये तो 'उस्तुति निन्दा उभय सम' जाननेवाले और "उस्तुति निन्दा दोऊ त्यागो खोजो पद निर्बाण" इस श्रेणी के महात्मा थे। इन्हें क्या चिन्ता थी चाहे कोई निन्दा ही लिखता चाहे स्तुति ही? इन्हें भय हो या न हो, और श्री नाभाजी की मनसा ऐसा करने की हो या न हो परन्तु कुटिलों ने तो छप्य का पाठ बदल कर नाभा जी के मुख से निन्दा करा अपनी प्रकृति का सच्चा परिचय दे दिया।

दूसरा भी बात भी ठीक नहीं है। इस आख्यायिका का सार केवल इतना ही मालूम होता है कि नाभाजी के बनारस से बिना भेंट किये चले आने पर गोसाईं जी स्वयम् वृन्दावन आकर बड़े नम्रभाव से उन से मिले जिस से सज्जन शिरोमणि नाभा जी ने स्नेहपूर्वक इन्हें कंठ से लगाया, आदर-सत्कार किया और आनन्द माना।

कदाचित् उसी समय नाभाजी को गोसाईं जी कृत 'रामचरित मानस' देखने का सुअवसर मिला था और उन्होंने गोसाईं जी के सम्बन्ध में उस छप्पै की रचना की थी जो इसी पुस्तक के पृष्ठ ४४ में छप चुका है।

यहाँ पर कुछ नाभा जी का चरित्र लिख देना भी अनुचित नहीं होगा। आप श्री रामानन्दीय सम्प्रदाय के श्री अग्रदास जी के शिष्य थे। ५ वर्ष की अवस्था में इन्हें किसी साधुमंडली ने कहीं रास्ते में पड़ा देखकर इनसे नाम पूछा। इन्होंने प्रश्न किया कि "इस नश्वर शरीर का नाम पूछते हैं या अविनाशी आत्मा का?" इस प्रश्न से महा चकित और हर्षित होकर सन्तों ने इन्हें अपने साथ ले लिया और उसी समय से ये संतसेवा में लग गये। एक दिन गुरुजी के ध्यान के समय उन्हें पंखा झलते हुए उनकी आकृति से उनका चित्त-चांचल्य जान इन्हों ने दो चार बार वेग से पंखा हिलाकर कहा कि 'आप निश्चिन्त ध्यान कीजिये, वह काम हो गया।" बात यह थी कि इन के गुरु का एक शिष्य कहीं नौका पर जा रहा था। नाव अटक गई थी, यह जानकर महात्मा जी चंचल हो रहे थे और इन के ओर से पंखा हिला देने से वह नाव चल निकली। यह देख कर इन के गुरु ने आज्ञा दी कि सन्तों की कथा वर्णन करो जिस ईश्वर ने तुम्हें ऐसा ज्ञानचक्षु दिया है वही यह कार्य सिद्ध करेगा।" इसी पर इन्होंने भक्तमाल की रचना की। इन की यही कथा प्राचीन ग्रंथों में पाई जाती है।

यह सभी जानते हैं कि ब्रजदेश श्री नन्दनन्दन रसिकशिरोमणि की लीलाभूमि है। वहाँ बात बात पर हो श्री कृष्ण के रंग में रंगे रहते हैं। अतएव श्री रामचन्द्र का नाम कदाचित् कोई बिरला ही स्मरण करता था। यह दशा देख कर गोसाईं जी ने शायद ऐसा कहा था —

> "राधा कृष्ण सबै कहैं, आक ढाक अरु कैर।
> तुलसी या ब्रज भों कहा सियाराम सों बैर॥"

परन्तु गोसाईं जी क्या यह नहीं जानते थे कि श्री कृष्ण और रामजी में कोई भेद नहीं ! तब ऐसा क्यों कहने लगे ! ऐसा भी प्रसिद्ध है कि जब श्री नाभा जी तथा अन्यान्य वैष्णवों के संग गोसाईं जी श्री गोपालमन्दिर में गये तो वहाँ श्री मदनगोपाल की मूर्त्ति देखकर इन्हों ने कहा था :—

"कहा कहौं छवि आज की, भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै, धनुष बान लो हाथ॥"

बस तत्क्षण मुरली हाथों से खसक पड़ी और सभों ने देखा कि सचमुच श्री गोपाल जी के हाथों में धनुष बाण विराज रहे हैं और गोसाईं जी ने तब यह दोहा कहा —

"क्रीट मुकुट माथे धरयो, धनुष बान लिये हाथ।
तुलसी जिन जन कारने नाथ भए रघुनाथ॥"[1]

भगवान सर्वदा भक्त-रुचि-पालक हैं और गोसाईं जी श्री रामचन्द्र के अनन्य भक्त थे। इस से ऐसी लीला होनी असम्भव बात नहीं। परन्तु हम लोग देखते हैं कि श्री रामजी के अनन्योपासक होने पर भी गोसाईं जी ने सब देवतों की वन्दना की है जिस के अनेक प्रमाण इन के ग्रन्थों में वर्तमान हैं। तब श्री मदन गोपाल जी के मन्दिर में जाकर और उन की मूर्त्ति का दर्शन पा कर सविनय दंडवत कर के वे ऐसे हठ और घमंड की बात क्यों बोलेंगे कि "तुलसी मस्तक तब नवै, धनुष बान लो हाथ।" और श्री कृष्ण भगवान ही को क्या पड़ी थी कि इन के ऐसा कहते ही झट मुरली परित्याग कर धनुष बाण धारण कर लेते ! इन के दंडवत नहीं करने ही से उन का क्या बिगड़ा जाता था ! क्या श्री गोसाईं जी ने अपनी सिद्धता दिखलाने के निमित्त ऐसा वाक्य कहा था ! स्वामी जी सरल स्वभाव के थे जिस का पूर्ण परिचय इन की रचनाओं से मिलता है। इन का ऐसा अभिमानप्रदर्शक कार्य श्री कृष्ण जी के सम्बन्ध में असम्भव प्रतीत होता है। ये श्री रामचन्द्र और श्री कृष्ण में निस्सन्देह कदापि भेदबुद्धि नहीं रखते थे। इस का साक्षी इन की रचनाएँ दे रही हैं। 'विनय पत्रिका' उलट कर देखिये। एक नहीं अनेक पदों में इन्हों ने श्री रामचन्द्र और श्री कृष्ण को एक माना है और श्री कृष्ण महाराज की वन्दना की है —

१ जौं जप जाग जोग व्रत बरजित केवल प्रेम न चहते।
तौ कत सुर मुनिवर बिहाइ ब्रज गोप गेह बसि रहते॥ (वि० ९६)

२ जिन्ह बाँधे सुर असुर नाग नर प्रबल करम की डोरी।
सोइ अबिछिन्न ब्रह्म जसुमति बाँध्यो हठी सकत ना छोरी॥
जाकी माया बस बिरंचि सिव नाचत पार न पायो।
करतल ताल बजाइ ग्वाल जुवतिन सोइ नाच नचायो॥ (वि० ९७)

---

[1] "मुरली लकुट दुराई कै, धर्‌यो धनुष सर हाथ। तुलसी लखि रुचि दास की, नाथ भये रघुनाथ॥" कहीं २ ऐसा भी ऐसा पाठ है।

३ "हरिहु और अवतार आपने राखी वेद बड़ाई।
हौं तंदुल निधि दई सुदामहि यद्यपि बाल मिताई ॥" (वि० १६३)

४ "द्रुपद सुता को लग्यो दुसासन नगन करन।
हा हरि पाहि कहत पूरे पट विविध बरन ॥
इहै जान सुर नर मुनि कोविद सेवत चरन।
तुलसिदास प्रभु को न अभय कियो नृगउद्धरन ॥" (वि० २१३)

और भी स्पष्ट देखियेगा ? अच्छा यह पद अवलोकन कीजिये :—

"ऐसी कवन प्रभु की रीति। बिरद हेतु पुनीत परिहर पाँवरन पर प्रीती ॥ गई मारन पूतना कुच कालकूट लगाई। मातु की गति दई ताहि कृपालु जादव राई। काम मोहित गोपिकन्हि पर कृपा अतुलित कीन्ह। जगत पिता बिरंचि जिन्ह के चरन की रज लीन्ह ॥ नेम तें सिसुपाल दिन प्रति देत गनि गनि गारि। कियो लीन सु आप में हरि राजसभा मँझारि। व्याध चित दै चरन मार्‍यो मूढ़मति मृग जानि। सो सदेह सुलोक पठयो प्रगट करि निज बानि ॥ कौन तिन्ह की कहै जिन्ह के सुकृत अरु अघ दोउ। प्रगट पातकरूप तुलसी सरन राख्यो सोउ ॥" (वि० २१४)

क्या अब भी कहियेगा कि गोसाईं जी भी रामकृष्ण में भेदबुद्धि रखते थे ? और क्या इससे भी अधिक प्रमाण की आवश्यकता होगी ? तब स्वयं इन के ग्रंथों के पढ़ने का परिश्रम उठाइये। हाँ ! इतना हम से और भी सुन लीजिये कि इन्हों ने 'कृष्ण गीतावली' नामक एक स्वतंत्र ग्रंथ का भी प्रणयन किया है और ये कृष्णलीला भी कराते थे जैसा कि पहले कहा जा चुका है।

यदि कहिये कि मथुरागमन के अनन्तर और भी मदनगोपाल जी के रामरूप में दर्शन के पीछे इन ग्रन्थों की रचना हुई है तो प्रथम तो यह अनुमान ही अनुमान है इस कथन का कोई पुष्ट प्रमाण नहीं और यदि यह अनुमान सत्य ही हो तो रामायण की रचना तो निश्चय और निर्विवाद इन के मथुरागमन के पूर्व हुई थी। तो क्या 'नानापुराण निगमागम' के जाननेवाले श्री मद्भागवत और श्रीमद्भगवद्गीता के भावों और आशयों को भी रामायण में समावेशित करनेवाले, 'सियाराममय' सब जगत को समझनेवाले, और अतएव सारे जगत् को एवम् दुष्ट खलों को भी बार-बार, बिना किसी के अनुरोध के, नमस्कार करनेवाले गोसाईं जी इतना भी नहीं जानते थे कि श्री कृष्णचन्द्र कौन थे, उन में और श्री रामचन्द्र में कितना अन्तर था, वह भी मदनगोपाल जी की मूर्ति जगत के भीतर थी या बाहर ? तब वे क्यों ऐसा कार्य्य करने लगे होंगे।

'भक्त कल्पद्रुम' में लिखा है कि 'सियाराममय सब जग जानी। करौं प्रनाम जोरि जुग पानी ॥' यह चौपाई जिन को कही है भला सो कब भगवान् के सामने ऐसी बानी पर

सकता है ? इस बात के फैसले की यह बात है कि उपासक जिस देवता के मन्दिर में जाता है अपने इष्ट का ध्यान करता है, यह रीति शास्त्र के सम्मत के अनुकूल है सो गोसाईं जी दर्शन को गये, परम मनोहर मूर्ति को देखा तो श्री रघुनन्दन धनुषधारी का ध्यान कर के दंडवत किया, सो गोसाईं जी भक्त सांचे और सिद्ध थे। इस हेतु मदनगोपाल जी ने भी उन के ध्यान के अनुकूल रूप देखा दिया। जो कोई उस समय दर्शन करानेवाले थे उन को भी धनुषधारी दृष्टि में आये। इस हेतु यह बात फैली और किसी ने एक दोहा भी बना लिया। यही बात "भक्तमाल हरिभक्ति प्रकाशिका" में खेतड़ीनिवासी हरिपरिपक रामानुजदास हरिवर कायस्थ माथुर ने भी लिखी है।

तुलसी राम जी ने यद्यपि भक्तमाल में लिखा है कि गोसाईं जी का हठपूर्वक ऐसा कहना कदापि सम्भव प्रतीत नहीं होता जब कि उन्हों ने 'विनयपत्रिका' में छोटे २ देवतों की भी वन्दना की है। हां इस की अधिक सम्भावना है कि भक्तिभाव से अपने इष्टदेव की भावना से ही श्री मदनमोहन जी के चरणों में दंडवत किये हों और भक्तवत्सल श्री कृष्णचन्द्र ने उन के इष्टदेव ही के रूप में उसी समय उन्हें दर्शन दिये हों और यह घटना और लोगों ने भी अवलोकन की हो।

ये बातें हो सकती हैं। परन्तु हमारी समझ में गोसाईं जी जैसे भक्ति के गाढ़े रङ्ग में रँगे हुये और ईश्वर को निरन्तर सर्वत्र व्याप्त देखनेवाले महात्मा का चित्त आनन्दकन्द श्री कृष्णचन्द्र की सुहावनी ललित मूर्ति निरखते ही सहज ही विह्वल हो गया होगा नेत्र प्रेमाश्रुपूर्ण हो गये होंगे और श्री मदनमोहन की मोहनी मूर्त्ति अवलोकनमात्र से ही इन का मस्तक उन के चरणकमलों में अवनत हो गया होगा और उन्हें दंडवत करने में गोसाईं जी को कुछ भी संकोच नहीं हुआ होगा। श्री सीतारामशरण भगवानप्रसाद जी भी लिखते हैं कि गोसाईं जी श्री मदनमोहन की मनोहर मूर्ति निहारते ही दंडवत करने को उद्यत थे कि इतने में एक श्री कृष्णोपासक ने श्री मधुरामलि यह दोहा कहा "अपने २ इष्ट को नमन करै सब कोइ। मधुराम बिनु इष्ट के नवै सो मूरख होइ॥" आशय स्पष्ट है। अब यह बात थी कि वे महात्मा इन्हें व्यर्थ मूर्ख बनाने चले थे तब तो उन का भ्रमोच्छेद करना इन्हें बहुत ही आवश्यक था। क्योंकि गोसाईं जी का चित्त द्वेषाग्नि से कवलित नहीं था, इन की अभेदप्रकाशिनी वृत्ति थी और उस महात्मा का इसी में कल्याण था कि वे जान जायें कि श्री राम और श्री कृष्ण सर्वथा अभिन्न हैं। इसी से इन्हों ने अपने प्रभु को हृदय में सम्हार कर यह दिखलाना चाहा कि यह श्री कृष्णमूर्त्ति जो सामने विराजमान है श्री राम से भिन्न नहीं है। इसी अभिप्राय से इन्हों ने ऐसा वाक्य उच्चारण किया और श्री कृष्णचन्द्र ने श्री रामरूप धारण कर अपने तथा रामचन्द्र में अभिन्नता सिद्ध कर लोगों का भ्रमतम नाश कर दिया और अपने अनन्य भक्त की प्रतिष्ठा रख ली।

यह बात भी जान लेने के योग्य है कि श्री प्रियादास जी के लेख से यह बात कि "तुलसी मस्तक जब नवै धनुष बाण लो हाथ" कदापि ध्वनित नहीं होती। उस से यही बात प्रकाशित होती है कि श्री मदनगोपाल जू का दर्शन कर चाहे किसी कारण से हो, ये अपने इष्टदेव के रूप के दर्शन के अभिलाषी हुये। तब कृष्ण भगवान ने कृपापूर्वक उस रूप का भी इन्हें यहीं दर्शन दिया। श्री प्रियादास जी का कवित्त यह है :—

"मदनगोपाल जू को दरसन करि कही, सही, राम इष्ट मेरे दृग भाय पागी है।
वैसइ सरूप कियो दियो है लखाय रूप मन अनुरूप छवि दासि मन भाई है॥"

इसमें छल तथा मद की गन्ध भी नहीं है। अन्य लोगों के लेखों से अभिमान की पुष्टि झलकती है। इसी से इतना कहना पड़ा।

ब्रज में आने पर गोस्वामी जी ने चौरासी कोस ब्रजभूमि की यात्रा तथा परिक्रमा की थी। न घाटों पर स्नान तथा सब मन्दिरों का दर्शन किया था। फिर कामगूदरी में आसन जमा कर सत्संग का आनन्द उठाया था।

खेद है कि इस प्रकार से श्री कृष्णचन्द्र तथा श्री रामचन्द्र में अभिन्नता सिद्ध होने पर तथा श्री कृष्ण भगवान के ऐसा स्पष्ट उपदेश करने पर भी कि 'जो मुझे जिस भाव से भजता है मैं उसे वैसी ही भाव से अपनाता हूँ' कतिपय श्री कृष्णोपासक तथा रामोपासक अब भी ऐसा परस्पर द्वेषभाव रखते हैं जिस से एक प्रकार की घृणा उत्पन्न होती है और जिस से उन दोनों की भक्ति तथा उपासना भी कलंकित होती है। किसी एक का अनन्योपासक होना तो अति उत्तम तथा सराहनीय बात है, परन्तु दूसरे से द्वेष का क्या काम? यह कार्य्य किसी की भक्ति उपासना में सहायता नहीं कर सकता और न किसी का मानवर्द्धन ही कर सकता है। यदि द्वेषभाव रखने ही से कार्य सिद्धि की सम्भावना होती तो सुप्रसिद्ध कृष्णोपासक श्री सूरदास जी एवम् सुविख्यात रामोपासक गोस्वामी तुलसीदास जी श्री राम और कृष्ण दोनों ही की स्तुति वन्दना नहीं किया करते।

आप लोग गोस्वामी जी कृत श्री कृष्णस्तुति तो ऊपर ही पढ़ चुके हैं। अब सूरदास जी का भजन देखिये जिस से श्री राम और कृष्ण की अभेदता स्पष्ट विदित होती है।

"भजु मन नन्द नन्दन चरन।
परम पंकज अति मनोहर सकल सुख के करन॥
सनक संकर ध्यान ध्यावत निगम अवरन चरन।
सेष सारद रिषिसुनारद संत चिंतत चरन॥
जासु पदरज परसि गौतमनारि गति उद्धरन।
जासु महिमा प्रगट केवट धोय पग सिर धरन॥
सोइ पद मकरंद पावन और नहीं सरवरन।
सूर भजु चरनारविन्दन मिटै जीवनमरन॥"

यही नहीं श्री सूरदास जी ने 'सूर सागर' में १४४ पदों में समुच्च रामायण की कथा कही है।[1]

घोर द्वेषभाव दिखा कर महात्मा लोगों की भले ही निन्दा करे परन्तु द्वेषरहित तुलसीदास तथा सूरदास जी के आसन का पानेवाला वह कदापि नहीं हो सकता।

---

१ 'श्री वेङ्कटेश्वर' छापाखाना से प्रकाशित बाबू राधाकृष्ण संकलित 'सूरसागर' पृष्ठ ७०—८४ देखिये।

इसी अवसर में वृन्दावन में भी रामघाट पर श्री कौशल्यानन्दन की मूर्ति संस्थापित हुई थी। प्रवाद है कि यह राममूर्ति दक्षिण देश में किसी सौभाग्यवान रामभक्त के यहाँ विराजमान थी। उसे एक रात को स्वप्न हुआ कि 'मुझे ब्रज की भूमि में पहुँचा दो मेरा यथार्थ स्थान वही है।' वह हरिभक्त प्रभु की आज्ञा पालने के अभिप्राय से उस मूर्ति को बड़े आदर के साथ पालकी पर चढ़ाकर ब्राह्मणों के द्वारा ब्रज की ओर प्रस्थान कराया। मार्ग में वे लोग ब्रजदेश में ठहर गये। वहाँ एक प्रेमी दक्षिण ब्राह्मण की यह इच्छा हुई कि यह मूर्ति यहीं विराजमान हो। भक्त-प्रेम-वशीभूत भगवान् ने अपने निष्कपट भक्त की अभिलषित भावना से प्रसन्न होकर जो लोग साथ आये थे उन्हें स्वप्न में आदेश किया कि अब मैं यहीं रहूँगा मुझे यहीं रहने दो।' श्री रामचन्द्र के उसी विग्रह की वहाँ स्थापना हुई और गोसाईं जी की अनुमति से उस देवमूर्ति का नाम कौशल्यानन्दन रखा गया। वह स्थान अद्यावधि ब्रज में विराजमान है। परन्तु वह प्रेमी दक्षिण ब्राह्मण कौन था? हमारे चरितनायक ही तो नहीं थे! जो कुछ हो वहाँ पर उस राममूर्ति के संस्थापन से हमारे चरितनायक का अवश्य सम्बन्ध है। और यदि उसे इन का भजनभवन या स्मारक कहें तो भी अनुचित नहीं होगा।

'भक्ति विलास' तथा किसी-किसी अन्य लेखकों के अनुसार ब्रज में व्रजविहारी मुरलीधारी मदनमदहारी श्री नन्दनन्दन गुणगायक स्वामी सूरदास, एवम् श्री अवधविहारी धनुर्धारी कन्दर्पदर्पहारी श्री रघुनन्दन गुणगायक गोसाईं तुलसीदासजी से परस्पर सम्मिलन का आनन्द हुआ था। और 'महात्मा रामरसिकावली' के लेखक तथा उन के अनुगामी लेखकों ने इन दोनों महानुभावों में दिल्ली दरबार में भेंट कराई है अर्थात् जब दिल्लीश्वर ने गोसाईं जी की करामात देखने के लिये इन्हें दिल्ली में बुलाया था और इन के इष्टदेव की करामातें देख कर जब वे चकित और लज्जित हुए थे, उसी समय श्री सूरदास जी भी वहाँ बुलाये गये थे। सूरदासजी का वहाँ आकर यह कहना कि 'अमुक राजकुमारी पूर्वजन्म में ब्रह्मापिता की, उस ने श्रीकृष्ण के शाप से यवनगृह में जन्म लिया है' और सब के सामने उस के विशेष २ अंगों में विशेष २ चिह्न दिखलाना यह सब कहाँ तक ठीक है हम नहीं कह सकते।

परन्तु ब्रज में या दिल्ली में श्री गोसाईं जी और श्री सूरदास जी का परस्पर सम्मिलन हम को असम्भव दीखता है। कारण यह है कि श्री हरिश्चन्द्र एवम् मिश्रबन्धु इत्यादि के लेखानुसार श्री सूरदास जी का समय १५४ —१६२० वि० संवत् है और जोधपुर निवासी मु० देवीप्रसाद जी ने सं० १५६ —१६४२ माना है। अब चाहे सूरदास जी का समय १५४ —१६० संवत मानिये, चाहे १५६ १६४२ संवत स्वीकार कीजिये उन की गोसाईं जी से दिल्ली में उस समय भेंट की कदापि संभावना नहीं जबकि गोसाईं जी को सम्राट ने करामातें दिखलाने के लिये बुला भेजा था (जो घटना स्वयम् प्रमाणित नहीं हुई है)। क्योंकि सूरदास जी का अकबर के पास जाना कहा जाता है और गोसाईं जी मुर्दा जिलाने के बाद जहाँगीर के समय गये हैं और जहाँगीर ने १६ ५ ई० (सं० १६६२) में राजपद ग्रहण किया था जब सूरदास जी का गोलोकवास हो चुका था।

और जब गोसाई जी नाभाजी से भेंट करने गये थे उस समय भी सूरदास जी से भेंट की आशा नहीं। क्योंकि श्री प्रियादास जी के कवित्तों से स्पष्ट विदित होता है कि गोसाई जी दिल्ली से लौट आने पर व्रज सिधारे थे।

'महात्मा रामरसिकावली' तथा कई एक अन्य ग्रन्थों में यह भी लिखा है कि "एक दिन श्री सूरदास जी और गोसाई जी दिल्ली के बाजार में बैठे थे। बादशाह का एक मतवाला हाथी आया तब सूरदासजी यह कह कर कि हमारे नन्दलाल बहुत बालक हैं वे डरेंगे, आपके इष्टदेव धनुषधारी हैं आप चाहें, ठहरें वहां से चम्पत हुये और गोसाईं जी वहीं ठहरे रहे। हाथी सामने आया उस के माथे में एक बाण लगा और वह चिंघार करता हुआ भूतल में गिरकर मर गया।"

उस समय सूरदास जी को निश्चय यह बात भूल गई होगी कि उन के बाल-नन्दलाल ही 'कुवलियापीड़' हाथी के दान्त उखाड़न वाले और उसे यमालय पठानेवाले थे। यदि यह बात स्मरण होती तो वहां से वे कदापि नहीं भागते। हम नहीं समझते कि इस आख्यायिका से लेखकों ने कौन-सी बात सिद्ध करने की मनसा की है। श्री कृष्णचन्द्र की अपेक्षा श्री रामचन्द्र की श्रेष्ठता या श्री सूरदास जी की अपेक्षा श्री गोसाईं जी का निज इष्टदेव में अटल विश्वास ! इनमें से कोई बात सिद्ध करने की चेष्टा करनी बड़ी ही भूल कही जायगी। हमारे जानते तो इस आख्यायिका के द्वारा एक परम पूजनीय महात्मा स्वयं ही नीचा दिखलाये गये हैं।

मुंगेरपुर निवासी पं० रघुवंश शर्म्मा ने लिखा है कि "जब जहांगीर बादशाह काशी में गोसाईं जी से मिले थे तो उन्हों ने काशी का इलाका गोसाईं जी की सेवा पूजा के निमित्त भेंट करना चाहा था और इन के अस्वीकार करने पर कहा था कि सूरदासजी उन के पिता के नवरत्नों में से थे और जब जब दिल्ली आते थे तब तब जो कुछ मिलता था वह ले लेते थे।"

इस आख्यायिका से पंडित जी ने क्या दिखलाने की चेष्टा की है हमारे विज्ञ पाठक समझ ही गए होंगे। हम नहीं जानते कि एक महात्मा की प्रतिष्ठा करते हुये लोग दूसरे के सम्बन्ध में क्यों बेजड़ बीज की अप्रामाणमूलक बातें लिख मारते हैं। न जाने ऐसे महात्मा लोग भिन्न-भिन्न महात्मा की दुर्गति नहीं करेंगे।

'चौरासी वार्त्ता' के अनुसार सूरदास जी का एक ही बार सम्राट (अकबर) के पास जाना सिद्ध है जब कि सम्राट ने उन की कविता और गानकौशल्य की प्रशंसा सुन कर उन्हें बुला भेजा था और जिस समय उन्होंने पहिले स्वरचित यह पद गाया था"— मन रे कर माधो सों प्रीति।' और बादशाह के निज प्रशंसा में कुछ कहे जाने की इच्छा प्रगट करने पर उन्होंने नीचे लिखा हुआ पद गान किया था।

"नाहिन रहयो मन में ठौर
नन्द नन्दन अछत उर में आनिय कस और ॥
चलत चितवन दिवस जागत सुपन सोवत राति।
हृदय तें वह मदनमूरति छिन न इत उत जात ॥

काहुम कथा अनेक ऊधो लोक लोभ दिखाय।
कहा करौं चित प्रेम पूरन घट न बिन्दु समाय॥
स्याम गात सरोज आनन ललित गति मृदु हास।
सूर ऐसे दरस कारन मरत लोचन प्यास॥"

इस पद के ३वें और ४थें चरणों से पाठक अनुमान कर सकते हैं कि दरबार में बार बार आग्रह किया जाकर वहां से कुछ लाभ उठानेवालों में से सूरदास जी हो सकते हैं या नहीं।

और मुंशी देवीप्रसाद साहब को जोधपुर के कविराज मुरारी दान जी से सम्राट से भेंट के सम्बन्ध में यह भी ज्ञात हुआ है कि सूरदासजी अकबर बादशाह के बुलाने पर लोगों के बहुत कहने सुनने से फतहपुर सिकरी में सम्राट से मिले थे और उस समय उन्हों ने यह पद गान किया था।

"सिकरी कहा भगत को काम।
आवत जात पन्हैया फाटी भूलि गयो हरिनाम॥
जाको मुख देखे हू पातक ताहि करयो परनाम।
फेर कबौं ऐसो जनि करियो सूरदास के स्याम॥"

यह पद सुन कर कदाचित् सम्राट ने उन की फकीरी की बड़ी प्रशंसा की और उन के अस्वीकार करने पर भी उन्हें एक सदी का मनसब दिया कि उस की आमदनी से खैरात किया करें और उन्हें उसे अंगीकार ही करना पड़ा।[1]

यदि यह घटना ठीक मानी जाय तो यहाँ सूरदास जी ने बड़ी बुद्धिमानी दिखलाई। क्योंकि बार बार अस्वीकार करने से उन्हें निश्चय तत्काल ही आपत्ति झेलनी पड़ती। स्वीकार कर लेने से उस समय तो आपद का परिहार हो गया।

परन्तु जो पुरुष प्रभु से यह प्रार्थना करता था कि फिर सम्राट के निकट जाने वाले की बारी नहीं आवे वह क्या बार बार दरबार में जाकर वहां जो ही कुछ दाम लगता उसे लाकर अपना घर भरा करता होगा? और आईन अकबरी में अबुलफज़्ल ने जो सूरदास का नाम गोवैता (गवैया) की सूची में लिखा है वह भी सन्दिग्ध ही है। यदि सचमुच यह सूरदास यही हों तो उन का नाम सूची में सम्मिलित किये जाने का कारण उन का उस समय मनसब का स्वीकार कर लेना ही कहा जायगा क्योंकि शाही दरबार में उन का नियमानुसार नौकरी करना नहीं पाया जाता और आईन अकबरी से यह पता नहीं लगता कि ये कब से कबतक नौकर रहे। पता लगे कहां? ये सचमुच नौकर हों तब तो। इसी से तो 'चौरासी वार्ता' और 'भक्तमाल' में केवल इन के सम्राट के पास जाने की कथा लिखी हुई है, नौकरी की कोई बात नहीं। वरन् मनसब का अस्वीकार ही करना लिखा है।

---

१ मुं० देवीप्रसाद कृत सूरदास जी का जीवन चरित्र पृ० १७—२० देखिये।

मुन्शी देवीप्रसाद ने अपने ग्रंथ में 'मुनशियात अबुलफजल' से एक पत्र उद्धृत किया है। स के आरम्भ में लिखा है कि 'यह पत्र सूरदास के नाम से है जो बनारस में था। यह ब सम्राट की आज्ञा से लिखा गया था। उस में सूरदास के सम्बन्ध में महान साधु महात्माओं योग्य शब्द प्रयोग किये गये हैं और सम्राट से मिलने को वे इलाहाबाद बुलाये गये हैं।

पत्र से विदित होता है कि उस के लिखे जाने के समय तक अबुलफजल की सूरदास से भी भेंट नहीं हुई थी। उस में लिखा है कि 'मैं आप की विद्या और बुद्धि का वृत्तान्त इले से सज्जनों और शिष्टजन पुरुषों से सुना करता था और परोक्ष ही आप को मित्र जानता था' इत्यादि।

यदि उस समय तक भेंट नहीं हुई थी तो जन्म भर भेंट नहीं हुई इस में भी सन्देह नहीं योंकि उस पत्र के लिखे जाने की तारीख उस में नहीं रहने से मुन्शी जी उस का लिखा जाना १५४० के पीछे और १५४२ के पूर्व अनुमान करते हैं और कहते हैं कि उस के लिखे जाने के अनंतर बादशाह और सूरदासजी में भेंट नहीं हुई क्योंकि अकबरनामा के अनुसार बादशाह शीघ्र ही गुजरात चले गये। फिर फतहपुर आये और पंजाब जाकर वहां से १२ वर्ष बाद १६५५ में आगरा आये।

अब यदि सूरदास अकबर के दरबारी नौकर होते और वहां बराबर आया जाया करते तो क्या अबुलफजल की उन से जन्म भर कभी भेंट नहीं होती? हम समझते हैं कि भेंट नहीं होने और यथार्थ वृत्तान्त अवगत नहीं होने के कारण ही आईन अकबरी के क्षेत्र में गड़बड़-सा हो गया है। परन्तु हम यहां पर सूरदास जी की जीवनी की समालोचना करने नहीं बैठे हैं। इसलिये अधिक लिखना उपयुक्त नहीं।

भक्तमाल' में सूर मदन मोहन के अकबर के दरबार में नौकरी का वृत्तान्त अवश्य लिखा हुआ है कि वह संडीला के अमीन थे और एक बार सन्दूकों में पत्थर भरकर इस दु के साथ "तेह लाख संडीला उपजै सब सन्तन मिलि गटके। सूरदास मदनमोहन निशि आधि रात हीं सटके॥ दिल्ली भेजकर आप व्रजप्रदेश की ओर चल बसे। इसपर टोडरमल्ल ने उन के पकड़ मँगाने की आज्ञा दी थी, परन्तु सम्राट ने उन का अपराध क्षमा किया।[१]

सूर मदनमोहन जी भी बड़े कृष्णभक्त गानानुरागी और कवि थे। व्रजगमन के अनन्तर वे भी फिर दरबार में बुलाये गए थे और गये भी थे। क्या आश्चर्य है यदि गानानुरागिता के कारण ही उन का पहले दरबार में प्रवेश हुआ हो और फिर मनसब पाने पर वे संडीला रख गये हों? इस में भी क्या आश्चर्य है यदि पूर्ववर्ती लेखकों ने दोनों महानुभावों की कथाओं की खिचड़ी बना दी हो?

यह भी प्रवाद है कि भक्त-नामावली में गोसाईं जी ने कोइला गांव में कविवर कन्हरदास को प्रेतयोनि से मुक्त किया था। इस की कथा यों कही जाती है कि कोइला के

---

१ श्रीसीताराम शरण भगवानप्रसाद कृत 'भक्तमाल' की टीका, प्रथम संस्करण, पृ० १००७—८३ देखिए।

राजा इन्द्रजीत[1] सिंह ने कविसमाज नियत कर के कवि केशवदास को उस का सभापति बनाया था और इस अभिप्राय से कि यह कविमंडली चिरस्थायिनी हो, उस ने केशव दास के आदेशानुसार प्रेतयज्ञ किया था। इसी से मरने पर वे लोग सब के सब प्रेत हो गये थे। उस समय केशवदास कृत 'रामचन्द्रिका' समाप्त नहीं हुई थी। प्रेत होने पर वे पेड़ पर से चिल्लाया करते थे कि 'कोई गोसाईं जी से चन्द्रिका सोधवा ले।' यह समाचार सुन कर गोसाईं जी उस वृक्ष के समीप गये। केशवदास ने प्रेतयोनि ही में रहकर इन्हें रामचन्द्रिका सुनाई। उस की समाप्ति होने पर केशवदास प्रेतयोनि से मुक्त होकर परमधाम सिधारे।

ऐसा भी प्रसिद्ध है कि ओड़छे में एक कुआँ से जल भरने के समय प्रेत केशवदास ने गोसाईं जी का लोटा थाम लिया और कहा कि जब तक मेरा इस योनि से उद्धार नहीं कीजियेगा तब तक मैं लोटा कदापि नहीं छोड़ूँगा। गोसाईं जी ने 'रामचन्द्रिका' २१ बार पाठ करने को कहा। उन्हें उसका प्रथम ही छन्द स्मरण नहीं होता था। परन्तु गोसाईं जी के याद दिलाने से वे उस ग्रन्थ का २१ बार पाठ कर के प्रेतयोनि से मुक्त हो गये।

सच पूछिये तो ये दोनों आख्यायिकाएं सर्वथा मनोकल्पित प्रतीत होती हैं और एक गोसाईं जी की श्रेष्ठता और दूसरी 'रामचन्द्रिका' का माहात्म्य प्रतिपादन के निमित्त रची गई हैं।

यह जो कुछ हो परन्तु केशवदास का कुछ वास्तविक वृत्तान्त सुन लीजिये। आप सनाढ्य ब्राह्मण और मिश्र थे। उन का जन्म लगभग १६१२ संवत् में और मृत्यु १६७४ में मानी जाती है। उनका घर टेहरी बुन्देलखंड में था। वे ओड़छा के मधुकर शाह से बहुत सम्मानित हुये थे। पीछे उन के चौथे पुत्र इन्द्रजीत बुन्देले ने उन्हें २१ गाँव दिये थे। तब से वे सपरिवार ओड़छे ही में रहने लगे थे। उन्होंने क्रम से 'रसिकप्रिया' ओड़छा दरबार की गायिका 'प्रवीनराय पातुरी' के प्रसन्नार्थ, 'कविप्रिया' इन्द्रजीत के मनोरंजनार्थ एवम् 'रामचन्द्रिका' और 'विज्ञान गीता' की रचना की थी।

काशीनरेश श्रीमान् ईश्वरीप्रसाद सिंहजी के दरबार के सुप्रसिद्ध सरदार कवि उन के शिष्य नारायण कवि ग्वालियर के प्रसिद्ध राव तथा हरि कवि ने 'कविप्रिया' का भाष्य किया है। काशीनिवासी पं० जानकीप्रसाद और बलीराम ने 'रामचन्द्रिका' की टीका की है। सूरत मिश्र, मालूम का मुकुन्दलाल, पूर्वोक्त सरदार कवि तथा ललितपुर के हरिजन कवि ने 'रसिक प्रिया' का भाष्य किया है। काशी हिन्दूविश्वविद्यालय' के प्रोफेसर लाला भगवान दीन उपनाम श्रीवास्तव दूसरे ने 'रामचन्द्रिका' तथा 'कविप्रिया' की टीकाएं लिखी हैं।

---

1 ये श्रीरामचन्द्र वंशज तू गहरवार क्षत्रिय थे। इन्हीं के एक पूर्वज बुन्देल के कारण गहरवार लोग बुन्देला कहलाने लगे और उन लोगों से बसा हुआ देश बुन्देलखंड के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसी वंश के भारतीचन्द्र ने कालिंजर दुर्ग पर धावा करते समय शेरशाह का वध किया था जिसे मेगज़ीन में आग लगने से मर जाना कहा जाता है, ओड़छा अभी तक (गहरवार या) बुन्देला क्षत्रिय ही के अधिकार में है।

द्वादश परिच्छेद

चित्रकूट तथा अवधवास

गोस्वामी जी के चित्रकूट तथा अवध में वास की बात अन्यत्र कही गई है एवम् चित्रकूट में श्री रामचन्द्र के साक्षात दर्शन का हाल भी सविस्तर वर्णन हो चुका है। अब उन स्थानों की कुछ अन्य घटनाओं का उल्लेख किया जाता है।

जब आप श्री हनुमानजी के आदेश से रामदर्शन के निमित्त चित्रकूट जाकर एक गुफा में वास करते थे उसी समय स्वामी हरियानन्द जी इन से मिलने गये थे। वह गुफा के पास बैठे २ इन की प्रतीक्षा कर रहे थे। इतने में ये पेशाब करने बाहर निकल और फिर गुफा में घुस गये। तब हरियानन्द जी ने कहा—"वाह गोसाईं जी! लघुशंका के लिये तो बाहर निकले एक हरिप्रेमी साधु क्या उससे भी गया गुजरा है कि दर्शन देने को बाहर नहीं आते।" यह सुनते ही ये आहि २ करते गुफा के बाहर आ उन से सादर प्रेमपूर्वक मिले और उस दिन से इन्होंने गुफा में रहना भी छोड़ दिया।

प्रवाद है कि हरियानन्द जी कहीं भंडारे में नेवता गये थे। वहां आचमन के लिये आपने जल मांगा तो महन्त जी ने कहा कि हरियानन्द ठाकुर हमसे थोड़ा जल मांगते हैं। यह सुनकर आप तो मौन हो रहे परन्तु वहाँ एक धारा इस वेग से प्रवाहित हुई कि मंदिर आदि बहने लगे और महन्त के विनीत भाव से विनय करने पर उसका वेग निवारण हुआ।

चित्रकूट में एक दरिद्र ब्राह्मण का दुःख दूर करने के लिये गोसाईं जी की स्तुति से मन्दाकिनी से दरिद्रमोचन शिला निकल आई थी। यह स्थान अभी तक दरिद्रमोचन के नाम से ख्यात है। कहते हैं कि एक दरिद्र ब्राह्मण दरिद्रता के कारण घाट पर प्राणत्याग करने को उद्यत था। गोसाईं जी ने पहले धन का बहुत तुच्छ स्वरूप दिखला कर उसे आत्महत्या से रोकने का यत्न किया। किन्तु बिना धन पाये उसकी प्राणरक्षा की आशा न देख कर आप ने उस के कल्याणार्थ यही उपाय उत्तम समझा। निस्सन्देह उसे आत्महत्या के पाप से बचाकर और उस का दुःखमोचन कर आप ने सन्तोचित काम किया। और यह भी आदर्श भक्त ही का काम किया कि उस का दुःखमोचन के लिये ईश्वर ही की स्तुति प्रार्थना की। 'दुख के दोष गैर से क्यों आशनाई कीजिये। छोड़ यह दर जिस के दर पर जुब्बहासाई कीजिये।'

संडीलानिवासी स्वामी नन्दलाल जी अयोध्या होते चित्रकूट आकर गोसाईं जी से मिले थे। परस्पर मिलन से दोनों महात्माओं को महानन्द प्राप्त हुआ था। गोसाईं जी ने अपने हाथ से रामायण लिखकर उन्हें भेंट की थी।

कहते हैं कि संडीले से आते समय मलीहाबाद में एक पठान के बुलाने पर उस के समीप नहीं जाने से उस ने नन्ददास जी को पकड़वाना चाहा था कि इतने में उसके मुंह से रुधिर वमन होने लगा और तब भयग्रसित हो वह पठान उन से प्राणरक्षा का प्रार्थी हुआ। महात्मा जी ने उस पर दयादृष्टि की और वह भला चंगा हो गया। आगे चलने पर एक स्थान में आरती के समय पठान के बालकों ने उत्पात मचाना आरम्भ किया था परन्तु सदर का नायक एक पठान बालक डांट डपट कर उन्हें उस कुकर्म से रोकने के लिये नन्ददास जी के आशीर्वाद का भागी हो आनन्द कालक्षेप करने लगा।

अवधवास

अवध में सब से उत्तम कार्य यह हुआ कि यहीं पर गोसाईं जी ने 'रामचरित मानस' की रचना आरम्भ की। इस का सविस्तर वृत्तान्त अन्यत्र मिलेगा।

अवध में एक महाशय मुक्तामणि दास रहते थे। वे ईश्वर के भक्त और कविताप्रेमी थे। उन्हें संडीलावाले पूर्वोक्त नन्ददास जी तथा गोसाईं जी से बहुत प्रेम था। एक दिन वसन्तऋतु में भगवान बन्धु और सखाओं के संग श्री रामचन्द्र आमोद प्रमोद में थे रात अधिक व्यतीत हो गई थी, अतएव कौशल्या जी ने उन्हें शयन करने के निमित्त कहला भेजा था। इसी सम्बन्ध में मुक्तामणि ने एक कविता की थी। यह कविता सुनकर गोसाईं जी बहुत प्रसन्न हुये थे। कविता यह है —

"सैन करहु रघुबीर पियारे। हौं आई पठई कौशल्या बड़े भूप उठि सदन सिधारे॥ उगत जाम जामिनी बीती है नयनन नींद भरे रतनारे। प्रफुलित सरद कोकनद मानो मंद समीर मलयकर धारे॥ रतनजटित मनिमय मन्दिर मैं रवि छबि सोभित कनक सुधारे। मग जोवति सहचरी सिया की सैन रुचिर सब सौं सँवारे॥ अति आलसयुत भये हैं भरत सुत लषन शत्रु रिपुहन उनियारे। सुनत सकल दे पान बिदा कर उठे राम मुक्तामनि वारे॥"

श्री महाराज रघुराज सिंह जी ने लिखा है कि अवध ही में एक वणिक ने तत्काल ईश्वर के दर्शन पाने के लिये गोसाईं जी से विनय किया। इन्हों ने बहुत कुछ समझाया कि यह बात बड़ा कठिन है। पर उसने एक भी नहीं सुनी। तब इन्हों ने कहा कि वन में जाकर बर्छी गाड़ कर और उस के नीचे आग जलाकर पेड़ से उस बर्छी पर कूदो, तो भी रामचन्द्र का दर्शन हो जायगा। वह वणिक बर्छी गाड़ कर और आग जला कर वृक्ष पर चढ़ा तो सही परन्तु मरणभय से कूदने में आगा पीछा करता रहा। इसी अवसर में एक क्षत्रिय वहां आ पहुंचा और सब वृत्तान्त अवगत होने पर उस ने वणिये को तो कुछ द्रव्य देकर बिदा कर दिया और आप पेड़ पर चढ़ कर ज्योंही कूदा कि भगवान ने अपने भक्त का वचन प्रामाणिक करने के लिये उसे बीच ही में रोक लिया और श्री प्रभु का प्रत्यक्ष दर्शन पाकर वह परम कृतार्थ हुआ।

बेनीमाधवदास के अनुसार वह हाकिम नहीं वरन् मनसूर नामक मुसाफिर था। सूली पर चढ़ने का प्रसंग आने ही से उन्हें मनसूर याद आ गया जिसे अनहलक (अर्थात् मैं ही खुदा हूँ) कहने से सूली दी गई थी।

हमें इस कथा की सत्यता में सर्वथा सन्देह है। ईश्वर का दर्शन कुछ ऐसी वस्तु नहीं कि कोई राह चलते उन्हें देख लिया करे। गोसाईं जी भी इस प्रकार प्रभु का तमाशा दिखाना उचित नहीं समझते होंगे। इस प्रकरण में मनसूर का नाम लाना इसे और भी अप्रामाणिक कर देता है।

कहते हैं कि अवध में भी एक मृतक ब्राह्मण बालक को गोस्वामी जी ने हनुमान जी की प्रार्थना कर यमलोक से लौटा मँगाया था। हनुमान जी के परम भक्त होकर बिचारे गोस्वामी जी तो उन्हें बारम्बार कष्ट देना नहीं चाहते होंगे पर करें क्या! किसी पर दुःख आने से परोपकार के निमित्त इन्हें हनुमान जी से सहायता की याचना करनी ही पड़ती थी।

यह आध्यात्मिक प्रार्थना की शक्ति प्रदर्शित करती है और पूर्वोक्त कार्य कोरा बाजीगर का तमाशा प्रतीत होता है।

त्रयोदश परिच्छेद

मित्र और सम्मान

सुप्रिय टोडर —भदैनी[1], नदेसर, शिवपुर, छितुपुर और लहरतारा इन पाँच गाँवों के, जो काशी के एक छोर से दूसरे छोर तक फैले हैं, जमीन्दार थे। उन के घर का कुछ भग्नचिन्ह मात्र हाल तक काशी की कचौड़ी गली में वर्तमान था। और उन के वंशजों का एक घर अभी तक भदैनी के अन्तर्गत अस्सी पर है। वहाँ से लोग अब भी कभी २ आ जाते हैं। वे बड़े रामभक्त थे। किसी कारण वश गोसाइयों ने उन्हें तलवार से काट डाला था। उन से गोसाईंजी को बहुत प्रेम था। उनके मरने पर गोसाईं जी ने नीचे लिखे हुये चार दोहे बनाये थे।

"चार गाँव के ठाकुरो, मन को महा महीप।
तुलसी या कलिकाल में, अथए टोडर दीप॥
तुलसी राम सनेह को, सिर पर भारी भार।
टोडर काँधा ना दियो, सब कहि रहे उतार॥
तुलसी उर थाला विमल, टोडर गुनगन बाग।
ये दोऊ नयना सींचिहौं, समुझि २ अनुराग॥
रामधाम टोडर गये, तुलसी भये असोच।
जियबो मीत पुनीत बिनु, यही जानि संकोच॥"

गोसाईं जी के स्वर्गवास काल से आजतक उन की निधनतिथि पर टोडर के वंशज बराबर एक सीधा दिया करते हैं।

---

१ भदैनी ही के अन्तर्गत गोसाईं जी का निवास स्थान अस्सीघाट है। और यह भदैनी भी काशीराज के अधिकार में है, नदेसर में अदालत कचहरी है, शिवपुर पंच कोश में है। यहाँ पाँचों पाण्डवों का मन्दिर और द्रौपदी कुण्ड है जिसका अकबर के प्रसिद्ध राजस्वमंत्री राजा टोडरमल्ल ने जीर्णोद्धार किया था। छितुपुर भदैनी से पश्चिम है और लहरतारा काशी के कैन्टोन्मेन्ट स्टेशन के पास है और अब सुप्रसिद्ध राजा पटनी मल्ल के परपोते राय शिव प्रसाद के अधिकार में है। लहरतारा ही की झील में नीमा ने कबीर जी को बहता हुआ पाया था और कबीर जी की एक मण्डिया भी बनी हुई है।

टोडर के स्वर्गवास पर उन के पुत्र आनन्द राम और पोते कन्हाई के बीच झगड़ा मिटाने के लिये आप पंच नियत हुए थे और १३ सुदी आश्विन सं० १६६९ में आप ने जो पंचायती फैसला दिया था वह उपसंहार (क) में अनुवाद के साथ अविकल उद्धृत किया गया है। यह फैसला ११ पीढ़ी तक उन के वंशधरों के पास था और पृथ्वीपाल सिंह ने उसे काशी नरेश को दे दिया। यह उन्हीं के पास है। उस का फोटो 'खड्गविलास' यन्त्रालय द्वारा प्रकाशित रामायण में दिया हुआ है।

टोडर को ग्रियर्सन साहब ने राजा टोडरमल अकबर का सुविख्यात अमात्य माना है जिन का देहान्त सं० १६४६–४८ में हुआ एवम् सहरतारा को उन का जन्म स्थान लाहरपुर (अवध) अनुमान किया है। परन्तु यह बात असम्भव प्रतीत होती है क्योंकि राजा टोडरमल को गोसाईंजी न तो 'चार गाँव को ठाकुरो' या 'महतो' ही कहते और न उन को 'मन को महा महीप' ही कहते। टोडरमल मन ही के महीप नहीं कहला सकते थे, वे सचमुच महीप थे। और अकबर के ऐसा प्रसिद्ध वीर अमात्य का केवल चार ही गाँव का मालिक होना भी सम्भव नहीं। आज के साधारण जमींदार दस-बीस गाँवों के मालिक पाये जाते हैं। चार-पाँच गांव वाले जमींदारों की तो गिनती ही नहीं हो सकती। और उस समय राजा लोग कवियों को १०-१० गाँवों का मालिक बना दिया करते थे। फिर क्या एक साधारण कवि को साहस होता कि टोडरमल के आत्मज तथा टोडरमल्ल ही के नाम का बिना कोई सम्मान सूचक शब्द के उल्लेख करता? राजा तक का विशेषण भी टोडरमल के नाम के साथ नहीं लगता? जैसा कि 'आनन्द राम बिन टोडर बिन देव राय' इत्यादि में देखा जाता है।

काशी में राजा टोडरमल्ल का अन्य कोई अवशिष्ट चिन्ह नहीं है। भारतेंदु हरिश्चन्द्र प्रकाशित कुंड के शिलालेख से केवल यही विदित होता है कि उन्हों ने सं० १६२६ में उस का जीर्णोद्धार किया था। यह कुंड शिवपुर में काशी की पंचकोशी में एक तीर्थस्थान है। वहाँ पाण्डवों का मन्दिर था। यह शिलालेख उपसंहार (ख) में प्रकाशित कर दिया जाता है।

महाराजा मानसिंह—आमेर के महाराजा मानसिंह अकबर के एक बड़े नामी सरदार और उन की दाहिनी भुजा थे। आप बड़े शूर-वीर थे और आप ने जब तब बड़ा काम किया था। काबुल से लेकर समुद्र पर्यन्त का देश दिल्ली सम्राट के अधीन कर दिया था। उनका आतङ्क सारे भारतवर्ष में फैल गया था। तारीख फिरिश्ता में लिखा है कि उन्होंने आसाम विजय कर के १२० हाथी बादशाह के पास भेजा था। उन्हों ने बङ्गाल, बिहार, दक्षिण और काबुल की सूबेदारी बड़ी योग्यता से की थी। उनका प्रभाव ऐसा बढ़ गया था कि अकबर और जहाँगीर भी उन से भय खाते थे। कवि कोविदों का वे बड़ा सत्कार करते थे। विद्वद्वर श्री रमेशचन्द्र दत्त विरचित 'बङ्ग विजेता' उपन्यास से ज्ञात होता है कि महाराज रामायण सुनकर उन्हों ने उस के रचयिता श्री तुलसीदास जी का बड़ा सम्मान किया था। कविवर हरिदास के पुत्र हरिनाथ कवि उन की सभा के प्रधान कवियों में से थे। 'मानचरित्र' 'आईन अकबरी' तथा ब्लाकमैन साहब के अंगरेजी अनुवाद पृ० ३३९ में उनका वृत्तान्त सविस्तर

वर्णित हुआ है।[1] श्रीमान् मानसिंह को और उन के चचा जगत सिंह को गोसाईं जी से बड़ा स्नेह था और वे लोग इनके दर्शन को प्रायः आया करते थे।[2]

ख़ानख़ाना—अब्दुलरहीम ख़ाँ[3] ख़ानख़ाना बैरम ख़ाँ के पुत्र थे जिस बैरम ख़ाँ की सहायता से हुमायूँ को भारतवर्ष में विजय-लाभ हुआ था। ख़ानख़ाना अकबर के एक सुप्रसिद्ध सरदार और आँखों की पुतली थे। अरबी फ़ारसी तुर्की, संस्कृत एवम् हिन्दी के अच्छे ज्ञाता और कवि थे। इन्होंने वक़ाय बाबरी को तुर्की भाषा से फ़ारसी में अनुवाद किया है। इन्होंने रहीम सतसई, बरवै नायिका-भेद, रासपंचाध्यायी मदनाष्टक और एक फ़ारसी दीवान की भी रचना की है। इन के संस्कृत के श्लोक बहुत कठिन पाये जाते हैं। इन के नीति आदि के दोहे बड़े चोखे, मधुर और मनोहर देखे जाते हैं। इन के बहुत से दोहों पर काशी-निवासी स्वर्गीय मित्रवर बाबू राधा कृष्ण दास ने कुण्डलियाँ भी बनाई हैं जो 'सरस्वती' के कई एक संख्याओं में प्रकाशित हुई हैं। इन के दोहे 'भारतजीवन' प्रेस द्वारा प्रकाशित 'भाषा सार' ग्रंथ में भी संग्रहीत हुए हैं।[4] ये पंडित कवि ज्योतिषी शायर सब प्रकार के गुणियों का यथायोग्य सत्कार करते थे। कवि गङ्ग पर इन की विशेष कृपा रहती थी। मिथिला प्रदेश के लक्ष्मीनारायण कवि भी इन की सभा में रहते थे। एक बार इन्होंने रीवाँ के नरेश के पास यह दोहा "चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवधनरेस। जापर बिपदा परति है सो आवत यह देस॥"[5]

---

१ मुसलमान लेखक गण हि० १०२४ (१६१५ ई०) में बहार में इन का देहान्त होना बतलाते हैं। परन्तु आमेर के काग़ज़ों से दो वर्ष पीछे खिलजी की चढ़ाई में इनका वीर गति को प्राप्त होना पाया जाता है। इसी से ग्रियर्सन साहब ने 'दी माडर्न वर्नेक्युलर लिट्रेचर' (The Modern Vernacular Literature) ग्रंथ के पृ० १६ में १६१८ ई० में इन का स्वर्गवास होना लिखा है। शिवसिंह ने सं १५८० (१५२३ ई) में लिखा है। यह सर्वथा भूल है। अकबर १५५६ ई० में राज सिंहासन पर बैठे और उन के नामी सिपाही सरदार का परलोक हो १५२३ में ? क्या खूब!

२ 'सरस्वती' भाग ५ सं १२ पृ ४२३ में लिखा है कि मानसिंह भगवान सिंह के भाई जगत सिंह के पुत्र थे। उन्हें भगवान सिंह ने गोद लिया था। और कलकत्ता के पण्डित माइन भडवे द्वारा सम्पादित 'राजस्थान' पृ० २८३ के नोट में लिखा है कि भगवान सिंह के तीन भाई थे—सूरत सिंह जगत सिंह और माधो सिंह और मानसिंह सबसे कनिष्ठ भाई के पुत्र थे। परन्तु न जाने आगे चलकर उसी भाग के पृष्ठ २९७ में जगत सिंह को मानसिंह का भाई कैसे लिख दिया है Jay Sinha the grandson of Jagat Sinha (brother of Man) was raised to throne कदाचित् इसी से ग्रियर्सन साहब ने भी मानसिंह को जगत सिंह का भाई लिखा है।

३ इन का जन्म सम्वत् १६१३ और देहान्त सम्वत् १६८३ में हुआ।

४ हम भी यहाँ पर पाठकों के अवलोकनार्थ कई एक दोहे उद्धृत कर देते हैं:—

'जो रहीम ओछो बढ़ै बढ़त करै उत्पात।
प्यादा से फरजी भयो तिरछो २ जात॥

लिखकर एक याचक को बहुत-सा धन दिलवाया था। कहते हैं कि इन्हें श्रीकृष्णभगवान में प्रेम था और अन्त में इन्होंने संन्यास धारण कर भिक्षावृत्ति ग्रहण भी की थी। उसी अवसर पर इन्होंने एक बार कहा था 'ए रहीम दर दर फिरैं मांगि मधुकरी खाहि। यारो यारी छोड़िये, वे रहीम अब नाहिं।।

इन का वृत्तान्त 'आईन अकबरी' और उस के अनुवाद के पृष्ठ ३३८ में सविस्तर लिखा है। जोधपुर-निवासी सुप्रसिद्ध मुं० देवीप्रसाद ने भी इन की जीवनी उर्दू में लिखी है। वह हिन्दी में भी छप गई है।

विद्यानुरागी तथा ईश्वरप्रेमी होने के कारण इन की गोस्वामी जी में बड़ी श्रद्धा थी और दोनों पुरुषों में पत्र-व्यवहार भी रहता था। जब-जब ये काशी में आते थे गोसाईं जी का अवश्य दर्शन करते थे। प्रवाद है कि एक दरिद्र ब्राह्मण ने गोसाईं के पास अपनी कन्या के विवाह के लिए सहायता की प्रार्थना की। गोस्वामी जी ने एक पुर्जे पर यह पूर्वार्द्ध दोहा लिख कर उसी ब्राह्मण के हाथ खानखाना के पास भेजा —

"सुर तिय, नर तिय, नाग तिय, यह चाहत सब कोई।"

खानखाना ने इसके उत्तर में यह उत्तरार्द्ध दोहा लिखा और उस ब्राह्मण को बहुत कुछ द्रव्य भी दिया —

"गर्भ लिये हुलसी फिरै, तुलसी से सुत होइ"[१]

जो गरीब को आदरै, ते रहीम बड़ लोग।
कहाँ सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग।।
छमा बड़न को चाहिये, छोटन को उतपात।
का रहीम हरि को घट्यो, जो भृगु मारी लात।।
गज धरत सिर धूर रहत कहु रहीम किहि काज।
जो रज रिषिपतनी तरी, सोइ खोजत गजराज।।
ते रहीम मन आपनो, कीन्हो चारु चकोर।
निसुबासर लाग्यो रहै, कृष्णचन्द्र की ओर।।
दीरघ को सुख चाहि कै मसियत लाग लगाय।
रहिमन कहुँ सुखन को, चहिये यही सुभाय।।"

१ इस दोहा के सम्बन्ध में श्री ग्राउस साहब ने लिखा है —"बादशाह के एक मंत्री का पुत्र तुलसीदास की बड़ी भक्ति करता था। एक दिन कथा प्रसंग में तुलसीदास ने उस से कहा कि ऐसी स्त्रियाँ जिनको गर्भयन्त्रणा भोगा करती हैं तो भी पुत्र की कामना करती हैं। मंत्री पुत्र ने उत्तर दिया कि 'तुलसीदास के समान भगवद्भक्त पुत्र पाने से गर्भ सार्थक होगा यही आशा करके नारीगण यह कष्ट स्वीकार करती हैं।

खानखाना के साथ इस दोहे का संयोग ग्राउस साहब की अपेक्षा सभी पुस्तकों में इस का सम्बन्ध उपयुक्त प्रतीत होता है।

अर्थात् यद्यपि सब स्त्रियों को प्रसव पीड़ा समान होती है तथापि वे सब भाग्यवती होने पर हर्ष मानती हैं कि कदाचित् तुलसीदास के सदृश उन्हें पुत्र उत्पन्न हो। उत्तरार्ध दोहे के मिस खानखाना ने गोसाईं जी की भी गुप्त रूप से प्रशंसा की। किन्तु इस दोहे को सब ब्राह्मण के कार्य से क्या सम्बन्ध था यह बात हमारी समझ में नहीं आती। दरिद्रों तथा ब्राह्मणों पर खानखाना की स्वभावतः प्रीति और दया रहती थी जिस का एक प्रमाण खानखाना की जीवनी में देखा जाता है। इस से यदि ब्राह्मण तु यदि ऐसी प्रकार विरचित देवता को कुछ प्राप्त हो गया तो कोई सन्देह नहीं।

धर्मपरायण बड़े २ नामी पुरुष साधु महात्मा कविकोविद राजमंत्री आदि तो आप के दर्शनार्थ आया ही करते थे परन्तु जहांगीर पादशाह का भी इन के पास आना कहा जाता है और कहते हैं कि एक बार गोसाईं जी का दर्शन कर जहांगीर के चले जाने पर लोगों ने आप से कहा कि "सम्राट के पिता अकबर बादशाह बड़े नामी, गुणज्ञ और बुद्धिमान थे और उन का दरबार गुणियों, पंडितों और विद्वानों से भरा रहता था जिन में बीरबल बड़े ही कुशाग्र चित्त और गुणनिधान थे।" इस पर कदाचित् गोसाईं जी ने कहा था कि "ये सब बातें हुईं तो क्या जब ईश्वर में प्रेम नहीं हुआ" और साथ ही साथ उन्होंने यह कविता भी कही थी:—

"काम से रूप प्रताप दिनेस से सोम से सील गनेस से माने।
हरिचन्द से साँच बड़े बिधि से मघवा से महीप बिषै सुख साने॥
सुक से मुनि सारद से बकता चिर जीवन लोमस तें अधिकाने।
ऐसे भये तो कहा तुलसी जो पै राजिवलोचन राम न जाने॥"

प्रथम तो अकबर के विषय में गोसाईं जी स्वयम् बहुत कुछ जानते ही होंगे, क्योंकि उन की मृत्यु के समय इन की अवस्था ७१ वर्ष की होगी। इन से ये सब बातें कहने की कोई आवश्यकता नहीं थी। दूसरे इस कविता से यह स्पष्ट ज्ञात नहीं होता कि यह कविता पादशाह के सम्बन्ध में कही गई अथवा बीरबल के सम्बन्ध में अथवा सर्व साधारण के सम्बन्ध में। पादशाह के सम्बन्ध में तो यह नहीं हो सकती क्योंकि वे 'राजीवलोचन श्री राम' से कैसे प्रीति लगा सकते थे? वे मुसलमान थे, उन्हें अपने ही धर्म्म के अनुसार ईश्वर में प्रीति करना उचित था। और वे ईश्वर को भूले भी नहीं थे वरन् उन्होंने स्वयम् 'इलाही मजहब'[1] का प्रचार किया था जिसके बहुत से माननीय लोग अनुयायी थे। और बीरबल के सम्बन्ध में भी यह बात नहीं कही जा सकती थी। क्योंकि वे भी ईश्वर से विमुख नहीं थे जैसा कि उनकी कविता से प्रतीत होता है।

१ गर्भ चढ़े पुनि रूप चढ़े पलना पै चढ़े चढ़े गोद घना के।
हाथी चढ़े पुनि घोड़ा चढ़े सुखपाल चढ़े चढ़े जोम घना के॥

---

१ इस पंथ का सविस्तर वृत्तान्त मिर्जा मुहसिन फानी कृत 'दबिस्तानुल मजाहब' के ग्रन्थ में देखिये।

बैरी भयो मित्र के बिच पढ़ै कवि ब्रह्म भने दिन बीते घना के ।
इस कलाम को जान्यो नहीं प्रभ कांधे पढ़ै चले भार जना के ॥[1]

२. यद्यपि सोच करै मन द्रव्य को गर्भ में कौन की गांठ को खायो ।
जा दिन जन्म लियो जग मा सब कंचिक कोटि लिये सँग आयो ॥
वा को भरोस क्यों छोड़त अरे मन जा सों अहार अफल में पायो ।
ब्रह्म भने जनि सोच करै यहि सोचहिं जो विरचा उलहायो ॥

हम कह सकते हैं कि गोसाईं जी की पूर्वोक्त कविता से ये कुछ कम उपदेशात्मक नहीं है। और उपर्युक्त आख्यायिका कोरे गप्प ही गप्प हैं इसमें सन्देह नहीं। अच्छा जो हो, आप लोग बीरबल का भी कुछ हाल सुन लीजिये।

ये अकबर बादशाह के एक सुविख्यात सरदार और हास्यप्रिय मित्र थे।[2] कविता भी अच्छी करते थे और कविता में अपना नाम 'ब्रह्म' रखते थे क्योंकि आप ब्राह्मण थे। इसी से पहिले इन्हें कविराय की उपाधि मिली थी फिर राजा की। इनका पद तीन हजारी का था और नगरकोट में विजय प्राप्त करने के अनन्तर इन्हें 'मोसाहब दानिश्वर' की पदवी मिली थी। अफगानिस्तान के निकट पर्वत कन्दरा में युसुफजाइयों के हाथ से इन के वीरगति को प्राप्त होने पर बादशाह को असह्य शोक हुआ था और उन्होंने दो दिन तक अन्न जल भी ग्रहण नहीं किया था। इनकी १२ १३ कविताएँ हमको 'सुन्दरी तिलक' में 'शिवसिंह सरोज' पृष्ठ २०० तथा ३४ 'मनोरमा' वर्ष १ अंक २ पृष्ठ १ में देखने में आई हैं।

इस प्रसंग में जहांगीर बादशाह का पुनः नाम आने से हम यहां पर यह कहना चाहते हैं कि गोसाईं जी के दिल्ली में बुलाये जाने एवम् वहां बानरी सेना द्वारा उपद्रव का हाल तो जहांगीर ने तुजुक जहांगीरी में सम्भवतः इस कारण से भी न लिखा हो कि उस में उस की मानहानि थी, परन्तु बनारस में इन से भेंट का हाल तथा गोसाईं जी का चित्र खिंचाने[3] की बात लिखने में क्या आपत्ति थी यदि ये सब घटनाएँ सत्य थीं? श्री कृष्ण

१ इसी आशय की एक कविता केशवदासकृत रामचन्द्रिका में भी देखी जाती है और वह रावण के प्रति अंगद का वाक्य है—

'पेट चढ़्यो पलना पलिका चढ़ि पालकिहू चढ़ि मोह मढ़्यो रे ।
चौक चढ़्यो चित्रसारी चढ़्यो गजबाजि चढ़्यो गढ़गर्व चढ़्यो रे ॥
व्योम विमान चढ़्योई रह्यो कहि केशव सो कबहूं न पढ़्यो रे ।
चेतत नाहिं रह्यो चढ़ि चित्त सों चाहत मूढ़ चिता हूं चढ़्यो रे ।'

२ इनके जन्मस्थान का निश्चय नहीं है। कोई पुरवासी इन का जन्म मकराम में अथवा अजमेर के निकट एक गांव में कोई दिल्ली कोई बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत तिहरी में कोई काशी में और कोई कालपी के पास अकबरपुर में बतलाते हैं।

३ सुनते हैं कि जहांगीर बादशाह ने गोसाईं जी का कोई चित्र खिंचवाया था और वह [illegible] में गंगाराम ज्योतिषी जी के वंशधर रणछोड़ लाल व्यास के पास है। रामाज्ञा की समालोचना देखिये।

प्रेमानुरागिनी सुविख्यात मीराबाई का भी गोसाई जी से पत्र-व्यवहार करना लोग मानते हैं और कहते हैं कि जब स्वपरिवार तथा कुटुम्बियों की ताड़ना से उन का नाकोंदम आ गया तब उन्होंने निम्नांकित पत्र भेजकर गोस्वामी जी से सम्मति मांगी थी कि ऐसे अवसर में उन्हें क्या करना उचित था।[1] उन का भेजा हुआ पत्र यह है —

"स्वस्ती श्री तुलसी गुन दूषन हरन गोसाईं।
बारहिंबार प्रनाम करउँ अब हरहु सोक समुदाइ॥
घर के स्वजन हमारे जेत सबन उपाधि बढ़ाइ।
साधु संग अरु भजन करत मुहिं देत कलेस महाइ॥
बालपने तें मीरा कीन्हीं गिरधर लाल मिताई।
सो तो अब छूटत नहिं क्यो हूं लगी लगन बरियाई॥
मेरे मातु पिता के सम हो हरिभक्तन सुखदाई।
हमको कहा उचित करिबो है सो लिखिये समुझाई॥"

उसके उत्तर में गोसाईं जी ने कदाचित् यह पद लिख भेजा था —

"जिनके प्रिय न राम बैदेही।
तजिए ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही॥
तात मात भ्राता सुत पति हित इन समान कोउ नाहीं।
रघुपति बिमुख जानि लघु तन सम तजत न सुहृद कराहीं॥
तज्यो पिता प्रहलाद बिभीषण बन्धु भरत महतारी।
गुरु बलि तज्यो कन्त ब्रज बनितन भे सब मंगलकारी॥
नातो नेह राम को मानिए सुहृदय सुसेव्य जहाँ लौं॥
अंजन कौन आँखि जो फूटै बहुतै कहाँ कहां लौं॥
तुलसी सोइ सब भाँति आपनो पूज्य प्रान तें प्यारो।
जासें होय सनेह राम सों सोइ मतो हमारो॥"[2]

कहते हैं कि यही पत्र पाकर मीराजी गृहत्यागिनी होकर तीर्थाटन को निकल गईं।

---

[1] पण्डित रघुवंश शर्मा ने मीराबाई का का गोसाईं जी की सेवा में स्वयम् उपस्थित होना लिखा है। भक्तमाल कल्पद्रुम' 'भक्तमाल राम रसिकावली' तथा 'भक्तमाल हरिभक्ति प्रकाशिका' में भी मीराबाई और तुलसीदास में बातचीत लिखी है।

[2] काशी निवासी बाबू कार्तिक प्रसाद के मतानुसार मीरा जी के पत्र के उत्तर में गोस्वामी जी ने 'सो जननी सो पिता सोई भ्राता (क० रा० उत्तरकाण्ड नम्बर ३५) वाली कविता भी लिख भेजी थी।

टाड साहब के लेखानुसार मारवाड़ वंश के मेड़ता के राठौर क्षत्रिय सरदार जोधा के चतुर्थ पुत्र दूदा की मीराबाई कन्या थी[१] और मेवाड़ के लाखा के पोते तथा मोकलदेव के पुत्र *कुम्भकरण*[२] से जो अपने पिता के पीछे सं० १४७५ (१४१८ ई०) में राजसिंहासन पर विराजमान हुये थे उन का विवाह हुआ था। ग्रियर्सन साहब विवाह का समय १४७० सं० (१४१३ ईस्वी) लिखते हैं। टाड साहब का यह भी कथन है कि मीराबाई अपने समय की बड़ी प्रसिद्ध रानी थीं—सुन्दरता के कारण भी एवम् धर्मपरायणता के लिये भी। उनके रचे पद और भजन अभी तक वर्तमान हैं और उन की प्रशंसा होती है। यमुना से लेकर द्वारिका पर्यन्त अधिक तीर्थाटन करने से लोग उन का बहुत नाम भी धरा करते थे। यह नहीं कहा जा सकता कि मीराबाई के कारण कुम्भ को पदरचना का उत्साह हुआ या उन के कविताप्रेमी होने के कारण मीराबाई की पदरचना में रुचि हुई परन्तु इस का फल गीत गोविन्द का भाष्य हुआ इत्यादि।

Koombhoo married a daughter of Rahtore of Mairta, the first of the clans of Marwar Meera Bai was the most celebrated princess of her time for her beauty and romantic piety

Her compositions were numerous, though better known to the worshippers of the Hindu Apollo than to the rulable bards Some of her odes and hymns to the deity are preserved and admired Whether she imbibed her poetic piety from her husband, or whether from her he caught the sympathy which produced the sequel to the songs of Govind we cannot determine. Her history is a romance, and her excess of devotion at every shrine of the favourite diety with the fair of Hindu from the Jamna to the world's end, gave rise to many tales of scandals."[३]

साहब बहादुर के विचार में जो आता है, उन्हों ने वही लिख मारा है, परन्तु यह बात आगे स्पष्ट विदित होगी कि उनका लेख ठीक नहीं है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र संगृहीत सूरदास कृत 'साहित्य लहरी' सटीक के पृष्ठ ११० में जो चित्तौड़ का प्राचीन प्रबन्ध दिया हुआ है वह भी राजस्थान ग्रंथ के ही आधार पर लिखा हुआ प्रतीत होता है। दोनों का वर्णन प्रायः एक सा पाया जाता है।

---

१ [illegible] द्वारा सम्पादित 'टाड राजस्थान' भ० २ पृ० १७-१८ देखिये। ग्रियर्सन साहब ने रणिवाराणा लिखकर टिप्पणी में टाड साहब वाला भी नाम दिया है।

—The modern Vernacular Literature P 12.

२ वही टाड राजस्थान, परिच्छेद ८ पृ० २२१—२६।

३ वही 'टाड राजस्थान', पृ० २२६। आगामी परिच्छेद के पृ० ११० में टीका देखिये।

बाबू कार्तिक प्रसाद खत्री ने 'मीराबाई का जीवन चरित्र' नामक ग्रंथ में लिखा है कि "मारवाड़-मेरता-निवासी राठौर सरदार जैमल्ल की परम रूपवती कन्या मीराबाई ने १५५५ संवत् में जन्म ग्रहण किया था" (पृष्ठ १) एवम् 'उदयपुर के राणा कुम्भ जी से उनका विवाह हुआ था" (पृ० ३)। आप ने अकबर बादशाह का भेष बदलकर तानसेन के साथ मीराबाई के दर्शन के लिये आना भी लिखा है (पृ० १२)।

'तारीख तुहफए राजस्थान' में मौलवी मुहम्मद उबैदुल्लाह फ़रीदी ने लिखा है कि 'सांगा को इस शिकस्त का नेहायत रंज हुआ वह इसी साल के अन्दर मेवाड़ के पहाड़ी इलाके में मौत से या किसी के ज़हर देने से इन्तकाल कर गये ...... इन महाराणा के दो बेटे इन के सामने गुज़र चुके थे जिन में से बड़े भोजराज के साथ मेड़तिया राठौर जयमल्ल की रिश्तेदार बहन मीराबाई जिस के कृष्ण भक्ति के ज़माने में मशहूर हैं ब्याही गई थी।"

मीराबाई सम्बन्धी लेखों में ऐसा मतभेद पाने से हम ने सुविख्यात इतिहासवेत्ता जोधपुरनिवासी मु० देवीप्रसाद मुन्सिफ के पास इस विषय का एक पत्र भेजा। आप ने कृपा-पूर्वक जो उत्तर भेजा है उसका सारांश नीचे लिख दिया जाता है —

मीराबाई और राणा कुम्भा की शादी का हाल भी मिनजुमले बहुत-सी गलतीहाय टाड साहब के है। उन्हों ने चित्तौड़ में राणा कुम्भा और मीराबाई के बनाये हुये मन्दिर पास पास में देखकर ऐसा गलत ख्याल कर लिया। सहीह तारीखी ख़बर यह है कि मीराबाई मेड़ता के राव दूदा जी राठौड़ के बेटे रतन सेन की लड़की थी और उनकी शादी राणा सांगा के दूसरे बेटे भोजराज से हुई थी जो अपने बाप की ज़िन्दगी में मर गया था। मीरा बाई का इन्तकाल सं० १६०४ में हो गया था। ......मीरा बाई को राणा विक्रमादित्य के दीवान बीजा महाजन बीजावर्गी ने ज़हर दिया था ...... मीराबाई का शाप बीजावर्गी कौम को अब तक लगा हुआ है और वे मानते हैं कि उस शाप से हमारी औलाद और दौलत में तरक्की नहीं होती है। मैंने मीराबाई का हाल जहां तक मुझको मालूम हुआ है उनकी स्वानेह उमरी 'महिला मृदुवानी' में दर्ज किया है।"

'महिला मृदुवानी' देखने से यह भी ज्ञात हुआ कि सं० १५७३ में इन का विवाह हुआ था परन्तु ये शीघ्र ही विधवा होकर भगवद्भजन करने लगी थीं। उन के देवर महाराणा रतन सिंह विक्रमादित्य सिंह तथा उदय सिंह तीनों क्रम से अपने पिता की गद्दी पर बैठते गये। इनमें से रतन सिंह तथा विक्रमादित्य इन की ड्योढ़ी पर साधु सन्तों का आना-जाना देखकर चिढ़ते थे और उन लोगों के निषेध करने पर भी नहीं मानने से विक्रमादित्य ने अपने दीवान की सम्मति से चरणामृत के नाम से इन के पास विष भेजा था। ये भाव से अभ्यास उस को पी गई। परन्तु विष उन को नहीं चढ़ा और राणा भी का मुँह उतर गया। फिर ये तीर्थ यात्रा को गईं और कुछ काल के बाद श्री द्वारका में गोलोकवासिनी हुईं।

मुं शी जी का पत्र और लेख मालवी साहब के लेख से मिलता है। भेद इतना ही है कि मौलवी साहब ने भोजराज को राणा सांगा का ज्येष्ठ पुत्र और मीराबाई को जयमल्ल की बहन लिखा है। अन्य लोगों के लेख इन दोनों महात्माओं के लेखों से सर्वथा भिन्न पाये जाते हैं। कार्तिक प्रसाद ने मीराबाई को जयमल्ल की कन्या और मौलवी साहब ने बहन

कहा है। टाड के अनुसार ये जयमल की पुत्री तथा दूदा की कन्या थी। मुंशी देवीप्रसाद इन्हें मेड़तिया राठौर रतन सिंह की बेटी राव दूदा जी की पोती एवम् जोधपुर के बसानेवाले राव जोधा की परपोती बताते हैं।

चाहे ये किसी की कन्या या बहन हों इस से हमलोगों को इतना प्रयोजन नहीं है। प्रयोजन है इस बात से कि गोसाईं जी के साथ उन का पत्र-व्यवहार करना या मिलना सम्भव है या नहीं?

अब यदि इन का कुम्भ राणा की पत्नी होना प्रतीत कीजिए तब तो ये बातें सर्वथा असम्भव हैं। क्योंकि कुम्भ राणा सं० १४७५ में राजसिंहासन पर विराजमान हुए थे और उन का मीराबाई से संवत् १४७० में विवाह होना कहा जाता है। यदि मीराबाई का विवाह १२ वर्ष की अवस्था में माना जाय तब गोस्वामी जी के जन्मकाल ही के समय (किसी हिसाब से क्यों न हो) उन की अवस्था न्यूनाधिक १०० वर्ष की हो जाती है। फिर गोसाईं जी के संग पत्र-व्यवहार कराने के लिए उन्हें कितने दिन तक जीवित रखिएगा?

यदि राणा सांगा के पुत्र भोजराज से विवाह मानिए तो सम्भव और असम्भव दोनों ही दीखता है। क्योंकि राणा सांगा ने १५८४ ई (१५२७ ई) में शरीर त्याग किया और गोसाईं जी का जन्म लोग सं० १५८९ में मानते हैं। अब यदि भोजराज का जन्म राणा जी की मृत्यु के २०-३० वर्ष पहले भी हुआ हो तो उन की स्त्री का गोसाईं जी का समकालीन होना और इन से पत्र व्यवहार करना कोई आश्चर्य की बात नहीं। परन्तु मुंशी जी मीराबाई का श्री कृष्ण में लीन होना सं० १६०३ में बताते हैं, जबकि गोसाईं जी की अवस्था १५-१६ वर्ष की होगी। उसी समय क्या इन की सुख्याति ऐसी फैल गई थी कि मीराबाई इन से धर्म्म सम्बन्धी सम्मति मांगती? उस समय तो ये विरक्त भी नहीं हुए होंगे कदाचित् इन का विवाह भी नहीं हुआ होगा। अतएव यदि मुंशी जी लिखित मीराबाई का मृत्यु काल ठीक माना जाय तो दोनों के समसामयिक होने पर भी दोनों में पत्र-व्यवहार की सम्भावना नहीं। और मुंशी जी का कथन ठीक नहीं मानने का[1] हम कोई कारण नहीं पाते। यदि है तो यही कि बहुत से लोग इन दोनों 'एकमेव' व्यक्तियों में पत्र-व्यवहार होना मानते आते हैं। परन्तु लोगों ने तो मीरा जी के मुख से उन के पूज्य पति के प्रति भी बहुत सी ऐसी बातें कहलवाई हैं जो मीराबाई जैसी धर्मी तथा पतिव्रता स्त्री के मुख से निकलना संभव नहीं।

हां यदि 'मानस-मयंक' के अनुसार गोसाईं जी का जन्म १५५४ सं० में माना जाय तो मीरा जी के शरीरत्याग के समय आप की अवस्था ५० वर्ष की होगी तो सही परन्तु उस समय भी आप की सुख्याति के सम्बन्ध में हम को सन्देह ही है। हमारी यह धारणा है कि आप की सुख्याति जिस से लोग धर्म्म सम्बन्धी बातों में आप से अनुमति लेने लगे हों रामायण रचना के पीछे ही हुई होगी। और मयंक के अनुसार आप ने उस ग्रंथ की रचना ७७-७८ वर्ष की

---

१ मुंशी जी का मत अवश्य प्रामाणिक (मानने योग्य) है, क्योंकि एक तो आप गुणवान इतिहासवेत्ता दूसरे मीराबाई के स्वदेशी।

अवस्था में (अर्थात् सं० १६१२ में) आरम्भ की जब कि मीरा को स्वर्गप्रयाण किये १७ वर्ष हो गये होंगे।

हम को जो कुछ यहां तक अवगत हुआ है पाठकों के सामने हमने उसे उपस्थित कर दिया है। विज्ञ वाचक वृन्द निज विवेकता से जो उचित समझें उसे स्वीकार करें।

हां ! हम इतना और कह देंगे कि "जिनके प्रिय न राम बदेही"—इस विशेष पद में कोई भी ऐसा शब्द नहीं है जिससे यह निश्चयपूर्वक कहा जाय कि यह पद मीराबाई के पत्र के उत्तर ही में लिखा गया था, अन्यथा नहीं। हमारी समझ में तो इस की रचना सर्वसाधारण के उपदेश हेतु भी कही जा सकती है।

निःसन्देह मीराबाई का पत्र स्पष्ट है। परन्तु जैसे पं० ज्वाला प्रसाद जी ने अपनी बड़ी रामायण में जनक जी का दशरथ जी के पास भेजा हुआ पत्र रख दिया है वैसे किसी को वह पद ही बना देने और रख देने में क्या विघ्न हुआ होगा?

श्री सीता रामशरण भगवान प्रसाद जी के लिखा मु० तपस्वी रामजी ने लिखा है कि सन्तों की सम्मति से मीरा जी गृहत्यागिनी होकर विरक्त हो गई। उन्होंने गोसाईं जी का नाम स्पष्ट नहीं लिखा है।

मीराजी की मृत्यु संवत् १६ ४ में मानने से अकबर का तानसेन के साथ उनसे मिलने की बात भी प्रमाणित नहीं होती क्योंकि अकबर सं० १६१२ (१५५६ ई०) में राजसिंहासन पर विराजमान हुये थे।

ये सब जो कुछ हो परन्तु मीरा जी एक भक्तशिरोमणि थीं। उन की गणना प्रथम श्रेणी के भक्तों में है। उन के उपास्य देव श्रीकृष्ण रणछोड़ जी थे। बाल्यावस्था ही से वे उन के रंग में रंगी हुई थीं और उन्हीं के ध्यान तथा गुणगान में मग्न रहा करती थीं। मीरा की विरचित 'नरसी जी का मायरा', 'गीत गोविन्द की टीका' तथा 'राग गोविन्द' अभी तक वर्तमान हैं। उन के रचे सरस भजन और पद मन्दिरों में गृहस्थों के घरों में एवम् सन्त-मण्डलियों में बड़े प्रेम से गाये जाते हैं। उन की कविता सुकोमल मधुर भक्तिरसपूर्ण ईश्वरप्रेमवर्द्धिनी एवम् वैराग्य उत्पादिनी पाई जाती हैं। नाभा जी कृत भक्तमाल तुलसीदास कायस्थ कृत भक्तमाल श्री सीताराम शरण भगवान प्रसाद कायस्थ कृत भक्तमाल की टीका आदि ग्रंथों में उनकी कथा सविस्तर लिखी हुई है। काशी निवासी स्वर्गीय बाबू कार्तिक प्रसाद खत्री ने उन की एक पृथक जीवनी लिखी है। जोधपुर निवासी मु० देवी प्रसाद ने भी 'महिला मृदुवाणी' में उनके जीवन वृत्तान्त का वर्णन किया है।

'बनारसी विलास'[१] से विदित होता है कि बनारसी दास तथा गोस्वामी जी से आगरा में कई बार सम्मिलन हुआ था और दोनों में मित्र भाव भी था। बनारसीदास एक जैन महात्मा पंडित तथा सुकवि थे। गोस्वामी जी के स्वर्गवास के समय उन की अवस्था ३७ वर्ष की थी। सज्जनों से मिलना उन का एक स्वभाव था।

---

१ जैपुरी (मध्य प्रदेश) निवासी नाथूराम सम्पादित ग्रंथ पृ० १०३—४ और १११ देखिये।

कहते हैं कि एक बार के सम्मेलन में गोसाईं जी ने उन्हें अपनी रामायण की एक प्रति दी थी और बनारसी दास की भेंट की हुई पार्श्वनाथ स्वामी की स्तुतिमय कई एक कविताएं वे अपने साथ लेते गये थे। कई वर्ष बाद फिर दोनों पुरुषों में भेंट होने पर प्रसंगवश स्वामी जी ने रामायण के विषय में उनसे प्रश्न किया। उस के उत्तर में बनारसी दास ने उसी समय शीघ्र लिखी हुई कविता रचकर उन्हें सुनाई।

"विराजै रामायण घट माहिं। मरमी होय मरम सो जानै मूरख मानै नाहिं॥ आतम राम ज्ञान गुन लछमण सीता सुमति समेत। शुभ प्रयोग वानरदल मंडित वर विवेक रन खेत॥ ध्यान धनुष टंकार शोर सुनि गई विषयदिति[1] भाग। भई भस्म मिथ्या मत लंका उठी धारना आग॥ जरे अज्ञानभाव राक्षस कुल लरे निकांछित सूर। जूझे रागद्वेष सेनापति संसै गढ़ चकचूर॥ विलखत कुम्भकरन भवविभ्रम, पुलकित मन दरियाव। थकित उदार वीर महिरावन, सेतुबंध सम भाव॥ मूर्छित मंदोदरी दुराशा, सजग चरन[2] हनुमान। घटी चतुर्गति परनति सेना छुटे छपक गुन बान॥ निरखि सकति गुन चक्र सुदर्शन उदय विभीषन दीन। फिरै कबंध मही-रावन की प्रान भाव सिर हीन॥ इह विधि सकल साधु घट अन्तर, होय सहज संग्राम। यह विवहार दृष्टि रामायण, केवल निश्चय राम॥"

गोस्वामी जी उन के इस अध्यात्म चातुर्य को देख बहुत प्रसन्न हुये और आप ने कहा कि "मैं इस सुन्दर कविता के बदले एक पार्श्वनाथ स्तोत्र जो आप की पार्श्वनाथ स्तुति पढ़कर मैंने बनाया है आप को भेंट करता हूं। उस का नाम 'भक्त विरदावली' था। उस के दो छन्द बनारसी विलास के सम्पादक ने स्वसम्पादित ग्रंथ में उद्धृत किया है :—

"पद जलज श्री भगवान जू के, बसत हैं उर माहिं।
पहुँ गति विहंडन तरनतारन, देख विघन विलाहिं॥
धकि धरनिपति नहिं पार पावत, नर सो बपुरा कौन?
जिहि लसन करुना जल पयोधर, मज्जहिं भविजन लौन॥
दुति उदित त्रिभुवन मध्य भूषन, जलधि ज्ञान गंभीर।
जिहि माथ ऊपर छत्र सोहत दहत दोष अधीर॥
जिहि नाथ पारस जुगल पंकज चित्त चरनन जास।
रिधि सिद्धि कमला अजर राजित, भजत तुलसी दास॥"

---

१ मूरनता।

२ मगरङ् चरित्र।

और सम्पादक महाशय ने लिखा है कि 'उक्त विरदावली में तुलसी दास नाम के अतिरिक्त और कोई बात ऐसी नहीं है जिससे यह निश्चय हो सके कि ये 'तुलसी गोसाईं जी ही थे अथवा कोई अन्य। परन्तु गोसाईं जी का होना सर्वथा असम्भव नहीं। क्योंकि उस समय के विद्वानों में आजकल की नाईं धर्म्मद्वेष नहीं था। वे (अर्थात् गोस्वामी जी) बड़े सरल हृदय के भक्त थे।

काशी के भी मधुसूदन स्वामी से भी गोसाईं जी की मित्रता कही जाती है। मधुसूदन जी का वर्णन अन्यत्र रामायण के प्रकरण में हुआ है।

चतुर्दश परिच्छेद

बन्धु और वंशज

श्री नन्ददास जी को कोई गोसाईं जी का सगा भाई और कोई गुरु भाई बताते हैं और कहते हैं कि जब गोसाईं जी श्री वृन्दावन पधारे थे तब श्री नन्ददास जी वहां इन से मिलने आये थे। गोसाईं जी ने उन्हें प्रेम आलिंगन कर कुशलक्षेम पूछने के अनन्तर विहँसि कर उन्हें रामचरित गान करने को कहा। इस पर उन्होंने हाथ जोड़कर निवेदन किया कि 'यदि मेरा नाम आप लोग दशरथ दास रखते तो मैं रामगुण कथन करता। अब नन्द दास हो गया तब नन्दनन्दन को छोड़ दूसरे का गुण कैसे गान करूं।' गोसाईं जी उनकी अनन्यता देख बहुत प्रसन्न हुवे थे। यह कथा जो कुछ हो परन्तु यह बात विचारणीय है कि नन्ददास जी इन के भाई थे या नहीं और यदि थे, तो कैसे भाई थे।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने 'उत्तरार्द्ध' भक्तमाल के एक छप्पै में कहा है:—
श्री तुलसीदास प्रताप ते नीच ऊँच सब हरि भजै॥ नन्ददास अनुज द्विज कुल मति गुनमंडित।... रामायण रचि राम भक्ति जग थिर करि राखी इत्यादि। और दूसरे में कहा है—"श्री नन्ददास रसरासरत प्रान तज्यो सुधि सी करत॥ तुलसिदास के अनुज सदा विट्ठल पदचारी" इत्यादि।

इन दोनों छन्दों को स्वसम्पादित रामायण में उद्धृत करके म० कु० रामदीन सिंह जी ने लिखा है कि यहां एक बात और भी शंका की हुई कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी नन्ददास को तुलसी दासजी के अनुज कहते हैं और ऊपर के लेख को देखने से मालूम हुआ कि ये दोनों दो स्थान के और दो ब्राह्मण हैं, फिर अनुज कैसे हो सकते हैं। यदि गुसाईं ही को छोटे भाई के लेखा के नाम से लिखा हो तब तो एक रीति से ठीक है अथवा अनुज का अर्थ 'पीछे किया हो तब भी ठीक हो सकता है। जैसे 'भक्तमाल' के मंगलाचरण में लिखा है —
भक्तमाल अनुजै भये भक्त जगत विख्यात। तिन सब नव नव चरित नव भक्तमाल गुम्फात॥

इस से निश्चय का पश्चाद्भित यह आशय है कि पहले गोसाईं जी का जन्म हुआ और तब नन्ददास जी का चाहे वे सगे भाई हों या न हों। परन्तु ऐसे तो अनेक महात्मा गोसाईं जी के अनुज कहा सकते हैं नन्द दास जी ही की क्या बात है।

बात यह है कि नन्ददास जी रामपुर के रहनेवाले एक ब्राह्मण थे और इन के बड़े भाई का नाम चन्द्रहास[1] था। कोई इन्हें कन्नौज के पास के रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण कहते हैं। दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता में नन्ददास को तुलसीदासजी का सगा भाई लिखा है। इसी से भारतेन्दु ने भ्रमवश इन्हें रामायण के रचयिता तुलसीदास का भाई बना दिया है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित रामायण में लिखा है कि ये दूसरे तुलसीदास सनाढ्य ब्राह्मण थे जो कि नन्ददास के जीवन चरित्र से स्पष्ट है। वल्लभ सम्प्रदाय में नन्ददास का जीवन चरित्र प्रसिद्ध है।[२]

इन सब बातों से तो सगा भाई होने की कथा निर्मूल होती है। अब रही गुरुभाई की बात। तो नन्ददास जी अष्ट छापों में अर्थात् उन मुख्य कृष्णभक्तों में से हैं जिन्होंने कृष्णलीला सम्बन्धी ग्रंथों तथा पदों की रचना की है एवम् व्रजप्रदेश में श्री कृष्ण के मन्दिरों में जिनके पदों का गान किया जाता है। श्री सूरदास श्री कृष्णदास श्रीपरमानन्द दास तथा श्री कुम्भनदास श्री १०८ वल्लभाचार्य जी के शिष्य और श्री छीत स्वामी श्रीगोविन्द स्वामी, चतुर्भुजदास तथा श्री नन्ददास श्री विट्ठलनाथ जी के शिष्य—ये ही आठ महापुरुष अष्टछाप के भक्त कहलाते हैं।[३]

इस से स्पष्ट पाया जाता है कि नन्ददास जी, श्री विट्ठल महाराज के शिष्य तथा वृन्दावन विहारी मयूर-मुकुट-धारी श्री कृष्णमुरारी के उपासक थे और गोसाई जी श्री नरहरि दास (अथवा किसी अन्य महापुरुष) के शिष्य एवम् अयोध्या वन-विहारी धनुष-बाणधारी श्री रामखरारी के उपासक थे। तब दोनों गुरुभाई भी कैसे हो सकते थे!

---

१ श्री सीताराम शरण भगवान प्रसाद ने 'भक्त माल की टीका' पृ १०११ में 'अग्रज' अर्थात् बड़ा भाई लिखा है। और 'भक्तमाल कल्पद्रुम' में इन्हें नन्ददास जी का पिता लिखा है। कदाचित् उस के रचयिता ने 'अग्रज' को 'अंगज' पढ़कर ऐसा लिखा है। रानी कमल कुंवरी बैजनाथ दास तथा पंडित रघुनाथ शर्मा ने बरेली के समीप हवेली ग्राम के रहनेवाले नन्ददास जी को गोसाई जी का भाई बना दिया है। क्योंकि रानी साहबा एवम् बैजनाथ दास ने नन्ददास के कुटुम्बियों के द्वारा एक मृतक गऊ उन के द्वार पर और पंडित जी ने एक मरी बछिया उन के खेत में फेंकवा कर उन पर हत्या लगाने की बात कही है जिस कथा को रामपुर वाले नन्ददास से कुछ सम्बन्ध नहीं। उपर्युक्त 'भक्तमाल की टीका' पृ ६६० और १०११ देखिये।

२ उस रामायण में जीवन चरित्र का पृ० ३२ देखिये।

३. भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र लिखित 'चरितावली' पृ ५७ में तथा 'शिवसिंह सरोज' में यही सब भगवत्मय नाम दिये हुये हैं। परन्तु 'भक्तमाल कल्पद्रुम' तथा 'भक्तमाल हरिभक्ति प्रकाशिका' में कुम्भनदास तथा श्री गोविन्द स्वामी का नाम नहीं देकर श्री श्याम और श्री हरिदास के नाम लिखे हुये हैं। और श्री सीतारामशरण भगवान प्रसाद ने 'भक्तमाल की टीका' पृ० १०१२ में श्री कुम्भन दास के स्थान में विष्णुदास तथा श्री छितिस्वामी के स्थान में क्षेम स्वामी लिखा है। सम्भवतः 'विष्णु' और 'क्षेम' कुम्भन तथा छिति का अपभ्रंश या नामान्तर है।

लोगों का यह अनुमान कि नन्ददास जी भी पहले नरहरि दास जी के पास से पीछे श्रीकृष्णानुरक्ति के कारण श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के शिष्य हो गये हों उन के आचरण तथा धर्मनिष्ठा पर आक्षेप करता है और सिद्ध करता है कि उन का मन [illegible] नहीं था, एक पक्ष को परित्याग कर दूसरे का अवलम्बन किया करते थे; परन्तु इस महात्मा के सम्बन्ध में हम ऐसा कहने का साहस नहीं कर सकते।

यदि इन दोनों महापुरुषों ने एक ही गुरु के पास विद्याध्ययन किया हो और दोनों में अति घनिष्ठ मित्रता हो तो हो सकता है कि वे दोनों गुरुभाई थे और परस्पर अधिक प्रीति रीति के कारण किसी २ ने इन लोगों को सगा भाई भी समझ लिया हो तो सन्देह नहीं। हम तो बार एक मनुष्यों का जानते हैं कि जिन लोगों के विद्याध्ययन काल में सदा संग तथा घनिष्ठ सम्बन्ध रहने एवम् परस्पर विलक्षण प्रीति के कारण हमें चिरकाल तक यही विश्वास था कि वे लोग आपस में सगे भाई थे और यदि हमें चिरवासी व्यक्ति से ज्ञात नहीं हुआ होता कि वे लोग भिन्न स्थानों के रहनेवाले भिन्न जातियों के लड़के थे तो हम आज भी समझते कि वे लोग सगे भाई थे और उन्हें देखकर अब भी कभी २ ऐसा भ्रम हो ही जाता है।

हमारी समझ में जैसे लोग रामपुर निवासी नन्ददास जी तथा बरसी निष्ठवर्णी हवेली निवासी नन्ददास को एक बना कर उधर गड़बड़ मचाते हैं वैसे ही इधर रामायण के रचयिता तुलसीदास और दो सौ वैष्णवों की वार्ता वर्णित तुलसीदास को भी एक बनाकर लोगों ने भ्रमोत्पादन कर दिया है।

पूर्वोक्त बातों से विदित होता है कि नन्ददास जी गोसाईं जी के भाई नहीं थे। अन्य कोई इन का भाई हो तो हो।

जिन नन्ददास जी को लोग गोस्वामी जी का भाई बनाते हैं वे भी प्रशंसनीय कवि थे। आप की प्रशंसा में कवियों ने कहा है— "और सब गढ़िया नन्ददास जड़िया" अर्थात् और लोग कविता रूपी आभूषणों के गढ़नेवाले हैं और नन्ददास कविता भूषणों में नग जड़नेवाले हैं। आप ने रास पंचाध्यायी रुक्मिणी मंगल दशम स्कन्ध, नाममाला, अनेकार्थ दानलीला मानलीला आदि ग्रन्थों की रचना की है।

कहा जाता है कि गोसाईं जी को तारक नामक एक पुत्र भी हुआ था और वह बालकाल ही में स्वर्गवासी हो गया।

जो हो अब तो इन की लेखनी से निर्गत ग्रंथ समूह ही इन के वंशधरों के समान हैं एवम् वंशजों से बढ़कर इन के नाम को चिरस्थायी करनेवाले हैं। सब मनुष्यों के मुख से जो सदा इन की प्रशंसा हुआ करती है वही नित्य तर्पणादि के तुल्य है। पूना आदि स्थानों में जो इन की मृत्यु तिथि पर उत्सव हुआ करता है वही वार्षिक श्राद्ध के सदृश है। एक मुसल्मान कवि ने सच कहा है :—

"रहता था सखुन से नाम क़यामत तलक है ज़ौक़।
औलाद से तो बस यही दो पुश्त, चार पुश्त॥"

पञ्चदश परिच्छेद

भ्रमण

गोस्वामी जी काशी और अवध से कभी २ तीर्थाटन तथा भ्रमण के लिये अन्यत्र भी चले जाते थे। कब कहां गये थे यह बात तो नहीं कही जा सकती, परन्तु जहां-जहां इन का जाना सुना गया है उस का संक्षिप्त वृत्तान्त पूर्ववर्ती लेखकों के लेखानुसार यहां पर वर्णित होता है।

एक बार आप काशी से पुरुषोत्तम क्षेत्र जाते समय भृगु आश्रम (बलिया) पहुँचे। यहां भी भृगु जी का स्थान बताते हैं और प्रति वर्ष कार्तिक की पूर्णमासी को बड़ा भारी मेला होता है। वहां से हंसनगर तथा परसिया[1] होते गायघाट के हयहोवंशीय राजा गम्भीर देव के यहाँ ठहर आप ने उन्हें बड़ा कृतार्थ किया। अब उन के वंश के लोग हल्दी में निवास करते हैं। जो युक्तप्रदेश के बलिया जिला में शाहाबाद (आरे) जिला के सामने गंगा के वामतट पर वर्तमान है। इस समय परसिया और गायघाट गंगा के दोनों तटों पर स्थित हैं। उनके उत्तर के भाग तथा परगना तथा जिला बलिया में है और दक्षिणस्थ भाग परगना भोजपुर जिला शाहाबाद में ब्रह्मपुर से एक कोस उत्तर गंगा के कूल पर है।

गायघाट के सामने गंगा पार उतर कर आप शाहाबाद जिला में ब्रह्मपुर[2] पहुँचे। यहां पर ब्रह्मेश्वरनाथ महादेव का मन्दिर है और प्रतिवर्ष फाल्गुन तथा बैशाख की शिवरात्रि को यहां मेला हुआ करता है। गाय बैल, घोड़ा आदि की अच्छी बिक्री होती है। प्रवाद है कि स्वयम् ब्रह्मा जी ने ब्रह्मेश्वरनाथ की स्थापना की है। महादेव जी का दर्शन कर आप वहाँ से निकट ही कांट (कान्त)[3] गाँव में आये परन्तु वहां के अधिवासियों की राक्षसी प्रकृति देख आप जो वहां से आगे बढ़े तो थोड़ी ही दूर अनन्त[4] अहीर के पुत्र मंगरू से भेंट हुई।

---

१ यहाँ पराशर मुनि का स्थान बताते हैं।

२ ३ ये दोनों गाँव शाहाबाद जिले के बक्सर सबडिविजन परगना भोजपुर में हैं। रघुनाथपुर ईस्ट इण्डियन रेलवे स्टेशन से लगभग एक कोस उत्तर गंगा के समीप बसे हैं। न जाने लोगों ने इन्हें बलिया जिला में कैसे लिखा है। ब्रह्मपुर से कांट थोड़ी ही दूर पूर्व दक्षिण है। निकटवर्ती होने के कारण लोग दोनों का नाम मिलाकर कांट ब्रह्मपुर कहा करते हैं।

४ इस नाम के दो अहीरों का वर्णन लोकगीतों में सुना जाता है।

वह बड़ा ही सन्तसेवी था और वह आदर के साथ गोसाईं जी को अपनी गोशाला में उतार कर लाकर उपस्थित हुआ। गोसाईं जी ने उस का खाना बना कर भोजन किया। आप के आज्ञानुसार प्रभुभक्ति तथा वंशवृद्धि का वर मांगने पर गोस्वामी जी ने आशीर्वाद दिया कि यदि तेरे वंशधर चोरी नहीं करेंगे और किसी को दुःख नहीं देंगे तो तेरी मनोकामना अवश्य पूरी होगी। सुनते हैं कि उसके वंशज अभीतक अतिथि सेवा में तत्पर रहते हैं और चोरी नहीं करते।

मंगल की १८—१९वीं पीढ़ी में बिहारी अहीर के पुत्र साधुसेवी मनीचर और माधो इस समय वर्तमान हैं। वहां से चलकर पर बेलापनात में गोस्वामी जी को शाण्डिल्यगोत्रीय ब्राह्मण गोविन्द मिश्र तथा रघुनाथसिंह क्षत्रिय से भेंट हुई। उन लोगों ने आप की बड़ी सेवा शुश्रूषा की। ये लोग विद्वान पण्डित और सत्संगी थे। इस से गोसाईं जी वहां प्रायः एक मास ठहर गये। आप के सहवास से उन लोगों को और अधिक ज्ञान तथा वैराग्य उत्पन्न हुआ। अपनी सेवा से प्रसन्न कर उन लोगों ने हरिचरणों में प्रेमाभक्ति का शुभाशीर्वाद पाया।

आप ने उस गांव का नाम बदल कर उस का नया नाम रघुनाथपुर रखा जिस में कि रघुनाथ सिंह का यादगार भी रहे और इस बहाने लाखों मनुष्यों के मुखों से बराबर भगवान का नाम भी उच्चारण हुआ करे। रघुनाथपुर आरा से पश्चिम ईस्ट इण्डिया रेलवे का स्टेशन है। नूतन नाम रखे जाने के बाद से यह बस्ती सब प्रकार से समृद्धिशालिनी हो रही है।

जहां गोसाईं जी ठहरे थे वहां अभी तक उन के नाम का एक चबूतरा विद्यमान है। उस के उत्तर एक पुराना सरोवर है जो तुलसी कूप के नाम से प्रसिद्ध है। प्रत्येक पर्व पर नगरनिवासी आदि उस चबूतरे का पूजन करते और वहां उत्सव मनाते हैं। नित्य प्रति पूजा के लिये रघुनाथ सिंह के वंशजों की दी हुई कुछ बिगहे की भूमि है और बाजार तथा गोलों से गोसाईं जी के नाम पर चुंगी निकाली जाती है।

उस चबूतरा पर लोगों का इतना विश्वास है कि अनावृष्टि के समय सब नगर निवासी मिलकर वहां हवन तथा ब्राह्मणभोजन कराते हैं और वृष्टि भी शीघ्र ही हो जाती है और उस स्थान के शरणागत होने से लोगों की सब मनसाएं सफल होती हैं। १९२९ ई० की फाल्गुनी शिवरात्रि को एक पक्षाघात पीड़ित २८ वर्ष के वयस का साधु किसी प्रकार से वहां पहुंच गया। बोलने चालने की पूरी शक्ति नहीं थी। आठ महीने के बाद वह प्रायः नीरोग हो गया है जिससे लोगों की चबूतरे में श्रद्धाभक्ति और भी बढ़ गई है और लोग गोसाईं जी की मूर्ति संस्थापित करने के यत्न में हैं।

रघुनाथ सिंह के कुल में अब कोई नहीं है। किन्तु उन का टूटा फूटा गढ़ अभीतक वर्तमान है।

गोविन्द मिश्र के ज्येष्ठ पुत्र रामभरोसे के वंश में हरिदत्त मिश्र महेश्वर मिश्र जगदम्बा मिश्र तथा शिवार्चन मिश्र विद्यमान हैं। गोविन्द मिश्र अपने द्वितीय पुत्र निवास मिश्र को साथ लेकर पर्यटन करते आरा जिला के बी० एन० डब्ल्यू रेलवे के भीर स्टेशन के समीपस्थ मझना ग्राम चले गये और वहां से कहीं तपस्या को निकल गए। किसी को कुछ पता न लगा। किन्तु उन के पुत्र के वंशधर कृष्ण वल्लभ उस गांव में वर्तमान हैं।

कदाचित् सम्वत् १६४१-४४ में गोसाईं जी यज्ञोपवीत आये थे। क्योंकि पूर्वोक्त मिश्रों के ठकुर प्रबन्ध पुस्तक से जाना जाता है कि उन के आगमन के थोड़े ही दिन बाद १६४५ में गोविन्द मिश्र घर से निकल गये।

रघुनाथपुर के निकटस्थ कपी गाँव में भी वहां के मालिक जोरावर सिंह ने गोसाईं जी का सादर आतिथ्य किया था। उनके वंश में इस समय गोविन्द सिंह जी हैं।[1]

आरा पुरातत्त्व' में लिखा है कि 'रघुनाथपुर से पूरब बिहिया स्टेशन के समीप कटेयां गांव में भी गोसाईं जी गये थे। वहां इनके उपदेश पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। अतएव इन्होंने कहा कि यह गाँव काँटों से ही भरा हुआ है। तभी से यह गाँव कटेयां कहलाने लगा। पहले उस का कुछ और ही नाम था। जिला सारन में मैरवा के हरिराम ब्रह्म बड़े प्रसिद्ध हैं। कनकशाही सिरोन के अत्याचार से आप प्राण त्याग कर आप ब्रह्म हुये हैं। वहां प्रतिवर्ष रामनवमी को धूम धाम से मेला लगा करता है। गोरखपुर सारन आदि आस पास के जिलों में यह बात प्रसिद्ध है कि हरिराम जी के यज्ञोपवीत के समय गोस्वामी जी का वहां जाना हुआ था। मैरवा भी एन० डब्ल्यू० रेलवे लाइन का एक स्वात स्टेशन है और छपरा शहर से पश्चिम है।

एक समय गोसाईं जी जनकपुर और बैद्यनाथ के निमित्त मिथिला गये थे। कहते हैं कि वहां के ब्राह्मणों को हाजीपुर आदि जो १२ गांव श्री रामचन्द्र के विवाह के समय कर रहित दान दिये गये थे उन्हें पटना के सूबेदार ने छीन लिया था। गोसाईं जी ने अपने उद्योग से श्री हनुमत जी की कृपा से उन सब गांवों को उन ब्राह्मणों को लौटवा दिया। विवाह के समय श्री राम की ओर से ब्राह्मणों को मिथिलाप्रदेशान्तर्गत गांव कैसे दान मिले यह बात हमारी समझ में नहीं आती। वे सब गांव तो निश्चय महाराज जनक के अधीन होंगे, उन पर श्री दशरथ जी का स्वत्व तो कदापि नहीं होगा। हां श्री जनक जी ने अपनी ओर से श्रीरामचन्द्र से दान कराया हो तो सम्भव हो सकता है। परन्तु सुमेरपुर निवासी पं० रघुनाथ शर्मा बम्बई के 'गुजराती' प्रेस की छपी रामायण में लिखा है कि "जो दानपत्र ब्राह्मणों ने दिखलाया था उसपर श्री हनुमान जी की गवाही थी।" यह दूसरा ही गुल खिला। श्रीरामचन्द्र का श्री हनुमान जी से वनवास के समय किष्किन्धा में परिचय हुआ और पंडित जी ने गवाही करने के लिए उन्हें *विवाह ही के समय बुलाया। क्या खूब !* और प्राचीन दानपत्रों में हमें गवाही की बातें कहीं नहीं सुनने में आईं।

रानी कमल कुँवरी के लेख से हनुमान जी की गवाही कुछ सम्भव दीखती है। वे विवाहकाल का दान नहीं कहतीं। उन का कथन है कि एक समय जब ब्राह्मणों ने रामचन्द्र को जनकपुर में बुलाया था तब वे सब गांव दान दिये गये थे। सम्भव है कि वन से लौट आने पर ससुराल गये हों और उस समय हनुमान जी भी गये हों पर इस का प्रमाण कहीं नहीं पाया जाता। वाल्मीकि जी ने तो राज्याभिषेक के अनन्तर हनुमान जी को विदा ही कर दिया है। गोसाईं जी ने उन्हें अवध ही में रघुनाथ जी के समीप रखा है सही परन्तु न गोसाईं जी

1 इन बातों के जानने में हमें गोविन्द मिश्र के कुटुम्बी कामेश्वर नामक एक युवक से सहायता मिली है।

और न वाल्मीकि जी रामचन्द्र के फिर जनकपुर जाने और गाँव दान करने की बातें कहते हैं। और यदि गये भी हों तो उस प्रान्त में इन के गाँव दान करने का अधिकार सिद्ध नहीं होता। उधर इन का इलाका था ही नहीं। और न इन से जनक जी का गाँव दान कराना सुना गया। यदि इस की कहीं भनक भी मिलती तो गोसाईं जी इसे लिखे बिना नहीं रहते जबकि इन्होंने रामचन्द्र के विवाह का वृत्तान्त तथा दान दहेज का हाल सविस्तर वर्णन किया है।

कथित है कि एक बार चित्रकूट यात्रा के समय कुमार या विन्ध के राजा ने आप को अपनी राजधानी में सादर ले जाकर विराजमान कराया। उसी समय सम्राट की आज्ञा से किसी कारणवश वह पकड़ा कर दिल्ली भेजा गया। मुसल्मानी शासनकाल में ऐसी धर पकड़ प्राय हुआ करती थी। गोसाईं जी ने यह समाचार पाकर दरबार जा के उस राजा को शीघ्र ही बन्धन से मुक्त कराया। सम्राट से असम्मानित होने के बदले बहुत सम्मानित हो कर वह अपने देश में लौट आया और गोसाईं जी को कुछ काल साग्रह अपने स्थान पर रख कर सत्संग का आनंद लेता रहा। लोगों का कथन है कि उसी राजा के धर्म के सूक्ष्म तत्व का उपदेश करने की प्रार्थना पर गोसाईं जी ने यह कविता कही थी —

"पंडित वेद पुरानन को अपनो अपनो मत भाषत हैं।
श्रुति के पथ त पथ छिद्र करैं यह अपार भव पसारत हैं॥
चित वृत्त की डोलत पावन में इन बातन में हरि मानत हैं।
तुलसी सुख से किन साम्य कहो मन की रघुनन्दन जानत हैं॥"

हम इस में धर्म के सूक्ष्म तत्व का कोई विशेष उपदेश नहीं देखते। इस से बढ़कर उत्तम २ उपदेश इसके अन्य कवितों तथा पदों में भरा हुआ है।

कहते हैं कि चित्र की तराइ में दो और राजे रहते थे। उन लोगों में बड़ी मित्रता थी। एक बार दोनों ने आपस में यह सम्मति तथा प्रतिज्ञा की कि 'यदि हमलोगों को पुत्र पुत्री हो तो दोनों का आपस में विवाह कर दें।' दोनों को पुत्री ही पैदा हुई। परन्तु एक ने कन्या को पुत्र प्रसिद्ध करके पुत्र के समान उसे रखा। यहाँ तक कि उस का विवाह भी दूसरे राजा की कन्या से कर दिया। गौना के पश्चात् यह बात प्रकट होने पर वह राजा जो ठगा गया था महाक्रुद्ध हुआ और कपटी राजा पर आक्रमण कर उस ने उसे जीत लिया। वह राजा पराजित हो भाग निकला और गोसाईं जी का शरणापन्न हुआ। विजयी राजा भी खोज करते वहाँ आ धमका। भगवान की कृपा से तब तक वह कन्या स्वामी जी का चरणामृत पान कर पुरुषत्व को प्राप्त हो गई। इस के प्रमाण में लोग गोसाईं जी के ये दोहे बताते हैं —

"कपटूक दरसन संत के पारस मनी असीम।
नारि पलट सो नर भयो लत प्रसादी सीम॥
तुलसी रघुवर सेवकहिं मिले गो कालोकाल।
नारि पलट सो नर भयो ज्यो दीनदयाल॥"

कोई २ इस घटना का सम्बन्ध काशीराज से जोड़ते हैं।[1] बाबू श्यामसुन्दर दास ने हमारे एक पत्र के उत्तर में इस ग्रंथ के छपने के समय लिखा है कि 'उस घटना से काशी के आधुनिक राजवंश का कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। मेरी समझ में यह गप्प है। पृथ्वीराज रासो में भी ऐसी ही एक गप्प का उल्लेख है तथा जहां तक मुझे स्मरण पड़ता है युद्ध के समय की भी किसी ऐसी घटना का मैंने कहीं उल्लेख पढ़ा है।'

हमें भी पहले इस अलौकिक घटना का विश्वास नहीं होता था और हम इसे कोरी गप्प ही समझे हुये थे। परन्तु नीचे के अंगरेजी लेख से ऐसी घटना सम्भव दीखती है। इस में लिखा है कि एक व्यक्ति के विवाह के २० वर्ष पीछे यह ज्ञात हुआ कि वह पुरुष है और इतने समय तक उस के संग स्त्रीवत् सब बातें होती रहीं। एल ए वाडेल (L A Waddell) साहब द्वारा सम्पादित लियन साहब कृत 'मेडिकल जुरिसप्रूडेंस' (Lyon's Medical jurisprudence) के तीसरे संस्करण के पृष्ठ १८ में यह लेख देखा जाता है और उस में यह घटना अन्य[2] पुस्तक से उद्धृत हुई है।

'A person affected with hypospadias was married for 20 years, and during all that time was treated as a female Sexual intercourse was regularly effected by the canal of the urethra, nor was it until the period just mentioned had elapsed that it was discovered that the individual was a man'

अब रही यह बात कि वह प्राणी घटामृतपान अथवा रामायण श्रवण से वा किसी रीति से पुरुषत्व को प्राप्त हुआ था नहीं। यथार्थ बात तो यह है कि उपयुक्त समय आने पर ईश्वर कृपा से उसकी अवस्था परिवर्तित हो गई और घटामृत वा रामायण तो निमित्त कारण हुआ होगा चाहे कोई इसे स्वीकार करे या नहीं।

कलकत्ता के 'हिन्दपञ्च' भाग २ सन १९२७ ई० के किसी अङ्क में गाजीपुर जिला के किसी गांव में एक नारी के पुरुष हो जाने का समाचार छपा था। उस में उस प्राणी का नाम ग्राम नहीं दिया हुआ था। किन्तु टर्की की राजधानी कुस्तुन्तुनिया में ११ जुलाई १९२८ ई० को मेडिकल कमीशन द्वारा पूरी जाँच के बाद सेमइनुल नाम की एक २१ वर्षीया युवती को मर्द करार दिये जाने का संवाद 'बाम्बे क्रानिकल' के संवाददाता ने उस पत्र को उसी स्थान

१ बहुत से लोगों ने इस कथा को रामायण माहात्म्य के प्रसंग में लिखा है और कहा है कि द्राविड़ कैलासपति तथा काशीराज ने परस्पर ऐसी प्रतिज्ञा की थी। द्राविड़ का राजा अपनी स्त्री के प्रपंच से सुता ही को सुत जानकर विवाह करने काशी आया। यहां पर बात प्रगट होने से उधर तो वह महालज्जित हुआ और इधर काशीराज उस का राज्य हरने पर उद्यत हुए। वह बिचारा भयभीत हो गोसाईं जी की शरण आया। आपने काशीराज को बुलाकर समझाया बुझाया और द्राविड़ की राजकन्या को नव दिन रामायण का पारायण सुनाकर पुरुष बना दिया।

२ A. Geston Med. Juris Lect. p. 52

कुसुम्भुनिया से दिया था और यह समाचार अन्य पत्रों में भी छपा था। उस संवाददाता ने लिखा था कि "पुराने काल में कभी २ ऐसे लोगों का भी पता लगा है जिनमें नर-नारी दोनों के चिह्न भार लक्षण पाये जाते थे। उन्हें लोग 'मुखन्नस' (खोजा) कहा करते थे। ऐसे लोगों में कुछ लोग समय पाकर साफ नर या नारी बन जाते थे। पर ऐसी बात अब तक मुझे साफ समझ में नहीं आई थी, परन्तु कल की विचित्र (उपयुक्त) घटना से पुराने लोगों की खोज और जाँच की सत्यता का प्रमाण भी मिलता है।'

ऐसी घटनाओं की कथाएँ हमारे पुराणों में भी पाई जाती हैं। भागवत देखिये। वैवस्वत की कन्या इला वशिष्ठजी के उद्योग से सुद्युम्न नाम का पुत्र हो गई। पुनः स्त्री हो जाने पर उन्हीं की प्रार्थना से उसे एक मास स्त्री तथा एक मास पुरुष होकर रहने का वर शंकर जी से प्राप्त हुआ था।

द्रुपद की कन्या शिखण्डिनी किसी दानव के वर से शिखण्डी पुरुष होकर भीष्मपितामह की मृत्यु का कारण हुई।

उत्तरा नाम की एक मिथुनी महात्मा शुकदेव की कृपा से कुछ काल के लिए पुरुषत्व को प्राप्त हो गई थी।

इसी पोथी पुराण-वर्णित घटनाओं में यज्ञ तपस्या शाप वर आशीर्वाद आदि बातों के कारण चाहे उन्हें कोई नाम बतावे परन्तु ईश्वरीय सृष्टि में कोई अनहोनी नहीं नहीं हो सकती और इन घटनाओं में मुख्यतः उन्हीं की कृपा की प्रधानता रहती है। इन का निमित्त कारण चाहे कुछ और भले ही हो। किन्तु ऐसी घटनाएँ नित्य प्रति नहीं हुआ करतीं।

रूस में एक डाक्टर के एक नारी को नर बना देने की भी बात कही जाती है। तब हम वशिष्ठ जी तथा वरदायक दानव प्रभृति को इस विद्या में परम निपुण इनके आदि आचार्य और उक्त डाक्टर का दादा गुरु कहें, एवम् यह कहें कि पुरातन काल में भारत में इस विद्या का भी व्यवहार हुआ करता था तो कुछ आपत्ति न होनी चाहिए। वे भारतीय धार्मिक महात्मा थे। अपने अद्भुत कार्यों को ईश्वर की कृपा की ओट में कर दिखलाते थे और प्रभु के ही वर प्रसाद को प्रधानता देते थे।

जो हो प्रस्तुत सुरेश मुकुन्दा का बयान और २० वीं सदी का रूसी वाला प्रत्यक्ष प्रमाण प्रमाणित कर रहे हैं कि ऐसी घटना का घटित होना असम्भव नहीं।

विन्ध्याचल में कुछ दिन रह कर आप प्रयाग गये। व्रजमाधव दास के कथनानुसार वहाँ गोसाईं जी को रमानन्द[1] के पक्ष मुरारी वैद्य (रसिक मुरारी) से भेंट हुई जो बड़े गुरु-भक्त थे और एक बार भोजन करते समय गुरु का पत्र पा भोजन परित्याग कर बिना हाथ मुँह धोये १२ कोस चले आये थे।

---

१ शर्मा कमल कुँवरी ने रामानन्द लिखा है। ये कौन रामानन्द थे पता ज्ञात नहीं। रामानन्दीय सम्प्रदाय के संस्थापक श्री रामानन्द जी तो गोसाईं जी के बहुत पहले थे।

कोई १ इस घटना का सम्बन्ध काशीराज से जोड़ते हैं।[1] बाबू श्यामसुन्दर दास ने हमारे एक पत्र के उत्तर में इस प्रश्न के छपने के समय लिखा है कि 'उस घटना से काशी के आधुनिक राजवंश का कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। मेरी समझ में यह गप्प है। पृथ्वीराज रासो में भी ऐसी ही एक गप्प का उल्लेख है तथा जहाँ तक मुझे स्मरण पड़ता है युद्ध के समय की भी किसी ऐसी घटना का मैंने कहीं उल्लेख पढ़ा है।

हमें भी पहले इस अनैसर्गिक घटना का विश्वास नहीं होता था और हम इसे कोरी गप्प ही समझे हुये थे। परन्तु नीचे के अंगरेजी लेख से ऐसी घटना सम्भव दीखती है। इस में लिखा है कि एक व्यक्ति के विवाह के २० वर्ष पीछे यह ज्ञात हुआ कि वह पुरुष है और इतने समय तक उस के संग स्त्रीवत् सब बातें होती रहीं। एल ए वाडेल (L A Waddell) साहब द्वारा सम्पादित लियन साहब कृत मेडिकल जुरिसप्रूडेंस (Lyon's Medical jurisprudence) के तीसरे संस्करण के पृष्ठ २८ में यह लेख देखा जाता है और उस में यह घटना अन्य[2] पुस्तक से उल्लिखित हुई है।

'A person affected with hypospadias was married for 20 years, and during all that time was treated as a female. Sexual intercourse was regularly effected by the canal of the urethra, nor was it until the period just mentioned had elapsed that it was discovered that the individual was a man."

अब रही यह बात कि यह प्राणी चरणामृतपान अथवा रामायण श्रवण से या किसी रीति से पुरुषत्व को प्राप्त हुआ या नहीं। यथार्थ बात तो यह है कि उपयुक्त समय आने पर ईश्वर कृपा से उसकी अवस्था परिवर्तित हो गई और चरणामृत या रामायण तो निमित्त कारण हुआ होगा चाहे कोई इसे स्वीकार करे या नहीं।

कलकत्ता के 'हिन्दूपञ्च' भाग ९ सन् १९२७ ई० के किसी अङ्क में गाजीपुर जिला के किसी गाँव में एक नारी के पुरुष हो जाने का समाचार छपा था। उस में उस प्राणी का नाम ग्राम नहीं दिया हुआ था। किन्तु टर्की की राजधानी कुस्तुन्तुनिया में ११ जुलाई १९१२ ई० को मेडिकल कमीशन द्वारा पूरी जाँच के बाद 'सेमइलूस' नाम की एक २१ वर्षीया युवती को मर्द करार दिये जाने का समाचार बाम्बे क्रानिकल के संवाददाता ने उस पत्र को वहीं स्थान

१ बहुत से लोगों ने इस कथा को रामायण माहात्म्य के प्रसंग में लिखा है और कहा है कि द्राविड़ देशाधिपति तथा काशीराज ने परस्पर ऐसी प्रतिज्ञा की थी। द्राविड़ का राजा अपनी स्त्री के प्रपंच से पुत्री ही को पुत्र जानकर विवाह करने काशी आया। वहाँ पर बात प्रगट होने से उधर तो वह लज्जित हुआ और इधर काशीराज उस का गला काटने पर उद्यत हुए। वह बिचारा भयभीत हो गोसाईं जी की शरण आया। आपने काशीराज को बुझाकर समझाया बुझाया और द्राविड़ की राजकन्या को नव दिन रामायण का पारायण सुनाकर पुरुष बना दिया।

२ A. Geaton Med. Juris Lect. p. 52.

कुस्तुन्तुनिया से दिया था और वह समाचार अन्य पत्रों में भी छपा था। उस संवाददाता ने लिखा था कि "पुराने काल में कभी २ ऐसे लोगों का भी पता लगा है जिनमें नरनारी दोनों के चिह्न और लक्षण पाये जाते थे। उन्हें लोग 'मुखन्नस' (खोजा) कहा करते थे। ऐसे लोगों में कुछ लोग समय पाकर साफ नर या नारी बन जाते थे। पर ऐसी बात अब तक मुझे साफ समझ में नहीं आई थी परन्तु कल की विचित्र (उपर्युक्त) घटना से पुराने लोगों की खोज और जाँच की सत्यता का प्रमाण भी मिलता है।'

ऐसी घटनाओं की कथाएँ हमारे पुराणों में भी पाई जाती हैं। भागवत कहिये। श्राद्धदेव की कन्या इला वशिष्ठजी के उद्योग से सुद्युम्न नाम का पुत्र हो गई। पुन स्त्री हो जाने पर उन्हीं की प्रार्थना से उसे एक मास स्त्री तथा एक मास पुरुष होकर रहने का वर शंकर जी से प्राप्त हुआ था।

द्रुपद की कन्या शिखण्डिनी किसी दानव के वर से शिखण्डी पुरुष होकर भीष्मपितामह की मृत्यु का कारण हुई।

उत्तंग नाम की एक भिक्षुणी महात्मा बुद्धदेव की कृपा से कुछ काल के लिए पुरुषत्व को प्राप्त हो गई थी।

ऐसी पोथी पुराण-वर्णित घटनाओं में यज्ञ तपस्या शाप वर आशीर्वाद आदि कर्मों के कारण चाहे उन्हें कोई गप्प बताये परन्तु ईश्वरीय सृष्टि में कोई असम्भावना नहीं कही जा सकती और सब घटनाओं में मुख्यतः उन्हीं की कृपा की प्रधानता रहती है। इन का निमित्त कारण चाहे कुछ और भले ही हो। किन्तु ऐसी घटनाएँ नित्य प्रति नहीं हुआ करतीं।

रूस में एक डाक्टर के एक नारी को नर बना देने की भी बात कही जाती है। तब हम वशिष्ठ जी तथा वरदायक दानव प्रभृति को इस विद्या में परम निपुण उसके आदि आचार्य और उस डाक्टर का दादा गुरु कहें, एवम् यह कहें कि पुरातन काल में भारत में इस विद्या का भी व्यवहार हुआ करता था तो कुछ आपत्ति न होनी चाहिये। वे भारतीय धार्मिक महात्मा थे। अपने चमत्कारों को ईश्वर की कृपा की ओट में कर दिखलाते थे और प्रभु के ही वर प्रसाद की प्रधानता देते थे।

जो हो प्राकृत सृष्टि के इतिहास का वर्तमान और २० वीं सदी का डाक्टरी ज्ञान प्रत्यक्ष रूप से प्रमाणित कर रहे हैं कि ऐसी घटना का घटित होना असम्भव नहीं।

चित्रकूट में कुछ दिन रह कर आप प्रयाग गए। ब्रजनाथ दास के कथनानुसार वहाँ गोसाईं जी को रामानन्द[1] के चेले मुरारी देव (रसिक मुरारी) से भेंट हुई जो बड़े गुरु-भक्त थे और एक बार भोजन करते समय गुरु का पत्र पा आसन परित्याग कर बिना हाथ मुँह धोये १२ कोस चल आये थे।

---

१ रानी कमल कुँवरी ने रामानन्द लिखा है। ये कौन रामानन्द थे पता नहीं। रामानन्दीय सम्प्रदाय के संस्थापक श्री रामानन्द जी तो गोसाईं जी के बहुत काल पहले थे।

बादशाह ने उन के गुरु की कुछ भूमि छीन ली थी। गुरु ने उसी के लिये आप को बुला भेजा था। जिस समय ये बादशाह के पास गये वे उसी काल में एक बिगड़ैल हाथी के मारने के लिये बादशाह का लड़का नगर के बाहर एक ऊँचे मचान पर बैठा था। इधर से रसिकमुरारी जी पहुँचे। राजपुत्र के साथ उन का वार्तालाप आरम्भ ही हुआ था कि वह उन्मत्त मातंग वहाँ आ पहुँचा। उसे देख मुरारी जी ने कहा। 'ऐसा जीवजन्तु बिना हरिभजन के व्यर्थ है।'[1] कहते हैं कि यह बात कान में पड़ते ही वह शान्त भाव से बैठ गया उस के नेत्रों से जल बहने लगा। आप ने तुलसी की माला उस के गले में डाल दी। उस समय से वह हाथी साधुमण्डली में रहने लगा। बादशाह पुत्र यह लीला देख महा चकित हो गया और आप के गुरु का छीना गया गाँव लौटवा दिया।

यहीं गोसाईं जी को मलूकदास[2] से भेंट कर भी आनन्द हुआ था। ये भी मुरारी दास जी के चेले तथा गंगाजी के बड़े भक्त थे। कभी गंगाजी में स्नान नहीं करते थे। भाव यह था कि जिसे माता समझते हैं उसे पाँव से कैसे स्पर्श करें। भाव उत्तम था परन्तु उन के सहवासी साधुओं ने इसे गंगा जी का अपमान समझ उन के गुरु के पास इस की निन्दा की। गुरुजी ने परीक्षार्थ एक बार गंगास्नान करते समय उन से गमछा मांगा। कथित है कि उस समय जल तल पर कमल के पत्र निकल आये और उन्हीं पर चलकर ये गुरुजी को गमछा दे आये।

श्री जगन्नाथ क्षेत्र में समुद्र के तट पर मलूकदास के नाम का एक छोटा मन्दिर है। यहां दर्शकों को मलूकदास का टुकड़ा प्रसाद मिलता है।

बहुत दिन अवध में वास करने के अनन्तर गोसाईं जी ने तीर्थाटन की अभिलाषा से एक बार नैमिषारण्य की ओर यात्रा की। पहले दिन कमाई में ठहरे, फिर उस क्षेत्र का दर्शन करते कुछ दिन पसका में विराजमान रहे। इसी पसका के रहनेवाले वेणीमाधव दास जी ने 'श्री गोसाईं चरित' नामक इन का जीवन वृत्तान्त लिखा है जो अभी तक अप्राप्य है और जिसके प्राप्त और पाठ के लिये गोसाईं जी के अनुरागी लोग बड़े ही लालायित हैं।[3] वहाँ से श्री सीता जी के स्थान पर सिमामर गाँव में पहुँचे जहाँ सीता कुंड अभीतक वर्तमान है। फिर कुछ दिन लखनपुर (लखनऊ) में रहे। यहाँ आप की कृपा से एक विद्याहीन भाट अच्छा कवि बनकर सुखपूर्वक अपनी जीविका प्राप्त करने लगा।

यहां से थोड़ी दूर पर मलिहाबाद गाँव में एक भक्त भीष्म सिंह नामक कायस्थ कानूनगोय रहते थे। इन्होंने भी रामचन्द्र जी के नखशिखवर्णन में कविता की थी। उन से भेंट की लालसा

---

१ यह कथा कुछ भिन्न ढंग से श्री सीताराम शरण भगवान प्रसाद कृत 'भक्तमाल की टीका' पृष्ठ ३११—१८ में वर्णित हुई है। परन्तु आशय दोनों के एक ही हैं।

२. M Macauliff (एम० मेकालिफ साहब) के लेखानुसार श्री गुरु तेग बहादुर जी की मलूकदास से भेंट हुई थी। गुरुसाहब ४३ वर्ष की अवस्था में सं० १७२१ में गुरुगद्दी पर विराजमान होने पर भ्रमण को निकले थे और गोसाईं जी का सं० १६८० में शरीरत्याग हुआ। इस से प्रतीत होता है कि मलूकदास भी दीर्घजीवी थे।

३ यह ग्रंथ तो नहीं किन्तु उसी का सार 'मूल गोसाईं चरित' प्राप्त हुआ है। उस का हाल इस पुस्तक के अन्त में लिखा जायगा।

से आप मलिहाबाद की ओर चले। तीन कोस चलकर चनहट गाँव में आने पर आपने एक कुआं पर बैठ उस का जलपान किया। यह पवित्र कुआं रोक सराय के पास अभी तक वर्तमान है। चनहट में आप को ज्ञात हुआ कि वहां की चौधराई आह्मणों की है और उन लोगों से बानूनगोय की अनबनी चली आती है। इससे यह सोचकर कि कदाचित् भीष्म सिंह का गर्वित स्वभाव हो आप उन से मिलने नहीं गये। परन्तु उन का गर्वित स्वभाव होना नहीं पाया जाता है क्योंकि पीछे इस घटना का समाचार मिलने पर वे स्वयम् काशी में जाकर गोसाईं जी के दर्शन से कृतार्थ हुये हैं। स्वरचित श्री गंगा स्तुति गोसाईं जी को सुनाई है और उन का रचा 'मयरसिन्दु' भी देखकर गोस्वामी जी बहुत प्रसन्न हुये हैं।

गोस्वामी जी चनहट से मलीहाबाद गये। वहां इन्होंने एक भक्त भाट को मित्र प्रेम सूचक प्रसादी स्वरूप एक प्रति अपनी रामायण दी थी। उस का अभी तक वहां के महंत जनार्दन जी के पास रहना कहा जाता है।

वहां से प्रभावती स्नान की इच्छा से जहां वाल्मीकि जी का आश्रम है प्रस्थान कर आप रसूलाबाद के समीप कोठरा गाँव में गये एवम् अनन्य माधव से मिले जो कि बड़े भक्त तथा अच्छे कवि थे। माधवदासजी कोठरा गाँव अपने खलिहान आये। माता ने उन्हें खलिहान अगोरने को भेजा। भक्तराज महाराज समस्त अपने खलिहान का सब धान उन्हों तथा दरिद्रों को दे दिया और आप कहीं जाकर छिप रहे। जब और लोगों के संग खोजते २ उन की माता उन के पास पहुंची तो उन्होंने कहा संसार में कोई किसी का नहीं है, परम सुखदायक श्री भगवान ही हैं और आप ने उस समय माता को यह पद सुनाया —

"अमो सोच न करिए माता।

दुख लोक-सुत यह धरी जिन किन पाई कुसलाता।
प्राकरमी भीषम सों को भा दानि करन सों दाता।
जिन के चक्र चलत हैं अजहूं धरि नहिं भई विधाता॥
मृत्यु बाँधि रावन बस राखी भरे गरब उर माया।
सङ्ग छरि २ भये कालबस ज्यों तरुवर के पाता॥
सुन जननी अब भायपान हूं परम पुरातन धाता॥
मनिमाणय माधव क सेवक कौन काहि सों नाता॥"

भेंट होने पर गोसाईं जी ने अनन्य माधव को यह पद सुनाया था:—

"मैं हरि पतित पावन सुने।

हौं पतित तुम पतित पावन दोऊ बानक बने॥
व्याध गनिका गज अजामिल साखि निगमागम भने॥
और पतित अनेक तारे जात सो का पै गने।

आनि नाम अभिमान छाड़ियो नरक जमपुर मने।
दास तुलसी सरन आयो राख लिए अपन॥"

इस के उत्तर में अनन्य माधवदास ने नीचे लिखे पद की रचना की :—

"तब त कहां पतित नर रह्यो।
अब तें गुरु उपदेश दीन्यो नाम नौका गह्यो॥
लोह जैसे परसि पारस नाम कञ्चन लह्यो।
कस न कसि कसि लेहु स्वामी अगन दाहन दह्यो॥
हमरि आयो विरह यानी मोक्ष महंगे कह्यो।
क्षीर नीर तें भयो न्यारो नरक तें निर्वह्यो॥
मूल माखन हाथ आयो त्यागि सरबर मह्यो।
अनन्य माधव दास तुलसी भवजलधि निर्वह्यो॥"

वहां से विदा होकर ब्रह्मावर्त (बिठूर)[1] में कुछ दिन गंगा तट पर ठहरे और श्री वाल्मीकि जी के स्थान एवम् अन्यान्य पवित्र स्थानों का दर्शन कर वहां से संडीला आये।

संडीले में एक ब्राह्मण के द्वार पर जाकर आप ने साष्टांग दण्डवत किया। ब्राह्मण बिचारे घर नहीं थे। उन की स्त्री मारमार कर दौड़ी कि यहाँ ठहरने का स्थान नहीं। आप

१ बैजनाथ दास ने ब्रह्मावर्त में बाल्मीकि जी का स्थान लिखा है। गोसाईं जी की कविता नं० ११२ (कवितावली उ० का०) से यह स्थान वारिपुर और दिगपुर के बीच प्रतीत होता है। काशी कमच्छा स्थान निवासी श्री बाबा ठीकाम दासजी ने बाबू रामदीन सिंह जी से कहा था कि मिरजापुर से गोपीगंज जाकर वहां से दो कोस पश्चिम दक्षिण यह स्थान है। और काशी के सुप्रसिद्ध ज्योतिषी पं० रामाचरण जी के अनुसार मिरजापुर स्टेशन से आगे गैपुरा स्टेशन है वहां से आगे महवाई (?) स्टेशन से दो कोस उत्तर सीतामढ़ तथा बाल्मीकि जी का स्थान है। इसकी पुष्टि गोसाईं जी की कविता से होती है। सीतामढ़ एक सतकोह का पेड़ है। यहां सन्तान प्राप्ति तथा सन्तान जीवित रहने के लिये लोग मनता मानते हैं। श्रीमान् महाराज ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह जी काशी नरेश ने यहां जानकी जी की मूर्ति स्थापित कर ९ बिगहा भूमि पूजा के लिये लगाई भी दी है। 'खड्गविलास प्रेस द्वारा प्रकाशित रामायण के गोसाईं चरित का पृष्ठ ६६ देखिये।

परन्तु वनगमन के समय तो लोग गंगा और यमुना पार होकर चित्रकूट में बाल्मीकि आश्रम में पहुंचे थे (जो पूर्वोक्त स्थान और बिठूर से भी बहुत दूर है) सीता निर्वासन के समय लक्ष्मण जी केवल गंगा पार ही उतार कर सीताजी को बाल्मीकि आश्रम में पहुंचा आये हैं। क्या उस समय बाल्मीकि जी चित्रकूट से उत्तर-पूर्व मिरजापुर जिले में चले आये थे?

दुःखित हुये वहां से चले आये और रामघाट में आकर अपना डेरा जमाया। ब्राह्मण देवता घर आने पर यह सब समाचार सुनकर दौड़े हुये आप की सेवा में पहुंचे और आप के चरणों में गिर कर उन्हों ने अपने घर पधारने के लिये हठ से बहुत आग्रह किया। इन्हों ने कहा कि "मैं आपसे बहुत सन्तुष्ट हूँ मुझे केवल आप के घर की पवित्र भूमि के दर्शन की लालसा थी क्योंकि आप के घर भी कृष्ण जी का सखा मनसुखा जन्म लेकर आप का कुल पवित्र करेगा।"

कुछ काल व्यतीत होने पर ब्राह्मण देवता को एक पुत्र प्राप्त हुआ। उस का नाम वंशीधर रखा गया। वह बालक बड़ा ही कृष्णभक्त और कवि हुआ। कहते हैं कि स्वप्न में भी जगन्नाथ जी की आज्ञा पाकर एक कोढ़ी उस बालक का जूठा बताशा प्रसाद पा अपने रोग से मुक्त हुआ था। वे रासधारियों के संग रहकर सर्वदा लीलानन्द में मग्न रहते थे। एक समय रासलीला में कृष्ण बनते ? यह पद श्रवण कर 'सुधि करत कमल-दल-नैन की। वे दिन बिसरि गये मनमोहन बांह उसीरे सैन की।" आप आत्मविस्मृत हो भूतल में गिर पड़े और गोलोक सिधारे।

शिवसिंह सरोज में लिखा है कि वंशीधर संवत १६७२ में हुये और आप शान्तरस के चोखे कवि थे। पाठक वृन्द! आप लोग भी इन का एक कवित्त देख लीजिये।—

कवित्त—"जिन्हें तू जगत तें न तरे तिन्हें ताकि दम्भ,
जगत निकारि कै पदारथ को चीता है।
सपने की संपदा सुलभ भाय सबही पै,
मोह हित लाग्यो हरिनाम अनहीला है।
कहैं मिश्र वंशीधर कभी कबहूं न आई,
मति जैसी चहुं कछु ठहराय गीता है।
चलो नाहिं परैगो या लागि ताकि चलो ध्यय,
सीताराम भजिले जनम जात बीता है॥"

वंशीसे से जब गोसाईं जी चले तो रास्ते में एक गांव में वहां का मालिक गढ़ से दूर अपने समाज के साथ बैठा था। वह भी ठाकुर जी की पवित्र मूर्ति एवं महात्माओं को देखकर सम्मानार्थ उठ खड़ा भी नहीं हुआ, जिस से उसे पश्चात्तापित होना पड़ा। आगे बढ़ने पर एक गांव में कायस्थों ने इनका बहुत सत्कार-सम्मान किया और वे इन के उत्तम आशीर्वाद के भागी हुये।

आगे बढ़कर आपने एक गांव में एक ब्राह्मण के द्वार पर ठहरना चाहा। जिस ने कहा कि "हम तो गृहस्थ घर में हैं आप कहां चले आते हैं।" जो कोई घर नहीं होने पर भी ईश्वर का असीम उपकार भुलाकर अपने को गृहस्थाश्रमी बनाकर उसे निश्चय नरकभोगी होना ही पड़ेगा। यही दशा उस विप्र महाराज की हुई।

ब्राह्मण की तो यह दशा परन्तु वहाँ कोई जोलाहा 'भाई' कर रहा था। वह स्वामी जी की सेवा में उपस्थित हो अपने योग्य सेवा की प्रार्थना की। गोसाईं जी ने इस से हर्षमान उसे आशीर्वाद दे विदा किया।

इसी प्रकार रास्ते में लोगों से मिलते-जुलते उन्हें आनन्द देते, नैमिषारण्य में पहुँच कर अपने तीर्थ दर्शन तथा सत्संगति का सुख लाभ किया। वहाँ पर उन्हें पिहानी के एक शुक्ल भक्त से भेंट का आनन्द प्राप्त हुआ।

वहाँ कुछ काल वास करने के अनन्तर आप मिश्रिख[1] होते कोराबाद आये। वहाँ एक हरिभक्त लाला हलवाई ने आप का बहुत आदर सत्कार किया और बहुत सी खाने पीने की वस्तुएँ आप को भेंट की। उन्हें दो नावों में रखवाकर और एक नवका पर अपने समाज के साथ चढ़कर आप वहाँ से विदा हुये।

जब ये नावें रामपुर में वर्गोत्तिया (महसूल) के लिए रोकी गईं तब इन्होंने वहीं पर अपने पास के उन पदार्थों को दीन दुखियों को लुटा दिया जिस का समाचार पाकर वहाँ का प्रधान रामसिंह तुरत इन की सेवा में उपस्थित हो इन के चरणों में गिरा और इन्हें ससम्मान घर ले जाकर इन का बहुत आदर सत्कार किया। इन्हों ने उस ज़मींदार को एक प्रति रामायण दी। कोई २ कहते हैं कि गोसाईं जी का चरणपादुका लेकर वह इष्टदेव के समान उन्हें पूजने लगा

१ इस ग्रंथ की पृ० सं० ५०७ पारा ८ देखिये।

षोडश परिच्छेद

स्वभाव

गोस्वामी जी एक सच्चरित्र सन्तगुणसम्पन्न महान् महात्मा थे। आप का स्वभाव सरल तथा निष्कपट था। इसी सीधेपने के कारण आप ने अपने बालपने की दुरावस्थाओं को जहाँ तहाँ वर्णन किया है।

आप में सहज नम्रता बहुत थी। यह बात रामायण की वन्दना ही से स्पष्ट विदित होती है। ऐसा उत्तम कवि होने पर भी इन्होंने यहाँ कितनी नम्रता दिखलाई है। यदि ऐसा न करके वे मुख्य विषय के लिखने में ही प्रवृत्त हो जाते तो इन का कोई हाथ नहीं रोकता और न वह ऐसे अद्भुत ग्रंथ के प्रचार ही में बाधक होता।

परन्तु इन का ऐसा नम्रस्वभाव होने पर भी एवम् सज्जनों तथा असज्जनों की इतनी वन्दना करने पर भी जो लोग 'विधुबाम दाहिने बाएं' रहा करते हैं ईर्षावश इन से अकारण द्वेष रखने, इन की प्रतिष्ठा नष्ट करने एवम् इन्हें कुढ़ाने में पहले कसर नहीं करते थे। बात ठीक ऐसी ही थी 'न ख़्वाहम आं कि बे आज़ारम् कस्सेरा छे। हसूदरा चे कुनम् कू ज़ ख़ुद बरंज दरस्त' अर्थात् मेरी तो इच्छा नहीं कि किसी के दिल को दुखाऊँ, परन्तु ईर्षा से जलित लोगों को क्या कहूँ जो आप ही आप रंज रहा करते हैं। आप परलोकगत तथा जगत्‌हितकारी संत थे। आप का हित अनहित कौन था? आप अँजुली में लिये हुये कुसुम के समान, जो दाहिनी बाईं का विचार न करके दोनों करअङ्गुलियों को सुगन्धित करता है हित अनहित सभों के हित ही चाहनेवाले थे। इसी से अपनी सहिष्णुता के कारण किसी से बदला चुकाने पर उद्यत नहीं होते थे। हाँ! उन लोगों के कुव्यवहार से दुखित होकर कभी २ इस सम्बन्ध में कविता अवश्य कर देते थे। यथा —

"मेरी जाति पाँति न चहौं काहू की जाति पाँति, मेरे कोऊ काम को न हौं काहू के काम को। लोक परलोक रघुनाथ ही के हाथ सब, भारी है भरोसो तुलसी के एक नाम को॥ अतिहीं अयान उपखानो नहि बूझै लोग, साह्य को गोत गोत होत है गुलाम को। साधु के असाधु के भले के पोच सोच कहा, काहू के द्वार परयो जो हौं सो हौं राम को॥

"काऊ कहै करत कुसाज दगाबाज बड़ो, कोऊ कहै राम को गुलाम खरो खूब है। साधु जानै महा साधु खल जानै महा खल, बानी झूठी साँची कोटि उठत

दूषन है॥ कहत न काहू सों कहत ना काहू की कहूं, सब की सहत उर अन्तर न ऊन है। तुलसी को भलो पोच हाथ रघुनाथ ही के राम की भगति भूमि मेरी मति दूब है॥"

और इसी से जब एक बार बनारस के कई एक कुवासी मनुष्यों ने आप से कहा था कि आप नगर छोड़ कर क्यों दूसरे स्थान में चले जाइये तो वे विश्वनाथ को अपना डेरा-डंडा उठाने का हाल निवेदन कर चुपचाप काशी से चल पड़े हुवे थे।

उपर्युक्त द्वितीय कविता से यह स्पष्ट विदित होता है कि सब लोग इन से द्वेष ही ही नहीं रखते थे। बहुत से लोग इन के गुणगायक भी थे। और पीछे अपने सरल स्वभाव तथा सच्चरित्र के कारण वे लोगों के बड़े स्नेहभाजन और आदर सत्कार के पात्र हो गये थे। सर्वसाधारण की कौन कहे, बड़े २ प्रतिष्ठित और धीर—विज्ञ विद्वान् आप से स्नेह करते और आप के दर्शनार्थ आया करते थे (जैसा कि १२वें परिच्छेद के विवरणपाठ से ज्ञात होता है) और आप के सुन्दर सदुपदेशों से संतुष्टि लाभ करते थे। इन के पास ऐसे महानुभावों को आते जाते देख एक बार किसी व्यक्ति ने आप से पूछा भी था कि 'महाराज! पहले तो आप के समीप कोई नहीं आता था अब ऐसे बड़े आदमी लोग कैसे आया करते हैं? उस पर गोस्वामी जी ने दोहे कहे थे —

"लहै न फूटी कौड़िहू, को चाहै केहि काज।
सो तुलसी महँगो कियो, राम गरीबनेवाज॥
घर घर माँगे टूक पुनि, भूपति पूजे पाय।
ते तुलसी तब राम बिनु, ते अब राम सहाय॥"

सच है सब से नेह नाता तोड़ जब केवल राम ही के हो गये एवम् निष्कपट भाव से उन्हीं की सेवा में लग गये तब बड़े लोगों का आप के चरणों में नमित होना कौन आश्चर्य की बात है। एक मुसल्मान सज्जन ने कहा है :—

"ख्वाही कि हमा कस जे तो पैवन्द बो ख्वाहन्द।
तू रिश्तये पैवन्द मकुत्त अज़ हमा वोगुसस्त॥"

अर्थात् यदि चाहता है कि सब लोग तुझ से मिलें और तुझे चाहें तो तू पहले सम्बन्ध के धागे को सब से तोड़ डाल। गोसाईं जी ने संसार से सम्मानित होने के अभिप्राय से तो सब से नेह नाता तोड़ कर वैराग्य नहीं लिया था, पर उस का सहज गुण कैसे जाय। सम्मान की इच्छा नहीं रहने पर भी लोग आप ही आप आप का आदर सम्मान करने लगे।

इतने प्रतिष्ठित तथा सर्वमान्य पुरुषों से भेंट और मित्रता होने पर भी इन्होंने कभी किसी के सम्बन्ध या प्रशंसा में कुछ कविता नहीं की। सर्वदा अपनी जिह्वा से रामयशकीर्तन करते तथा अपनी प्रबल लेखनी को उन्हीं के गुण बखान में प्रवाहित करते रहे, और अपने इस वचन का "कीन्हे प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुनि गिरा लागि पछताना॥ श्रीरामचरितमानस

निर्वाह किया। मनुष्य के सम्बन्ध में जो कोई कविता हुई तो यही टोडर की मृत्यु पर कई एक दोहे बनाये गये। परन्तु टोडर रामभक्त थे। इस नाते उन के विषय में कविता की गई, नहीं तो वह भी कदापि नहीं होती।

पादरी एडविन ग्रीव्स ने लिखा है कि ' स्वामी तुलसी दास जी लालची होकर दोहे चौपाई के व्यापारी नहीं हुये। बहुत कवि राजाओं की ड्योढ़ी पर अपनी गढ़ी विद्या के अपने प्रतिपालकों का झूठा गुणानुवाद गाते हुए सुख आनन्द में अपना जीवन व्यतीत करते हैं। परन्तु तुलसी दास ऐसे नहीं थे। वे किसी राजा या धनी के अवलम्बी न रहे पर अपनी झोंपड़ी में बैठ के राजाराम की सेवा में छन्द बनाते हुये अपने दिनों को काटते रहे।

जो ईश्वर के रंग में रँग जाते हैं, उन का मन प्राकृत जनों के गुणानुवाद में क्या कभी लग सकता है ? श्री गोस्वामी जी सूरदास तथा श्रीपति आदि कई जन इस के ज्वलन्त उदाहरण हैं।

सप्तदश परिच्छेद

स्वर्गप्रयाण

यह बात तो सर्वसम्मत है कि गोस्वामी जी का संवत् १६८ (१६२३ ई०) में स्वर्ग प्रयाण हुआ। इस के प्रमाण में यह दोहा प्रचलित है—

"संवत सोरह से असी असी गंग के तीर।
सावन सुक्ला सत्तमी तुलसी तज्यो सरीर॥"[1]

परन्तु किस प्रकार से आप का शरीर त्याग हुआ इस विषय में लोगों का मतभेद है। पूर्ववर्ती लेखकों ने इन की मृत्यु पिल्ही रोग से माना है ऐसा अनुमान करने का कारण 'हनुमान बाहुक' के ४१ वें कवित्त का चौथा चरण है—"ताते तनु पेषियत घोर बरतोर मिसि फूटि फूटि निकसत लोन राम राय को।"

जब सन् १८९८ ई० में भारतवर्ष में प्लेग (जिसकी काली महामारी) का प्रकोप हुआ एवम् लाखों मनुष्य विकराल काल के गाल में प्रवेश करने लगे तब ग्रियर्सन साहब ने सन् १८९९ ई० के मार्च महीने के 'बंगाल एशियाटिक सोसाइटी' की प्रोसीडिंग्ज में कवित्त

---

१ ग्रियर्सन साहब ने गणना करा के श्रावण सप्तमी शुक्ल १६८० संवत् को २४ जुलाई १६२३ ई० बृहस्पतिवार होना बताया है। (Notes on Tulsi Das, Indian Antiquary 1893 A D P 10.)

किन्तु वेणीमाधव दास कृत 'मूल गोसाईं चरित' में जो हाल ही में प्राप्त हुआ है, इस दोहे का पिछला अर्धांश इस प्रकार लिखा हुआ है:—

श्रावण श्यामा तीज शनि तुलसी तज्यो शरीर॥

इस से इन की निधनतिथि श्रावण कृष्णा तीज शनिवार होता है। बाबू श्यामसुन्दर दास ने उक्त ग्रन्थ में दी हुई घटना तिथियों की जांच कराई है और उन्हों ने 'मनोरमा' वर्ष १ अंक २ के पृ० ४०५ में लिखा है कि 'ज्योतिषिक' गणना करने पर सं० १६८ की श्रावण तीज को शनिवार नहीं वरन सोमवार था। दोहा में शुद्ध पाठ 'शशि' रहा होगा लेखक के भ्रम से 'शशि' का 'शनि' हो गया होगा।

फिर उन्हों ने उसी पत्रिका के पृ० ६५७ में प्रकाशित 'भ्रम संशोधन' शीर्षक टिप्पणी में लिखा है कि श्रावण कृष्णा तीज को 'शनिवार' नहीं, 'शुक्रवार' था। दोहा में कदाचित् शुद्ध पाठ 'भृगु' रहा होगा, 'शनि' न होगा।

रामायण के प्रथमनवाह्न के विषय में एक लेख मुद्रित कराया और उस के अर्थ एक कवितों का सम्बन्ध ग्रंथ से दिखलाया।

जहाँगीर बादशाह के शासनकाल में भारतवर्ष में महामारी के प्रकोप का वर्णन उन के स्वलिखित 'तुज़ुक जहाँगीरी' में देखा जाता है। उन के जलूस के ग्यारहवाँ क्या वरन् दसवें साल के मध्य (अर्थात् १६१५-१६) में पंजाब में महामारी का प्रकोप हो कर दिल्ली तक पहुँच गया था। और जलूस के तेरहवें साल (१६१७ ई०) में आगरा में इस का प्रकोप हुआ। परन्तु यह गिल्टी वाली महामारी नहीं थी। उस पुस्तक में लिखा हुआ है कि 'पहले दिन रोगी को ज्वर तथा शिर पीड़ा होती थी एवम् नाक से बहुत रुधिर गिरता था और दूसरे दिन उस का प्राणवायु निकल जाता था।'[1] हाँ! जलूस के तेरहवें वर्ष (=१६१८ई०) में गिल्टीवाली महामारी का प्रकोप हुआ था। क्योंकि उस पुस्तक में लिखा है कि "काँख रान वा गरदन में गिल्टी होने से प्रति दिन न्यूनाधिक एक सौ मनुष्य मरते हैं। यह तीसरा वर्ष है कि जाड़े में यह रोग ज़ोर पकड़ता है एवम् ग्रीष्म के आरम्भ होने से यह नेस्त नाबूद हो जाता है।" इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में बादशाह ने लिखा है कि 'आसिफ़ खाँ की बी बी से ज्ञात हुआ कि एक दिन आँगन में एक चूहा मतवाले की नाईं गिरता पड़ता इधर उधर नज़र आया। एक दाई ने पकड़ कर उसे एक बिल्ली के आगे फेंक दिया। बिल्ली ने उछल कर चूहे को पकड़ा तो सही परन्तु उसने तुरत ही उसे परित्याग कर घृणा प्रगट की। फिर बीमार होकर वह बिल्ली दूसरे दिन मरने २ हो गई। तीन दिन तक उस की बुरी दशा रही चौथे दिन चंगी हुई। फिर उस घर की एक दाई को बीमारी हुई। उसे गिल्टी निकल आई। और उस घर के १७ प्राणी ८-९ दिन में प्लेग के शिकार बन गए। कोई किसी के पास नहीं जाता।[2] इत्यादि।

ग्रियर्सन साहब लिखते हैं कि कवितारामायण के उत्तर काण्ड में १६१ से १६६ कवित्त पर्यन्त में गोस्वामी जी ने शिव जी से काशीवासियों की ओर से उस भयानक रोगरूपी आपत्ति

लेखक के प्रमाद वा भ्रम से 'शशि' का 'शनि' होना सम्भव है पर 'मृत्यु' का 'शनि' कैसे हो जायगा यह बात हमारी समझ में नहीं आती। सम्भवतः लेखक पर विलियम का गाढ़ा रंग जमा होगा।

बाबू साहब यह भी कहते हैं कि कृष्णा तीज ही को प्रत्युत टोडर के वंशधर गोसाईं जी के नाम पर अभी तक सीधा दान करते हैं। जो हो, अब तक गोसाईं जी की निधन तिथि का लोग निश्चित समझे हुए थे। अब जन्म तिथि की नाईं यह भी सन्दिग्ध हो गई।

१ अलीगढ़निवासी सय्यद अहमद सम्पादित 'तुज़ुक जहाँगीरी' पृ० २१६ देखिये :—

चूँ ई बला कि रोज़ अव्वल दर्दसर बाद: अज़ दमाग़ आमद व बिसियार बर्ख़ूनी मी आयद रोज़ दोयम जान ब हक़ तस्लीम मीनुमूद।

२ उपर्युक्त पुस्तक का पृ० २५६ देखिये।

से रक्षा के निमित्त प्रार्थना की है जिस रोग से लोग विषपान किये हुये के समान मर रहे थे। १७१वें कवित्त में उस पवित्र स्थान में भयानक महामारी के प्रकोप का वर्णन है १७५वें कवित्त में महामारी से नगर की रक्षा के लिये हनुमान तथा रामचन्द्र की प्रार्थना है एवम् १७६वें कवित्त में इसी हेतु श्री राम से प्रार्थना की गई है।

पूर्वोक्त कवित्तों में साहब बहादुर को प्लेग का आभास दृष्टिगोचर हुआ हो। पर हमारी समझ में उन कवित्तों का प्लेग से कुछ सम्बन्ध नहीं हो सकता। यदि कुछ सम्बन्ध हो भी तो सर्वसाधारण को नहीं दीखता। हाँ! आपने जो कवित्त नम्बर १६७ १६८ १६९ और १७० में महामारी के प्रकोप का वर्णन होना एवम् श्री राम से उस के शमन की प्रार्थना लिखी है सो प्रत्यक्ष ही है और यह सिद्ध करता है कि उन कवित्तों की रचना के समय काशी में भी प्लेग का जोर था। परन्तु इन कवित्तों से यह ज्ञात नहीं होता कि बनारस में महामारी का कब जोर हुआ था जब आगरा में इस का प्राबल्य था उसी समय या उसके पीछे?

'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित रामायण में लिखा है कि 'कवित्त रामायण की रचना सं० १६६९ १६७१ (१६१२ १४ ई०) निश्चय किया गया है'[1] और आगरा के प्लेग की घटना १६१८ ई० की है।" ""इसलिये बहुत से विद्वान् लोग सन्देह करते हैं कि गोसाईं जी का आशय प्लेग से न था। परन्तु जो लक्षण गोसाईं जी ने अपने दूसरे कवित्तों में लिखा है उस से यह महामारी प्लेग ही जान पड़ती है। इस से यह सम्भव है कि काशी में आगरा से चार वर्ष पूर्व ही प्लेग का कोप हुआ हो।

इस से १६१४ ई० से काशी में प्लेग का होना अनुमान किया जा सकता है। यदि यह अनुमान सत्य है तो उस प्लेग से गोसाईं जी का परलोक नहीं हुआ क्यों कि आप ने १६८० (१६२३ ई०) में शरीर त्याग किया। इस बात की पुष्टि ग्रियर्सन साहब के कथन से भी होती है कि १७० न० के कवित्त में लिखा है कि किस प्रकार लोगों को कुकर्म का दंड महामारी के द्वारा दिया गया और कैसे श्री रामचन्द्र ने कवि की प्रार्थना पर दया कर नगर की रक्षा की। कवित्त यह है —

"आश्रम बरन कलि बिबस बिकल भये निज निज मरजाद मोटरी सी डार दी।
संकर सरोष महामारी ही तें जानियत साहब सरोष दुनी दिन-दिन दार दी॥
नारि नर आरत पुकारत न सुनै कोऊ काहू देवतनि मिली मोटी मूठि मार दी।
तुलसी सभीत पाल सुमिरे कृपालु राम समय सुकरुना सराहि सनकार दी॥"

किन्तु साहब ने मई मास के 'बंगाल एसियाटिक सोसाइटी' की प्रोसिडिंग में लिखा है कि हम ने कवित्त रामायण के प्रणयन काल के सम्बन्ध में माघ महीने की प्रोसिडिंग में जो नोट छपवाया था उस की एक प्रति हमने महामहोपाध्याय श्री सुधाकर जी के पास भेजी थी जिन्होंने लिखा है कि बहुत सम्भव है कि गोसाईं जी स्वयम् प्लेग ही से स्वर्गगामी हुये हों और उन्हों ने रोग ग्रस्त होने पर ही हनुमान बाहुक की रचना की। पंडित जी ने

1 उस सम्पूर्ण ग्रंथ की रचना १६११ १२ ई० में कदापि नहीं मानी जा सकती। कवित्त रामायण की समालोचना देखिये।

यह भी लिखा था कि उन्हें अपने पिता जी तथा प्रसिद्ध रामायणी वन्दन पाठक जी से ज्ञात हुआ था कि गोसाईं जी ने 'बाहुक' की रचना चार दिनों में की थी। इस से ग्रियर्सन साहब अनुमान करते हैं कि गोस्वामी जी ने अस्वस्थ होने पर खाट पर पड़े २ 'हनुमान बाहुक' के कवित्तों की रचना की है।

पंडित जी के पत्र से सजग होकर साहब बहादुर ने लिखा है कि 'गोसाईं जी १६२३ ई० में परलोक सिधारे, प्लेग १६१६ ई० से भारतवर्ष में आरम्भ होकर ८ वर्षों तक फैला रहा, उसका गोस्वामी जी पर चोट करना असम्भव नहीं है। आप ने यह भी लिखा है कि 'बाहुक' के २२वें कवित्त में कवि कहते हैं कि 'बाहुक' मूल (कंधा) में पीड़ा है, ३८वें में कहते हैं कि उसी हाथ में पीड़ा है जिसे हनुमान जी ने पकड़ा था, अर्थात् दाहिने हाथ में, ३९वें के अन्त के चरण में पीड़ा घटने से हनुमान का धन्यवाद करते हैं, ३९वें से अन्त तक अर्थात् ४४ वें कवित्त तक की भाषा गड़बड़ हो गई है; पीड़ा बढ़ती जाती है; हनुमान ही से नहीं, अन्य देवताओं से भी निवेदन करते हैं और ४१वें में कवि ने कहा है कि सब शरीर में पीड़ा है।'

ये सब लिखकर आप कहते हैं कि 'इस की दूसरी व्याख्या यही हो सकती है कि इन्हें गठिये का रोग हुआ था। परन्तु गोसाईं जी के दिल दिमाग का आदमी ऐसी बीमारी के लिये ऐसी ललित भाषा में इस बार बार से प्रार्थना करे यह बुद्धि संगत नहीं दीखता और यदि गठिये से वे नीरोगता लाभ करते तो जिस देवता की उन्होंने ऐसी वन्दना की थी उसे धन्यवाद अवश्य देते। धन्यवाद न देने से तो और भी प्रतीत होता है कि वे नीरोग नहीं हुये और प्लेग से स्वर्ग सिधारे और उस समय बनारस में प्लेग का प्रकोप था।'

बाहु में पीड़ा तो अवश्य थी; परन्तु वह प्लेगजनित पीड़ा थी या कोई अन्यरोग जनित, यह बात विचारणीय है। ग्रियर्सन साहब कहते हैं कि '३९वें से ४४वें कवित्त तक की भाषा गड़बड़ (Confused) हो गई है।' परन्तु हमारी समझ में इसकी ये सब कविताएँ भी इस के अन्य कवित्तों के समान ही सुन्दर हैं। इस का निर्णय पाठकगण उन कवित्तों को पढ़कर स्वयम् कर सकते हैं। हाँ ! उन में प्रार्थना केवल हनुमान ही से नहीं है, वरन् रामचन्द्र शिवजी की भी प्रार्थना है। आप साहब महोदय ने स्वयम् भी कवित्तों की भाषा का ललित होना लिखा है।

मनुष्य चाहे साध्य वा असाध्य रोग से व्यथित हो पीड़ा शमन के हेतु जोर-शोर से प्रार्थना करेगा। धन्यवाद न देने के विषय में हम यही कहेंगे कि साहब ने कवित्त रामायण के सम्बन्ध में स्वयम् लिखा है कि 'संग्रहकर्ता ने, चाहे स्वयम् गोसाईं जी हों चाहे कोई अन्य व्यक्ति हो प्रकरण पर बहुत ध्यान नहीं दिया है। क्षेमकरी वाला कवित्त प्लेग के प्रसंग में रख दिया गया है।' क्या यह बात बाहुक के कवित्तों के सम्बन्ध में नहीं कही जा सकती ? क्या यह सम्भव नहीं कि बाहुक के ३८वें कवित्त को, जो पीड़ा घटने पर हनुमान जी के धन्यवाद में रचा गया कहा जाता है संग्रहकर्ता ने बेठिकाने रख दिया हो ? क्या २३ वें

अन्त में रख देने से पीड़ा छूटने पर धन्यवाद देना नहीं कहा जायगा?[1] यह कविता यह है —

"घेरि लियो रोगनि कुरोगनि कुजोगनि ज्यों बासर जलद घन घटा धुकि धाई है।
बरसत बारि पीर जारिये जवासे ज्यों सरोष बिनु दोष धूम मूल मलिनाई है॥
करुनानिधान हनुमान महाबलवान हेरि हँसि हाँकि फूंकि फौजें ते उड़ाई है।
खाये हुते तुलसी कुरोग राढ़ राकसिनी केसरी किसोर राखे बीर बरिआई है॥"

इस कविता से वेदना की क्षणिक निवृत्ति तथा, अथवा निवृत्ति पाई जाती है। कुछ हो हमें एक बात के विचारने से उस के प्लेग रोग होने में बड़ा सन्देह होता है। प्लेग की बीमारी में जहां तक देखा जाता है और जहां तक हमें डॉक्टरों से ज्ञात हुआ है रोग के आक्रमण के साथ या थोड़े ही काल पीछे हृदय तथा मस्तिष्क दुर्बल होने लगता है। बुरे प्रकार का प्लेग होने से रोगी शीघ्र ही संज्ञा शून्य भी हो जाता है। साधारण बुखार का वेग होने से मनुष्य का कोई कार्य्य करने का मन नहीं चाहता और यहां गोसाईं जी प्लेग के चंगुल में फंसे खाट पर पड़े २ चार दिन तक ऐसी ललित भावपूर्ण तथा उत्तम कविता करते रहे यहां तक कि एक ग्रंथ ही बन जाय और इन का होश और हवास ज्यों का त्यों बना रहे, यह बड़े आश्चर्य की बात है। मरने के समय भी एक क्षेमकरी को देखकर नीचे लिखी हुई कविता कही—

"कुंकुम रंग सुअंग जितो मुख चन्द सों चन्दन होड़ परी है।
बोलत बोल समृद्ध चवै अवलोकत सोच बिषाद हरी है॥
गौरि कि गंग बिहंगनि बेष कि मंजुल मूरति मोद भरी है।
पेखु सप्रेम पयान समय सब सोच बिमोचन छेम करी है॥"

प्रिय पाठक वृन्द! प्लेग के चंगुल में फंसे हुये रोगी के मुख से अन्त काल में ऐसी कविता स्फुरित हो सकती है!

यदि गोसाईं जी चार ही दिन रोगग्रस्त होकर प्लेग ही से परलोकगामी हुये तो यह अनुमान असंगत नहीं होगा कि उन पर बुरे प्रकार के प्लेग ने आक्रमण किया था जिस में रोगी होश हवास सर्वथा खो बैठता है। हाँ गिल्टी का होना बहुत ही संभव है। 'बाहु तर मूल' से कांख की अपेक्षा पंजुरा से तात्पर्य होने की अधिकतर संभावना है और गिल्टी भी प्रायः पीठ पर होती है।

---

१ खड्गविलास द्वारा मुद्रित महात्मा हरिहर प्रसाद जी कृत कवित्त रामायण की टीका के पृ० २६० में स्पष्ट लिखा है कि संग्रह में शीघ्रता के कारण १५वां कवित्त जो बाहुपीड़ा छूटने पर बना था अन्त में न रखा गया वरन् दूसरा ही कवित्त अंत में रखा गया। उस टीका का पृ० २८० भी देखिये।

गोसाई जी को यह रोग होने का कारण भी बताया जाता है। पिरकी विशेषत प्रमेह वालों को होती है। और प्रमेह उसी वर्ग के लोगों को अधिकतर होता है जो मस्तिष्क को अधिक प्रधानता कर लिखने पढ़ने का काम किया करते हैं। गोसाई जी सदैव मस्तिष्क से विशेष काम लेते रहे इस में यह सन्देह नहीं। यदि यह बात नहीं होती तो ऐसे २ अपूर्व ग्रंथ ही कैसे रचे जाते। परन्तु प्रमेहग्रस्त मनुष्य का मस्तिष्क शक्तिहीन नहीं हो जाता। यह रोग होने पर भी लोग लिखने-पढ़ने का काम भलिभाँति से करते ही जाते हैं। और पिरकी में पीड़ा भी तो होती है परन्तु होश हवास ऐसा बना रहता है कि मनुष्य मस्तिष्क से काम ले सके। हम दृढ़तापूर्वक यह नहीं कह सकते कि गोस्वामी जी को प्रमेह रोग था, परन्तु बाहु में पीड़ा या पिरकी ही होने पर 'बाहुक' की रचना हुई और इन की मृत्यु की प्राचीन आख्यायिका ही अर्थात् पिरकी रोग से स्वर्गवास होना ही अधिकतर प्रामाणिक दीखता है चाहे वह घटना इसी बाहुक की रचना के समय हुई हो चाहे पीछे। स्वर्गवासी प० वर श्यामाचरण ज्योतिषी (मर्द बस्ती काशी) ने म कु० रामदीन सिंह जी से कहा था कि 'गोसाईं जी' की बाहु को गोवा से हाथ सूख गया था, पर हनुमान बाहुक' के प्रताप से फिर ज्यों का त्यों हो गया। प्रह्लाद घाट पर जो गोसाईं जी का चित्र है उसमें एक बांह पतला है वह इसी रोग के प्रभाव से हुआ है और कदाचित् बांह ज्यों की त्यों होने के पूर्व वह चित्र बना था। इससे जाना जाता है कि 'बाहुक' के समय की बाहुपीड़ा से इन का स्वर्गवास नहीं हुआ।

इतना लिखने के अनन्तर हमें ग्रियर्सन साहब का तुलसीदास जी के सम्बन्ध का लेख जो जुलाई १९०३ ई० के रायल एशियाटिक सोसायटी के जरनल में छपा है देखने में आया। उस से ज्ञात होता है कि उन को भी पीछे यौवन विचारने से गोसाई जी के प्लेग से परलोक गमन की बात प्रामाणिक प्रतीत नहीं हुई है और आपने स्पष्ट लिखा है कि '१६२३ ई० में उस नगर 'बनारस' में इन पर गोसाईं जी पर' प्लेग का आक्रमण हुआ था और इसी साल इनकी मृत्यु हुई यद्यपि यह स्पष्ट है कि उस बीमारी से नहीं मरे।[1] कौन जाने फिर सोचने विचारने से कुछ दिन पीछे इन के प्लेग ग्रस्त होने की बात भी साहब को निर्मूल मान हो।

चाहे किसी रोग स क्यों न हो काशी के अस्सी घाट पर सं १६८० (१६२३ ई०) में ९१ वर्ष[2] की अवस्था में पूर्णायु भोग कर चिरकाल हरियश कीर्तन कर एवम् सियाराम गुणगन सज्जित पूत कविता की कई एक मनोहर सुखद तथा कल्याणप्रद पवित्र ग्रन्थ परिवार्षे निर्माण कर यह दोहा पढ़ते हुये—

---

1 He was attacked by Plague in that city in 1623, and died the same year, though apparently not from the desease. Tulsi das, poet and religious reformer —Journal of the Royal Asiatic Society, July 1903, P 450

2 जो लोग सं० १५८९ में जन्म मानते हैं उन के अनुसार ९० वर्ष और जो १५५४ में मानते हैं उनके हिसाब से १२६ वर्ष।

"रामनाम यश बरनि कै, भयहुँ चहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिए, अबही तुलसी सोन॥"

आप ने सदा के लिये मौन साधन किया। उस पावन सरिता में मज्जन कर आज कितने जन कलि कलुष नशाय कृतार्थ हो रहे हैं आज कितने उस के पान से परमानन्द लाभ कर रहे हैं एवं कितने उस के तट के निकट बैठने ही से असीम सुख पा रहे हैं।

गोसाईं जी अब इस संसार में विद्यमान नहीं हैं परन्तु आप की सुकीर्ति आज भी देदीप्यमान है एवम् इसी प्रकार प्रलय पर्यन्त इस संसार में अपनी प्रभा प्रसारित करती रहेगी।

जिस काल ने गोसाईं जी जैसे अमूल्य रत्न को भारतभूमि से उठा लिया जिस काल कराल के सामने प्रबल प्रतापी जगद्विजयी महिपालों को मस्तक अवनत करना पड़ता है, जिस के निकट अतुल्य बलशाली वीरवरों को भी किसी प्रकार बल-पौरुष प्रकाश करने का साहस नहीं होता जिस के सम्मुख जगद्विख्यात धर्मप्रचारकों तथा वक्ताओं का मुख बन्द हो जाता है, जिस के आगे चतुर चूड़ामणियों की भी चातुरी भूल जाती है जिस के समक्ष सर्वपूज्य कवि कोविदों का भी कलाकौशल कुछ काम नहीं आता जिस के सम्मुख होते ही ऋषि मुनियों को भी मौन ही साधन करना होता है और जो भव रोग रूपी भांति २ के हेतुओं के द्वारा संसार के चराचर जीवों को ग्रास के समान सर्वदा खाया करता है उसी सर्वोपरि बलिष्ठ कालदेव को हम बारम्बार प्रणाम करते हैं और अपने पाठकों से सविनय निवेदन करते हैं कि आत्मीय मृत्यु को सदा स्मरण करते हुये संसार में कमल पत्र की नाईं रहते, परोपकार, दयोपकार, सदाचार शिष्ट व्यवहार में चित्त लगाएं भगवद्भजन का आनन्द उठाया करें और जिस महापुरुष की इतनी लम्बी-चौड़ी जीवनी पढ़ने में आपने उत्साह दिखलाया है तथा आगे दिखलावेंगे उस की सब बातों पर नहीं तो इस बात पर तो अवश्य ध्यान रखें—

"तन से काम करो विधि नाना। मन राखो जहँ कृपानिधाना॥"

क्यों कि इसी से उस कृपाधाम की कृपा के भागी हो उभय लोक का सच्चा सुख लाभ करने की सम्भावना है, अन्यथा नहीं।

द्वितीय खण्ड

प्रथम परिच्छेद

कविताशक्ति तथा काव्यभाषा

गोस्वामी तुलसी दासजी हिन्दी साहित्याकाश के सर्वोत्कृष्ट नक्षत्र हुवे हैं यह बात सब लोग स्वीकार करते हैं। इस नक्षत्र को अस्त हुवे आज १०६ वर्ष हो गये परन्तु इस की स्वच्छ सुन्दर कौमुदी आज भी इस जगत् में चतुर्दिक फैल रही है एवम् नित्य उत्तरोत्तर आनन्ददायिनी हो रही है। इस अलौकिक चन्द्र के अस्त होने पर भी केवल इस की सुकीर्ति चन्द्रिका की ओर दृष्टिपात करने से हरिजनों तथा काव्यानुरागियों का गम्भीर हृदय तरङ्गित होने लगता है एवम् रसिक चकोर उसी की ओर टकटकी बांध लेते हैं और अन्यजनित यन्त्रणाओं से सन्तप्त कितने ही व्यक्ति इसका आश्रय ग्रहण कर सुख पाते तथा अगाध्य मानसिक रोगों से मुक्ति लाभ करते हैं। इस अलौकिक कलाधर के प्रताप से श्रीरामचरितमानस महा मनोहारिणी कविता कुमुदिनियों ने अपने विकास से अंब सरोवरों को ऐसा आच्छादित कर रखा है कि उपर एक बार देखने ही से मन मुग्ध हो जाता है। उन कुमुदों की मधुर सहज सरस सुगन्ध भारतवर्ष में ही नहीं फैल रही है वरन् सुखशान्ति पवन के पंखों पर चढ़ कर अन्य देशों में भी पहुंच वहाँ के निवासियों को मोहित तथा आह्लादित करती है।

तीव्र समालोचना का प्रचण्ड मार्तण्ड इन कुमोदनियों को शुष्क तथा नीरस करने की सामर्थ नहीं रखता। कुतर्कों की कुज्झटिका भी इन्हें छिन्न-भिन्न नहीं कर सकती द्वेष का तुषार भी इन्हें नष्ट नहीं कर सकता। जब तक हिन्दी साहित्य का गौरव बना रहेगा जब तक हिन्दुओं की हिन्दीभाषा में ममता रहेगी इन की सहज छटा की नित्य प्रति वृद्धि होती रहेगी।

गोसाईंजी के हिन्दी साहित्याकाश का अलौकिक यशांक बनने तथा साहित्य संसार में ऐसा उच्च स्थान प्राप्त करने का कारण यह है कि इन में गम्भीर अनुभव तथा अनुशीलन का अपूर्व संयोग हुआ था। वे पदार्थों को वास्तविक रूपों में देखते एवम् अन्तःप्रकृति के सहारे समयानुसार उन्हें रूपान्तर कर सकते थे। इन के हृदय में मनोवृत्तियों भी दर्पण के प्रतिबिम्बित होती थी, इन्हें देशकाल का पूर्ण ज्ञान था एवम् साथ ही साथ ममता तथा सहृदयता भी पराकाष्ठा की थी।

"नानक नन्हा हो रहो, जैसी नन्ही दूब।
सभी घास जल जायगी, दूब खूब की खूब॥

इसलिये ऐसा महान गुणवान कवि होने पर भी एवम् अपनी कविता कामिनी को सर्वालंकारों से अलंकृत करने की योग्यता रखने पर भी वे अपने को इस कार्य में सर्वथा असमर्थ ही समझते रहे और इन्होंने इस बात को कई स्थानों में निःसंकोच भाव से स्पष्ट कहा भी है। यथा—

"कवित होउँ नहिं चतुर प्रवीनू। सकल कला सब विद्या हीनू।
कवित-विवेक एक नहिं मोरे। सत्य कहौं लिखि कागद कोरे॥"

अधिकार लोग चाहे इस का जैसा अर्थ करें, रामायणी लोग अपना पक्ष समर्थन के के लिये चाहे इसपर डंडा लेकर तैयार हो जायँ, परन्तु गोस्वामीजी को अपने विषय में अपना जैसा विश्वास था उसे उन्होंने निष्कपट भाव से बिना संकोच कह दिया है।

इन्हें अपने विषय में स्वयम् जैसा विश्वास और विचार हो परन्तु कविता मर्मज्ञ इन्हें एक महान प्रतिभावान सत्कवि देखते हैं क्योंकि जिस की रचना में भाव की गम्भीरता भाषा की सरलता पदलालित्य माधुर्य इत्यादि गुण हों एवम् जिसकी कविता के पढ़ने तथा श्रवणमात्र से मनोवृत्तियाँ विकसित होकर अलौकिक आनन्द अनुभव करने लगें और जिसकी कविता का रस अन्तःकरण में सहज ही प्रवेश कर जाय वही महान कवि कहलाने का अधिकारी है। अंग्रेजी कवि मिल्टन का कथन है कि "कविता सरस सरल मर्मस्पर्शिनी मनोहारिणी एवम् भावपूर्ण होनी चाहिये, क्योंकि थोड़े शब्दों में अधिक भाव दरसाना ही प्रकृत कवि का प्रधान लक्षण है।" निस्सन्देह गोसाईं जी की कविता उपरोक्त सब गुणों से भूषित है और इन्होंने भी बड़े सन्तों के समान प्रकृतिपुस्तक के पृष्ठों से पाठ ग्रहण किया है। आप सुप्रसिद्ध अंग्रेजी कवि शेक्सपियर के समकालीन थे और उन्हीं के सदृश बड़े तत्त्वज्ञ तथा प्रकृति एवम् मानवी स्वभाव के अच्छे ज्ञाता थे ऐसा इन के 'रामचरित मानस' के अंग्रेजी अनुवादक एफ एस ग्राउस साहब ने निश्चय किया है और इसी से इन की रचनाएँ ऐसी उत्कृष्ट हुई हैं। क्योंकि वर्णनीय विषय का अनुभव नहीं होने से उस का वर्णन कदापि सरस तथा मर्मभेदी नहीं हो सकता। गोस्वामी जी को प्रकृति तथा मानवी स्वभाव समझने-बूझने का सुअवसर भी पूरा मिला था। बाल्यकाल ही में इन्हें 'मंगलतीर्थराज' सन्तों के समाज का संग हुआ था। एवम् इन्हें सत्संग का भी सुखानन्द प्राप्त हुआ था। फिर गृहत्यागी होने पर भिन्न २ प्रकार और स्वभाव वाले जनसमुदाय से भी समागम हुआ ही करता था। इस के अतिरिक्त ये रघुनाथ जी के परम कृपापात्र तथा सरस्वती के प्रिय पुत्रों में से थे। इसी से प्राकृतिक तथा अप्राकृतिक उत्तम पदार्थ विविध रूपों और अवस्थाओं में ध्यान करते ही तत्क्षण में इन के नेत्रों के सामने उपस्थित हो जाया करते थे और ये कविता 'कामेरा' में झट उन का चित्र खींच लेते थे। या यों कहिये कि इन की विलक्षण बुद्धि कभी नदियों तथा सरोवरों के तटों पर विचरण कर कभी पर्वतों पर चढ़कर, कभी वनों में प्रवेश कर कभी आकाश में उड़कर कभी समुद्र में पैठ कर, और कभी पुरातन महल-मालिका-वाटिकाओं में भ्रमण कर सब स्थानों से सुन्दर सुन्दर सामग्रियाँ एकत्रित करती रही है और इन्होंने उन के सहारे अपनी कविता वनिता को सुन्दर सँवार सिंगार कर सुसज्जित किया है। विलक्षण ललित उपमाओं की माला

गूंथ कर विविध अनुप्रासों की जीजरी भेंट ओढ़ कर उस के गले की शोभा बढ़ाई है अभि और व्यङ्ग की करधनी तथा कौन-कौन भी डाल दिये हैं। शब्दालङ्कार भावालङ्कार अर्थालंकार किसी अलंकार की कमी नहीं रखी है। चरणों में विविध ललित गति भी दिखलाई है हास की हासकिरण भी छिटकाई है रौद्र तथा वीर का भ्रूभंग भी सजाया है, अद्भुत रसों का अद्भुत अम्बर भी पहना कर उसकी विश्वमोहिनी मूर्ति खड़ी की है।

बहुत-से लोगों का यह विचार है कि केवल रमणीय अर्थ प्रकट करनवाला शब्द काव्य कहलाता है और सत्काव्य के लिये पदलालित्य यमक अनुप्रास श्लेष, वर्णमधुरता अर्थात् शब्दालंकार इत्यादि की विशेष आवश्यकता नहीं क्योंकि बाह्य चमक-दमक पर यथार्थ रसिक लुब्ध नहीं होता और पद लालित्य सुगुम्फता मधुरता सरलता व्याकरण की शुद्धता, छन्दों की निर्दोष व्यवस्था इत्यादि सब प्रकार से गौण ही हैं। ये सब काव्य की शोभा बढ़ाती हैं पर ऐसा भी नहीं कहा जा सकता कि काव्य की शोभा इन्हीं पर निर्भर है।

काव्य की शोभा इन्हीं पर निर्भर हो या न हो परन्तु मनुष्य का चित्त पहले बाहरी चमक दमक ही को देख कर आकर्षित होता है और पीछे उस पदार्थ का वास्तविक गुण स्वभाव जानने का उसे अवसर मिलता है। और रसिक अनेक प्रकार के होते हैं। किसी को बाह्य चमक-दमक ही उन्मत्त बनाये रहता है कोई भाव और स्वभाव ही पर मुग्ध हो जाता है कोई मधुर मृदुल स्वर ही पर सर्वस्व निछावर करने को उद्यत होता है। अतएव हमारी समझ में तो सर्वगुण सम्पन्न एवम् सर्व जन आनन्द-दायिनी कविता हो वही स्वाभाविक तथा सत्काव्य है और प्रतिभावान कवि ही ऐसी कविता करने को समर्थ होता है। उस के बाहरी सजावट की ओर विशेष ध्यान नहीं रखने पर भी उस की कविता स्वयम् सब भूषणों से सुसज्जित हो जाती है एवम् पूर्वोक्त गुण उसमें सहज ही आ जाते हैं। इसी से यद्यपि वह नित्य की घटनाओं का ही वर्णन करता है तो भी उसकी कविता सचमुच दामिनी तथा हृदय माहिनी हो जाती है।

यदि गोसाईं जी में केवल रहस्यता ही होती यदि इनकी कविता केवल रमणीय अर्थ प्रकट करनेवाली ही होती और माघ[1] के समान इनकी कविता उपमा अर्थ गौरव तथा पद लालित्य आदि से सर्वाङ्ग भूषित नहीं होती तो वह सर्व जन प्रिय कदापि नहीं हो सकती, केवल यथार्थ रसज्ञ ही उस से आनन्द लाभ करते। परन्तु यहां तो—
"जहां देखता हूं जिधर देखता हूं। ये सनमस का जिलवा यहां देखता हूं॥"

गोसाईं जी ने यह निश्चय किया है कि 'सरस कवित कीरति विमल, सोई आदरहिं सुजान' परन्तु भूषणविहीन कविता आदरणीय होने का इन्होंने कहीं संकेत भी नहीं किया है। वरन इसकी आवश्यकता की झलक आप ने इन वाक्यों में दिखलाई है— आखर अरथ अलंकृति नाना। छंद प्रबंध अनेक विधाना॥ भाव-भेद रसभेद अपारा। कवित दोषगुन

१ उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥

बिबिध प्रकारा ॥ और नम्र भाव से अपने में इन बातों का अभाव दिखलाते हुये कहा है कि "मुझे कवित्त का विवेक एक भी नहीं है, परन्तु मेरी कविता में रघुबर के उदारनाम का वर्णन है इसी का मुझे भरोसा है कि लोग इसे अपनावेंगे क्योंकि सबगुण भूषित कविता भी रामयश विहीन होने से सुजनों में आदर नहीं पाती।" तथापि कविता के गुणों पर इनकी रचना भी इन्हीं के वाक्यों से प्रमाणित होता है क्योंकि "रामचरित मानस" का रूपक बाँधने में आप कहते हैं— अरथ अनूप सुभाव सुभासा। सोई पराग मकरन्द सुबासा ॥ धुनि अवरेब कवित गुन जाती। मीन मनोहर ते बहु भांती ॥ हाँ! वे अन्य कवियों के समान अपनी निपुणता प्रदर्शन करना नहीं चाहते थे। वे इसको भी नहीं समझते थे कि कथा प्रसंग सूत है जिस में इन की कविता कौशल की मोती पिरोई जाकर अपनी छवि दरसावे। इन्होंने अपनी कविता कौशल को रंग बिरंगी रेशम एवम् रामयश को मोती मान उस के मध्य में उस रेशम को छिपाये रखने का विचार किया है परन्तु उस अमूल्य मोती की अनुरूप प्रभा का योग पाकर वह रेशम आप ही-आप और भी अधिक अपूर्व रूप सम्पन्न हो गया है।

और भूषण विहीन कविता के विषय में गोसाईं जी के समकालीन एवम् उच्च कोटि के एक कवि सेनापति[1] जी कहते हैं 'दोष सों मलीन गुनहीन कविताई है तो किने अरबीन परबीन कोउ सुनि है। —भूषन को करि कै कवित्त बिनु भूषन को दर जो प्रसिद्ध ऐसो कौन सुरमुनि है ॥" पुनः "राखति न दोषै पोषै पिंगल के लच्छन को बुधि कवि की जो उपकंठहि बसति है। जो पै पद मन को हरष उपजावत है तजै को कुनर जौन छन्द सरसति है। अच्छर हैं बिसद करत उषै आपस में जाते जगती की जड़ताऊ बिनसति है। मानो छवि ताकी उदवति सविता की सेनापति कविता की कविताई बिलसति है ॥"

भूषण कविता का हृदय है।[2] हृदयशून्य शरीर भी क्या किसी काम का हो सकता है? जो हो अब इसे छोड़िये। रस की ओर ध्यान दीजिये।

---

१ इन का जन्म लगभग १५९ में हुआ था। वे दीक्षित कान्यकुब्ज ब्राह्मण गंगा तट के रहनेवाले थे। वे सूरदास तथा तुलसीदास ही के सरीखे ईश्वर भक्त थे, परन्तु धार्मिक विचार में कुछ अन्तर पाये जाते हैं। वे उच्च श्रेणी के कवि थे कविता अच्छी करते थे। इन की रचना में अनुप्रास यमक श्लेष, रूपक का आधिक्य देखा जाता है। इन की उपमाएँ तथा प्राकृतिक वर्णन बहुत मनोहर हुए हैं। इन के भाव सब भी इन के अपने और उत्तम हैं। इन्होंने काव्य कल्पद्रुम तथा कवित्त रत्नाकर की रचना की है जिसका एक तरंग अप्राप्य भी है। मिश्रबन्धु लिखित इन का वृत्तान्त सरस्वती भाग ११ पृष्ठ १२२-२० में पढ़ लीजिये।

२ "शब्द चरन भूषन हृदय कर गुण भावनुभाव।
अस्थ पाणी श्रुति जीवनी काव्य सुभट्ट सुभाव ॥"

—भानुकविकृत काव्य प्रभाकर।

गोसाईं जी की रचनाओं में शान्त करुणा आदि की प्रधानता होते हुए भी अन्य रसों का अभाव नहीं है और जहां जिस रस की कविता का समावेश हुआ है वहां पर वह पाठकों के हृदय पर अपना पूर्ण प्रभाव जमाने की सरस शक्ति रखती है। कवि का हृदय निर्मल और रसावसरज्ञ होने के कारण जिस प्रसंग की कविता रचिये उस से वही रस टपक रहा है। क्या इन की करुण रस की कविता पाठ से नेत्रों से सचमुच अश्रुधारा प्रवाहित नहीं होने लगती? क्या वीररात्मक कविता के पढ़ने से भुजाएँ नहीं फड़कने लगतीं और मन में वीरता का संचार नहीं होता? क्या वीभत्स से चित्त में घृणा नहीं उत्पन्न होती? क्या हास्य हमें हँसाकर लोट पोट नहीं कर देता? क्या शान्त से मन शान्ति लाभ नहीं करता और चित्त की एकाग्रता तथा संसार से विरक्तता का अनुभव नहीं होता? और क्या भिन्न २ ऋतुओं की काव्याङ्कित छवि अवलोकन से मन में आनन्द की लहरें नहीं उठने लगतीं? ये सब बातें प्रत्यक्ष ही होने लगती हैं क्योंकि शृंगार वीर, करुण इत्यादि जो भिन्न २ मनोवृत्तियां हैं वे इन्हें अत्यन्त सूक्ष्म और स्पष्ट रूप से अनुभूत थीं और वे उन के विश्लेषण में बड़े ही प्रवीण चित्रकार थे। कहते हैं कि चित्रशिल्प जिस रंग के कूंच पर चढ़ता है उस का रंग भी उसी रंग का हो जाता है। इसी प्रकार गोसाईं जी की लेखनी जिस रस की ओर झुकती थी उसी रस के रंग में रंग जाती थी और काव्यचित्र में उसी रस का सुन्दर रंग चढ़ाने लग जाती थी।

गोस्वामी जी की रचनाओं में शृंगार रस का भी अभाव नहीं है। शोभानिधान सौन्दर्य्यधाम श्री भगवान रामचन्द्र की माधुरी मूर्ति के अनुरागी हो कर वे सौन्दर्य तथा शृंगार का अनादर कैसे करते? इन का अनादर करने से इन की कविता कामिनी एक मुख्य अङ्गविहीना हो कर कान्तिशून्य हो जाती। इसी से इन्हों ने शृंगार की भी छटा दिखाने में त्रुटि नहीं की है। परन्तु उसे स्वच्छ पवित्र रूप में पाठकों के सम्मुख में रक्खा दिया है जिस की ओर दृष्टिपात से मन में पवित्रता का संचार होता है कलुषित भाव सर्वथा नष्ट हो जाता है। वह शृंगार भी शान्तिरस का काम करता है। यह इन की कविता चित्रकारी की निपुणता का फल है एवम् महान कवि होने का एक प्रमाण है।

इसी बात को ध्यान में रखकर इन्हों ने रामायण में कहा है —

"असि मल जे विषयी मन कागा। एहि सर निकट न जाहिं अभागा॥
संबुक भेक सिवार समाना। इहाँ न विषय कथा रस नाना॥
तेहि कारण आवत हिय हारे। कामी काक बलाक बिचारे॥"

—शुद्ध शृंगाररस का अनादर मैं नहीं क्योंकि विषय और शृंगार में प्रभेद है। यह आवश्यक नहीं कि जो सौन्दर्योपासक हो वह विषयी तथा लम्पट हो, या जो विषयी हो वह अवश्य सौन्दर्य प्रेमी तथा शृंगारप्रेमी हो। यह अति सूक्ष्म विचार है। बिना इस पर ध्यान रखे गोसाईं जी के शृंगार को समझना सहज नहीं है।

अंग्रेज़ी कवि वर्डसवर्थ के समान गोसाईं जी प्राकृतिक सौन्दर्योपासक थे एवम् स्वच्छता तथा सरलता को इस का प्रधान अङ्ग मानते थे। वे प्राय सौन्दर्य देव को विषय के

ग के जल से स्नान नहीं कराते थे। पवित्रता के स्वच्छ गंगा जल से स्नान कराकर उसको मन्दिर में स्थापित करते थे।

प्राकृतिक छवि चित्रण में इन की लेखनी प्रभाव शालिनी तो है ही परन्तु घटना वर्णन भी इन्हों ने इस ढंग से किया है मानों वे घटनायें अभी हम लोगों के नेत्रों के सामने हो रही हों। यदि किसी से वार्तालाप हुआ है, कहीं किसी विषय में परामर्श के निमित्त कोई सभा हुई है या जो कुछ हुआ है उस के विवरणपाठ से यह नहीं ज्ञात होता कि वे बातें हम लोग किसी अन्य व्यक्ति के मुख से सुन रहे हैं वरन् कवि की लेखन-शैली के प्रभाव से ऐसा प्रतीत होने लगता है कि पाठक उस स्थान पर पहुँच कर उन बातों को स्वयम् सुन रहे हैं और उन घटनाओं को देख रहे हैं। क्या राजाओं के उमक उमक कर धनुष तोड़ने के लिये उठने, दोनों भाइयों का सीता के संग वन में चलने एवम् ग्रामीण स्त्रियों के तत्कालीन कथोपकथन का प्रकरण पाठ से ऐसा नहीं ज्ञात होता कि ये बातें हमलोगों की आँखों के आगे हो रही हैं। क्या लङ्काकाण्ड पढ़ने से शस्त्रों की झनकार धनुषों की टङ्कार मारमार की ललकार वीरों का परस्पर प्रहार उभय दिशि 'जय-जय' का उच्चार, रथों की घरघराहट शरों की सनसनाहट गदाओं की खटखटाहट मुण्डों की भभभड़ाहट घावों की भभकाहट हमलोगों के कानों में नहीं प्रवेश करने लगती!

उत्कृष्ट तथा निकृष्ट पात्रों का इन्होंने ऐसा सच्चा चित्र खींचा है कि कदाचित् कोई विरला ही कवि इस बात में इनकी समता कर सकता है। इनके पात्रगण कहते करते सोचते, विचारते मानो हमलोगों के नेत्रों के सामने उपस्थित किये जाते हैं। रामायण पाठ से वस्तुतः ऐसा ही प्रतीत होता है कि नाटक के पात्रगण नेपथ्य से निकल निकलकर रङ्गभूमि में आते और बातचीत करते हैं। पात्रों की परस्पर बातचीत बहुत उत्तम, उचित तथा सहज रीति से कराई गई है। कुपात्रों का भी चित्र इन्हों ने एक दम काला ही नहीं खींचा है। उन के चित्राङ्कन में भी ये यथायोग्य सुन्दरता का छींटा देते गये हैं।

ग्रियर्सन साहब कहते हैं कि "इन के काव्यग्रन्थ पूर्ण नीरस से भरे हैं— — —इन के पात्र सर्व मेरी आँखों के सामने ऐसे नाच रहे हैं जैसे प्रसिद्ध अंगरेजी महाकाव्य के पात्रगण।" केवल इन्हीं कई शब्दों के द्वारा उन्हों ने हमारे चरित्रनायक को सुविख्यात विलायती कवि शेक्सपियर मिल्टन इत्यादि के साथ कुरसी प्रदान की है। सचमुच गोसाईं जी शेक्सपियर से कम नहीं हैं, वरन् उन से वे कई बातों में बढ़े हुये हैं। विचार करने से पाठक वृन्द स्वयम् यह बात जान सकते हैं और हम भी यह बात कहीं बताने की चेष्टा करेंगे।

सूरदास प्रभृति कवियों के आदर देने से गोस्वामी जी के समय में ब्रजभाषा का बड़ा ही प्राबल्य था। कविता उसी भाषा में की जाती थी। ब्रजभाषा में गद्य का भी लिखना आरम्भ हो गया था। परन्तु गोसाईं जी ने अपनी रचना में किसी विशेष भाषा का नियम नहीं रखा है। भारतवर्षीय विविध भाषाओं का सहारा लेकर जब और जहां जिस भाषा के शब्दों को उपयुक्त समझा है, उन्हीं को काम में लाया है। हां ग्रंथों को रुचिकर तथा उत्तम बनाने एवम् भावों को सहज रीति से प्रकट करने का ध्यान इन्हें सर्वत्र बना रहा है। इसी से इन की रचनाओं में ब्रजभाषा बघेली अवधी ग्राम्य तथा प्राकृत भाषादि के शब्द पाये जाते हैं।

और फारसी अरबी के शब्द भी बहुत आये हैं, यथा—रहम, अलक, सलाम, शान, पायमाल, साज, जुहार, दाद, कागद, गनी, नेवाज, फराक (फ़राख़), फहम, एताबत, इत्यादि। यही नहीं फारसी शेरों के भाव भी कहीं-कहीं इन की रचना में उल्लखित पाये जाते हैं।

गँवारू शब्दों की भी कमी नहीं है यथा—नेहर, भाबुर, कठौता, रँगाई, मुठभेरी, अटरठट्ठ, थारहबाट, पनही, जूता इत्यादि।

और इन्होंने अपने भिन्न २ ग्रंथों को भिन्न-भिन्न भाषा में तथा भिन्न २ छंद में भी लिखा है। रामायण की भाषा विशेषतः बैसवाड़ी और अवधी है यद्यपि उस में अन्य भाषाओं के शब्द भी आये हैं और कुछ संस्कृत के भी श्लोक हैं। इन की छोटी पुस्तकों की भी यही भाषा पाई जाती है। गीतावली तथा कृष्ण गीतावली शुद्ध ब्रजभाषा में बनी हैं। कवितावली और बाहुक की भाषा बैसवाड़ी मिश्रित ब्रजभाषा है। विनयपत्रिका में पूर्वोक्त सब भाषाएँ पाई जाती हैं एवम् बहुत से विनय के पदों में संस्कृत का अनुकरण देखा जाता है।

वैसे ही इन्होंने सरल रुचिकर छन्दों में भी रचना की है और इनकी कविता गूढ़ भाव पूर्ण भी हुई है। कविता किसी ढंग से की गयी हो कवि का आत्मीयत्व सभों ही में वर्तमान है।

गोस्वामी जी की केवल काल्पनिक शक्ति ही बलवती नहीं थी परन्तु आपकी श्रुति भी विलक्षण गुण धारण करती थी। शब्द तथा वाक्य-विन्यास में आप भाव और स्वर का ध्यान ही मिलाते गये हैं—यथा "विकसे सरसि बहु कंज गुंजत पुंज मंजुल मधुकरा" इसमें इन्होंने शब्दों ही में भ्रमरों का गुंजार करा दिया है। इनकी रचना से जान पड़ता है जैसे किसी निपुण चित्रकार ने चित्रपट में सुन्दर रंग चढ़ाया हो या रंग-रंग के रंग ही सुन्दर स्पष्ट रूप से प्रदर्शित किये जाने के लिये स्वयम् प्रगट होते गये हों। अर्थात् जहां जैसा भाव प्रगट करना है वहां वैसे ही शब्द और वाक्य रखे गये हैं। कल्पना में जितनी ही उत्तमता हुई है वाक्य उतना ही प्रबल होता गया है और वाक्य रचना धाराप्रवाहवत् देखा जाता है मानो उसके गढ़न में कवि को कोई परिश्रम ही नहीं हुआ है—सरस्वती कहती गई हों और वे लिखते गये हों। पाठक को यही प्रतीत होता है कि वह अगाध, सदाप्रवाहित वायुधारा में प्रवेश कर बिना हाथ पैर हिलाये सानन्द बहा जा रहा है और अपूर्व आनन्द अनुभव कर रहा है अर्थात् इनकी रचना धारा प्रवाहवत् हुई है।

इन्होंने सर्वदा भाव के उपयुक्त शब्दों का प्रयोग किया है।

जब तक मंथरा की कुमंत्रणा से कैकेयी की मति नहीं फिरी थी तब तक उनके सम्बन्ध में ये भरतमातु आदि शब्द रखते आये हैं यथा—

"भरत मातु पहँ गइ बिलखानी",
"ईमि कहइ रानि गाल पड़ मोरे",

—परन्तु जब पापी की कुटिल कपटमयी बातों को सुन कर वे बुद्धिभ्रष्टा हो गई तब गोसाईं जी ने दशरथ-वंश से उनका सम्बन्ध तोड़ उन्हें 'कलमुंही' आदि कहना आरम्भ किया है।

फिर—जब भरत जी ने कुछ करने की सेवकाई में विलम्ब किया है तो उस समय कवि कहता है—'चले निषाद जोहारि जोहारी। सूर सकल रन रूचइ रारी। सुमिरि राम-पद

पंकज-पनही । मारग लोगन्हि लगनी ॥ यहां रामचन्द्र की पनही का सुमिरन कराया, क्योंकि युद्ध क्षेत्र में जाने के समय कोमल पदों का कैसे ध्यान करावें ।

और यहां निषाद की बातों में गंवारू शब्दों को रखकर उन्हें स्वाभाविक बना दिया है—"हथवासहु बोरहु तरनि कीजै घाटारोहु" "बेगहि भाइहु सजहु संजोऊ" इत्यादि । इस प्रकार के पाठ से यही प्रतीत होता है कि मानो सचमुच उसी श्रेणी का कोई प्राणी बोल रहा है ।

और देखिये रावण सर्वदा राम लक्ष्मण के सम्बन्ध में 'तपसी' आदि शब्द प्रयोग करता था । परन्तु जब वह युद्ध करने को चला है तब 'कोउ दसानन सुनहु सुभट्टा । मर्दहु भालु कपिन्ह कर ठट्टा ॥ हौं मारिहौं भूप दोउ भाई । अस कहि सन्मुख फौज रेंगाई ॥ क्योंकि रावण के समान प्रतापी राजा क्या तपस्वियों के साथ युद्ध करेगा ? यह उसके गौरव के विरुद्ध और उसका अपमान-सूचक होगा । अतएव यहां 'भूप' शब्द का प्रयोग किया गया ।

गोसाइं जी अपनी रचनाओं में पूर्वापर का भी विशेष ध्यान रखते थे । इसका दो एक उदाहरण देखिये । प्रथम सोपान के ४८ दोहे के उपरान्त वाली २ अंक की चौपाई में लिखा है कि "भरि लोचन छबि सिन्धु निहारी । कुसमय जान न कीन्ह चिन्हारी ।" इस कुसमय का भाव लंकाकाण्ड के ११४ दोहा में निकलता है कि देख कुअवसर राम पहिं, आये संभु सुजान । ५ सोपान के १ ले दोहा में 'राम काज कीन्हे बिना, मोहि कहां बिश्राम' कह के २१ दोहा में विश्राम कराया है "पूंछ बुझाई खोइ श्रम । फिर दूसरे सोपान के ८१ दोहे में राम दरस हित नेमव्रत लाग करन नर-नारि मनहु कोक कोकी कमल दीन विहीन तमारि । लिख कर उसकी समाप्ति सातवें सोपान के ३ दोहे के बाद वाली प्रथम चौपाई में की है यथा 'यहां भानु कुल कमल दिवाकर । कपिन दिखावत नगर मनोहर ।'

लोग कहते हैं कि इतना पूर्वापर का विचार रखने पर भी गोसाईं जी ने शिवजी से पार्वती जी के प्रश्नों के उत्तर दिलाने में पहले यह कहलाकर राम कृपा तें पारवती सपनेहु तव मन माहिं । सोक मोह सन्देह भ्रम मम विचार कछु नाहिं ॥ फिर कहलाया है 'एक बात नहिं मोहि सुहानी । जदपि मोह बस कहेउ भवानी ॥" जब शिवजी के विचार में पार्वती जी के मन में स्वप्न में भी मोह प्रमादि नहीं तब वे मोह बस कोई बात फिर क्यों कहने लगीं ? बोध होता है कि अपने इष्टदेव के सम्बन्ध में ऐसी शंका सुनकर भी शिव जी को रोष हो गया था इसी से मोह बस पूछना कहा परन्तु फिर सम्हल कर कहा कि मुझे आश्चर्य होता है कि तुम मोह रहित हो कर ऐसा प्रश्न करती हो ऐसा प्रश्न तो मोह पिशाच ग्रसित अधम नर करते हैं । 'तुम जो कहा राम कोउ आना । जेहि श्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना ॥ कहहिं सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिशाच । पाखंडी हरि पद बिमुख जानहिं झूठ न साच ।"

हां ! इस सम्बन्ध में और इस स्थान में हम इतना और कहने का साहस करेंगे कि गोसाईं जी की सब रचनाएं एक ही सी नहीं हैं । रामायण गीतावली कृष्ण गीतावली कवितावली विनयपत्रिका के दर्जे को हम के और ग्रंथ नहीं पा सकते । इस का कारण यह है कि कविता का उत्तम होना या न होना समय तथा योग विशेष पर निर्भर है । मिल्टन का

कथन है कि मेरी प्रतिभा वय के कुछ महीनों में अधिक समुज्ज्वल रहा करती थी। इसी से मिल्टन कृत 'परेडाइज़ रीगेन्ड' (Paradise Regained) उतना उत्तम नहीं है जितना कि 'परेडाइज़ लास्ट' (Paradise Last) पाया जाता है। पोप ने २ वय की अवस्था में जैसी कविता की वैसी कविता वह फिर करने को समर्थ नहीं हुआ। बंगदेशीय सुविख्यात बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय की भी यही दशा देखी जाती है। उन का अन्तिम उपन्यास 'सीताराम' उन के पूर्व रचित उपन्यास 'देवीचौधरानी' आदि से टक्कर नहीं लगा सकता। किसी कवि की सब रचनाएँ एक-सी हों यह सम्भव भी नहीं है। शेक्सपियर ने नाटकों के अतिरिक्त और भी कई एक छोटे छोटे ग्रन्थों की रचना की है जिन के विषय में हालम साहब का कथन है कि ये ग्रन्थ इस कवि-चूड़ामणि की स्वच्छ कीर्ति में धब्बा लगाते हैं यदि कवि इन ग्रन्थों की रचना नहीं करता तभी अच्छा था। यही क्या ? इस प्रतिभावान् कवि के सब नाटक भी तो एक समान ही उत्तम नहीं हैं।

हमारे चरित्रनायक का तो ग्रन्थ या किसी ग्रन्थ का कोई अंश सर्वथा निकृष्ट भी नहीं है और पूर्वोक्त ग्रन्थों के समान जो अन्य ग्रन्थ सुन्दर नहीं देखे जाते, उनमें से कई एक को बहुतेरे लोग गोसाईं जी विरचित होना मानने ही को तैयार नहीं हैं।

सारांश यह कि हमलोग गोसाईं जी की कविता को जिस प्रकार से देखते हैं, उसे सर्वगुणसम्पन्न पाते हैं जिस से इन का प्रतिभावान् प्राकृतिक तथा उत्कृष्ट कवि होना निर्विवाद प्रतिपादित होता है।

द्वितीय परिच्छेद

गोस्वामी तुलसीदास कृत ग्रन्थावली

गोस्वामी जी ने कितने और किन किन ग्रंथों की रचना की है, इस में बहुत मतभेद देखा जाता है। मिरजापुर-निवासी पं० रामगुलाम द्विवेदी रामायण की शिष्य-परम्परा में स्वयम् गोसाईं जी से सम्बन्ध रखते थे। उन्हों ने एक स्थान में लिखा है—

'रामललानहछू, त्यों बिराग संदीपनिहू बरवै बनाइ बिरमाईं मति साईं की। पारबती, जानकी के मंगल ललित गाय, रम्य राम—आज्ञा रची कामधेनु नाईं की॥ दोहा औ कवित्त गीत बंध, कृष्णकथा कही रामायन बिनै माहिं बात सब ठाईं की। जग में सोहानी जगदीश हू के मन मानी सन्त सुखदानी बानी तुलसी गोसाईं की॥"

इस के अनुसार गोसाईं जी कृत १२ ग्रंथ होते हैं जिनमें रामायण, कवितावली गीतावली दोहावली विनय पत्रिका तथा रामाज्ञा ये छः बड़े ग्रंथ हैं और रामललानहछू वैराग्य-संदीपिनी, जानकी मङ्गल पार्वती-मङ्गल कृष्ण गीतावली तथा बरवै रामायण ये छः छोटे ग्रंथ हैं। इस से राम सतसई या सतसई गोसाईं जी कृत होना विदित नहीं होता। परन्तु पं० शिवदत्त जी ने—जो भी शिष्य-परम्परा में गोस्वामी जी से सम्बन्ध रखते थे—सतसई को गोस्वामी जी कृत होना मान कर उसकी टीका भी लिखी है और उन के गुरु के शिष्य बेनीराम ने गोसाईं जी के ग्रंथों की नामावली वर्णन में एक कवित्त कहा है। इस में 'दोहावली' का नाम न देकर 'सतसई' का नाम दिया हुआ है और 'राम-कथा-छेमसहित' एक अन्य ग्रंथ का नाम है जिस से बेनी राम के अनुसार गोसाईं जी रचित १३ ग्रंथ होते हैं।

किसी-किसी का कथन है कि गोसाईं जी ने २२ ग्रंथों की रचना की है। 'शिवसिंह सरोज' के अनुसार पूर्वोक्त १२ ग्रंथों के सिवाय गोसाईं जी ने १० अन्य ग्रंथों की रचना की थी। अर्थात् रामसतसई, संकट मोचन हनुमानबाहुक[1] राम सलाका, छन्दावली, कुंडलिया रामायण कड़खा रामायण रोला रामायण झूलना रामायण और छप्पै रामायण।

अनोखहारी गोसाईं जी निरखन भूल गये। नहीं बिरहा रामायण आल्हा रामायण सोरिक रामायणादि भी लिख देना चाहता था। इससे कई एक विशेष जातियों का भारी उपकार होता और कौन जाने उन्होंने लिखा भी हो और कोई अनुसन्धानप्रिय रामायण-प्रकाशक उन्हें रामायण के साथ-साथ कभी प्रकाशित कर दें।

'महामाष्ट हरिभक्ति प्रकाशिका' तथा 'भक्तकल्पद्रुम' में शिवसिंहसरोज वर्णित रामाज्ञा सतसई छन्दावली तथा कुंडलिया रामायण के नाम नहीं दिये गए हैं। परन्तु इनमें हनुमानचालीसा और कलिधर्माधर्मनिरूपण दो नवीन ग्रंथों के नाम पाये जाते हैं।

---

१ इसको कोई २ कवितावली का अंग मानते हैं। कवितावली की समालोचना देखिये

ग्रिअर्सन साहब ने इंडियन एंटीक्वेरी पृ० ११ में २१ ग्रंथों का नाम गिनाया है अर्थात् शिवसिंह सरोज कथित छन्दावली का नाम छोड़ कर आपने अन्य सब ग्रंथों का नाम दिया है। और बांकीपुर के 'खड्गविलास' प्रेस द्वारा प्रकाशित 'रामचरितमानस' में जो आप की लिखी गोसाईं जी की जीवनी छपी है उसमें आप रामायण के सिवाय १६ छोटे अन्य ग्रंथों का अर्थात् कुल १७ ग्रंथों का नाम बताया है और एक ग्रंथ का नाम 'पञ्चरत्न' रख कर आप ने उस में जानकी मङ्गल पार्वती मङ्गल वैराग्यसन्दीपिनी रामललानहछू तथा बरवै रामायण सम्मिलित किया है। पञ्चरत्न नाम तो भला एक ठिकाने का भी है परन्तु 'श्री वेंकटेश्वर' प्रेस के अध्यक्ष ने एक ग्रन्थ का नाम 'षोडशरामायण' रखा है और उस के भीतर पार्वती मङ्गल कृष्णगीतावली तथा कलिधर्मनिरूपण पुस्तकें भी घुसा दी हैं। यह विचित्र नामकरण है। क्या इन तीनों पुस्तकों की भी गणना रामायण में ही होगी? या गोसाईं जी की लेखनी से निर्गत सब वस्तुएँ रामायण ही कहलावेंगी?

पंडित रामेश्वर भट्ट ने २२ ग्रंथों में से छन्दावली तथा छप्पै रामायण का नाम नहीं देकर 'रामलला' नाम की एक नवीन पुस्तक बनाई है।

सुनते हैं कि काशी-नागरी प्रचारिणी सभा की खोज में ज्ञानदोष परिहरण, मङ्गल रामायण गीतामाहात्म्य राममुक्तावली तथा ज्ञानदीपिका ये पांच ग्रन्थ और मिले हैं। एक सुप्रसिद्ध प्रकाशक ने अपनी ग्रन्थसूची में गोस्वामीकृत 'बारहमासा' लिख मारा है।

आगे मतभेद प्रदर्शक एक चक्र दे दिया गया है जिस से पाठकों को सहज ही विदित हो जावेगा कि कौन २ महाशय कौन २ ग्रंथ गोस्वामी जी कृत होना मानते हैं और कौन २ ग्रंथ नहीं मानते।

उस के देखने से यह भी ज्ञात होगा कि पूर्वार्द्ध सूची के १२ ग्रंथों का गोसाईं जी कृत होना प्रायः सब लोग स्वीकार करते हैं किन्तु शेष ग्रंथों के सम्बन्ध में अधिकतर की यही सम्मति है कि वे ग्रंथ गोसाईं जी के बनाये नहीं हैं तुलसी नामक किसी अन्य कवि के बनाये हुये हैं। निस्सन्देह बात भी ऐसी ही प्रतीत होती है। एक तो इस नाम के और भी कई कवि हुये हैं। दूसरे गोसाईं जी के शिष्यपरम्परा के लोग तो चिर काल से १२ १२ ग्रंथ मानते आते हैं और अन्य महाशयों ने इन के ग्रंथों की संख्या कम ४२[१] तक पहुँचा दी है। पूर्वोक्त १२ ग्रंथों में से भी कई एक गोसाईं जी कृत होने में लोगों को सन्देह है। इस का हाल पुस्तकों की समालोचना से विदित होगा।

---

१ राम चरितमानस, कवितावली, गीतावली, विनयपत्रिका, दोहावली, रामाज्ञा (रामशकुनावली) रामललानहछू, वैराग्यसंदीपिनी, जानकीमङ्गल, पार्वतीमङ्गल, कृष्णगीतावली, बरवैरामायण, सतसई (रामसतसई) संकटमोचन, हनुमानबाहुक, रामसलाका, छन्दावली, छप्पै रामायण, कड़खा रामायण, रोला रामायण, झूलना रामायण, कुण्डलिया रामायण, हनुमानचालीसा, कलिधर्माधर्मनिरूपण, रामलला, रामसभा, बोधमनि मन्त्रसारणी, मंगल रामायण, गीतामाहात्म्य, ज्ञानदोष परिहरण, राममुक्तावली और ज्ञानदीपिका। (मन्त्रसारणी और मन्त्ररामायण सम्भवतः एक ही पुस्तक के दो नाम हैं।)

द्वितीय परिच्छेद

गोस्वामी तुलसीदास कृत ग्रन्थावली

गोस्वामी जी ने कितने और किन किन ग्रंथों की रचना की है इस में बहुत मतभेद देखा जाता है। मिरजापुर-निवासी पं० रामगुलाम द्विवेदी रामायण की शिष्य-परम्परा में स्वयम् गोसाईं जी से सम्बन्ध रखते थे। उन्होंने एक स्थान में लिखा है—

'रामलला नहछू त्यों विराग-संदीपिनिहु बरवै बनाइ बिरमाई मति साईं की। पारवती जानकी के मंगल ललित गाय, रम्य राम—आज्ञा रची कामधेनु नाईं की॥ दोहा औ कवित्त, गीत बंध कृष्णकथा कही रामायन विनै माहिं बात सब ठाईं की। जग में सोहानी जगदीश हू के मन मानी संत सुखदानी बानी तुलसी गोसाईं की॥

इस के अनुसार गोसाईं जी कृत १२ ग्रंथ होते हैं जिनमें रामायण, कवितावली गीतावली दोहावली विनय पत्रिका तथा रामाज्ञा, ये छः बड़े ग्रंथ हैं और रामललानहछू, वैराग्य-संदीपिनी, जानकी-मंगल पार्वती-मंगल कृष्ण गीतावली तथा बरवै रामायण, ये छः छोटे ग्रंथ हैं। इस से राम सतसई का सतसई गोसाईं जी कृत होना विदित नहीं होता। परन्तु पं० शिवदत्त जी ने—जो भी शिष्य-परम्परा में गोस्वामी जी से सम्बन्ध रखते थे—'सतसई' को गोस्वामी जी कृत होना मान कर उसकी टीका भी लिखी है और उन के गुरु के शिष्य बेदोराम ने गोसाईं जी के ग्रंथों की नामावली बद्ध में एक कवित्त कहा है। इस में 'दोहावली' का नाम न देकर सतसई का नाम दिया हुआ है और 'राम-कला-प्रेमभक्ति' एक अन्य ग्रंथ का नाम है जिस से बेदोराम के अनुसार गोसाईं जी रचित १३ ग्रंथ होते हैं।

किसी-किसी का कथन है कि गोसाईं जी ने १६ ग्रंथों की रचना की है। शिवसिंह सरोज के अनुसार पूर्वोक्त १२ ग्रंथों के सिवाय गोसाईं जी ने ९ अन्य ग्रंथों की रचना की थी। अर्थात् रामसतसई, संकट मोचन हनुमानबाहुक[1] राम सलाका छन्दावली कुंडलिया रामायण कड़खा रामायण रोला रामायण झूलना रामायण और छप्पै रामायण।

अघोरपुरी गोसाईं जी निश्चय भूल गये। उन्हें बिरवा रामायण, बारहा रामायण, सोरठ रामायणादि भी लिख देना चाहता था। इससे कई एक विशेष व्यक्तियों का भारी उपकार होता और कौन जाने उन्होंने लिखा भी हो और कोई चतुरचूड़ामणि रामायण प्रशंसक उन्हें रामायण के साथ-साथ कभी प्रकाशित कर दें।

'महयाव हरिभक्ति प्रकाशिका' तथा 'भक्तकल्पद्रुम' में शिवसिंहसरोज वर्णित रामाज्ञा सतसई छन्दावली तथा कुण्डलिया रामायण के नाम नहीं दिये गये हैं। परन्तु उनमें हनुमानचालीसा और कलिधर्मनिरूपण दो नवीन ग्रंथों के नाम पाये जाते हैं।

---

१ इसको कोई २ कवितावली का अंश मानते हैं। कवितावली की समालोचना देखिये

ग्रियर्सन साहब ने इण्डियन एन्टीक्वेरी पृ० ११ में २१ ग्रन्थों का नाम गिनाया है अर्थात् 'शिवसिंह सरोज' कथित छन्दावली का नाम छोड़ कर बाकी अन्य सब ग्रन्थों का नाम दिया है। और बाँकीपुर के 'खड्गविलास' प्रेस द्वारा प्रकाशित 'रामचरितमानस' में जो बाबू की लिखी गोस्वाई जी की जीवनी छपी है उसमें आप रामायण के सिवाय १६ छोटह अन्य ग्रन्थों का अर्थात् कुल १७ ग्रन्थों का, नाम बताया है और एक ग्रन्थ का नाम पञ्चरत्न रख कर आप ने उस में जानकी मङ्गल पार्वती मङ्गल वैराग्यसन्दीपिनी रामलला नहछू तथा बरवै रामायण सम्मिलित किया है। 'पञ्चरत्न' नाम तो भला एक ठिकाने का भी है परन्तु 'श्री वेंकटेश्वर' प्रेस के अध्यक्ष ने एक ग्रन्थ का नाम 'षोडशरामायण' रखा है और उस के भीतर पार्वती मङ्गल कृष्णगीतावली तथा कवित्तमनिकरण पुस्तकें भी घुसा दी हैं। यह विचित्र नामकरण है। क्या इन तीनों पुस्तकों की भी गणना रामायण में ही होगी? या गोसाईं जी की लेखनी से निर्गत सब वस्तुएँ रामायण ही कहलाएँगी?

पंडित रामेश्वर भट्ट ने २२ ग्रन्थों में से छन्दावली तथा छप्पै रामायण का नाम नहीं देकर 'रामलला' नाम की एक नवीन पुस्तक बनाई है।

सुनते हैं कि काशी-नागरी प्रचारिणी सभा की खोज में ज्ञानदीप परिकरण, मङ्गल रामायण सीतामङ्गल रामसुखावली तथा ज्ञानदीपिका ये पांच ग्रन्थ और मिले हैं। एक सुप्रसिद्ध प्रकाशक ने अपनी ग्रन्थसूची में गोस्वामीकृत 'बारहमासा' लिख मारा है।

आगे मनमोद मार्गदर्शक एक चक्र दिया गया है जिस से पाठकों को सहज ही विदित हो जायगी कि कौन २ महाशय कौन २ ग्रन्थ गोस्वामी जी कृत होना मानते हैं और कौन २ ग्रन्थ नहीं मानते।

उस के देखने से यह भी ज्ञात होगा कि पूर्वोक्त सूची के १२ ग्रन्थों का गोसाईं जी कृत होना प्रायः सबलोग स्वीकार करते हैं किन्तु शेष ग्रन्थों के सम्बन्ध में अधिकांश की यही सम्मति है कि वे सब गोसाईं जी के बनाये नहीं हैं तुलसी नामक किसी अन्य कवि के बनाये हुये हैं। निरपेक्ष बात भी ऐसी ही प्रतीत होती है। एक तो इस नाम के और भी कई कवि हुये हैं। दूसरे, गोसाईं जी के शिष्यपरम्परा के लोग तो चिर काल से १२ १२ ग्रन्थ मानते आते हैं और अन्य महाशयों ने इन के ग्रंथों की संख्या अब ३२[1] तक पहुँचा दी है। पूर्वोक्त १२ ग्रंथों में से भी कई एक गोसाईं जी कृत होने में लोगों को सन्देह है। इस का हाल पुस्तकों की समालोचना से विदित होगा।

---

१ रामचरितमानस कवितावली, गीतावली, विनयपत्रिका, दोहावली, रामाज्ञा (रामशकुनावली), रामसतसई वैराग्यसंदीपिनी जानकीमङ्गल, पार्वतीमङ्गल, कृष्णगीतावली, बरवैरामायण, नहछू, (रामललानहछू), संकटमोचन हनुमानबाहुक, रामशलाका, छन्दावली, छप्पै रामायण कड़खा रामायण रोला रामायण झूलना रामायण कुण्डलिया रामायण हनुमानचालीसा, कवित्तमनिकरण रामलला, रामाज्ञा [illegible], सतसई, मङ्गल रामायण सीतामङ्गल ज्ञानदीप परिकरण रामसुखावली और [illegible] दीपिका। (छन्दावली और छप्पैरामायण यथार्थतः एक ही पुस्तक के दो नाम हैं।)

तृतीय परिच्छेद

रामायण की सृष्टि

ऐसा उद्भट उत्तम तथा बुद्धिविलक्षण कवि होने पर भी गोस्वामी जी ने फ़ारसी भाषा के सुप्रसिद्ध कवि शेखसादी के समान ऐसा कहना कि—"शायरां बिस्यार गुज़श्तन्द शेरहाए पुरनमक। कस न गुफ़्त' शेर हम चूं सीमए शेख सादी अस्त।"[1] अर्थात्—बहुत से कवियों ने मज़ेदार कविताएँ कीं परन्तु सादी के समान किसी ने पद्यरचना नहीं की,[2] उचित नहीं समझा। वरन सरल-चित्त तथा नम्रस्वभाव होने के कारण इस ग्रन्थ के निर्माण में अपनी अयोग्यता अनुभव कर इन्होंने स्पष्ट शब्द से कहा है कि —

करन चहउँ रघुपति गुन गाहा। लघुमति मोरि चरित अवगाहा॥
सूझ न एकउ अंग उपाऊ। मन मति रंक मनोरथ राऊ॥

परन्तु हमलोग देखते हैं कि 'प्रभु प्रताप सुमति हिय हुलसी' के प्रभाव से ही क्यों न हो, जैसे विलायती कवि अपने निपुण को बनाकर कवितागान आरम्भ कर देते हैं, गोसाईं जी ने श्री गुरुदेव तथा देव ब्राह्मण सन्त की वन्दना कर एवम् सज्जन असज्जन सकल जन की विनय पूर्वक प्रार्थना कर ग्रन्थ लिखना आरम्भ कर दिया है और इस की रचना में इन्होंने ऐसी विलक्षणता तथा विचक्षणता दिखलाई है कि बुद्धि चकित हो जाती है।

कवि ने इसकी रचना विशेषतः चौपाई में की है। इसी से कोई-कोई चौपाई रामायण भी कहते हैं। परन्तु दोहा सोरठा हरिगीतिका चौपैया त्रिभंगी तोटक तोमर (माधुर्य) भुजंगप्रयात अनुष्टुप शार्दूल विक्रीडित वसंततिलका, नाराचरूपिणी (प्रमाणिका) आदि अनेक भाँति के छन्द इस के संस्कृत श्लोकों में तथा इस के भाषाभाग में रखे जाते हैं। फिर प्रस्तार विचार से उन छन्दों में भी जिन्हें सर्वसाधारण चौपाई मानते हैं, पादाकुल, अहिनी प्रभृति कई एक भेद के छन्द हैं, तथा दोहे भी लघु-गुरु वर्णों के विचार से कई प्रकार के पाये जाते हैं।

कई एक चौपाइयों के बाद में यथारुचि केवल एक या अधिक दोहा या केवल सोरठा अथवा दोहा सोरठा दोनों दिये गये हैं। कहीं-कहीं चौपाइयों के अनन्तर हरिगीतिका चौपैया

---

१ शायरी = शीन + अलिफ + रे + या।

२ मिल्टन कृत 'पैराडाइज़ लास्ट' के नीचे लिखे हुए पद्यांश से भी यही ध्वनि निकलती है।—'Unattempted yet in prose or rhyme"

सर्वथा त्रिभंगी देकर इन्होंने दोहा या सोरठा रखा है। हरिगीतिकादि का प्रयोग प्रायः युद्ध, आनन्दोल्लास, उमङ्ग, विनय इत्यादि के समय देखा जाता है। निस्सन्देह मन में महानन्द तथा प्रबल उमङ्ग के आवेश ही से कवि ने उन स्थानों में इन छन्दों का प्रयोग किया है। उन विशेष स्थानों में उन, छन्दों के पाठ से पाठकों के मन में भी उमङ्ग तथा हर्ष जाग्रत हो जाता है।

प्रत्येक सोपान (काण्ड) के आदि में संस्कृत के श्लोक हैं। उत्तर काण्ड के अन्त में भी संस्कृत के दो श्लोक हैं। काण्डों के मध्य में भी कई एक स्थानों में संस्कृत में स्तुतियाँ दी गई हैं।

यद्यपि आपने इस ग्रन्थ की रचना विशेषतः चौपाई तथा दोहा आदि साधारण छन्दों में की है तथापि अपनी कविता-शक्ति से आपने इसे ऐसा रोचक तथा मनोरञ्जक बना दिया है कि इसके पाठ से पढ़नेवाले का मन नहीं उकताता, वरन् इसके पढ़ने ही की इच्छा बढ़ती जाती है।

प्रत्येक काण्ड के अन्त में ये उसके पाठ का फल भी कहते गये हैं। काण्डों के मध्य में भी इन्होंने विशेष विशेष कथाओं का फल प्रायः कह दिया है। परन्तु कथावर्णन में निष्प्रयोजन बातें कह कर आपने पाठकों का समय नष्ट नहीं किया है।

आपने अपने इस महाकाव्य को ग्रन्थ ही के रूप में नहीं वरन मानसरोवर रूप में भी हम लोगों के दृष्टिपथ में उपस्थित किया है।

पाठक वृन्द! इस मनोरम मानसरोवर की छवि की ओर दृष्टि कीजिये। पहले इस सरोवर के घाटों को निहारिये कि वे क्या हैं और कैसे हैं। 'सुठि सुन्दर सम्वाद वर विरचेउ बुद्धि बिचारि। तेइ एहि पावन सुभग सर घाट मनोहरि चारि॥" और इस सरोवर में सात सीढ़ियाँ हैं।[1] 'सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना'—जो सप्त काण्ड के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह सरोवर सुधा समान श्री सीताराम यश सलिल से परिपूर्ण है इस में उपमा की तरंगें उठ रही हैं सुन्दर युक्तियों के मोती इस में वर्तमान हैं। चौपाई, दोहा, सोरठा तथा अन्यान्य छन्द सघन पुरइन और भाँति भाँति के कमलों के समान शोभायमान हैं। एवम् अनुपम अर्थ सुन्दर भाव तथा सरल भाषा उन कमलों के पराग मकरन्द और सुगन्ध के सदृश हैं। इनपर सुकृति रूपी भ्रमर गुंजार कर रहे हैं। ज्ञान और विराग विचार के दो मराल इस सरोवर के दोनों किनारे विराज रहे हैं। कविता के भिन्न २ गुण इसमें भाँति २ के सुन्दर मीन हैं। जप तप आदि जलचर इसमें कल्लोल कर रहे हैं। सन्त सभा इसकी चारों ओर वाटिका स्वरूप है जहाँ श्रद्धारूपी ऋतुराज सर्वदा राज कर रहा है, और क्षमा दया, सुन्दर तरुवर और लता वितान इसकी शोभा बढ़ा रहे हैं। संयम नियम उसके फूल एवम् ज्ञान उसका फल और हरिपद में रति

---

१ रामायण परिचर्या परिशिष्टप्रकाश (अर्थात् महात्मा हरिहर प्रसाद कृत टीका) पृ० ४१, ४४ बा० दो० एवम् 'मानसतत्त्वबोधिनी' (किष्किन्धा कां०) पृ० ५२-५४ में सातों कांडों में सीताराम संयोग माधुर्यशरण, अयोध्या—वैराग्य, आरण्य—मीमांसा, किष्किन्धा—ध्यान, सुन्दर—न्याय, लंका—तन्मात्रा, उत्तर—साधारण-शान्त, ये सीढ़ियाँ इस प्रकार से गिनाई गई हैं।

होना ही फल का रस है और अनेक कथाप्रसंग उस वाटिका में शुक-पिक के सरस कलरव कर रहे हैं और "पुलक वाटिका बाग बन सुख सुविहंग बिहारु। माली सुमन सनेह-जल सींचत लोचन चारु॥" एवम् "जे गावहिं यह चरित सँभारे। तेई एहि ताल चतुर रखवारे" और इसके अधिकारी हैं। बेचारे कामी काक और बलाक इस सर के निकट नहीं जाते क्योंकि शम्बुक, भेक और सेवार के समान इसमें विषय-कथा नहीं है। मदमोह मत्सरादि रूप कानन इस तड़ाग को घेरे हुए हैं जिसमें कुसंगति आदि सर्प व्याघ्र, बाघ रूप घूम रहे हैं, सांसारिक बखेड़े पहाड़ हैं और उससे कुतर्क रूपिणी भयावनी नदी प्रवाहित है। अतएव श्रद्धा रहित लोग इस सरोवर के निकट नहीं जा सकते और जो श्रद्धावान पुरुष इस तड़ाग में मज्जन करता है वह अपने अन्तःकरण के मल को दूर कर अकथनीय सुख लाभ करता है।

वस्तुतः इस सरोवर का रूप अद्भुत शोभा-सम्पन्न महा-मनोहर और अकथनीय आनन्द-प्रद है। इसकी अपूर्व छटा देखते मन मुग्ध हो जाता है और चित्त यही चाहता है कि इसे निरन्तर निहारते ही रहें, इसके निर्माण कर्ता को सदैव धन्यवाद देते ही रहें उनके पवित्र चरणों में सर्वदा नमस्कार करते ही रहें। परन्तु हाय! उन चरणों का दर्शन अब किसी के भाग्य में कहां बदा है!

पाठकवृन्द यह तो जान गये हैं कि सुन्दर सम्वाद इस सरोवर के घाट हैं। परन्तु वे सम्वाद कौन हैं यह भी उन्हें बता देना आवश्यक है। मन्वन्तरिक कथा—शिव और पार्वती सम्वाद याज्ञवल्क्य और भरद्वाज सम्वाद तथा काकभुशुण्डि और गरुड़सम्वाद—गोसाईं जी ने हमलोगों को सुनाई है।[1] ये ही चार सम्वाद इस मानसरोवर रामायण के सुभग पावन घाट कहे गये हैं। ये तीनों सम्वाद तो तीन घाट हुये। चौथे घाट के सम्बन्ध में कोई गोसाईं जी के गुरु और गोसाईं जी का सम्वाद, कोई गोस्वामी जी और उनके मन का सम्वाद एवम् कोई गोसाईं और भक्तों का सम्वाद बताते हैं। यह अन्तिम कथन गोस्वामी जी के स्पष्ट लेख से प्रतिपादित होता है "कहिहउँ सोइ सम्वाद बखानी। सुनहु सकल सज्जन सुख मानी॥" अर्थात् याज्ञवल्क्य और भरद्वाज वाला सम्वाद हम कहेंगे, आप सज्जन लोग सुखपूर्वक इसे सुनते जाइये। यह कौन सम्वाद है इसे भी आपने रामायण में कह दिया है।

महात्मा हरिहरप्रसादजीने इन घाटों का ऐसा भी निर्देश किया है:—शिवपार्वती का 'ज्ञानघाट'—'रजत सीप महँ भास जिमि जथा भानुकर बारि। जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ, भ्रम न सकै कोउ टारि॥' याज्ञवल्क्य और भरद्वाज का 'कर्मकाण्ड घाट'—

"भरद्वाज सुनु जाहि जब, होत बिधाता बाम। धूरि मेरु सम जनक जम ताहि ब्याल सम दाम॥" काग भुशुंडी और गरुड़ का 'उपासना घाट'—'सेवक सेव्य भाव बिनु भव न

---

१ यह ध्यान देने योग्य बात है कि बालकाण्ड के स्वयम्बर से भरत के प्रेम वर्णन तक कहीं इन लोगों के सम्वाद का संकेत नहीं पाया जाता जैसा कि बाल के पूर्वार्द्ध में तथा आरण्य से उत्तरकाण्ड तक देखा जाता है। इससे बहुत से लोगों का अनुमान है कि पहले स्वयम्बर और भरत प्रेम दो की रचना हुई थी पीछे सम्पूर्ण रामायण लिखने का विचार होने से व सब बातें उनमें जोड़ दी गईं।

हरिये उरगारि। गोसाईं जी और मन का सम्वाद दैन्य घाट— अति बड़ि मोरि ढिठाई खोर। सुनि अघनरकहु नाक सिकोरी॥ यह घाटों का नाम करण हुआ।

और 'मानस मयङ्क' में भक्ति काण्ड का पूर्वघाट कर्म काण्ड का दक्षिण घाट ज्ञान काण्ड का पश्चिम घाट, तथा शुद्ध उपासना काण्ड का उत्तर घाट। यह घाटों का दिशानिरूपण हुआ।

परन्तु उपासना तो भक्ति ही के अन्तर्गत है और उसी की एक अवस्था है।

सेवक तथा 'दैन्य भावों में भी तो कुछ इतना ही भेद नहीं है। सेवक (उपासक) तो सर्वदा दीन रहता है। फिर काकभुशुण्डी तथा गोस्वामी जी की भावनाओं में भी तो अन्तर नहीं देखा जाता। जब कर्मकाण्ड ज्ञानकाण्ड उपासना (भक्ति) काण्ड हुआ तो टीकाकारों को योगकाण्ड भी दिखलाना चाहता था विशेषतः जबकि गोसाईं जी ने योग की बातें भी अपने ग्रन्थ में अवश्य कही हैं।

कोई टीकाकार मरदाना, जनाना पशु तथा पक्षी घाट भी स्थिर कर रहे तो अच्छी बात होती, यथा ज्ञानकाण्ड मरदाना घाट भक्तिकाण्ड जनाना घाट अथवा साधारण स्पष्ट उपदेश मरदानाघाट गुप्त रहस्य (गूढ़तत्त्व जो परदे में होना कहा जाता है) जनानाघाट पशु सरीखे लोगों के यहाँ-तहाँ फटकार पशुघाट और पक्षीघाट तो प्रत्यक्ष ही है।

घाटों का नामादि तो टीकाकारों की कृपा से विदित हो गये, अब सोपानों की बनावट भी देख लीजिये। गोसाईं जीने कहा है सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना। इसी को लेकर मु० सुखदेव लाल ने सीढ़ियों की बनावट अपने पाठकों को दिखलाई है और लिखा है कि सीढ़ियाँ ऊपर से नीचे की ओर छोटी होती जाती हैं अतएव बाल सबसे बड़ा अयोध्या उससे छोटा आरण्य उससे छोटा, और किष्किन्धा काण्ड सबसे छोटा फिर सुन्दर उससे बड़ा, लंका सुन्दर से तथा उत्तर लंका से बड़ा है। अब प्रत्येक घाट की सीढ़ियों की ओर दृष्टि दीजिये —

एक घाट की सीढ़ियाँ—	प्रथम सीढ़ी, बालकाण्ड के पूर्वार्द्ध की		१७५	चौपाइयाँ
	दूसरी सीढ़ी, अयोध्या	,	१२५	
	तीसरी सीढ़ी, आरण्य ,		२५	
उसके सामने के दूसरे घाट की सीढ़ियाँ—	पहली सीढ़ी उत्तरकाण्ड	,	७०	
	दूसरी सीढ़ी लंका		६०	
	तीसरी सीढ़ी सुन्दर		३०	,
तीसरे घाट की सीढ़ियाँ—	पहली सीढ़ी बालकाण्ड	,,	१२५	
	दूसरी सीढ़ी अयोध्या		२००	
	तीसरी सीढ़ी आरण्य		२५	,,
इसके सामने के चौथे घाट की सीढ़ी—	पहली सीढ़ी उत्तर	,	३०	,

चार चारो ओर की चौपी सीढ़ी बनाने में किष्किन्धा काण्ड को विभक्त कर के आपने एक २ चौपाइयां चारों ओर बिठा दी हैं।

परन्तु इस कोट कोने में तो सात सीढ़ियों के बदले प्रत्येक ओर चार ही चार सीढ़ियाँ हो गई। रूपक सर्वत्र सर्वांगी नहीं होता। खींच खाँच कर उसे सब ठौर सर्वांगी दिखलाने की चेष्टा करने से उसकी ऐसी ही दुर्दशा हो जाती है। सरोवर में सीढ़ियाँ भी होती हैं इससे गोसाईं जी ने साधारण रीति से कह दिया सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना। जहां तक रूपक की छटा सोहावनी रही जब उसकी लम्बाई चौड़ाई, घुरकी घूमा घव इत्यादि की विवेचना होने लगी उसी दम उसकी मिट्टी खराब हो गई।

आप का यह कथन है कि बाल कांड का सीता स्वयम्बर तथा अयोध्या काण्ड देखने से भान होता है कि पहले गोस्वामी जी की इच्छा समस्त रामायण लिखने की नहीं थी। किसी का बनाया रुक्मिनी मङ्गल देख कर इन्हें सीतास्वयम्बर लिखने की अभिलाषा हुई और उसी का अनुकरण करके इन्हों ने रामचन्द्र तथा जानकी जी का वाटिका में परस्पर दर्शन कराया है एवम् शिशुपालादि के समान धनुषभंग द्वारा दुष्टराजों का गर्व-चूर्ण कराया है। इसी प्रकार आपने सातो काण्डों के रचे जाने का कारण कहा है।

परन्तु कोई कहते हैं कि संवत १६३१ चैत्र शुक्ल सप्तमी को इन्होंने संस्कृत भाषा में रामायण लिखने के विचार से बालकाण्ड के आदि के अन्तिम श्लोक को छोड़ कर बाकी ७ श्लोकों की रचना की। उसी तिथि की रात्रि में आपने स्वप्न में देखा कि एक वृद्ध ब्राह्मण उन श्लोकों को चुरा ले गया। दूसरे दिन इनके अनमन रह जाने से अष्टमी की रात्रि को फिर स्वप्न में दर्शन दे उस ब्राह्मण ने इन्हें भाषा में 'रामचरित मानस' रचने की सम्मति दी और शिवरूप से दर्शन दिया। इसके प्रमाण में यह दोहा कहा जाता है—"सपनेहुं सांचहु मोहि पर जौं हरि गौरि पसाउ। तो फुर होउ जो कहउं सब भाषा भनिति प्रभाउ॥" और तब पूर्वोक्त श्लोकों के नीचे "नानापुराण निगमागम सम्मतं यद्" वाला श्लोक की रचना कर वे भाषा प्रबन्ध करने लगे। यह भी कहा जाता है कि 'लोगों का नाना पुराण वाले श्लोक के आधार पर यह कहना कि इन्होंने अन्य रामायणों और पुराणों के संग्रह से रामायण की रचना की है महाभूल है, क्योंकि कोई भी आप्त पुरुष अपने एक प्रबन्ध में दो प्रकार की बातें नहीं कह सकता और यदि इन्होंने इसको अन्य ग्रन्थों से संग्रह किया तो इसी मानस में इन्होंने 'शंभु कीन्ह यह चरित सुहावा' और 'रचि महेश निज मानस राखा' इत्यादि इन चौपाइयों को क्यों लिखा? इन प्रमाणों से यह निर्भ्रान्त सिद्ध है कि इन्होंने संग्रह द्वारा नहीं बनाया किन्तु शिवरचित मानस को भाषाबद्ध किया है।"

यदि एक प्रबन्ध में दो प्रकार की बातें कोई आप्त पुरुष नहीं कहता और गोसाईं जी ने नानापुराणों की बातें इसमें समावेशित नहीं की तो आपने यह श्लोक ही लिख कर एक प्रबन्ध में दो बातें क्यों कीं? और उसके लिखने की क्या आवश्यकता थी? सच यह है कि गोसाईं जी ने दोनों बातें ठीक ही लिखी हैं। इन्होंने शिवरचित मानस को भाषा-बद्ध किया है और उपयुक्त स्थानों पर अन्य पुराणों और शास्त्रों की बातें भी यथा योग्य समावेशित

करते गये हैं। इन्होंने ऐसा नहीं करने की कहीं शपथ नहीं खाई है वरन उस श्लोक का रामायण में रहना इस बात को सिद्ध करता है कि इस की रचना करने की इच्छा तथा प्रतिज्ञा थी और इन्होंने ऐसा किया है।

और 'सपनेहुँ साँचेहु' से यदि कहनेवालों का यह आशय हो कि "अगर सचमुच स्वप्न में हरगौरी हमपर प्रसन्न हुए हैं।" तो एक तो टीकाकारों ने इसका यह भाव नहीं दिखलाया है दूसरे स्वप्न में तो केवल शिवजी ने दर्शन दिया था गौरी का दर्शन हुआ ही नहीं! उनकी प्रसन्नता का भरोसा क्यों?

और 'नानापुराण' वाला अन्तिम श्लोक छोड़कर क्यों तीन ७ श्लोक रचे गये थे? रामायण के सब संस्करणों में तो यह श्लोक मिलाकर ७ श्लोक देखे जाते हैं। कोई-कोई रामचन्द्र का स्वप्न में प्रकट होकर रामायण रचने का आदेश करना बताते हैं। स्वप्न में राम या शिवजी की आज्ञा हो या नहीं बिना ईश्वर की प्रेरणा तथा कृपा के क्या किसी से ऐसा उत्तम कार्य्य सम्पन्न होना कभी सम्भव है?

चतुर्थ परिच्छेद

रामायण का रचनाकाल

निश्चय जिस समय गोसाईं जी ने रामायण की रचना के लिए अपनी प्रभावशालिनी लेखनी उठाई होगी वागेश्वरी अपने कमलासन को परित्याग कर इनके सम्मुखस्थ विराट सिंहासन रूपी समुज्ज्वल कागज पर सहर्ष नृत्य करने लगी होंगी कविताकामिनी अपूर्व अमूल्य अलंकारों से अलंकृत किये जाने की उमंग में आह्लाद फूली नहीं समाती होगी लेखनी भविष्यत् में अक्षय कीर्ति लाभ की आशा से इनके हाथ को बारम्बार सानन्द चूमती होगी एवम् इनकी आज्ञानुवर्तिनी हो सुखपूर्वक मधुर २, सुर-सुर शब्द करती इनके इच्छानुसार पत्रों के उद्यान में विचरण करने लगी होंगी, स्वर्गीय कवीश्वरों की आत्मा आनन्द से उछलने लगी होगी। साहित्यसरोवर एक अद्भुत अम्बुज सर्वदा विकसित होने की आशा से तरंगित होने लगा होगा। सुरवृन्द भी इस शुभावसर में सुमन की वृष्टि करने में नहीं चूके होंगे। अहा! हिन्दी साहित्य, हिन्दू समाज तथा हिन्दू धर्म्म के लिये वह कैसा सौभाग्य का दिन था जब इस अद्वितीय महाकाव्य की रचना आरम्भ हुई।

गोसाईं जी ने अपने इस प्रौढ़ ग्रन्थ की रचना प्रौढ़ावस्था ही में की है। परन्तु नीचे लिखे हुये दोहों को उद्धृत करके 'काशीनागरीप्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित रामायण के सम्पादकों ने लिखा है कि 'इस (रामायण) को कवि ने छोटी ही अवस्था में बनाया।—

"संत सरल चित जगत हित, जानि सुभाउ सनेहु।
बालबिनय सुनि करि कृपा, राम चरन रति देहु॥
कबि कोबिद रघुबर चरित, मानस मंजु मराल।
बाल बिनय सुनि सुरुचि लखि, मो पर होहु कृपाल॥"

हम नहीं समझते कि 'रामचरितमानस' की समालोचना के आदि ही में ऐसा लिख कर भी कि 'इस अद्भुत ग्रन्थ को गोसाईं जी ने सम्वत् १६३१ चैत्र शुक्ल ९ (रामनवमी) मंगलवार को आरम्भ किया' सम्पादक महाशयों ने गुसाईं जी के छोटी ही अवस्था में इस ग्रंथ के रचने का अनुमान करने का कैसे साहस किया। जो हो गोसाईं जी के कथनानुसार इस ग्रंथ का प्रणयन चैत्र रामनवमी मंगलवार सम्वत् १६३१ (१५७४ ई०) में हुआ जब कि गोसाईं जी की अवस्था ४० वर्ष से कम नहीं थी। 'बालविनय' केवल नम्रता से कहा गया है और कुछ नहीं। कोई बालकवि ऐसा प्रौढ़ ग्रन्थ कदापि नहीं लिख सकता।

प्रोफ़ेसर जकोबी (Jacobi) कृत—'हिन्दू तिथि गणनापत्रक' के प्रकाशित होने पर ग्रियर्सन साहब ने रामायण की रचना तिथि की शुद्धता की स्वयम् जाँच की थी और उसे प्रोफ़ेसर साहब से भी जँचवाया था। एक गणना से नवमी तिथि बुध को होती थी और एक गणना से रविवार को वह तिथि पड़ती थी। उक्त प्रोफ़ेसर ने उन्हें लिख भेजा था कि "सब सिद्धान्तों के अनुसार बनारस (अवध) में ३१ मार्च १५७४ ई० बुधवार को शुद्ध दिन था नवमी तिथि समाप्त हुई थी अतएव उसी दिन नवमी मानी थी परन्तु जिस दिन तिथि बीतती हो उसी दिन शुभ कार्य किया जाता है। इससे यह अनुमान हो सकता है कि तुलसीदास ने मंगल को अपना ग्रन्थ बनाना आरम्भ किया। अतएव उपर्युक्त चौपाई ठीक नहीं है।" और पं० सुधाकर जी ने लिखा था कि 'तुलसीदास अयोध्या के स्मार्त वैष्णव थे जो महादेव के भी बड़े भक्त होते हैं और इससे अनुमान करते हैं कि उन्होंने रामनवमी का मंगलवार का होना स्मार्तगणना के अनुसार कहा।'[1]

वैष्णवगणना में जिस दिन जो तिथि समाप्त होती हो उसी दिन वह तिथि मानी जाती है, परन्तु स्मार्त वैष्णवों या जो लोग कहें सर्वसाधारण भी जिस दिन जो तिथि विशेष भोगती है उसी दिन वह तिथि मानते हैं।

कवि के कथनानुसार इस ग्रन्थ की रचना अवधपुरी में आरम्भ हुई। परन्तु इसकी समाप्ति कहाँ हुई इस विषय में कवि ने कुछ नहीं कहा है। लोग अनुमान करते हैं कि अरण्यकाण्ड[2] तक तो अयोध्या में लिखा गया और शेष काण्ड काशी में। इस अनुमान का कारण यह है कि गोसाईं जी ने अरण्यकाण्ड के बाद किष्किन्धा ही में काशी के विषय में कहा है :—

"मुक्ति जन्म महि जानि, ज्ञान खानि अघहानिकर।
जहँ बस शंभु भवानि, सो काशी सेइय कस न॥"

---

1 Notes on Tulsi Das—Indian Antiquary 1893 P 5–6

2 पंडित रामचन्द्र शुक्ल तथा अन्य कई एक सज्जन अरण्यकाण्ड ही तक अवध में लिखा जाना मानते हैं। बाद शेष सब काण्डों को काशीपुर में लिखा जाना मानते हैं।

पञ्चम परिच्छेद

रामायण का मूलाधार

गत तीसरे परिच्छेद के अन्त में इस ग्रन्थ के मूलाधार की कुछ झलक दी गयी है। यही यहाँ पर स्पष्ट रूप से विवेचना किया जाता है। रामायण में गोस्वामी जी ने आनन्दकन्द श्रीरामचन्द्र के गुण, यश, लीला तथा सुकीर्ति का परम भक्ति भाव से कीर्तन किया है और इसमें उन्हीं की कथा सप्रेम वर्णन की गई है, क्योंकि रामकथा एक अपूर्व वस्तु है जैसा कि कवि ने स्वयम् कहा है—

"बुध विश्राम सकल मन रंजनि। रामकथा कलिकलुष विभंजनि।
रामकथा कलि कामद गाई। सुजन सजीवनि मूरि सुहाई।।
सोई वसुधा तल सुधा तरंगिनी। भय भंजनि-भ्रम-भेक-भुअंगिनी।।"

और—

"रामचरित चिन्तामनि चारू। संत सुमति तिय सुभग सिंगारू।।" इत्यादि।

यह कथा यद्यपि इनके पूर्ववर्ती अनेक कवियों के ग्रन्थों में वर्णित हुई है परन्तु इन्होंने निज ग्रन्थ की रचना में किसी एक ग्रन्थ को सर्वथा आधारभूत नहीं माना है। यह बात इन्होंने स्वयम् ही कही है :—

"नाना पुराण निगमागम सम्मतं यद्रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथाभाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति।।"

पुनः :—

यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमं
श्रीमद्रामपदाब्ज भक्तिमनिशं प्राप्त्यै तु रामायणम्।
मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तमः शान्तये
भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम्।।"

तो भी इनका विशेषांश अध्यात्म रामायण से लिया गया है और इन्होंने वाल्मीकीय रामायण को भी प्रधान आश्रय रखा है। इसके सिवाय इन्होंने—रघुवंश, हनुमन्नाटक, श्रीमद्भागवत, श्रीमद्भगवद्गीता, प्रसन्नराघव प्रभृति ग्रन्थों से भी यथा रुचि सहायता ली है। और भक्ति की प्रधानता पर दृष्टि रख कर इन्होंने कथा प्रसङ्ग निजमतानुसार लिखा है जो निस्सन्देह श्लाघ्य है। इसीसे इस ग्रन्थ के भिन्न भिन्न सोपानों का कथा वर्णन

जहाँ-तहाँ वाल्मीकीय तथा अध्यात्म रामायण से सर्वांश नहीं मिलता। अतएव इन्हें न किसी ग्रन्थ का अनुवादक ही कह सकते और न किसी का अनुगामी ही बता सकते। वरन ये इसके स्वतंत्र सृष्टिकर्त्ता कहे जायेंगे।

इस ग्रन्थ के किस-किस कथा प्रकरण में—वाल्मीकीय तथा अध्यात्म रामायण वर्णित कथाओं से भेद है, यह बात वाल्मीकी रामायण का परिच्छेद देखने से ज्ञात होगी।

जो लोग अन्य शास्त्रादि की बातों के इसमें समावेशित होने की बात को अप्रमाणिक और भूल बताते हैं उनके कथन का उत्तर अभी दिया जा चुका है।

षष्ठ परिच्छेद

रामायण का वास्तविक नाम

यद्यपि यह सम्पूर्ण ग्रन्थ 'तुलसीकृत रामायण' 'रामायण' तथा 'चौपाई रामायण' के नाम से प्रसिद्ध है परन्तु इसका यथार्थ नाम 'रामचरित मानस' है। गोस्वामी जी ने स्वयम् ही कहा है —

"रामचरित मानस यह नामा। सुनत स्रवन पाइय बिश्रामा॥
रामचरित मानस मुनि भावन। बिरचेउ संभु सुहावन पावन॥
त्रिबिध दोष दुख दारिद दावन। कलि कुचालि कुलि कलुष नसावन॥
रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा॥
तातें 'रामचरितमानस' बर। धरेउ नाम हियँ हेरि हरषि हर॥"

परन्तु यह पूछा जा सकता है कि जब श्री महेश जी ने इस कथा को रचकर ही अपने मानस में रखा और शुभ अवसर पाकर यह कथा उन्होंने श्री पार्वती जी से कही तब गोसाईं जी को इसकी जानकारी कैसे हुई। इसका उत्तर आगे की चौपाइयों में वर्तमान है :—

"संभु कीन्ह यह चरित सोहावा। बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा॥
सोइ सिव कागभुसुंडिहि दीन्हा। राम भगति अधिकारी चीन्हा॥
तेहि सन जागबलिक पुनि पावा। तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा॥
मैं पुनि निज गुर सन सुनी, कथा सो सूकरखेत।
समुझी नहिं तसि बालपन, तब अति रहेउँ अचेत॥
तदपि कही गुर बारहिं बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा॥"

गोसाईं जी ने उसी कथा को अपने मन के प्रबोध के हेतु भाषाबद्ध करके अपने ग्रन्थ का नाम 'रामचरित मानस' रखा है। अपने मन के प्रबोध के ही हेतु क्यों? संसार के परम कल्याण के लिये इसकी अवतारणा हुई इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं।

गोसाईं जी इन रामायण की कथा में पुराण तथा अन्य ग्रन्थ कथित कथाओं से जो कहीं भेद पाया जाता है उसका समाधान गोसाईं जी ने इन चौपाइयों में स्पष्ट कर दिया है —

"नाना भाँति राम अवतारा। रामायण सतकोटि अपारा॥
कल्पभेद हरि चरित सोहाए। भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए॥
करिय न संसय अस उर आनी। सुनिय कथा सादर रतिमानी॥"

हम भी पाठकों से यही निवेदन करते हैं कि आप लोग इस रामायण वर्णित कथा का सारांश सादर सुनिये कि कवि ने प्रत्येक काण्ड में क्या-क्या कहा है।

सप्तम परिच्छेद

रामायण का विषय

बालकाण्ड

पहले सात श्लोकों में कवि ने वाणी विनायक भवानी, शंकर, गुरु कवीश्वर (वाल्मीकि जी) कपीश्वर, सीता तथा रामचन्द्र की वन्दना करके ग्रन्थ के आधार एवम् रचना का कारण कहा है। फिर पाँच सोरठों में श्रीगणेश विष्णुभगवान, कमलापति तथा शिवजी की वन्दना की गई है। तदनन्तर "बंदउ गुरुपद कंज कृपासिंधु नररूपहरि। महामोह तमपुंज जासु बचन रवि कर निकर॥" यह सोरठा दिया हुआ है। पं० ज्वाला प्रसाद पं० रामेश्वर भट्ट महात्मा हरिहर प्रसाद जी महात्मा सन्तसिंह प्रभृति टीकाकारों ने तथा ग्राउस साहब ने इस सोरठे के द्वारा गुरु की वन्दना बताई है और सर्वसाधारण भी ऐसा ही समझते हैं। 'मानस मयंक' की टीका में इसके द्वारा गुरु की सूर्यवत् वन्दना और इन पाँच सोरठों में पञ्चदेव की वन्दना लिखी है। 'मानस मयंक' के रचयिता पण्डित शिवलाल पाठक ने 'मानस अभिप्राय दीपक' में यह दोहा दिया है:—

प्रथम राम है विघ्नयुग, तीजे कमलाकान्त।
वन्दि तुरीय उमेश युत, गुरु रवि पद नख अन्त॥

इसके आधार पर उपर्युक्त सोरठा के द्वारा सूर्य की वन्दना मानी जाती है। सूर्यवत् गुरु की वन्दना में तो उतना दोष नहीं परन्तु इससे गुरु की वन्दना सर्वथा उड़ा देना योग्य नहीं। महात्मा रामचरण दास जी ने भी इसमें गुरु की वन्दना मानी है और लिखा भी है कि हरि (सूर्य) अपनी किरणों से रात्रि को दूर करता है और गुरु अपने वचन किरणों से शिष्य का अज्ञानतम नाश करता है।

दूसरे सोरठों में भी कोई २ सूर्य की वन्दना बताते हैं कि बालक मूक तथा पंगु रहता है सूर्य प्रसन्न दिनों से उसके दोनों दोष दूर करते हैं। ग्राउस साहब ने इसके द्वारा सरस्वती की वन्दना बताई है।

फिर सज्जन असज्जन, देव दानव इत्यादि की वन्दना कई पृष्ठों में होती चली गई है। इस वन्दना में दुरात्माओं पर व्यंग भी होता गया है। इस प्रकार की वन्दना बड़ी ही विशद तथा काव्यमय है। इतनी लम्बी चौड़ी वन्दना अन्य किसी ग्रन्थ में नहीं देखी जाती

इसके अनन्तर ग्रंथरचना का कारण, नाम माहात्म्य और ग्रंथरचना का समय कह के कवि ने रामायण रूपी मानसरोवर की अनुपम कथा दिखलाई है जिसका वर्णन पूर्व ही हो चुका है। फिर रामायण की कथा भी मानों सूची सी दी गई है और उसमें यह बात भी कही गई है कि रामायण में षट्ऋतुओं की बहार विद्यमान है —

"हिम हिमसैल सुता-सिव-ब्याहू। सिसिर सुखद प्रभुजन्म-उछाहू॥
बरनब रामबिबाह समाजू। सो मुदमंगलमय रितुराजू॥
ग्रीषम दुसह राम बन गवनू। पंथकथा खर आतप पवनू॥
बरषा घोर निसाचर रारी। सुरकुल सालि सुमंगलकारी॥
रामराज सुख बिनय बड़ाई। बिसद सुखद सोइ सरद सुहाई॥"

इसके बाद श्रीयाज्ञवल्क्य और भरद्वाज का सम्वाद आरम्भ होता है और जो रामकथा महादेव जी ने पार्वती जी से कही थी, वही कथा याज्ञवल्क्य मुनि भरद्वाज जी को सुनाते हैं।

रामचन्द्र को प्रियावियोग में व्यथित-चित्त देख कर सती को ऐसा प्रबल मोह उत्पन्न हुआ था कि महादेव जी की बात पर भी विश्वास नहीं करके सीता जी का रूप धारण कर के रामचन्द्र की परीक्षा करने गई थीं।

रामचन्द्र का प्रभाव[1] देखकर वह ऐसी लज्जित हुईं कि परीक्षा का यथार्थ हाल महादेव जी से कहने का उन्हें साहस नहीं हुआ। परन्तु महादेव जी ध्यान द्वारा सब हाल जान गये और उन्होंने मन ही मन यह प्रतिज्ञा की— 'यह तन सती भेंट अब नाहीं' सती को इस प्रतिज्ञा का हाल 'जय महेश भलि भगति दृढ़ाई' इस गगन गिरा से विदित हो गया। रामायण में जो बात गोसाईं जी को किसी के मुख से कहलवाना अच्छा नहीं लगता है या जिसके कहलवाने की उन्हें सुविधा नहीं हुई है, वह बात आकाशवाणी द्वारा कहलवाई गई है जैसे नाटकों में नेपथ्य की ओर से किया करते हैं। इसके कई एक उदाहरण रामायण में वर्तमान हैं।

महादेव जी सती को बहुत प्यार करते थे। इसी से उन के सती होकर पति की बातों में विश्वास नहीं करने और परीक्षा की बात छिपाने पर भी उन्हें प्रकट कर के यह कहने का

1 प्रथम तो रामचन्द्र उन्हें पहचान गये, फिर लौटती समय उन्होंने रास्ते में चतुर्दिक ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि सहित रामचन्द्र को देखा। सब तो भिन्न-भिन्न रूप से दीख पड़े परन्तु राम, सीता तथा लक्ष्मण का एक ही अपरिवर्तित रूप देखने में आया। इसमें कवि ने निस्सन्देह लक्ष्मण जी को भी अन्य देवताओं से श्रेष्ठ दिखलाया है। इसका आधार विष्णु पुराण तथा अध्यात्म के ये श्लोक प्रतीत होते हैं — "सौमित्रो लक्ष्मणश्चैव गृह्णिर्महाबलः। एकमेव जगत्स्रष्टा स्थितिपाल्ये जगद्धितम्॥ चतुर्मूर्तिर्स्मेतानि सृष्टिं सर्व च प्रसाररति। त्रिकल्पेन महता विष्णुकल्प पालक। मम कल्पेन संहर्ता एव लोके रिपुनिर्मलेन्॥" —विष्णुपुराण।

चतुर्धात्मानमेवाहं सृजामीतरयोः पृथक्। योगमायेति सीतेति जनकस्य गृहे तदा। शेषस्त्वंशो तथा साक्षं सच मयाऽप्यभवत्। —अध्यात्म रामायण।

आभास नहीं हुआ कि 'मैंने तुम्हें परित्याग किया' और मन ही मन परित्याग करने पर भी खेद ही रहा। सती के सच्ची बात कह देने पर वे उन्हें इस तरह त्याग करते या नहीं, यह बात दृढ़ता पूर्वक नहीं कही जा सकती। और सती के मोह के प्राबल्य ही के कारण रामचन्द्र ने उन्हें प्रत्यक्ष प्रभाव भी दिखलाया परन्तु उस पर भी कदाचित् उन्हें पूर्णतया प्रबोध नहीं हुआ और इसीसे दूसरे जन्म में भी भ्रम ही भाव से क्यों न हो उन्होंने उसी सम्बन्ध में शिवजी से फिर प्रश्न उठाया।

शिवजी की प्रतिज्ञा के कुछ काल पीछे अपने पिता के घर यज्ञशाला में शिवजी का भाग न देख और उनका अपमान समझ सती ने योगाग्नि में शरीर त्याग कर हिमाचल के घर पुनः पार्वती नाम से जन्म धारण किया और नारद के उपदेश से तप करके विवाह द्वारा अपने पूर्व पति महादेव जी को फिर प्राप्त हुईं। इसी के मध्य में देवतों के विनय से कन्दर्प महादेव जी का अविचल ध्यान भङ्ग करने गया है जिसमें कि वे पार्वती से विवाह कर सकें और परहित-साधन में शिवजी की कोपाग्नि में भस्म हुआ है।

कवि ने महादेव जी की विचित्र बरात का अच्छा चित्र खींचा है। यह बरात देखकर बालकवृन्द तो पहले ही प्राण लेकर पलायमान हुए थे परिछन के समय स्त्रियाँ भी विकट वेषधारी महादेव को देख जान लेकर भागीं और मैना पार्वती को गोद में लेकर नाना प्रकार से विलाप कलाप करने लगीं।

मैना का विलाप स्त्री-स्वभाव-सुलभ था। वह कितनी ही दृढ़ चित्त क्यों न हों थीं आखिर स्त्री ही। अपनी सुकुमार सुन्दर सुता का ऐसा वर देख उनका दुखित होना स्वाभाविक था विशेषतः जब कि उन्होंने पहले ही अपने पति से कह दिया था कि 'मुनि की बातें मेरी समझ में नहीं आईं अच्छा घर वर कुल देख कर कन्या का विवाह कीजिये जिसमें आगे उर में दाह न हो।' और उन्होंने पार्वती को तप करने की सम्मति हिमाचल के यह कहने पर ही दी थी कि सुन्दर वर गुननिधि एकेलू॥

अंगरेजी भाषा के आदि कवि चौसर (Chaucer)[1] के समकालीन मैथिल कवि विद्यापति ने भी जिन्हें बहुत से लोग शिवभक्त मानते हैं, एक पद में मैना से ऐसा ही विलाप कराया है :—

"हम नहिं आजु रहब यहि आँगन, जो बुढ़ होयत जमाय गे माई। एकत बइरि भेला बिधि बिधाता दोसरे धियाकर बाप॥ तीसरे बइरि भेला नारद बाभन, जे बुढ़ आनल जमाय गे माई॥ पहिलुक बाजन डामरू तोरब, दोसरे तोरब रुन्डमाला। बरद हाँकि बरियात बैलाइब, धिया ले जाएब पराइ गे माई॥ धोती लोटा-पतरा-पोथी एहो सब लेबन्हि छिनाय। जो किछु बजता नारद बाभन, दाढ़ी धे घिसियाएब गे माई॥"

---

1 समय १३२८—१४०० ईस्वी।

गोसाईं जी ने परिहास हास नहीं किया है विद्यापति ने चौका पर बैठा कर महादेव जी का भद्दा रूप दिखलाया है—

"चैमल्त महात्म चौका चढ़ि। जटा छिरिआओल माहथ भरि॥ थिधि कत थिधि कत थिधि कत थिधि कत। थिधि न करै से हर हो हठ भत॥ थिथिण करैत हर हो घुसि खसु। संभरि खसल फनि श्री गौरी हँसु॥"

बिहार के ग्रामीण गीतों में भी ऐसा ही कहा जाता है —

डिमिर डिमिर डमरू बाजे सिवजी भइले असवार।
कहवाँ के ए दइया जम्मन आईल, आइल भजलो न जाइ।
परिछ चहर भइली मासु मदागिनी सरप छोड़ला फुफुकार।
पसतर खसि के पराइल मदागिनी ना भल एह के सम्हार॥
बिआल में उड़ल बिआलें में बूड़ल बिया लें में खिलयों पतार।
अइसन तपसिया के बिआ ना में दयों बरु गौरा रहि हैं कुआँर॥
कलसा फोरब मोड़ो तोरब चउमुख दयबहुँ बुताइ॥

इससे विदित होता है कि शिवपुराण कुमार संभव आदि ग्रन्थों में महादेव जी का विवाह सुन्दर रीति से वर्णन होने पर भी गोसाईं जी के बहुत काल पूर्व से महादेव जी के विवाह-सम्बन्ध में ऐसा वर्णन होता आता है और गोसाईं जी ने उसी का अनुकरण किया है। जो हो, पाठकों को जो आनन्द महादेव जी का विवाह विवरण पाठ में मिलता है वह रामचन्द्र के विवाह-वर्णन में नहीं मिलता।

अब देखिये उधर तो महादेव जी की बरात इस प्रकार से आई और इधर सब पहाड़, सागर, वन, नदी, तालाब इत्यादि सुन्दररूप धारण कर हिमाचल के घर नेवता पुराने आये। यहाँ निश्चय गोसाईं जी का अभिप्राय पर्वतादि के अधिष्ठाता देवतों ही से है, नहीं तो नदी, पहाड़ क्या शरीर धारण करेंगे![1]

---

१ प्राचीन दार्शनिकों के विचार में प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ के अधिष्ठाता देवता हैं इसीसे निर्जीव पदार्थों का भी इस प्रकार से वर्णन किया जाता है जैसे उनमें सजीव पदार्थों के गुण वर्तमान हों। वेदान्त के अनुसार यह संसार जो ब्रह्म परमात्मा का प्रकाश स्वरूप है निश्चय सजीव है क्योंकि चैतन्य प्राणी के गुणों से सम्पन्न है। तमस् के आधिक्य से जितने पदार्थ निर्जीव तथा चेतना रहित बोध होते हैं। परन्तु सच्ची बात यह है कि उन में चैतन्यता का सर्वथा अभाव नहीं होता। किन्तु यह गुण उनमें अदृश्य तथा गुप्त रूप से वर्तमान रहता है। यूनानी भाषा में Nymphs, Fairies, Naiad, Elves Muses आदि भिन्न भिन्न विषय के अधिष्ठात्री देवता माने जाते हैं। पाठक वृन्द इस अधिष्ठात्री देवता की बात को आगस्ट कामटे (August Compte) के दार्शनिक सिद्धान्त (Metaphysical Theory) से मिलान करें। डाक्टर ज० सी० बोस ने भी एतदर्थ सिद्ध कर दिया है कि प्रत्येक अणु परमाणु में भी चैतन्य वर्तमान है।

मालूम नहीं हुआ कि उन्होंने तुम्हें परित्याग किया और मन ही मन परित्याग करने पर भी खेद ही रहा। सती के सच्ची बात कह देने पर वे उन्हें इस तरह त्याग करते या नहीं यह बात दृढ़ता पूर्वक नहीं कही जा सकती। और सती के मोह के प्राबल्य ही के कारण रामचन्द्र ने उन्हें प्रगट प्रभाव भी दिखलाया परन्तु उस पर भी कदाचित उन्हें पूर्णतया प्रबोध नहीं हुआ और इसीसे दूसरे जन्म में भी गुप्त ही भाव से क्यों न हो उन्होंने उसी सम्बन्ध में शिवजी से फिर प्रश्न उठाया।

शिवजी की प्रतिज्ञा के कुछ काल पीछे अपने पिता के घर यज्ञशाला में शिवजी का भाग न देख और उनका अपमान समझ सती ने योगाग्नि में शरीर त्याग कर हिमाचल के घर पुनः पार्वती नाम से जन्म धारण किया और नारद के उपदेश से तप करके विवाह द्वारा अपने पूर्व पति महादेव जी को फिर प्राप्त हुई। इसी के मध्य में देवताओं के विनय से कन्दर्प महादेव जी का अविचल ध्यान भङ्ग करने गया है जिसमें कि वे पार्वती से विवाह कर सकें और परहित-साधन में शिवजी की कोपाग्नि में भस्म हुआ है।

कवि ने महादेव जी की विचित्र बरात का अच्छा चित्र खींचा है। यह बरात देखकर बालकवृन्द तो पहले ही प्राण लेकर पलायमान हुए थे परिछन के समय स्त्रियाँ भी विरुद्ध भेषधारी महादेव को देख प्राण लेकर भागीं और मैना पार्वती को गोद में लेकर नाना प्रकार से विलाप कलाप करने लगीं।

मैना का विलाप स्त्री-स्वभाव-सुलभ था। वह कितनी ही दृढ़ चित्त क्यों न हों थीं आखिर स्त्री ही। अपनी सुकुमार सुन्दर सुता का ऐसा वर देख उनका दुःखित होना स्वाभाविक था, विशेषतः जब कि उन्होंने पहले ही अपने पति से कह दिया था कि 'मुनि की बातें मेरी समझ में नहीं आईं अच्छा घर, वर कुल देख कर कन्या का विवाह कीजिये जिसमें आगे उर में दाह न हो।' और उन्होंने पार्वती को तप करने की सम्मति हिमाचल के यह कहने पर ही दी थी कि सुन्दर सब गुननिधि वृषकेतू॥

अंगरेजी भाषा के आदि कवि चौसर (Chaucer)[1] के समकालीन मैथिल कवि विद्यापति ने भी जिन्हें बहुत से लोग शिवभक्त मानते हैं एक पद में मैना से ऐसा ही विलाप कराया है:—

"हम नहिं आजु रहब यहि आँगन, जो बुढ़ होयत जमाइ गे माई। एकत बइरि भेला बिहि बिधाता दोसरे धिआकर बाप॥ तीसरे बइरि भेला नारद बाभन, जे बुढ़ आनल जमाई गे माई॥ पहिलुक बाभन डामरू तोरब, दोसरे तोरब रुण्डमाला। बरद हाँकि बरिआत बैलाइब, धिआ ले जाइब पराइ गे माइ॥ धोती लोटा-पतरा-पोथी एहो सब लेबहि छिनाय। जो किछु बजता नारद बाभन, दाढ़ी धै घिसिआइब गे माइ॥"

1 समय १३२८—१४०० ईस्वी।

गोसाईं जी ने परिहास होने नहीं दिया है, विद्यापति ने चौका पर चढ़ा कर महादेव जी का अद्भुत रूप दिखलाया है—

"धैमत्त महादेव चौका चढ़ि। जटा छिरिआओल माहव भरि॥ विधि करु विधि करु विधि करु विधि करु। विधि न करै से हर हो हठ धरु॥ विधिए करैत हर ही घुमि खसु। समरि भ्रमत फनि श्री गौरी हँसु॥"

बिहार के ग्रामीण गीतों में भी ऐसा ही कहा जाता है —

डिमिर डिमिर डमरू बाजे शिवजी भइले असवार।
कहवाँ के ए दइया जम्मत आइल, आइल सजलो न जाइ।
परिछ चढ़र मइली मासु मदागिनी सरप छोड़ला फुफुकार।
चमतर तजि के पराइल मदागिनी ना भल दइ के सम्हार॥
घिमाले में उड़य घिमाले में घूड़य पिया लें में मिलाया पतार।
अइसन तपस्विआ के धिआ ना मैं दया धरु गौरा रहिहें कुमार॥
कतमा फोरब मांडो तोरब सबसुख दयहूँ धुनाइ॥

इससे विदित होता है कि शिवपुराण कुमार सम्भव आदि ग्रन्थों में महादेव जी का विवाह सुन्दर रीति से वर्णन होने पर भी गोसाईं जी के बहुत काल पूर्व से महादेव जी के विवाह-सम्बन्ध में ऐसा वर्णन होता आता है और गोसाईं जी ने उसी का अनुकरण किया है। जो हो पाठकों को जो आनन्द महादेव जी का विवाह विवरण पाठ में मिलता है वह रामचन्द्र के विवाह-वर्णन में नहीं मिलता।

अब देखिये, उधर तो महादेव जी की बरात इस प्रकार से आई और इधर सब पहाड़, सागर, वन नदी तालाब इत्यादि सुन्दररूप धारण कर हिमाचल के घर नेवता पुराने आये। यहाँ निश्चय गोसाईं जी का अभिप्राय पर्वतादि के अधिष्ठाता देवों ही से है, नहीं तो नदी, पहाड़ क्या शरीर धारण करेंगे![1]

---

१ सनातन दार्शनिकों के विचार में प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ के अधिष्ठाता देवता हैं इसलिये निर्जीव पदार्थों का भी इस प्रकार से वर्णन किया जाता है जैसे उनमें सजीव पदार्थों के गुण वर्तमान हों। वेदान्त के अनुसार यह संसार का केवल परमात्मा का प्रकाश स्वरूप है जिसका सजीव है अथवा चैतन्य प्राणी के गुणों से सम्पन्न है। सत्त् के आधिक्य से भिन्न पदार्थ निर्जीव तथा चलना रहित मात्र होते हैं। परन्तु सच्ची बात यह है कि उन में चैतन्यता का सर्वथा अभाव नहीं होता। किन्तु यह गुण उनमें अव्यक्त तथा गुप्त रूप से वर्तमान रहता है। युनानी भाषा में Nymphs, Fairies, Naiad, Elves Muses आदि भिन्न भिन्न विषय के अधिष्ठात्री देवता माने जाते हैं। पाठक कृपया इन अधिष्ठात्री देवता की बात को आगस्त काम्टे (Auguste Comte) के दार्शनिक सिद्धान्त (Metaphysical Theory) से मिलान करें। डाक्टर ज० सी० बास ने भी पूर्णतया सिद्ध कर दिया है कि प्रत्येक अणु परमाणु में भी चैतन्य वर्तमान है।

विवाह के पीछे शिवजी का पुनः साथ होने पर पार्वती जी ने रामचरित सम्बन्धी कई एक प्रश्न किया है जिन प्रश्नों में कवि ने रामायण-वर्णित विषयों की एक प्रकार से सूची दी है। उन प्रश्नों के उत्तर में शिवजी ने काक भुसुंडी और गरुड़ के सम्वाद द्वारा रामचरित वर्णन किया है। इसी स्थान से वस्तुतः गोसाईं जी की रामायण आरम्भ होती है।

याज्ञवल्क्य ने पहले महादेव जी की कथा विस्तार पूर्वक कह कर जाँच लिया है कि श्रोता को रामकथा में सच्चा प्रेम है या नहीं, एवम् वे इसके सुनने के अधिकारी हैं या नहीं क्योंकि—"बिनु छल बिस्वनाथ पद नेहू। रामभगत कर लच्छन एहू॥" भरद्वाज मुनि परीक्षा में प्रथम दर्जे में पासकर गये हैं। उनका योग्यता-पत्र देख लीजिये—

"सम्भुचरित सुनि सरस सुहावा। भरद्वाज मुनि अति सुखपावा॥
बहु लालसा कथा पर बाढ़ी। नयननीर रोमावलि ठाढ़ी॥"
और "प्रेम विवस मुख आव न बानी।"

यह देख याज्ञवल्क्य जी को महानन्द हुआ है कि श्रोता अच्छे मिले और पार्वती जी के प्रति शिवजीकथित-कथा वे भरद्वाज जी को सुनाने लगे हैं।

रामकथा

पहले शिवजी ने हरि अवतार का साधारण कारण कहा कि—

"जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहीं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब धरि प्रभु बिबिध शरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥"[1]

फिर दो चार बार के रामावतार का विशेष कारण कहा गया है। यथा, जय विजय का शाप, निज पातिव्रत भंग होने से जालन्धर की स्त्री का शाप देना, नारदमोह, स्वायम्भुवमनु और शतरूपा का वरदान तथा राजा भानुप्रताप का विप्रशाप।

काल पाकर भानुप्रताप तथा उसका भाई अरिमर्दन रावण और कुम्भकर्ण, उसका सचिव धर्म्मरुचि विभीषण एवं उसके परिवार के अन्य लोग तथा नौकर चाकर रावण के पुत्र पौत्र आदि होते गये। रावण सपरिवार बड़ा पराक्रमी हुआ, यहाँ तक कि 'भुजबल बिस्व बस्य करि राखेसि कोउ न स्वतंत्र।' और तब उसकी आज्ञा पाकर उसके वंशधर तथा अनुचर घोर उपद्रव मचाने लगे और धर्म्मकार्यों में बाधक हो ब्राह्मणों को बेतरह सता कर मानों शाप का बदला चुकाने लगे क्योंकि ब्राह्मणों ही ने बिना विचारे निरपराधी भानुप्रताप को शाप दिया था। गोसाईं जी ने इस प्रकरण में निशिचर की अच्छी परिभाषा दी है:—

"मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा॥
जिन्ह के यह आचरण भवानी। ते जानहु निसिचर सब प्रानी॥"

१ श्रीमद्भागवतगीता अध्याय ४ श्लोक ७-८ देखिये।

इन निशिचरों का उत्पात इस सीमा को पहुँचा कि धरणी व्याकुल हो धेनु रूप धारण कर देवों के पास आकर[1] अपना दुःख रोने लगी और ब्रह्मा के देवों के संग स्तुति करने पर यह आकाशवाणी हुई कि "तुमलोग डरो मत कश्यप अदिति को हमने पहले ही वर दिया है और वे लोग दशरथ तथा कौशल्या होकर अवध में हैं, हम अंशों के सहित उनके घर मनुष्य शरीर धारण कर नारद की सब बातें सत्य करेंगे।" अर्थात् नारी-वियोग दुःख सहन कर निशिचरों का नाश करेंगे।

इस आकाशवाणी से स्पष्ट ध्वनित होती है कि गोस्वामी जी ने इस रामायण में कई कल्पों के रामावतारों की कथायें यथारुचि सम्मिलित की हैं क्योंकि यहां तो श्री महादेव जी ने स्वायम्भुवमनु तथा शतरूपा के समय की कथा प्रारम्भ की है इधर भानुप्रताप के रावण होकर उत्पात मचाने पर ब्रह्मा ने स्तुति की है और कश्यप तथा अदिति के घर जन्म महणकरी नारद का वचन सत्य करने की आकाशवाणी होती है। इसीसे गोसाईं जी ने स्वयम् कल्पभेद की चर्चा की है।

समय मिटा के अनन्तर भूपति दशरथ ने वृद्धावस्था में गुरुवशिष्ठ की सम्मति से शृङ्गी ऋषि द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ कराया है। चरु लिए स्वयम् प्रकट होकर अग्नि ने उसे यथायोग्य रानियों को बाँट देने की आज्ञा दी है। दशरथ जी ने आधा कौशल्या जी तथा चौथाई कैकेयी को स्वयम् दिया और फिर शेष का दो भाग करके एक एक भाग पूर्वोक्त दोनों रानियों के द्वारा सुमित्रा को दिलवाया।

कालिदासकृत रघुवंश[2] में भी कौशल्या तथा कैकेयी के ही द्वारा सुमित्रा को चरु का भाग दिलाया गया है। परन्तु वाल्मीकिजी ने तीनों रानियों को स्वयम् दशरथ ही के हाथ से चरु दिलाया है—

"कौशल्यायै नरपतिः पायसार्धं ददौ तदा। अर्धादर्धं ददौ चापि सुमित्रायै नराधिपः॥ कैकेय्यै चावशिष्टार्धं ददौ पुत्रार्थकारणात्। प्रददौ चावशिष्टार्धं पायसस्यामृतोपमम्। अनुचिन्त्य सुमित्रायै पुनरेव महामतिः॥"

इस श्लोक से यह भी देखा जाता है कि रामचन्द्र जी चरु के आधे अंश से, लक्ष्मण जी उसके चौथाई अंश से, एवम् भरत तथा शत्रुघ्नजी प्रत्येक उसके आठवें अंश से हुए।

परन्तु रामायण-तिलक ग्रंथ में चरुविभाग सम्बन्धी श्लोक इस प्रकार से लिखा हुआ है और इससे मानसमी-लिखित विभाग ठीक मिल जाता है—

"इत्युक्त्वा प्रददौ तस्य हविर्षोऽर्द्धं नराधिपः। स्वयमेव समं कृत्वा भागं भागवतां वरः॥ अर्द्धादर्द्धं ददौ चापि कैकेय्यै च नराधिपः। चतुर्भागं द्विधा कृत्वा सुमित्रायै ददौ तदा॥"

---

1 भागवत में भी लिखा है कि धरणी धेनुरूप धारण कर देवों के पास दुःख रोने गई थी, और सबों ने ईश्वर की स्तुति की थी —इत्यादि।

2 सर्ग १० श्लोक ५४ ५५ और ५६।

अनन्तर इस प्रकार रानियों की गर्भस्थिति होने पर[1] यथा समय श्री राम, भरत लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न चारों भाइयों का प्रादुर्भाव हुआ है। श्री रामचन्द्र के प्रादुर्भाव का समय आन ब्रह्मादि देवों ने आकर स्तुति की है और रामचन्द्र ने चतुर्भुज रूप से माता को दर्शन दिया है।[2]

कवि ने चारों भाइयों की बाललीलादि की सुन्दर छवि दर्शाई है। इसी लीला के मध्य में रामचन्द्र ने मुस्कुराकर अम्बा में अखण्ड अद्भुत रूप दिखलाया है।[3] कुछ काल बीतने पर विश्वामित्र जी राम लक्ष्मण को दशरथजी से अपने यज्ञ की रक्षा के लिये मांगने आये हैं। दशरथ जी ने रामचन्द्र को देने में पहले कुछ इधर उधर किया है,[4] परन्तु वशिष्ठजी के समझाने से चित्त सन्देह दूर होने पर उन्होंने दोनों भाइयों को मुनि के संग कर दिया है।"

ताड़का तथा सुबाहु को ससैन्य वध करके यज्ञ रक्षा के अनन्तर विश्वामित्र एवं अन्य मुनियों के संग रवाने होकर गंगा के दक्षिण तट पर अहिल्या[5] का उद्धार करते हुए रामचन्द्र

---

१ रघुवंश के अनुसार गर्भस्थिति होने पर ये रानियां स्वप्न देखा करती थीं कि शंख चक्र गदा पद्म धारण किये हुए बौने पुरुषगण उनकी रक्षा कर रहे हैं गरुड़ उन्हें आकाश में ले जाते हैं लक्ष्मी उनकी सेवा करती हैं ऋषि समूह वेदमन्त्र पाठ द्वारा उनकी पूजा करते हैं।

२ श्रीकृष्ण के प्रगट होने के समय भी देवतों ने आकर स्तुति की है। और उन्होंने भी चतुर्भुज रूप से शंखचक्रादि धारण किये दर्शन दिया है। १० स्कन्ध, अ० २/३।

३ श्रीकृष्ण ने भी एक बार ऐसा ही किया है। १ स्कन्ध अ० ७।

४ वाल्मीकीय रामायण में तो मुनि का रामचन्द्र को मांगना सुन कर दशरथ जी मूर्छित हो गये हैं और रामचन्द्र के देने में सम्मत नहीं हुये हैं। इस पर मुनि ने ऐसा क्रोध किया है कि पृथ्वी कांपने लगी है। तब वशिष्ठ जी समझा बुझाकर राजा को राह पर लाये हैं।

भट्टी में भी ऐसा ही लिखा हुआ है—"स शुश्रुवांस्तद्वचनं मुमोह राजा सहिष्णुः सुतविप्रयोगम्। अहंयुनाथ क्षितिपः शुभंयुरूचे वचस्तापसकुञ्जरेण॥"

किन्तु रघुवंश में दशरथ ने बिना कुछ कहे राम लक्ष्मण को मुनि के साथ कर दिया है— कृच्छ्रलब्धमपि लब्धवर्णभाक् तं दिदेश मुनये सलक्ष्मणम्। अप्यसुप्रणयिनां रघोः कुले न व्यहन्यत कदाचिदर्थिता। सर्ग ११ श्लोक २।

५ बहुत से लोग कहते हैं कि अहिल्या बक्सर में तारी गई। बक्सर के पश्चिम अहिरौली गांव में अहिल्या के नाम पर एक मन्दिर भी बना हुआ है। यह बात रामचरितमानस या वाल्मीकीय से सिद्ध नहीं होती। वाल्मीकि ने लिखा है कि लोग सिद्धाश्रम से उत्तराभिमुख चलकर पहले दिन सायंकाल में सोन किनारे ठहरे और दूसरे दिन मध्याह्न में गंगातट पर पहुँच कर वहीं विराजमान हुए। अर्थात् सिद्धाश्रम से डेढ़ दिन में गंगा के कूल पर पहुंचे। जब बक्सर का विश्वामित्र का स्थान होना मानते हैं तो वहां से अहिरौली जाने में एक दिन ही लगेगा और न सोन ही पार होना होगा, और अहिरौली सिद्धाश्रम का ही भाग होगा।

राम के सहित जनकपुर पहुँचे हैं और वहाँ की शोभा देख दोनों भाइयों को बहुत आनन्द हुआ है।

कवि ने जनकपुर की छवि विस्तार पूर्वक वर्णन की है —

"बापी कूप सरित सर नाना। सलिल सुधासम मनि सोपाना॥
गुंजत मंजु मत्त रस भृंगा। कूजत कल बहु बरन बिहंगा॥
बरन बरन बिकसे बन जाता। त्रिबिध समीर सदा सुख दाता॥

सुमन-वाटिका बाग बन, बिपुल बिहंग निवास।
फूलत फलत सुपल्लवित, सोहत पुर चहुँ पास॥

बनइ न बरनत नगर निकाई। जहाँ जाइ मन तहँइ लोभाई॥
चारु बजार बिचित्र अँबारी। मनिमय बिधि जनु स्वकर सँवारी॥
धनिक बनिक बर धनद समाना। बैठे सकल बस्तु लै नाना॥
चौहट सुन्दर गली सुहाई। संतत रहहिं सुगंध सिंचाई॥
मंगलमय मन्दिर सब केरे। चित्रित जनु रतिनाथ चितेरे॥
पुर नर नारि सुभग सुचि संता। धरमसील ज्ञानी गुनवंता॥
अति अनूपम जहँ जनक निवासू। बिथकहिं बिबुध बिलोकि बिलासू॥
होत चकित चित कोट बिलोकी। सकल भुवन सोभा जनु रोकी॥

धवल धाम मनि पुरट पट, सुघटित नाना भाँति।
सिय निवास सुन्दर सदन, सोभा किमि कहि जात॥

गोस्वामी जी ने अध्यात्म के अनुसार गंगा के दक्षिण तट पर अहिल्या का उद्धार कराया है। सूरदास ने भी जनकपुर में जन जाते समय यह कार्य होना कहा है "मगधाट आए श्रीराम। तहाँ पषान एक पग परसी गौतम ऋषि की बाम॥" इत्यादि (बाबू राधाकृष्णदास सम्पादित 'सूरसागर', पृ० ७१ देखिये।)

वाल्मीकि जी ने गंगा पार होने पर मिथिला में अहिल्या का उद्धार कराया है। लोग उस स्थान का नाम अहियारी बताते हैं। कुछ लोग गोंडा में गौतम का तपस्थान मानते हैं। और वहीं अहिल्या का तरना कहते हैं।

अबतक गंगा सरयू तथा गंगा सोन का तत्कालीन संगम स्थल एवं इन नदियों की उस समय की प्रवाहगति स्वरूप से प्रमाणित न हो यह बात निश्चय नहीं कही जा सकती कि अहिल्या का कौन स्थान था, परन्तु वह था गंगा पार ही, इसमें सन्देह नहीं।

वाल्मीकीय तथा अध्यात्म में अहिल्या के निस्तार होने, रामचन्द्र का उन्हें पैर से स्पर्श करने तथा उनके पतिलोक जाने की बातें नहीं हैं। इसका विवरण वाल्मीकीय रामायण के प्रकरण में द्वितीय परिच्छेद खंड १ देखिये।

सुभग द्वार सब कुलिस कपाटा। भूप भीर नट मागध भाटा॥
बनी बिसाल बाजि गज साला। हय गय रथ संकुल सब काला॥
सूर सचिव सेनप बहुतेरे। नृप गृह सरिस सदन सब केरे॥
पुर बाहिर सर सरित समीपा। उतरे जहँ तहँ बिपुल महीपा॥
देखि अनूप एक अँवराई। सब सुपास सब भाँति सुहाई॥
कौसिक कहा मोर मन माना। यहाँ रहिय रघुवीर सुजाना॥"

विश्वामित्र के आगमन का समाचार पाने पर जनक जी आकर उनसे सप्रेम मिले हैं दोनों भाइयों की अलौकिक शोभा देख अति आह्लादित तथा मोहित हुये हैं और इन दोनों का मुनि के साथ एक सुन्दर सदन में डेरा दिलवाया है। नगरवासी नर-नारियाँ भी इनका सहज सौन्दर्य देख चकित-चित्त हो गई हैं। वाल्मीकीय रामायण भट्टिकाव्य तथा रघुवंश सबों में जनसमुदाय के मोहित होने की बात कही है।

"इमौ कुमारौ भद्रं ते देवतुल्यपराक्रमौ। अश्विनाविव रूपेण समुपस्थितयौवनौ। यदृच्छयैव गां प्राप्तौ देवलोकादिवामरौ॥ भूषयन्ताविमं देशं चन्द्रसूर्यौ इवाम्बरम्"।—(रामायण)

"धृतास्त्र मित्रावरुणौ किमेतौ किमश्विनौ सोमरसं पिपासू। जनं समस्तं जनकाश्रमस्थं रूपेण तावोजिहतां नृसिंहौ॥"—भट्टी।

"तौ विदेहनगरीनिवासिनां गां गताविव दिवः पुनर्वसू। मन्यते स्म पिबतां विलोचनैः पक्ष्मपातमपि वञ्चनां मनः॥"—रघुवंश।

जिस शोभा पर महायोगेश्वर महादेव मोहित रहते थे उसपर राजर्षि तथा जनसमुदाय का मुग्ध होना कौन आश्चर्य की बात है।

उस दिन दोनों भाई नगर तथा धनुष-यज्ञशाला देखने गये और दूसरे दिन भोर में विश्वामित्र की पूजा के लिये फूल लाने के समय जनकजी की फुलवारी में रामचन्द्र और सीताजी का दूर ही से परस्पर दर्शन हुआ है।

यह फुलवारी-प्रसंग सर्वथा नवीन प्रकरण है और गोसाईं जी के ही मस्तिष्क से इसकी उत्पत्ति हुई है। इनके पूर्ववर्ती किसी अन्य कवि का इसपर दावा नहीं है। साहित्य मार्केट में इसकी रजिस्ट्री इन्हीं के नाम से हुई है और यह इनका 'पेटेन्ट' पदार्थ है। यह वर्णन विशुद्ध शृंगाररसपूर्ण और महामनोहर है। इसकी छटा हमने पाठकों को अन्यत्र दिखलाई है और यह भी बताया है कि शृंगार-चित्रण में भी इनकी लेखनी कैसी प्रभावशालिनी थी। यदि भृगुनन्दन का आगमन नहीं होता तो यहाँ से विवाहान्तर अवध में लौट आने तक शृंगार ही शृंगार देख पड़ता।

कवि ने कहा है कि धनुष-यज्ञ-स्थल में रामचन्द्र के आने पर लोगों को अपनी-अपनी

भावना के अनुसार इनकी मूर्ति दीख पड़ी[1] और सब राजों का मानमर्दन पूर्वक धनुष तोड़कर रामचन्द्रजी सीताजी से जयमाल पाई है। इस समुचय प्रकरण के वर्णन में कवि ने प्रबल कवित्व शक्ति दिखलाई है। रघुवर बालपतंग के उदयगिरि-मंच पर उदय होने से कमल स्वाभाविक रूप खिल पड़ा है और नक्षत्र छिपने का रूपक एवम् सीता शोभा वर्णन भी क्या ही मनोहर है।

धनुष-भङ्ग होने पर परशुरामजी वहाँ सक्रोध पहुँचे हैं जिनको देखते ही सब और राजों का प्राण स्नेह कायाविधि में अन्तर्धान लगा है। लक्ष्मण जी ने उन्हें बेतरह फटकारा है। अन्त में वे रामचन्द्र को परब्रह्मावतार जानकर उन्हें अपना धनुष दे विदा हो गये हैं।

लक्ष्मणजी में वीरता तथा बाल-स्वभाव-सुलभ चञ्चलता भी थी। इसीसे इन्हें किसी का आंख दिखाना और अनौचित्य (विशेषतः जब वह रामचन्द्र के सम्बन्ध में हो) सहन नहीं हो सकता था। इसीसे इन्होंने परशुराम जी को बेतरह फटकारा और जब परशुराम जी क्रोध के आवेश में जनक से कह रहे थे कि 'धनुष तोड़ने वाले को तुरत दिखाओ, नहीं तो तुम्हारा राज्य उलट दूंगे और सब राजे एक ओर से मारे जायेंगे' एवम् जब उनकी अवस्था देख तथा करणी स्मरण कर सब क्षत्रिय महिलाओं का हृदय कांप रहा था तब कवि यदि लक्ष्मण जी को नहीं खड़ा करते तो न जाने उनकी रोषाग्नि में कितने निरपराधी राजों को तत्काल ही भस्म होना पड़ता क्योंकि उनके भय तथा रामचन्द्र के स्नेह से जनक को यह कहने का साहस नहीं होता कि रामचन्द्र ने धनुष तोड़ा है और दूसरे लोगों का भय से आप ही प्राण सूख रहा था।

और इस अवसर में लक्ष्मण जी की उद्दण्डता तथा निरंकुशता का विशेष कारण यह है कि परशुराम जी ने पहले तो जगद् गुरु जनक राजा को कुवाक्य द्वारा धार धमकी दी। फिर रामचन्द्र से उन्होंने यह कहा—"सुनहु राम जिमि सिव धनु तोरा। सहस बाहु सम सो रिपु मोरा॥ सो बिलगाउ बिहाइ समाजा।" ऐसी कठोर वाणी रामचन्द्र के प्रति, जिन्हें वे अपना सर्वस्व समझते थे उन्हें कब सह्य होती ?

ऐसी अवस्था में रामचन्द्र का अपमान देख इनके हृदय का क्या भाव हुआ होगा वह वर्णनातीत है। जो राम का शत्रु वह इनका कोटि गुण अधिक शत्रु। रामचन्द्र से सामना होने के पूर्व यह एक हाथ इनसे भी कर चुके हैं। इसीसे ये 'बोले परसु धरहि अपमाना।' अपमान का उत्तर अपमान। इनकी धृष्टता तथा वीरतापूर्ण बातें सुनकर सुरक्षा का जनक भी भयकर भक्त ही अनुचित और गोसाँ कहें पर इनको दर किए बाण का —'छत्रिय तनु धरि समर सकाना। कुल कलंक तेहिं पावँर आना॥ कहौं सुभाव न कुल प्रसंसी। कालहु

---

१ मथुरा में कंस की सभा में कृष्णचन्द्र को भी लोगों ने अपनी-अपनी भावना के अनुसार देखा था, अर्थात् श्रीकृष्ण मल्लों को वज्र के समान मनुष्यों का मनुष्य श्रेष्ठ नारियों का मूर्तिमान कामदेव गोपों को स्वजन, दुष्ट राजों का शासनकर्ता माता-पिता को पुत्र, कंस को मृत्यु अज्ञानी को गंवार, योगियों का परमतत्त्व वृष्णिगण को परम देवता स्पष्ट जान पड़े थे।

करहिं न रन रघुबंसी ॥" रामचन्द्र ने भी इसका पक्ष करके कहा है :—"देव बिलोकि कहेसि कछु बालक नहिं दोष। और देखि कुठार बान धनुधारी। भइ लरिकहि रिसि बीर बिचारी ॥ नाम जान पै तुम्हहिं न चीन्हा। बंस सुभाव उतर तेहि दीन्हा ॥ इत्यादि।

लक्ष्मण जी को सब स्थान पर गोसाईं जी ने मूर्तिमान वीररस के समान चित्रित किया है।

गोसाईं जी ने बड़ी चतुराई की कि हनुमन्नाटक के समान परशुराम को सभा ही में अवतीर्ण किया। इससे एक तो आगे राह का बखेड़ा मिट गया दूसरे दंभ लेनेवाले राजे भी भयभीत हो मौन हो गये और पूर्वोक्त सम्वाद के समय रामचन्द्र का गम्भीर नम्रस्वभाव भी नगरनिवासियों पर स्पष्ट हो गया वह तो धनुष तोड़ने ही में देख चुके थे और दोनों भाइयों के सौंदर्य पर तो वे पहले ही से आप ही आप लट्टू हो रहे थे।

हनुमन्नाटक में रामचन्द्र ने स्वयं लक्ष्मण से कुछ बात चीत की है परन्तु गोसाईं जी ने रामचन्द्र का गाम्भीर्य—गौरवरक्षा के विचार से उन्हें नहीं वाद कराया है।

केशवदास सहस्रार्जुन तथा रावण को भी जनकपुर ले गये हैं और उन्होंने वाल्मीकीय के अनुसार समारंभ होने के पीछे रामचन्द्र को वहाँ ले जाकर धनुष उठवाया है एवम् परशुराम की से बरात लौटती समय भेंट कराई है। गोसाईं जी ने ऐसा नहीं कराया है। बाण जानकी को माता के भाव से देखता था—"मेरे गुरु को धनुष है, सीता मेरी माइ।"[1] अतएव उसे वहाँ ले जाना इन्होंने व्यर्थ समझा होगा और जिस रावण को ऐसा बलिष्ट और पराक्रमी लिखा है कि प्रतिभट जोधन कतहुँ न पावा ॥ और जिसके बराबर्ती [illegible] के सदृश वीरधारी बताये गये हैं, उसे इन्होंने भरी सभा में परशुराम द्वारा भयभीत तथा किसी अन्य पुरुष द्वारा तिरस्कृत करना भी उचित नहीं विचारा होगा और उसके साथ किसी के झटपटी बातें करने से उपद्रव की भी निश्चय सम्भावना थी।

फिर अवध से बरात आने पर रामचन्द्र का जानकी से विवाह हुआ है। कवि ने बरात की तैयारी तथा विवाह की रीति रस्मों की बातों को विस्तारपूर्वक सुन्दर रीति से वर्णन किया है। सिन्दुर दान के सम्बन्ध में कहा है —

"अरुन पराग जलज भरि नीके। ससिहि भूष अहि लोभ अमी के ॥"

और जयमाल देने के समय कहा है :—

"सोहत जनु जुग जलज सनाला। ससिहि सभीत देत जयमाला ॥"

ये दोनों उपमायें क्या ही सुन्दर हैं।

इसी प्रकार अन्य तीनों भाइयों का भी वहीं विवाह हुआ है और सब के अवध लौट आने पर आनन्द परिछन तथा विविध मङ्गलाचार हुआ है। परिछन के समय के आमोद की तुलना वर्षान्त से अच्छी की गई है।

बालकाण्ड की वन्दना फुलवारी प्रसङ्ग धनुष भङ्ग तथा कई एक स्तुतियों की रचना बहुत ही विशद हुई है।

---

१ रामचन्द्रिका ७ वाँ प्रकाश छन्द २१।

भवभूति जी ने महावीर चरित में धनुष-यज्ञ ही से कथा आरम्भ की है और इसका कथा-वर्णन बड़ा ही विलक्षण है। अतएव उसे भी पाठकों को यहीं संक्षेप में सुना देना हम अनुचित नहीं समझते।

उस ग्रन्थ के अनुसार जनकपुरी ही में ताड़का, मारीच और सुबाहु की घटना हुई है, परशुराम जी भी रावण के मंत्री माल्यवान ही के उद्योग से वहाँ आकर अन्तःपुर में जहाँ राम और सीता बैठी थीं पहुँच गये हैं। उस समय दशरथादि भी जनकपुरी में थे। परशुरामजी से एवम् राम जनक शतानन्द तथा वशिष्ठ प्रभृति सबसे एक बाग्युद्ध हुआ है। शतानन्द परशुराम को शाप देने पर और जनक भी उन्हें वध करने पर उद्यत हुए हैं। अन्त में परशुराम ने रामचन्द्र द्वारा अपनी पराजय प्रसिद्ध की है।

माल्यवान की सम्मति से सूपनखा ने मंथरा में प्रवेश किया है। मंथरा कैकयी की चिट्ठी वर माँगने के लिये जनकपुर ही में दशरथ के पास लाई है। वहीं से लोग वन गये हैं। भरत को चरण पादुका भी वहीं मिली है।

सूर्पनखा की नाक कान और ओठ भी काटा गया है। खरदूषणादि के वध के अनन्तर कबंध ने कहा है कि हमको रावण ही ने भेजा है और उस ने बालि को भी आपके विरुद्ध भेजा है।[1] इसी अवसर में सरमा नामनी एक राक्षसी एक चिट्ठी लाई है कि विभीषण सुग्रीव के यहाँ आये हैं और वहीं सीता का कुछ आभूषणादि भी है।

बालि और राम ही से युद्ध मैदान युद्ध हुआ है और मरती समय उसी ने सुग्रीव को राम को सौंपा है।

अयोध्याकाण्ड

आदि में तीन संस्कृत श्लोकों में श्रीशिव तथा रामचन्द्र की वन्दना और एक दोहा में गुरु की वन्दना है। तब कथा आरम्भ होती है। दशरथ जी ने रामचन्द्र को युवराज पद देने के लिये सब तैयारियाँ की हैं। परन्तु अपनी दासी मंथरा की कुमंत्रणा से उनकी तीसरी रानी कैकयी ने रामचन्द्र के लिये चौदह वर्ष वनवास तथा भरत जी के युवराज-पद पाने के लिये राजा से वर प्राप्त कर लिया है। सीता और लक्ष्मण के विमल प्रेम के वश हो रामचन्द्र उन्हें भी साथ लेते गये हैं। शृंगबेरपुर[2] तक सुमन्त्र राममन्त्री भी साथ गया है। वहाँ से दोनों भाई मुनि-भेष धारण कर केवट से रामचन्द्र का पैर धो लेने के अनन्तर[2] निषाद और सीतासमेत गंगा पार हो प्रयाग में भरद्वाज मुनि का दर्शन एवं त्रिवेणी स्नान करके यमुना किनारे विश्रामग्राम हुए हैं। वहाँ से निषाद लौट आया है और ये लोग वाल्मीकि जी के आश्रम पर पहुँचे हैं।

रामचन्द्र के उनके पास रहने के निमित्त एक स्थान बनाने के लिए जहाँ उनके निवास से किसी जीव को कोई क्लेश न हो निवेदन करने पर मुनि ने कहा है :—

1 अनमाल विराधवध।

2 'अध्यात्म' में जनकपुर आते समय केवट ने पैर धोया है।

"पूछेहु मोहिकि रहउँ कहँ, मैं पूछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि, तुम्हहिं देखावउँ ठाउँ॥"

और फिर उनके रहने का स्थान बताने लगे हैं। कवि ने बड़ी चतुराई से मुनि के मुख से भिन्न २ मर्म्मधर्म्मों का बखान कराते उनसे कहलवाया है कि ऐसे ही धर्मपरायण लोगों के हृदय में आप निवास कीजिये और फिर समयानुकूल वासस्थान चित्रकूट बताया गया है और वहीं पर्णकुटी बनाकर तीनों प्राणी रहने लगे हैं।

वाल्मीकि जी का यह निवास-निकेत-वर्णन बहुत उत्तम और उपदेश-गर्भित है। कौशल्या सीता राम लक्ष्मण का वार्तालाप भी बड़ा ही शिक्षाप्रद है।

मार्गस्थ गांवों के नरनारियों को इनलोगों का पांवपयादे जाना देखकर कैसा आश्चर्य हुआ है, इन लोगों के प्रति उन सबों को कैसा सहज स्नेह उत्पन्न हुआ है और इन लोगों के विषय में वे परस्पर कैसी बातचीत करती गयी हैं एवं इनलोगों के संग भी उन्होंने कैसा सप्रेम सम्भाषण किया है इन बातों को कवि ने ऐसी सहज तथा सुन्दर रीति से वर्णन किया है कि उसका वर्णन नहीं हो सकता।

पूज्य पति और प्रिय देवर के मध्य सीता जा रही हैं। अहा! उनकी कैसी अलौकिक शोभा हो रही है— जनु मधु मदन मध्य रति लसई। 'जनु बुध विधु बिच रोहनि सोही।, और ब्रह्म जीव बिच माया जैसी। वाह! क्या ही ललित उपमाएं हैं।

उधर रामचन्द्र ने चित्रकूट में आसन जमाया है, इधर सुमंत के अकेले लौट आने पर दशरथ ने रामवियोग में प्राण विसर्जन किया है। ननिहाल से बुलाये जाने पर पितृ मरण तथा रामवनगमन का कारण सुनकर भरतजीने कैकेयी को बहुत धिक्कारा है और शत्रुघ्न ने मंथरा को देखते ही आगबबूला हो 'हुमगि लात तकि कूबर मारा। परि मुह भरि महि करत पुकारा॥' जिससे उसका कूबर टूट गया कपार फूट गया दोनों दाँत टूट गये और मुंह से रुधिर बहने लगा है तौ भी आप उसे नखशिख खोटी समझ उसकी झोंटी पकड़ उसे घसीटने लगे हैं और उसे करनी का फल तुरत ही चखाया है।

फिर भरतजी कौशल्या का सप्रेम आश्वासन कर पिता की अन्त्येष्टि क्रिया में प्रवृत्त हुये। तदनन्तर सपरिवार और ससैन्य रामचन्द्र को वन से लौटाने गये हैं। भरतजी शृंगवेरपुर से पांवप्यादे चलते थे जिससे उनके पैरों में छाले पड़ गये थे। कवि कहते हैं— 'झलका झलकत पायन्ह कैसे। पंकजकोस ओसकन जैसे॥ वाह! क्या ही सुन्दर उपमा है। जनकजी भी सपरिवार चित्रकूट पहुंचे हैं। रामचन्द्र लौट आने पर सम्मत नहीं हुये हैं और उन्होंने अपना खड़ाऊं देकर भरतजी को वहाँ से विदा किया है। गोस्वामीजी कहते हैं :—

'प्रभु करि कृपा पांवरी दीन्ही। सादर भरत सीस धरि लीन्ही॥
चरनपीठ करुनानिधान के। जनु जुग जामिक प्रजाप्रान के॥
संपुट भरत सनेह रतन के। आखर जुग जनु जीव जतन के॥

कुल कपाट कर कुसल करम के। बिमल नयन सेवा सुधरम के॥
भरत मुदित अवलंब लहे तें। अस सुख जस सिय रामु रहे तें॥"

धन्य गोसाईं जी ! धन्य ! सुन्दर उपमाओं का मोती पिरोना आप ही का काम है और यहाँ अनुप्रास की बहार क्या कुछ कम है ?

इस काण्ड की कविता आद्योपान्त एक समान सुन्दर मधुर मर्मभेदी मनोहारिणी तथा उत्कृष्ट है। यह काण्ड वैसे ही शिक्षाप्रद भी है। इससे मनुष्य बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकता है। इसकी रचना में गोसाईं जी ने पराकाष्ठा की कवित्व शक्ति दिखलाई है। रामायण में यह काण्ड सर्वश्रेष्ठ और प्रथम स्थान पाने के योग्य है। केवल इसी काण्ड को लेकर यह कहा जा सकता है कि संसार भर में बहुत कम कवि इनकी टक्कर लगाने को समर्थ हो सकेंगे।

इस काण्ड को गोसाईं जी ने करुणारस से प्लावित कर दिया है। इसके पाठ के समय ऐसा ही कोई पाषाणहृदय मनुष्य होगा जिसके नेत्रों से अश्रु प्रवाहित न होते हों और जो प्रेमाश्रु का कवि को उपहार न देता हो। केवल दो स्थानों में वीररस की झलक देखी जाती है—एक तो जहाँ निषाद भरतजी को गंगा ही में रोकने और उनसे युद्ध करने को कटिबद्ध हुआ है और दूसरे जहाँ लक्ष्मण जी ने भरत का वन में ससैन्य आना सुन कर उन से युद्ध करने की मनसा की है। वहाँ तो कवि ने सोते हुये वीररस को जगा दिया है :—

"उठि कर जोरि रजायसु माँगा। मनहुँ बीररस सोवत जागा॥
बाँधि जटा सिर कसि कटि भाथा। साजि सरासन सायक हाथा॥
आजु राम सेवक जसु लेऊँ। भरतहिं समर सिखावन देऊँ॥
राम निरादर कर फल पाई। सोवहु समर सेज दोउ भाई॥
जिमि करिनिकर दलइ मृगराजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू॥
तैसेहि भरतहि सेन समेता। सानुज निदरि निपातउँ खेता॥
जौं सहाय कर संकर आई। तौ मारउँ रन राम दोहाई॥"

यही करुणारस पूर्ण अयोध्याकाण्ड राजभक्ति पितृभक्ति जननी आदर, सुतस्नेह, भ्रातृप्रेम, पत्नीप्रीति आदि की हम लोगों को सदा शिक्षा प्रदान करता आ रहा है।

इस काण्ड में कवि ने मंथरा तथा ग्रामीण स्त्रियों के मुँह में भी कविता रखी है। मंथरा—यथा, 'भानु कमलकुल पोषणहारा। बिनु जल जारि करइ सोइ छारा॥', "जर तुम्हारि चह सवति उखारी। रूँधहु करि उपाय बर बारी॥

ग्रामीण स्त्रियाँ—यथा, "राम कुमार दोउ सहज सलोने। इन्हतें लहि दुति मरकत सोने॥ स्यामल गौर किसोर बर, सुन्दर सुखमा ऐन। सरद सर्बरी नाथ मुख सरद सरोरुह नैन॥ कोटि मनोज लजावन हारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे॥"

मंथरा की जिह्वा पर तो सरस्वती विराजमान थीं, इस से उस के मुख से कविता निर्गत हुई। परन्तु सामान्य स्त्रियों के मुख से कविता कैसे स्फुरित हुई ?

वार्तालाप के समय कवि ने भरत और रामचन्द्र से बारम्बार शपथ कराया है। शपथ की कोई आवश्यकता नहीं थी। इस के बिना भी उन लोगों की बातों पर निश्चय विश्वास हो सकता था। आज का समय नहीं था कि हाथ में हलफ लेकर ईमान धर्म्म से कहने पर भी कहनेवालों की बातों पर एतबार नहीं किया जाता क्योंकि हलफ लेकर भी बहुत से लोग झूठ बोलने में लज्जित नहीं होते।

इस में कवि ने देवतों को बहुत स्वार्थी बताया है और देवराज के सम्बन्ध में तो यहाँ तक कहा है —

“कपट कुचालि सींव सुरराजू। पर अकाज प्रिय आपन काजू।।”

ऐसा कहने का कारण यह है कि देवतों ही ने अवधवासियों का चित्त चित्रकूट से उचाट किया था। परन्तु जब गोसाईं जी ने आगे चलकर ऐसा कहा है :—

‘सो कुचालि सब कहँ भइ नीकी। अवधि आस सम जीवनि जी की।।
नतरु लखन सिय राम बियोगा। हहरि मरत सब लोग कुरोगा।।”

तब बिचारे सुरगण और सुरराज पर इतना कुपित होना नहीं चाहता था।

इस काण्ड में पाँच सात स्थानों को छोड़कर प्रायः आठ ८ चौपाइयों पर एक दोहा और २४ दोहों के बाद प्रत्येक २५वें दोहे के स्थान में एक हरिगीतिका तथा एक सोरठा देखा जाता है। हरिगीतिका और सोरठा का नियम केवल एक जगह पाँचवीं पचीसी में भङ्ग हुआ है—अर्थात् १२५वें के बदले १२६वें दोहे के स्थान में हरिगीतिका और सोरठा आया है। चार इसी पचीसी में अर्थात् ११ वें और १११वें दोहों की कुछ चौपाइयों में रामचन्द्रादि के यमुना पार होने पर तपस्वी के आगमन की कथा बेजोड़ हुई पड़ी है। बात यह प्रतीत होती है कि गोसाईं जी ने यह काण्ड ३२५ दोहों में अर्थात् पूरे तेरह पचीसियों में रचा था पीछे किसी ने अपनी ओर से तापस की कथा जोड़कर ११ वें दोहे का दो-दो दोहा बना लिया। मु० सुधाकर लाल ने तो इस तापस की कथा को अपनी टीका की पुस्तक से निकाल ही दिया है। परन्तु ‘खड्गविलासप्रेस’ तथा ‘काशीनागरीप्रचारिणी सभा’ द्वारा प्रकाशित रामायणों में यह कथा पाई जाती है जिस से रामपुरवाली रामायण में भी इस का होना सिद्ध होता है। परन्तु इस कथा के जड़ में रहने से तथा एक और कारण से जो पाठक ‘रामचरितमानस के संस्करण’ वाले परिच्छेद में देखेंगे, उसके स्वामी जी लिखित होने में सन्देह होता है क्योंकि गोस्वामी जी ने इस दुरंगी रीति से कहीं कोई कथा नहीं कही है।

रामचन्द्र निषादादि के साथ यमुना पार उतरे हैं। तीर वासी नर नारियाँ इन लोगों को देख कर बन यात्रा की कथा सुन पछता रही हैं —

‘सुनी सबिषाद सकल पछिताहीं। रानी राय कीन्ह भल नाहीं।।
तेहि अवसर एक तापस आया। तेज पुंज लघु बयस सुहाया।।”

और वह सब किसी को दंड प्रणाम कर :—

"पियत नयन पुट रूप पियूषा। मुदित सुअसनु पाइ जिमि भूखा॥"

इसके अनन्तर लिखा है —

"ते पितु मातु कहहु सखी कैसे। जिन्ह पठये बन बालक ऐसे।,"

इस प्रकरण के देखने ही से मालूम होता है कि 'मुनि सविषाद' इत्यादि—इस चौपाई को 'ते पितुमातु' वाली चौपाई से सहज सम्बन्ध है और दोनों के साथ साथ होने से विषय सम्बन्ध मिलता है। इन दोनों के मध्य में ८ चौपाइयों और एक दोहा में एक अन्य कथा घुसा देना सर्वथा अनुपयुक्त है। गोसाइं जी ऐसा कदापि नहीं किये होंगे।

और उस तपसी ने सिवाय दंड प्रणाम के कुछ किया भी नहीं है। उस तापस के सम्बन्ध में टीकाकारों की विविध कल्पनाएँ देखिये। (१) स्वयं गोसाइं जी नगर निवासियों का पीछे जाना लिखकर ध्यान में डूबे यमुना किनारे पहुँच दंड प्रणाम कर आप और जो प्रसंग लिखकर ध्यान में डूबे थे उस के आगे हनुमान जी ने उन के दंड प्रणाम का हाल लिख दिया। पर गोसाइं जी उस मिटा न सके। (२) रामचन्द्र का रावणवध का संकल्प शरीर धारण कर उन्हें याद दिलाने आया। (३) चित्रकूट ही शरीर धारण कर अगुवानी करने आया। (४) वेषभूषा और भूषा होने के कारण लोग इस तपसी तनधारी अग्नि बताते हैं। यह इस कारण था समझा कि अब निषाद को रामचन्द्र फेर देंगे, मार्ग में तीन का जाना अशुभ है इस कारण साथ साथ जायगी। और बराबर साथ रहा इसी से सीताजी इसे सौंपी गईं (तुम पावक महं करहु निवासा) सुग्रीव के साथ मिलना के समय साक्षी हुआ और लंका में सीता अग्नि में सौंपी गई। (५) यमुना किनारे अगस्त्य का एक शिष्य रहता था वह दर्शन करने आया।

किसी २ संस्करण में तापसी की कथा के बाद यह चौपाई है— 'उर धरि धीर रजायसु पाई। चले मुदित मन अति हरसाई॥' इससे तो तापसी के साथ जाने की बात स्पष्ट होती है। और मानस मयंक भी इसकी पुष्टी करता है। उस के अनुसार सागर का पुत्र आया था और दंड प्रणाम कर निषाद के साथ ही लौट गया। परन्तु पूर्वोक्त दोनों संस्करणों में (अथवा रामपुरवाली रामायण में) यह चौपाई नहीं है अतः टीकाकारों का कथन विचारणीय है।

गोसाइं जी के ध्यान की बात से और इस से कुछ सम्बन्ध नहीं। यह घटना उस समय की कही गई है जब गोसाईं जी के इस संसार में रहने का कोई पता भी नहीं चल सकता। यदि इसके ध्यान ही की बात है तब यह निश्चय हनुमान जी का क्षेपक ही है। इस से तो हमारे कथन का पूरा समर्थन होता है।

दूसरी व्याख्या पाठकों की यह है। रामचन्द्र अवतार पीछे थे। आकाशवाणी हो चुकी थी कि मनुष्यशरीर धारण किया और अब स्मरण कराने की आवश्यकता हुई। और फिर इस शरीर में तो अभी उन्होंने प्रतिज्ञा भी नहीं की थी, काम करेंगे।

चित्रकूट अगुआनी करने आया पंचवटी क्यों नहीं आई ? कामदनाथ आगे अवध-नाथ क्यों नहीं आते ? क्या पंचवटी तथा अवधनाथ इन्हें परब्रह्म परमेश्वर नहीं मानते थे।

यदि वन में तीन पथिकों के साथ चलने का दोष निवारण करने के हेतु अग्नि शरीर धारण कर यहाँ से साथ हुआ तो सीता अपहरण के अनन्तर ऋष्यमूकपर्वत पर्यन्त आने तक तीन का दोष कैसे निवारण हुआ ? और सीताहरण इन्हीं महात्मा के साथ रहने के समय हुआ। इसे क्या शुभकार्य्य कहियेगा ? लंका में सीताजी के परीक्षार्थ लक्ष्मणजी ने अग्नि प्रगट किया था। साक्षी के लिये अग्नि या किसी देवता को शरीर धारण कर रामचन्द्र के साथ क्यों वन वन घूमने की आवश्यकता नहीं थी।[1] समय पर मंत्र द्वारा उनका आवाहन हो सकता था और ऐसाही आज भी विवाहादि के समय हुआ करता है और तुम पावक मंह करहु निवासा के 'मंह' शब्द से यह प्रतिपादित नहीं होता कि वे किसी शरीरधारी व्यक्ति के गर्भ में दी गईं। अग्नि में प्रवेश के लिये तो लंका के समान वहाँ भी अग्नि प्रगट किया जा सकता था और छिपने के लिये भी समय पर मंत्र द्वारा अग्नि का आवाहन हो सकता था। रही अपयश के छिपाने की बात सो स्वाभाविक तथा सम्भाविक है। परन्तु तौभी इसका उत्तर नहीं मिलता कि यह कथा बेजोड़ कहे घुसी। गोसाईं जी को तो किसी पाप को इस बुर्बंगपने से अपनी रचना में प्रवेश कराते कहीं नहीं देखते।

इस काण्ड को किसी १ रामायण प्रकाशक ने 'अवधकाण्ड' तथा 'आरण्य' को 'वनकाण्ड' किया है। काण्डों के नाम बदलने की कोई आवश्यकता नहीं वरन यह भ्रान्ति-जनक है।

आरण्यकाण्ड

आदि में दो श्लोकों में श्री शिवजी तथा श्री रामचन्द्रजी की वन्दना है। पहले इन्द्र का पुत्र जयंत काग बन कर सीताजी के चरण में चोंच मारने के कारण काना किया गया है। फिर रामचन्द्र चित्रकूट से प्रस्थान कर अत्रिमुनि से मिले हैं। उनकी स्त्री अनसूया ने सीता जी को पातिव्रतधर्म का उपदेश दिया है। इस उपदेश पाठ से महिलागण महान लाभ उठा सकती हैं। इसके पाठ का क्रम लोगों में अवश्य प्रचार करना चाहिये। फिर विराध को वध करके एवम् शरभंगमुनि सुतीक्ष्ण अगस्त्य[2] प्रभृति ऋषियों के दर्शन का आनन्द उठे

१ वाल्मीकिजी के अनुसार उस समय हनुमान जी ने दो अरणियों को रगड़कर अग्नि प्रगट किया था।

२ अगस्त्य जी विन्ध्याचल से दक्षिण गिर कुञ्जर पर रहते थे। वे उस प्रान्त के प्रधान ऋषि थे। आदि द्राविड़ जातियों के यही साहित्य तथा विज्ञान के शिक्षक माने जाते हैं। काल्डवेल (Dr Caldwell) साहब के अनुसार इनका समय ईसा के पूर्व ६वीं या ७वीं शताब्दी में आरम्भ हुआ है।

दण्डकारण्य में पहुँच कर लोगों ने पञ्चवटी[1] में डेरा जमाया है। वहीं पर रामचन्द्र ने लक्ष्मण को भक्तिज्ञानादि का उपदेश दिया है।

कुछ दिन बाद रावण की बहन सूपनखा रुचिरभेष बनाकर रामचन्द्र के पास आ उन से प्रेमप्रार्थना की है और उसके कान नाक काट गये हैं। और इसी कारण खरदूषण ससैन्य रामचन्द्र के हाथ से युद्ध में निहत हुये हैं। उधर सूपनखा रावण के पास पुकार करने गई है, इधर सीताजी ने अपना प्रतिबिम्ब छोड़ कर अग्नि में प्रवेश किया है।

वाल्मीकि जी ने न तो सीता को अग्नि ही को सौंपा है और न सूपनखा ही को रुचिर भेष में उपस्थित किया है। उनकी सूपनखा को देखिये।

"सुमुखं दुर्मुखी रामं वृत्तमध्यं महोदरी ॥९॥
विशालाक्षं विरूपाक्षी सुकेशं ताम्रमूर्धजा।
प्रियरूपं विरूपा सा सुस्वरं भैरवस्वना ॥१०॥
तरुणं दारुणा वृद्धा दक्षिणं वामभाषिणी।
न्यायवृत्तं सुदुर्वृत्ता, प्रियमप्रियदर्शना ॥११॥"

(आरण्यकाण्ड सर्ग १७)

सूपनखा बड़ी ही ढीठ हुई चालाक स्त्री थी। रामचन्द्र के प्रति रावण को उत्तेजित तथा क्रोधित करने के अभिप्राय से वह आते ही अपना असल हाल न कह कर नीति को बकने लगी क्योंकि रावण बड़ा नीतिज्ञ कहलाता था। तब सभा में भूमि पर गिर कर रोने लगी और कहने लगी "ताहि जियत दशकंधर मोरि कि असि गति होइ।" और रावण के भिड़क

---

१ यह दंडक वन का एक भाग है जहां से गोदावरी प्रवाहित हुई है। और नासिक से दो मील पर है। पञ्चवटी के वर्णन में गोसाईं जी ने तो रामायण में कुछ नहीं लिखा है किन्तु रामचन्द्रिका में उसकी महिमा यों वर्णित है :—

"सब जाति फटी दुख की दुपटी कपटी न रहै जहँ एक घटी।
निघटी रुचि मीचु घटी हूँ घटी जगजीव जतीन की छूटी तटी॥
अघ ओघ की बेरी कटी बिकटी निकटी प्रकटी गुरुज्ञान गटी।
चहुँ ओरन नाचत मुक्ति नटी गुन धूरजटी बनपंचवटी॥

और एक अन्य कवि ने कहा है :—

शुचि सौरभ संयुत वायु छुटी मधुरे मकरन्दन से भरी।
करि कोकिल कीर कलापकटी चहचाहि चकोर फिरैं चरती॥
अति निर्मल नीर प्रवाह नदी महिमा जिहि वेद न जात रटी।
रघुनाथ बसी जहँ पर्णकुटी धनधन्य तिहूँपुर पंचवटी॥

कर हाल पूछने पर रामचन्द्र का बल पराक्रम वर्णन करती एवम् उन के संग एक परम सुन्दरी नारी होने की सूचना देती हुई इस ने कहा कि वही पुरुषसिंह रामचन्द्र ने मेरी यह दशा की है— अर्थात् नाक कान काटा है, और इस ने झूठमूठ यह भी जोड़ लिया कि 'तुमि तब भगिनि करी परिहौंसा।' फिर इस ने खरदूषण के मारे जाने का हाल कहा। अपनी करतूति इस ने कुछ भी नहीं कही। ये सब इस की मक्कारियाँ थीं। कवि ने इस के मक्कारपने का अच्छा चित्र खींचा है।

इस के अनन्तर मारीच मरा है तथा सीताहरण हुआ है। वे अशोकवाटिका में रखी गई हैं। रामचन्द्र प्रियवियोग में व्याकुल उन्हें इधर उधर खोजते जटायु से रावण द्वारा उन के हरे जाने का समाचार पाते तथा उन के शरीर का स्वयम् अन्तिम संस्कार करते, मार्ग में शबरी का बेर फल खाते भाई के संग पम्पासर पर विराजमान हुये हैं।

वर्तमान पेनासर को पुरातन काल का पम्पा बताते हैं और कहते हैं कि माइसूर उन वानर प्रधानों का प्रसिद्ध स्थान था जिन्होंने रामचन्द्र की सहायता की थी।

पम्पासर के सुन्दर दृश्यों का संस्कृत कवियों ने बहुत मनोहर वर्णन किया है। कादम्बरी में बाणभट्ट ने इस का बड़ा सुन्दर चित्र खींचा है। वाल्मीकि जी ने भी आरण्य काण्ड के अन्तिम अध्याय तथा किष्किन्धा के प्रथम अध्याय में उस सरोवर की अच्छी छवि दरसाई है। भवभूति जी लिखते हैं —

"एतस्मिन् मदकलमल्लिकाक्षपक्षव्याधूतस्फुरदुरुदण्डपुण्डरीका।
याष्पाम्भः परिपतनोद्गमान्तराले संदृष्टा कुवलयिनो भुवो विभागाः॥"

और गोसाइँ जी ने उस की छटा यों दिखलाई है —

"संत हृदय जस निर्मल बारी। बाँधे घाट मनोहर चारी॥
जहँ तहँ पियहिं बिबिध मृगनीरा। जनु उदार गृह जाचक भीरा॥
पुरइन सघन ओट जल, बेगि न पाइय मर्म।
मायाछन्न न देखिय, जैसे निर्गुन ब्रह्म॥
सुखी मीन सब एक रस, अति अगाध जल माहिं।
जथा धर्मसीलन्ह के, दिन सुख संजुत जाहिं।
बिकसे सरसिज नाना रंगा। मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा॥
बोलत जलकुक्कुट कलहंसा। प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा॥
चक्रवाक[1] बक खग समुदाई। देखत बनइ बरनि नहिं जाई॥
सुंदर खग गन गिरा सुहाई। जात पथिक जनु लेत बोलाई॥
ताल समीप मुनिन्ह गृह छाये। चहुँ दिसि कानन बिटप सुहाये॥

१ अंगरेज़ी कविता में जैसे कपोत पंडुक (Dove, turtle) दम्पति प्रेम का आदर्श माना जाता है वैसे संस्कृत कविता में चक्रवाक माना जाता है।

चंपक बकुल कदम्ब तमाला। पाटल पनस पलास रसाला॥
नव पल्लव कुसुमित तरु नाना। चंचरीक पटली कर गाना॥
सीतल मंद सुगंध सुभाऊ। संतत बहइ मनोहर बाऊ॥
कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं। सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं॥
फल भर नम्र बिटप सब, रहे भूमि नियराइ।'
पर उपकारी पुरुष जिमि, नवहिं सुसंपति पाइ॥

कवि ने रामचन्द्र के मुख से जटायू की यथोचित प्रशंसा कराई है और कहलवाया है कि तुम उत्तम कर्म से सद्गति के अधिकारी हुये हो —

"जल भरि नयन करहिं रघुराई। तात कर्म निज तें गति पाई॥
परहित बस जिनके मन माहीं। तिन कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥
तनु तजि तात जाहु मम धामा। देउँ काह तुम्ह पूरन कामा॥"

इतना ही नहीं वरन् रामचन्द्र के हाथ से कवि ने जटायू की अन्त्येष्टि क्रिया भी कराई है। और भाग को कवि ने लिखा है —

"कोमल चित अति दीन दयाला। कारन बिनु रघुनाथ कृपाला॥
गीध अधम खग आमिषभोगी। गति दीन्हीं जो जाचत जोगी॥"

हो न गीध के आमिषभोगी ही होने में सन्देह है और न उस के उत्तम गति ही पाने में। परन्तु यही दयालुता तो किसी ऐसे ही दयालु और समझदार मालिक का ही काम है कि योग्य अधिकारी पुरुष को उस के सुकर्म का उचित पारितोषिक दे।

जिस समय श्री रामचन्द्र भाई सहित पम्पासर पर विराजमान थे नारद जी भी घूमते २ वहाँ पहुँच गये हैं और शिष्टाचार के अनन्तर उन्होंने रामचन्द्र से पूछा है कि उस समय आप मेरे विवाह में क्यों बाधक हुये थे। रामचन्द्र ने उसका कारण बताया है। कारण वर्णन करने के पूर्व हम यह कहेंगे कि इस समय नारद ने किस भाव से प्रश्न किया हो किन्तु उस काल में वे मोह में सचमुच पागल हो रहे थे कि भगवान के यह स्पष्ट कहने पर भी कि —

"जेहि बिधि होइहि परम हित, नारद सुनहु तुम्हार।
सोइ करब न आन कछु, बचन न मृषा हमार॥
कुपथ माँग रुज ब्याकुल रोगी, बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी॥"

इन्हें यह नहीं ज्ञान हुआ कि वास्तव में अवश्य कुछ बात है भगवान हमें कन्या दान नहीं देंगे। कवि ने मन के मोह का प्राबल्य खूब दरसाया है।

1 इसके भाव को इन शब्दों की कविता में लिखा हुआ —
भार पर भरा मधुर उर्मिल।

अब रामचन्द्र कथित कारण सुनिये —

"सुनु मुनि कह पुरान स्रुति संता। मोह बिपिन कहुँ नारि बसंता॥
जप तप नेम जलासय झारी। होइ ग्रीषम सोषइ सब नारी॥
काम क्रोध मद मत्सर भेका। इनहिं हरषप्रद बरषा एका॥
दुर्बासना कुमुद समुदाई। तिन्ह कहँ सदा सरद सुखदाई॥
धर्म सकल सरसीरुह बृन्दा। होइ हिम तिन्हहि दहइ सुख मंदा॥
पुनि ममता जवास बहुताई। पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई॥
पाप उलूक निकर सुखकारी। नारि निबिड़ रजनी अँधियारी॥
बुधि बल सील सत्य सब मीना। बंसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना॥
अवगुन मूल सूल प्रद, प्रमदा सब दुख खानि।
ताते कीन्ह निवारन, मुनि मैं यह जिय जानि॥"

कवि ने नारी से ऋतुओं की तुलना तो अच्छी की परन्तु रामचन्द्र से स्त्रियों की अच्छी छीछालेदर नहीं दिलवाई। स्त्री गुणगायक कविवर तथा स्त्रीभक्त पुरुष गण इससे कितना सन्तुष्ट होंगे सो नहीं कह सकते। गोसाईं जी प्रमदा से ऐसे चिढ़े क्यों थे! कोई कहते हैं कि गोसाईं जी को मातृ वियोग शैशवावस्था ही में हो गया था स्त्री का सुख चिर काल तक रहा नहीं, गृहत्यागी हो जाने के कारण इन्हें उच्च श्रेणी की महिलाओं से संसर्ग नहीं हुआ। इसी से इन्हें स्त्रियों के सद्गुणों की जाँच का सुअवसर नहीं मिला और इसी से इन्होंने स्त्रियों की स्वयं निन्दा की है और रामचन्द्र से भी कराई है। सच पूछिये तो यह समस्या बड़ी ही कठिन है। इस सम्बन्ध में जिस का जैसा स्वयम् अनुभव है वैसा ही कहेगा। परन्तु 'प्रमदा सब दुख खानि' होने पर भी हमारी अर्द्धांगिनी तथा सहधर्म्मिणी ही कहलाती हैं स्त्री जीवित रहने पर हमारे पार्श्व में उस के आसीन हुये बिना हमारा यज्ञ सम्पन्न नहीं हो सकता। रामचन्द्र को भी अश्वमेध यज्ञ के समय सीता जी के वाल्मीकि जी के आश्रम में रहने से उन की स्वर्ण की प्रतिमूर्ति[1] बनवानी पड़ी थी। शास्त्रानुसार हिन्दू महिलाओं को ऐसा उच्च आसन प्राप्त है। और नारी विदेशों की शक्ति रूपिणी हैं। रामचन्द्र उस समय नारि-विरह से दुखित थे अतएव वे उन्हें दुखदायिनी कह सकते थे। परन्तु गोसाईं जी को तो उन की स्त्री ही उनके ईश्वर के सम्मुख होने का कारण हुई, उन्हें नारियों से ऐसा नाराज़ होना नहीं चाहता था।

रामचन्द्र से सन्तों का लक्षण कहलवाने में गोसाईं जी ने यहाँ तक कहलवा दिया है—

"सुनु मुनि साधुन के गुन जेते। कहि न सकहिं सारद स्रुति तेते॥"[2]

यह साधु का लक्षण वर्णन अच्छा हुआ है।

---

१ वाल्मीकीय रामायण उत्तर काण्ड, सर्ग ९१ श्लोक २५, तथा सर्ग ९९ श्लोक ७ देखिये।

२ "साधु की महिमा वेद न जानहिं"—श्री गुरु नानक।

कोई तो इस काण्ड के अन्त में सोरठा 'कठिन काल मल कोस' पर अयोध्या काण्ड की समाप्ति करते हैं, और मुन्शी सुखदेव लाल ने 'आत हीन अघ मग्न महि' इसी दोहा से यह काण्ड समाप्त करके इस के शेष भाग को किष्किन्धा काण्ड में रख दिया है। इसी काण्ड में उन्हों ने बहुत काट छांट भी किया है और इसी में पाठान्तर का भी बाहुल्य है।

किष्किन्धाकाण्ड

आदि में दो श्लोकों में श्रीरामचन्द्र की वन्दना तथा राम नाम माहात्म्य है और एक सोरठे में श्री काशी जी का वर्णन है।

हनुमान जी के द्वारा श्रीरामचन्द्र और सुग्रीव में मिताई हुई है और तब रामचन्द्र ने बालि को मार कर सुग्रीव को बानरों का राजा और बालि के पुत्र अङ्गद को युवराज बनाया है। वर्षा ऋतु के आगमन के कारण रामचन्द्र और लक्ष्मण जी ने प्रवर्षण पर्वत पर निवास किया है और सुग्रीव राज पाकर भोग विलास में प्रवृत्त हुये हैं। वर्षाकाल व्यतीत होने पर भी सुग्रीव के रामकाज साधन में ध्यान नहीं देने से रामचन्द्र को क्रोध हुआ है। अन्ततः सीता जी की खोज में वानर समूह चारों ओर भेजे गये हैं। राह में प्यास से व्यथित होकर हनुमानादि के एक बिल में प्रवेश करने पर एक तपस्विनी की सहायता से ये लोग समुद्र किनारे पहुँचे हैं और वहीं उनलोगों का जटायु के भाई सम्पाति से भेंट हुई है और उसी ने ठीक २ बताया है कि रावण ने सीताजी को लङ्का की अशोकवाटिका में रक्खा है जिस बल हो वह समुद्र पार जा कर उन का समाचार लावे।

इस काण्ड की कविता बहुत ही सुन्दर और प्रशंसनीय हुई है। इसमें कवि ने वर्षा और शरद ऋतु के वर्णन में अनुप्रासमयी उपमाओं की झड़ी बाँध दी है। उन का कुछ अंश यहाँ पर उद्धृत कर देना अनुपयुक्त नहीं होगा।

"दामिनि दमकि रह घन माहीं। खल कै प्रीति यथा थिर नाहीं॥
बुंद अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के बचन संत सह जैसे॥
सिमिटि २ जल भरहि तलावा। जिमि सदगुन सज्जन पहिं आवा॥
हरित भूमि तृन संकुल, समुझि परहिं नहिं पंथ।
जिमि पाखंड बिवाद तें, गुप्त होहिं सद ग्रन्थ॥
महा वृष्टि चलि फूटि किआरी। जिमि सुतंत्र भये बिगरहिं नारी॥
देखियत चक्रबाक खग नाहीं। कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं॥
कबहुँ प्रबल बह मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।
जिमि कपूत के उपजे, कुल सद्धर्म नसाहिं।
सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा॥
बिनु घन निर्मल सोह अकासा। हरिजन इव परिहरि सब आसा॥

सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरि सरन न एकहु बाधा॥"

इस काण्ड में मित्रता का भी बहुत उत्तम वर्णन हुआ है—

"जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिनहिं बिलोकत पातक भारी॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना॥
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटइ अवगुनहिं दुरावा॥
विपतिकाल कर सत गुन नेहा। स्रुति कह संत मित्र गुन एहा॥
आगे कह मृदु बचन बनाई। पाछे अनहित मन कुटिलाई॥
जाकर चित अहि गति सम भाई। अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई॥
सेवक सठ नृप कृपिन कुनारी। कपटी मित्र सूल सम चारी॥"

इस प्रकरण के आदि और अन्त की चौपाइयों के अतिरिक्त अन्य सब चौपाइयों को मु० सुखदेवलाल ने गोसाईं जी कृत होना नहीं माना है। चाहे इन्हें गोसाईं जी कृत माने या नहीं परन्तु इन में मित्र का यथार्थ लक्षण वर्णन किया गया है।

लोगों का कथन है कि इसी काण्ड से गोसाईं जी ने रामायण की रचना काशी में की है क्योंकि इसी में पहले-पहल काशी का वर्णन हुआ है।

वाल्मीकीय रामायण में सीता जी के खोजने के लिये वानरों के चतुर्दिक भेजे जाने का हाल विस्तार पूर्वक लिखा हुआ है। उसके पढ़ने से पहले हमें अचम्भा हुआ था कि जब यह बात मालूम हो गई थी कि रावण सीता को हर ले गया था तब सर्वत्र वानर क्यों भेजे गये। पीछे सोचा कि चतुर चोर चोरी का माल अपने घर ही नहीं रखता। अतएव यह विचार कर कि कदाचित् रावण सीता जी को कहीं अन्यत्र रख दिया हो चारों ओर बन्दर भेजे गये और रावण के चोराने का हाल जानने ही से दक्षिण दिशा की ओर युवराज के साथ बड़े-बड़े सुभट भेजे गये और उन्हीं में से एक को रामचन्द्र ने अपनी मुद्रिका भी दी।

सुन्दरकाण्ड

आदि में दो श्लोकों में श्रीरामचन्द्र और एक में हनुमान जी की स्तुति है। हनुमानजी इस किनारे से उछलकर रास्ते में सुरसा की परीक्षा में पास होते छायाग्राही राक्षस को समुद्र में वध करते उस पार पहुँच कर गिरि पर चढ़ के लंका की शोभा देखने लगे हैं। किला क्या ही ऊँचा है। सागर मानो उसे चारों ओर से दबाये गोद में लिये बैठा है और कनककोटि की प्रभा चकाचौंध किये देती है। लंका का वर्णन उत्तम हुआ है। देखिये —

"कनक कोटि बिचित्र मनिकृत सुंदरायतन अति घना।
चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथी चारुपुर बहु बिधि बना॥
गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथन्हि को गनइ।
बहुरूप निसिचर जूथ अति बल सैन बरनत नहिं बनइ॥

बन बाग उपबन बाटिका सर कूप बापी सोहहीं।
नर नाग सुर गंधर्ब कन्या रूप मुनि मन मोहहीं॥
कहुँ माल देह बिसाल सैल समान अतिबल गर्जहीं।
नाना अखारेन्ह भिरहिं बहु बिधि एक एकन्ह तर्जहीं॥
करि जतन भट कोटिन्ह बिकट तन नगर चहुँ दिसि रच्छहीं।
कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं॥"

फिर मसक समान रूप बनाकर लंकिनी की मुष्टिका द्वारा पूजा करते, घर घर सीताजी को खोजते, विभीषण की भेंट का आनन्द पाते हनुमान जी अशोकवाटिका में पहुँचते हैं। उसी समय मन्दोदरी आदि के साथ वहाँ रावण भी सीता जी को फुसलाने और डराने गया है। इससे रावण के प्रति सीता जी का भाव और व्यवहार हनुमान जी पर पूरी रीति से विदित हो गया है। उन्होंने अपनी आँखों से देख लिया है कि रावण सीता जी को कितना सताता है, वे रामविरह के ताप से कैसा सन्तप्त हो रही हैं। मन्दोदरी आदि पर भी सीता का स्वतन्त्र भाव प्रगट हो गया है।

एक महीने की अवधि देकर और निशाचरियों को सीता को त्रास दिखाने की आज्ञा दे रावण चला गया है। सीता जी ने विलाप करना प्रारम्भ किया है और वे मरने के लिये अशोक वृक्ष से आग माँगने लगी हैं। उसी समय हनुमान जी ने रामचन्द्र की अँगूठी गिरा दी है और फिर प्रगट होकर अपना परिचय दे सीता जी का प्रबोध किया है। वाटिका विध्वंस करने और रावण के पुत्र अक्षयकुमार का वध करने पर मेघनाद द्वारा पकड़ा कर हनुमान जी रावण के पास लाये गये हैं। इनकी पूँछ में आग लगाई गई है और ये लंका दहन कर तथा सीता जी से विदा हो रामचन्द्र के पास आये हैं और उन्होंने उनसे सीता जी का यह सन्देश कहा है —"प्रभो! आपने मुझे क्यों भुला दिया? यह तो ठीक है कि आप से वियोग होते ही हमने शरीर त्याग नहीं किया, पर करें क्या! इन नेत्रों से बेबस हैं। क्योंकि—

"बिरह अगिनि तनु तूल समीरा। स्वास जरइ छन माहिं सरीरा॥
नयन स्रवहिं जलु निज हित लागी। जरैं न पाव देह बिरहागी॥"

और प्राण भी निकलें तो कैसे निकलें!

"नाम पाहरू दिवस निसि, ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित, जाहिं प्रान केहि बाट॥"

धन्य गोसाईं जी! धन्य! बहुत कल्पना किया कि इस ढंग से उन्होंने सीता जी के शरीर और प्राण की रक्षा कराई।

फिर वानर भालुओं की सेना के सहित रामचन्द्र समुद्र किनारे पहुँचे हैं। उधर मन्दोदरी रावण को सीता जी के लौटा देने के लिये समझाने बुझाने लगी है और इसी अपमान के कारण विभीषण रावण से लात खाकर बड़े उत्साह से रामचन्द्र के दर्शन का मनोरथ करते रामचन्द्र के पास आते हैं और लंकेश बनाये जाते हैं।

भारी को मार रहा है और श्यामता देखने ही से हनुमान जी ने रामचन्द्र की मूर्ति का उस में आभास देखा। इसी प्रकार दक्खिन का दृश्य देख कर रामचन्द्र विभीषण से कहने लगे कि "देखो दक्खिन की ओर आकाश मेघ मंडित हो रहा है चपला भी चमक जाती है और मधुर-मधुर गरज भी हो रहा है। विभीषण कहते हैं कि नहीं कृपानिधान!

"तड़ित न होइ न वारिद माला ॥
लंका सिखर उपर आगारा। तहँ दसकंधर केर अखारा ॥
छत्र मेघ डंबर सिर धारी। सोइ जनु जलदघटा अति कारी ॥
मंदोदरी स्रवन ताटंका। सोइ प्रभु जनु दामिनी दमंका ॥
बाजहिं तालमृदंग अनूपा। सोइ रव सरिस सुनहु सुरभूपा ॥"

यह सुन रामचन्द्र ने एक बाण चलाया और छत्र मुकुट तथा ताटंक सब भूमि पर लोगों के देखते गिर पड़ा। सब सभासद के हृदय में धाकड़ धमा गया कि बड़ा भारी भयंकर अशकुन हुआ। परन्तु रावण को भय कहाँ? जैसे रामचन्द्र ने मुस्करा कर बाण चलाया था, इसने भी विहँस कर कहा :—

"सिरो गिरे सतत सुभ जाही। मुकुट खसे कस असगुन ताही ॥"

पाठकवृन्द! कवि में शकुन अशकुन, तथा स्वप्न का भी बहुत विचार रहता था। ये यथोचित समय पर सर्वदा शकुन अशकुन कराते गये हैं। लंका काण्ड में तो कई बार अशकुन हुआ है। रामचन्द्र की बारात जाने के समय और उनकी वनयात्रा के समय भी शुभशकुन हुआ है। परन्तु यात्रा समय शुभशकुन क्यों? वाह क्या खूब! इसी यात्रा में तो देव कार्यसाधन हुआ पृथ्वी का भार दूर हुआ जिस के निमित्त इन्होंने मनुष्य शरीर धारण किया था। तब शकुन क्यों न हो?

और भविष्य दुर्घटना सूचक दुःस्वप्न कैकेयी भरत जी और त्रिजटा ने देखा ही था।

ताटंक गिरने पर मंदोदरी ने राम का विराट स्वरूप वर्णन कर के रावण को फिर समझाया है। पर वहाँ कौन सुनता है। यह विराट का ध्यान अच्छा दिखाया गया है।

प्रातःकाल अंगद जी रामचन्द्र की ओर से वसीठी गये हैं और रावण के साथ उनका बहुत वार्तालाप हुआ है। अंगद-रावण सम्वाद बड़ा ही मनोहर आनन्दप्रद और चित्ताकर्षक है। परन्तु किसी-किसी के मत में स्वाभाविक नहीं है। क्योंकि महाराजाओं की सभा में दूत इस तरह की अयोग्य बातें नहीं कर सकता। हम राजसभा का नियम नहीं जानते। इस से कुछ नहीं कह सकते। परन्तु जिन्हें अंगद के पैर नहीं उठने के सम्बन्ध में सन्देह होता है वे प्रोफेसर राममूर्ति के बल को स्मरण करें। आज भी भारतवर्ष में एक ऐसा व्यक्ति है जिस १२ घोड़ों की शक्ति की दो मोटरें दोनों ओर से जोर करने पर अपने स्थान से नहीं डिगा सकतीं।

अब युद्ध आरम्भ हुआ है। पहिले दिन हनुमान और अंगद ने अच्छा उड़ाई दे। दूसरे दिन की लड़ाई में मेघनाद के हाथ से लक्ष्मण जी घायल होकर अचेत हुये हैं और

लंका के वैद्य सुषेन के आदेश से हनुमान जी रास्ते में मुनि वेषधारी कालनेमि राक्षस का वध करते रात ही को संजीवन पर्वत लाते हैं और औषधि प्रयोग से लक्ष्मण जी फिर स्वस्थ हुए हैं। यही पर्वत लाते समय अनजानते भरतजी के एक बाण मारने से हनुमानजी मूर्छा में गिर पड़े हैं और भरतजी ने उस पुनीत मुनि पर महान्तर प्रकाश किया है और कहा है कि :—

"तात गहरु होइहि तोहि जाता। काज नसाइहि होत प्रभाता॥
चढ़ु मम सायक सैल समेता। पठवहुँ तोहि जहँ कृपानिकेता॥"

लक्ष्मणजी के घायल होने पर गोस्वामी जी ने रामविलाप अच्छा वर्णन किया है इस प्रकरण की करुण चौपाइयों को लेकर रामायणी लोग अपनी बुद्धि प्रकाशित कर अपूर्व अपूर्व अर्थ करने लगते हैं। केवल इतने ही पर सन्तोष नहीं करते कि उन चौपाइयों के द्वारा कवि ने मानवी प्रकृति का सच्चा चित्र खींचा है। तीसरे दिन विपुल बलधारी महा पराक्रमी योद्धा कुम्भकर्ण अकेले ही रामचन्द्र की सेना से लड़ने को युद्धक्षेत्र में उपस्थित हुआ है और अकेले ही सब वानरी सेना को भयभीत, मूर्छित और पराजित कर दिया है। आज का युद्ध बड़ा ही भयंकर हुआ है और आज ही पहिले पहल रामचन्द्र को घोर युद्ध करना पड़ा है। अन्त में कुम्भकर्ण निहत हुआ है। जब यह मूर्छित कर वह सुग्रीव को कांख में दाबकर ले भागा था तो सचेत होने पर सुग्रीव ने उस की कांख से निकल कर उसकी नाक काट ली थी।

चौथे दिन मेघनाद ने घोर संग्राम करके सब कपि दल ही को व्यथित नहीं किया है वरन् लक्ष्मण को मोहित कर रामचन्द्र को भी नाग फाँस में बाँध लिया है। तब जामवन्त ने उसे मुष्टिका मार मार उसके पैर पकड़ उसे घुमाकर लंका पर फेंक दिया है। वहाँ चेत होने पर मेघनाद ने यज्ञ आरम्भ किया है और यह समाचार विभीषण से पाकर श्री रामचन्द्र की आज्ञा से अङ्गदादि को साथ लेकर यह कह कर चले हैं —

"जौं तोहि आज बधे बिनु आवउँ। तौ रघुपति सेवक न कहावउँ॥
जौं सत संकर करहिं सहाई। तदपि हतउँ रघुबीर दोहाई॥"

यज्ञ विध्वंस के अनन्तर वीरतापूर्वक भारी युद्ध करके मेघनाद वीरगति को प्राप्त हुआ।

आज पाँचवें दिन जगद्विजयी अतुलपराक्रमी रावण स्वयम् रणक्षेत्र में अवतीर्ण हुआ है। उसे देखते ही विभीषण भयभीत हो रामचन्द्र से कहने लगे :—

"नाथ न रथ नहिं तनु पदत्राना। केहि बिधि जीतब रिपु बलवाना।"

उसके उत्तर में रामचन्द्र ने कहा है :—

"जेहि जय होय सो स्यंदन आना।"

और उस स्यंदन का यों वर्णन करने लगे हैं —

"सौरज धीरज जाहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका॥
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे॥

ईसभजन सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना ॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिज्ञान कठिन कोदंडा ॥
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना ॥
कवच अभेद बिप्र गुरु पूजा। एहि सम बिजय उपाय न दूजा ॥
सखा धर्ममय अस रथ जाके। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके ॥
महा अजय संसार रिपु, जीति सकै सो बीर।
जाके अस रथ होइ दृढ़, सुनहु सखा मतिधीर ॥"

हमारे सब पाठकों को अजय-संसार-रिपु पर जयलाभ करने के लिये ऐसा रथ प्रस्तुत करने का उद्योग करना चाहिये।

अब रावण का युद्ध आरम्भ हुआ है। वह प्रचण्डबाणों से बेध बेध कर कपि दल को जर जर करने लगा है। वानरी सेना भाग चली है। तब लक्ष्मण जी उसके सम्मुख जाकर घोर युद्ध करने लगे हैं। इन्हें भी शक्ति प्रहार से रावण ने भूशायी बना दिया है और हनुमान जी इन्हें उठाकर रामचन्द्र के पास लाते हैं। मूर्छा विपत होने पर ये फिर युद्ध करने लगे हैं और रावण के रथ सारथी को मार कर उसे भी बाण प्रहार से इन्होंने अचेत कर दिया है। और दूसरा सारथी रथ पर बिठाकर उसे घर ले गया है।

दूसरे दिन यज्ञ विध्वंस किये जाने पर रावण सक्रोध युद्ध करने को उपस्थित हुआ है। इसी दिन पहिले पहल राम-रावण का विकट संग्राम हुआ है। इन्द्र ने यह विचार कर कि बिना रथ रावण के साथ काम नहीं चलेगा अपना रथ भेजा है। आज का युद्ध बड़ा कठोर और भयंकर हुआ है। रावण ने एक बार रामचन्द्र के सारथी को दूसरी बार घोड़ों को घायल किया है। बाणों से रामचन्द्र को तोप दिया और उन्हें मूर्छित भी कर दिया है। यह देख विभीषण ने दौड़कर उस पर गदा प्रहार किया है हनुमान भी दल से आ भिड़े हैं देवता भी भयभीत हो भाग चले हैं अङ्गद ने भी पराक्रम प्रकाश किया है। परन्तु रावण ने हनुमानादि सब मारु बानरों को मूर्छित कर दिया है। अन्त में रामचन्द्र के बाण से रावण घायल हुआ है और सारथी उसे रथ में डाल कर कोट के भीतर ले गया है।

सातवें दिन भी पूर्व दो दिनों के समान विकट युद्ध हुआ है—रावण भारी भयंकर युद्ध करता और सबों को जर्जरित करता अन्त में रामचन्द्र के हाथ वध हो, यह कहता हुआ कहाँ राम रन हतौं प्रचारी' प्राणहीन और गति को प्राप्त हुआ है। इस युद्ध का प्रकरण गोसाईं जी ने ऐसी प्रभावोत्पादिनी भाषा में वर्णन किया है कि पढ़ते समय रोंगटे खड़े हो जाते हैं चार भुजायें फड़कने लगती हैं। युद्ध वर्णन में बराबर हरिगीतिका का लाना इसे और भी जोरदार बना दिया है। युद्ध समय विमान द्वारा भी अच्छा दिखलाया गया है।

अनन्तर मंदोदरी का विलाप रावण का दाहसंस्कार विभीषण का राज्याभिषेक सीताजी का अग्निप्रवेश, देवताओं की स्तुति और पुष्पकविमान पर सबों के साथ रामचन्द्र का भरत की ओर प्रस्थान करना वर्णन किया गया है।

इस काण्ड में गोसाईं जी ने युद्ध वर्णन बहुत ही उत्तम और विशद किया है। नित्यप्रति युद्ध की भीषणता उत्कर्ष कर के उसे महारोचक तथा चमत्कारोत्पादक बनाया है और इसमें इन्होंने अच्छी कवित्वशक्ति दिखलाई है। इस विषय में वाल्मीकि जी भी इनकी समता नहीं कर सके हैं क्योंकि उनके युद्ध वर्णन में प्रतिदिन उत्कर्ष-वृद्धि नहीं होती गयी है।

उत्तरकाण्ड

दो संस्कृत श्लोकों में श्री रामचन्द्र तथा एक में शिवजी की वन्दना के बाद कथा आरम्भ होती है। उधर अयोध्या में रामागमन-सूचक नाना प्रकार का शकुन हो रहा है इधर भरतजी रामविरहसागर में निराधार डूबने लगे हैं उसी समय हनुमानजी जहाज के समान राम शुभागमन समाचाररूपी अमूल्य रत्न लिये उनके पास ही पहुँच गये हैं। फिर क्या था शोक के बदले सर्वत्र आनन्द ही आनन्द छा गया। अब देर क्यों हो? भरत जी माता आदि के समेत श्रीरामचन्द्र से मिलने को आगे चले हैं और भरतमिलाप होने के पश्चात रामचन्द्र ने सबके सह नगर में प्रवेश किया है। फिर उनका राज्याभिषेक हुआ है। देवताओं ने पृथक् २ स्तुति की है, वानरों की बिदाई हुई है, परन्तु हनुमान जी वहीं रह गये हैं। फिर रामराज्य वर्णन और चारों भाइयों के दो २ पुत्र[1] होने का हाल है। फिर सनकादि आये हैं। भरतजी के प्रश्न पर रामचन्द्र ने सन्त और असन्त का लक्षण वर्णन किया है। रामचन्द्र ने भक्तिमहिमा कथन द्वारा प्रजा को उपदेश दिया है। फिर वशिष्ठजी और नारदजी ने पृथक् २ स्तुति की है। काकभुशुण्डी की कथा राम-कथा माहात्म्य कथन, संक्षिप्त रामचरितव्याख्यान, काकभुशुण्डीकथा अन्तर्गत गुरु-माहात्म्य निरूपण और कलिदोष वर्णन किया गया है। फिर ज्ञानदीपक का बड़ा लम्बा चौड़ा रूपक है। जैसे बालकाण्ड में मानस सरोवर का रूपक प्रसिद्ध है वैसे ही इस काण्ड में यह रूपक विख्यात है। इसमें ज्ञान भक्ति की विवेचना कराकर भक्ति की प्रधानता दिखलाई गई है। इसी काण्ड में कवि ने अपना मत प्रतिपादन किया है।

इस काण्ड के अन्त में एक श्लोक में ग्रन्थ रचना का कारण और दूसरे में रामायण पाठ का फल बताया गया है। इसमें काकभुशुण्डी की पूर्वजन्म कथा वर्णन में संस्कृत का एक रुद्राष्टक भी है। कवि ने इस काण्ड में तथा लङ्का आदि काण्डों में अनेक पुरुषों और देवताओं से रामचन्द्र की विशद स्तुतियाँ कराई हैं और उनमें अपना पाण्डित्य और काव्य शक्ति का पूरा परिचय दिया है और प्रत्येक स्तुतिपाठ में विलक्षण आनन्द प्राप्त होता है। रामचन्द्र का नख-शिख सौन्दर्य भी अनेक स्थानों में वर्णन हुआ है। उसमें भी उन्होंने अपनी विलक्षण बुद्धि की बड़ी चमत्कारी दिखलाई है।

---

१ रामचन्द्र के लव और कुश, भरत जी के तक्ष और पुष्कल, लक्ष्मण के अंगद और चित्रकेतु एवम् शत्रुघ्न के सुबाहु और शत्रुघाती।

इस परिच्छेद में हमलोगों ने सीतास्वयम्बर का दृश्य देखा है, रामचन्द्रजी पितृभक्ति का पूर्ण परिचय पाया है। परन्तु शेक्सपियर कृत Merchant of Venice (दुर्लभ बन्धु) [1] में पोर्शिया के स्वयम्बर प्रसंग में बसेनियो के सन्दूक खोलने के समय तथा उस के पूर्व पोर्शिया के चित के भावादि को तथा सीता के स्वयम्बर में रामचन्द्र के धनुष तोड़ने के समय सीता के चित के भावों तथा उन की माता के विचारों को तुलना की तुला पर चढ़ाने से शेक्सपियर का पल्ला बहुत ऊंचा उठ जाता है। पर किंगलियर में राम की पितृभक्ति के सामने कार्डीलिया का पितृप्रेम छाया में जा बैठता है। उन के अन्य नाटकों के विशेष विशेष वर्णनों का भी इस रामायण के तादृश प्रकरणों से तुलना करने पर गोस्वामी जी की लेखनी की प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता।

हमारे अंगरेजी जाननेवाले पाठक दोनों कवियों के ग्रन्थों का स्वयम् पाठकर उस की विवेचना कर सकते हैं और केवल हिन्दी भाषा के जाननेवाले प्रेमी लोग भी "खड्गविलास" प्रेस से प्रकाशित 'दुर्लभ बन्धु' तथा पुरोहित गोपीनाथ कृत शेक्सपियर के नाटकों के अनुवादों को देख कर अपना सिद्धान्त स्थिर कर सकते हैं।

सुप्रसिद्ध साधु प्रोफेसर टी एल वासवानी ने साधारण रीति से गोसाईं जी तथा शेक्सपियर की तुलना करते हुये कहा है कि वे काव्यकला में शेक्सपियर से कम नहीं हैं और उस अलख ब्रह्म के लखने में जो राम कृष्णादि नामों से ख्यात है, आप ने उन से बाजी मार ली है। इस विवेचना में वे उन से बढ़े चढ़े हैं। वे जनता के जीवन के एक अंश हो रहे हैं। कवि की सजीवता के प्रमाण में यह एक उच्चकोटि की पूजा-भेंट कही जायगी। शेक्सपियर दरिद्रवर्ग के कवि हैं, परिश्रमी दुःख-पीड़ित और अभिलाषा पूर्ण उत्साही जनता के नहीं। अपने निजी जीवन व्यवहार में वा काव्य विचार में वह प्रजा पक्षपाती नहीं है। तुलसी दास ने अपने जीवन और भजन में दीन दुखियों और सब शूद्रों की आध्यात्मिक उन्नति में सहानुभूति दिखलाई है।

हम कहेंगे कि उपर्युक्त गुणों के साथ गोस्वामी जी पण्डित-मंडली के भी महामान्य कवि तथा महात्मा हैं। इसी जीवनी के पाठ से पाठकवृन्द इस का पूरा प्रमाण पावेंगे।

उपर्युक्त समालोचक जी कहते हैं कि इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि काव्य-जगत में दान्ते, फिरदोसी प्लेटो मिल्टन शेक्सपियर इत्यादि जगत प्रसिद्ध महाकवियों की तुलना में हमारे प्रिय महाकवि तुलसीदास जी का पद भी इक्कीस ही रहेगा, उन्नीस नहीं।'

यह सविस्तर विषय विवरण देखने से यह भी ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ में कवि ने मिल्टन के समान धर्म्म और अधर्म्म में युद्ध कराकर धर्म्म की विजय कराई है क्योंकि उत्तम कुल में जन्म लेकर एवम् शिक्षा [2] पाकर तप और पुरुषार्थ में आर्यों से किसी प्रकार कम न होकर

---

1 भारत के स्वयम्बर वाले विवाह किसी न किसी शर्त पर निर्भर रहते थे। इस अंगरेजी नाटक में भी वैसे ही एक शर्त का स्वयम्बर का आदर्श खींचा गया है।

2 सुनते हैं कि रावणी शिक्षा तथा तपोबल के प्रभाव से रावण ही ने वेदों का पदच्छेद किया था। कोई २ उन वेदों का भाष्यकार भी कहते हैं

रावण सदा पाप ही में रत रहा एवम् अपने सद्गुणों का सदा दुरुपयोग करता रहा और उसकी प्रजा भी प्रायः उसी का अनुकरण करती रही अतएव जगत के कल्याण के लिये उसे यथोचित दण्ड दिलाना बहुत उपयुक्त हुआ। पुत्रादिकों में भी कोई अधर्म्म का लेश होने से कवि ने दंड द्वारा उस का भी परिशोधन कराया है।

किन्तु जबकि 'पेराडाइज़ लास्ट'[1] में छन्द की प्रौढ़ता, भाषा की गम्भीरता तथा रस की पूर्णता होने पर भी वह ग्रंथ केवल पुस्तकालयों की शोभा बढ़ा रहा है और देश का धन नहीं है वह 'रामचरितमानस' की पुस्तक हिन्दू समाज के घर घर विराज रही है एवम् राजा रंक सभी इसे अपनी सम्पत्ति मान रहे हैं।

जैसे बहुत से समालोचक होमरकृत 'इलियड' वर्णित ट्राय के युद्ध को रूपक मानते हैं।[2] वैसे ही कोई २ रामकथा को भी रूपक मानने को उद्यत होते हैं। कोई कहते हैं कि राम में 'रम' धातु तथा सीता में 'सी' धातु होने से रामायण कृषिकार्य का रूपक है। लासन साहब इसे आर्य्यों के भारतवर्ष के दक्षिणप्रान्त में आक्रमण का रूपक मानते हैं। वीबर साहब को इस में भारतवर्ष के दक्षिणप्रान्त तथा लङ्का में आर्य सभ्यता के प्रचार तथा प्रसार का रूपक दीखता है। परन्तु रामायण से ये बातें सिद्ध नहीं होतीं। उस में हमलोग यह कहीं नहीं पाते कि रामचन्द्र ने दक्षिण का राज्यविजय करके वहाँ कोई आर्य्यनगर बसाया था—वहाँ की सभ्यता में कोई परिवर्तन या वृद्धि की थी। और रामचन्द्र द्वारा लंकाविजय के अनन्तर सुसमय पाकर आर्य्य आदर्शों तथा ऋषिगण उपदेशित सद्धर्म्म तथा सदाचारों का दक्षिण में जो प्रचार हुआ तो हम नहीं समझते कि इसमें रूपक कहां से घुस पड़ा। वस्तुतः देहधारी रामचन्द्र इन सब आर्य्यों का शासक होना स्वीकार करने में क्या आपत्ति है। जो हो हमलोग हिन्दू इसे रूपक की दृष्टि से नहीं देखते। यदि ऐसे विचार वाले होंगे भी तो सहस्रों में एक। हम तो ऐसे रूपक-निरूपण करनेवालों की केवल बुद्धि की प्रशंसा करते हैं।

इसी सम्बन्ध में सुविख्यात बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ने स्वरचित 'कृष्णचरित्र' नामक ग्रंथ में लिखा है कि हम समझते हैं कि चेष्टा करने से भूमंडल में जो कुछ है वह सब इस रूप से उड़ा दिया जा सकता है। उन्हों ने यह भी कहा है कि 'एक बार हँसी में हमलोगों ने विख्यात नवद्वीपाधिप कृष्णचन्द्र को रूपक कहकर उड़ा दिया था एवम् एक बाबू ने इतिहासवर्णित प्लासी के युद्ध के सम्बन्ध में यह रूपक बांधा था कि पशु भाव उद्दीप्त जो अग्नि वह क्लीव गुणयुक्त (क्लाइव) के द्वारा प्रयुक्त होने से सुराज अर्थात् उत्तम राजा पराभूत हुआ।'[3]

---

१ मिल्टन कृत एक ग्रंथ।

२ The siege of troy is but a repetition of the daily siege of the east by the solar powers that every evening are robbed of their brightest treasures in the west. Maxmuller; Cox's Tale of Ancient Greece.

३ कृष्णचरित्र, प्रथम खण्ड, परिच्छेद ८ देखिये।

सब साहब लोग भी इस में सहमत नहीं हैं। आर्थर मेकडानेल साहब रामायण को रूपक नहीं मानते। उन का कथन है कि यदि भरत के ननिहाल से आने ही तक रामायण की कथा समाप्त हो जाती तब तो यह खासा ऐतिहासिक विवरण हो जाता क्योंकि ग्रंथ के उतने अंश में शुद्ध सामग्री तथा स्वाभाविक बातें वर्णित हुई हैं एवम् इक्ष्वाकु दशरथ रामादि सुप्रसिद्ध तथा पराक्रमी राजों के नाम हैं और ये नाम वेदों में भी पाये जाते हैं।[1] प्रोफेसर जेकोबी भी इसमें रूपक का आभास नहीं पाते। गुरुकुल कांगड़ी के प्रोफेसर बालकृष्ण जी एम० ए० कहते हैं कि रामचन्द्र कोई कल्पित पुरुष नहीं हैं किसी समय निश्चय से भारतवर्ष में विराजमान थे और निज सुकर्मों से उन्होंने हमलोगों का कल्याण किया है।

वस्तुतः रामचन्द्र की सृष्टि कवि की कल्पना से नहीं हुई है। आप ऐतिहासिक पुरुष हैं। सूर्यवंशीय इक्ष्वाकुकुल में उत्पन्न क्षत्रिय-कुलगुरु एक समय जन्म धारणकर आपने पृथ्वी का पालन प्रजा का संरक्षण और सुशासन एवम् जगत का हितसाधन किया है। आप आदर्श बालक, आदर्श युवक आदर्श पुत्र पति भ्राता राजा थे। आपके स्वकार्य द्वारा प्रदत्त शिष्ट शिक्षाओं का प्रभाव आज भी हिन्दू समाज में व्याप्त है। आप प्रत्येक हिन्दू के हृदय में चाहे किसी रीति से हो विराजमान हैं। आप गृहस्थ के घर घर के आदर्श देवता हैं। जिस घर में आप के आदर्श की जितनी ही पूजा होती है जितना ही आदर और अनुकरण होता है वहां उतना ही शान्ति-सुख राज्य करता है। भारतवर्ष में आप के करोड़ों स्मारक चिन्ह हैं। आप के गुणगान के सहस्रों ग्रंथ वर्तमान हैं। यही क्यों? मेक्सिको (Mexico) में भी राम-लीला का उत्सव होता है। दक्षिण अमेरिका (South America) के पेरू के [illegible] राजा भी इन्हीं के वंश से अपना सम्बन्ध जोड़ता है और आप की याद में दशहरे की नाईं एक उत्सव मनाता है।

रोमनगर यद्यपि राम्युलस का बसाया कहा जाता है तथापि कितनों का विचार है कि किसी रामभक्त भारतीय आर्य ने उस नगर को बसाया है, जैसा कि पूर्वोक्त बालकृष्ण जी ने भारतवर्ष के संक्षिप्त इतिहास (पृ ८) में लिखा है। कौन जाने राम्युलस ही कोई रामदास हो या यह नाम ही रामदास आदि का अपभ्रंश हो!

यही नहीं, वरन् कई विदेशीय पण्डित महात्मा यह भी कहने को तैयार हैं कि रामायण केवल होमर ग्रन्थ का अनुकरण है। परन्तु इलियड वर्णित कथा में तथा रामकथा में अगर समता है तो कारण यही कि युद्ध दोनों ग्रन्थों में स्त्री अपहरण के कारण ही हुआ है एवम् इलियड में थेटिस ने अकिलीज के लिये अस्त्रशस्त्र कवच भेजा है और रामायण में इन्द्र ने अपना रथ (एवम् वाल्मीकीय के अनुसार शस्त्र भी) रामचन्द्र की सेवा में भिजवाया है।

परन्तु वहां हैलन अपने नवीन प्रेमी के अङ्क में लगी सुखसानन्द से समय बिता रही है और यहां सीताजी पतिवियोग ताप से सन्तप्त अशोकवाटिका में बैठी अहर्निश नेत्रों से सशोक अश्रुमोचन कर रही हैं। बाल काण्ड तथा अयोध्या काण्ड वर्णित घटनाओं का एवम् अन्य

---

१ A History of Sanskrit Literature by Arther A. Macdonell, P. 311

अपरों की उपयोगी बातों और शिक्षाओं का उस में लेशमात्र भी वर्णन नहीं है। उस में केवल युद्ध ही युद्ध है। भूतल ही में नहीं वरन् स्वर्गलोक में भी उस युद्ध का प्रभाव होता रहा है। ट्राय के पक्ष पर स्वराज (Jupitor) तथा ग्रीस के पक्ष पर देवरानी (जूनो Juno) है।

यदि दो ग्रंथों में दो एक बातों के मिलने से एक दूसरे का अनुकरण कहा जाय तो हम समझते हैं कि मौलिकता का नाम ही संसार से विलुप्त हो जाय। आर्थर मैकडानल साहब भी यह स्वीकार करने को उद्यत नहीं हैं कि रामकथा वर्णन में यूनानी लेखों का प्रभाव पड़ा है। साहब का लेख नीचे उद्धृत कर दिया जाता है —

Professor Weber's assumption of Greek influence in the Story of the Ramayan seems to lack foundation. For the tale of abduction of Sita and the expedition to Lanka for her recovery has no real correspondence with that of rape of Helen and of the Trojan war, nor is there any sufficient reason to suppose that the account of Ram bending a powerful bow in order to win Sita was borrowed from the adventures of Ulyses. Stories of similar feats of strength for a like object are to be found in the poetry of other nations besides the Greek and could easily have arisen independently — A History of Sanskrit literature by *Arthar A. Macdonell M. A.* Pp.307-8

अष्टम परिच्छेद

रामायण में त्रुटियों का आभास

सुनते हैं कि इस का युद्धवर्णन बहुत से विचारशील पाठकों को रुचिकर प्रतीत नहीं होता। परन्तु इलियड के प्रेमियों को वह युद्धवर्णन मनोरंजक क्यों लगता है। यह बात हमारी समझ में नहीं आती। उसमें भी तो अनैसर्गिक घटनाओं की भरमार है। उसमें देवियों तथा देवगण रणक्षेत्र में आकर बरछी और बुर्छा की चोटों में समय दल की सहायता करते गये हैं। निहत योद्धाओं को रणभूमि से उठा कर आकाशमार्ग से ले ले जाकर उन के प्राणों की रक्षा तथा शस्त्राघातजनित घावों की चिकित्सा कर उन्हें हृष्ट-पुष्ट करते गये हैं। देवरानी और देवराज भी घड़घड़ाते हुए रथों पर, जिन के घोड़े सारी पृथ्वी को एक बेग कर लाते थे स्वर्ग से उतर दो एक बार रणांगण में पहुंचे हैं या ईडा पर्वत पर बैठकर रणक्रीडा की बहार देखते गये हैं। देवराज ने भ्रान्तिकारक स्वप्न को भेजकर अगमेमनन को युद्ध में प्रवृत्त कराया है और मित्रपक्षियों को भिड़कर शान्तिभंग भी कराया है, एवम् अकिलीज के लिये शस्त्र भी सिलाया है। भूकम्प वज्रप्रहार विद्युत्पात तथा धूम्रउदय द्वारा लोगों को भयभीत करते गये हैं। योद्धागण परस्पररण के सिवाय बड़े २ महारथियों बेड़ २ कर प्रतिद्वन्द्वियों का माथा तोड़ते और भग फोड़ते गये हैं। वस्त्रियरण तथा हवन आदि की भी कमी नहीं हुई है। सर्पिडान के घायल होने पर यूनानी राजा ने विलाप कलाप भी किया है एवम् वैद्य बुलाकर चिकित्सा भी कराई गई है। ये सब बातें तो साधारण मनुष्यों के युद्ध में होती गई हैं और यहां तो गोसाइं जी के योद्धे ही अनैसर्गिक थे। तब युद्ध भी कुछ अनैसर्गिक रीति से बखान करना उचित ही था। और यदि मेघनादादि के आकाश में जाकर वहां से अस्त्रशस्त्र बरसाने की बात अनैसर्गिक जान पड़ती होती हो तो इस की आलोचना के समय वे लोग आधुनिक आकाशयान (Aero-plare) को नेत्रों के सामने रख कर देखें कि आज कल के योरप गत योद्धागण उस से क्या २ पदार्थ और बमे, अपने शत्रुओं पर बरसाते हैं। सम्भवतः उस समय भी कोई ऐसा ही यान काम में लाया जाता होगा।

कोई २ ऐसा भी कहते हैं कि रावण का आक्रमण कम कर देने से युद्धवर्णन फीका हो गया है। परन्तु कैसे कम हुआ है यह तो वे ही लोग जानें या विज्ञ पाठक स्वयम् विचार करें। हम तो यही कहेंगे कि ग्रंथ का विषय गोसाईं जी का मनोकल्पित नहीं है। प्राचीन ग्रंथ वर्णित कथा के आधार पर ही इन्होंने इस की रचना की है :—

"मुनिहिं प्रथम हरिकीरति गाई। तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई॥"

केवल रचना स्वतंत्र ढंग से हुई है। अतएव कथानक में अभेद हो वर्णनशैली में भिन्नता हो परन्तु मुख्य विषय में कैसे भेद हो सकता था। और वाल्मीकीय से जो हम

युद्धवर्णन में भिन्नता पाई जाती है तो इस का कारण ऊपर ही कहा जा चुका है कि इन्हों ने उत्तरोत्तर युद्धोत्कर्षवृद्धि का लक्ष्य रक्खा है और यह क्रम उस का अनुवाद भी नहीं है।

गोसाईं जी किसी अन्य स्थान में चाहे प्रथम नायकों का गुणोत्कर्ष दिखलाने के लिये उपनायकों को नीचा दिखलाते हों परन्तु इस युद्धप्रकरण में यह बात कदापि नहीं कही जा सकती।

पाठकवृन्द होमरकृत परम प्रशंसनीय इलियड की ओर तनिक दृष्टि दीजिये। उसमें भी निरन्तर युद्ध की उत्कर्षता होती गई है। उस का नायक यूनानदेशीय वीरवर अकिलीज है। उस के विरोधी दल का प्रधान योद्धा ट्रायनगर-निवासी प्रायम का पुत्र महापराक्रमी हेक्टर है। यह युद्ध भी एक परम सुन्दरी हेलना के हरलाने के ही कारण उठ खड़ा हुआ है। उस काव्य में जब अकिलीज देवप्रदत्त शस्त्रों से सज्जित हो रणक्षेत्र में आहूत हुआ है, उस समय अपने ग्रंथ के नायक का उत्कर्ष बढ़ाने के लिये हेक्टर ऐसे वीर को जो कभी युद्धक्षेत्र में साहसहीन नहीं देखा जाता था जिसे रणक्रीड़ा ही आनन्दप्रद प्रतीत होती थी और जिस की यही अभिलाषा थी कि प्राणविसर्जन हो तो वैरहित साधन करते रणभूमि में ही हो होमर ने एक महाकायर के समान रण से विमुख करा कर भगा दिया है। इस कवि ने उस की ओर प्रकृति में कैसा धब्बा लगाया है। प्राकार के बाहर खड़ा हेक्टर विचार कर रहा है कि इस युद्ध में पीठ तो नहीं दिखला सकते परन्तु अब वैरहित साधन किस प्रकार से होगा? युद्ध करने से या संधि करने से? इतने में अकिलीज निकट आ पहुंचता है। उसे देखते ही हेक्टर को होमर कैसे भगाते हैं और अकिलीज को उस के पीछे कैसे दौड़ाते हैं, आप लोग स्वयम् पढ़ लीजिये।

'Thus pondering, like a god the Greek drew nigh,
His dreadful plumage nodded from on high
The Pelian Javelin in his better hand
Shot trembling rays that glitter'd o'er the land;
And on his breast the heavy splendours shone,
Like Jove's own lightning or the rising sun.
As Hector sees, unusual terrors rise,
Struck by some god, he fears recedes and flies;
He leaves the gates, he leaves the walls behind;
Achilles follows like a winged wind.
Thus at the panting dove a falcon flies
(The swiftest racer of the liquid skies)

* * *

With open beak and shrilling cries he springs,
And aims his claws and sports upon his wings

No less fore-sight the rapid Chase they held
One urg'd by fury one by fear impell'd
Now circling round the walls their course maintain
Where the high watch tower overlooks the plain,
+　　　×　　　×　　　×　　　×
By these they pass'd, one chasing one in flight
(The mighty fled, pursued by stronger might)
Swift was the course no vulgar prize they play,
No vulgar victim must reward the day
×　　　×　　　×　　　×
The prize contended was great Hector's life.
Thus three times round the Trojan wall they fly
The gazing gods lean forward form the sky

कहिये ऐसे प्रसिद्ध महाकाव्य में अपने नायक की उत्कृष्टता प्रदर्शन के लिये हेक्टर के सदृश वीर की कैसी दुर्गति कराई गई है, युद्ध के समय में उससे दो ही बार बार भगाया गया है और वह भी सर्वथा निष्फल। रणस्थल में मृत्यु होने पर जो उस की दुर्दशा कराई गई है उस की बात तो न्यारी है।

और यहाँ गोसाईं जी ने रावण के गले में विजय की माला न पहनाई है सही परन्तु उसे सर्वत्र वीररसपूर्ण रण-मद-मत्त, युद्धरत और स्वप्रतिष्ठ देखलाया है; उसे संग्राम क्षेत्र से कभी पराङ्मुख नहीं कराया है; उसका बल विक्रम तथा युद्ध-कौशल प्रगट कराने में कहीं त्रुटि नहीं की है। उसके हाथ से बड़े-बड़े योद्धाओं को धराशायी करा एक अपने प्रमुख-नायक को भी मूर्छित कराया है; मरते समय भी उससे कटक का संहार कराया है और उसके मुख से यही कहलवाया है कहाँ राम रन हतौं प्रचारी। उसी को क्षीण करके उस के पुत्र के हाथ से भी अनन्त-बलशाली श्रीलक्ष्मण जी को जिन्होंने धनुषयज्ञ में अपना पराक्रम यों वर्णन किया था कि—

"जौं तुम्हार अनुसासन पावउँ। कंदुक इव ब्रह्मांड उठावउँ॥
काँच घट जिमि डारउँ फोरी। सकउँ मेरु मूलक इव तोरी॥"

मूर्छित कराकर श्री रामचन्द्र से भारी विलाप कलाप भी कराया है। तब रावण का उत्कर्ष क्रम क्रम की साम्यता हम पर कैसे हो सकती है और युद्ध शिथिलता का दोष तो हम पर आरोपण हो ही नहीं सकता।

ग्राउस साहब ने लिखा है कि जैसे—'फेरी की कुइन्सी' नामक ग्रन्थ में स्पेन्सर के विषय में कहा जाता है, तुलसीदास ने भी तुकान्त मिलाने के लिये शब्दों में काट-छाँट और उनका रूपान्तर करके तथा उनके यथार्थ उच्चारण में कभी संकोच नहीं किया है, कभी किसी

अभागे शब्द का माथा ही मरोड़ दिया है, कभी किसी की पूंछ ही ऐंठ दी है और कभी किसी को अन्य स्थान से तोड़ मोड़ डाला है।

सामवेलर तथा मिस्टरेस गैम्प की गवारी बोलचाल की भाषा 'डिकन्स' कृत ग्रंथ के अंगरेज़ी पाठकों को जितना चकित करती है उस से नहीं अधिक हिन्दू-पाठक-वृन्द भाषा के ऐसे विलक्षण ज्ञाता के इन मनमानी काम से चकित होते हैं।[1]

इन के शब्दों के तोड़ मरोड़ और काँट छाँट से हिन्दू पाठकों को कहाँ तक आश्चर्य होता है इस की हमें खबर नहीं। और हमें ऐसे अभागे शब्द भी कम मिलते हैं जिन की ऐसी दुर्दशा हुई हो। हाँ, तुकान्त मिलाने के लिये लघु को गुरु एवम् गुरु को लघु अवश्य करते गये हैं। परन्तु जहाँ इन्हों ने ऐसा किया है वहाँ सर्वसाधारण को उस के अर्थ समझने में कठिनाई नहीं होती। भारतीय अन्य कवि भी आवश्यकतानुकूल ऐसा काट-छाँट किया करते हैं जिस में लोग 'कवि-स्वातन्त्र्य' कहते हैं। जब तक ऐसा करने से कविता का अर्थ समझने में बाधा तथा कठिनता न हो, अथवा उस का सौंदर्य नष्ट न हो तब तक इस स्वतन्त्रता से लाभ उठाने में कोई हानि नहीं है। और साहब ही के कथनानुसार इस रीति के तोड़ मरोड़ की प्रथा अंगरेज़ी लेखकों में भी प्रचलित है।

साहब बहादुर यह भी लिखते हैं कि "कुछ पुराने प्रचलित शब्दों का बारम्बार प्रयोग करना यथा चरणकमल पदपंकज आदि आधुनिक योरपदेशीय लोगों की रुचि के विरुद्ध है, परन्तु 'होमर' के काव्य में तथा क्लोपस्टाक कृत 'मसीहा' में भी इसी प्रकार के विशेषणों का बारम्बार प्रयोग पाया जाता है।"[2]

---

1 As has been said of Spenser's in 'Faries D'Onincy' Tulsidass never scruples on his own authority to cut down or alter a word or to adopt a mere corrupt pronunciation to suit a place in his metre or because he wants a rhyme. Sometimes he twists off the head or the tail of the unfortunate vocable altogether. Such vageries being unconciously requoted by the genius of the language are no more puzzling to a Hindu than the colloquialism of Sam Weller or Mrs Gamp are in Dicken's work to an English reader,—Growse Introduction to the Translation of Ramayan P XVIII published by Ram Narayan Lal

2 the constans repetition of a few stereotyped phrases—Such as lotus-feet, streaming-eyes, quivering frame—are irritating to modern European taste, though they find a parallel in the Stock epithets of the Homeric poem and still more striking one in Klopstock's Messiah, where similar expressions are for ever recurring in wearisome reiteration. F. S. Growse's Introduction to the Translation of Ramayan P. XIX published by Ram Narayan Lal. Ibid P. XX.

साहब बहादुर को 'कमल कुमोदिनी कान्ति, अवास चन्द्र चकोर चातक, हंस आदि की उपमाएँ भी फीकी प्रतीत हुई हैं और वे कहते हैं कि इन उपमाओं को सुनकर देशीय महाशय आनन्द से उछल पड़ते हैं, परन्तु विदेशियों के कर्णकुहर में ऐसी उपमायें नीरस और फीकी लगती हैं' ऐसा होना सम्भव है। परन्तु सब देश के कवि अपनी कवितारचना में स्वदेशियों की रुचि एवम् स्वदेश रीति के अनुसार ही उपमादि का प्रयोग करते हैं और उसी में अपनी योग्यता और निपुणता प्रदर्शित करते हैं। इस से उनकी कविता में किसी प्रकार का दूषण नहीं आता। भारतीयों को भी golden hair flaxen hair swan neck azure eyes इत्यादि की उपमाएँ सोहावनी और मनभावनी नहीं लगतीं तो इससे क्या वर्ड्सवर्थ मिल्टन आदि की रचना अप्रशंसनीय हो सकती है। अतएव पूर्वोक्त उपमाओं के प्रयोग से चाहे वे विदेशियों को रुचिकर हों या नहीं—इन की प्रतिभा में धब्बा नहीं लग सकता।

और रेवरेन्ड एड्विनग्रीव्स साहब लिखते हैं कि "कभी गोसाईं उपमाओं के वन में घूमते २ गुम हो जाते हैं और बहुत दूर तक निकल जाते हैं, पर क्या चन्द्रमा में कलंक नहीं है? हां! निष्कलंक तो केवल ईश्वर ही है परन्तु यहां चन्द्रमा के निरीक्षण में कुछ अनुरोध भी है। क्योंकि निशिनाथ को कभी उज्ज्वल बादलों की ओट में धीमे-धीमे जाते देखकर और पुनः गगनांगन में पूर्ण प्रभा प्रकाश करते हुवे शोभायमान पाकर जैसे चित्त आह्लादित होता है, वैसे ही गोसाईं जी को अलौकिक विशद उपमाओं के वन ही में कहीं घूमते और फिर बाहर आते देखकर मन मुग्ध और आनन्दित हो जाता है। परन्तु न सबको चन्द्रमा की यह छटा ही अवलोकन करने का सौभाग्य होता है और न सब कोई गोसाईं जी के उपमाविपिन में भ्रमण की बहार ही का यथार्थ आनन्द अनुभव कर सकता है।

और यदि हमारे रेवरेन्ड साहब को गोसाईं जी का उपमावन में घूमना ही सोहावन नहीं लगता तो 'स्वयं ही गुमन करना' कैसे रोचक हो सकता है? परन्तु जिस सुयोग्य रेवरेन्ड साहब को गोसाईं जी का स्वभाव एवम् रचनादि की अधिकांश बातें उत्तम और सुन्दर प्रतीत हुई हैं यदि उन्हें 'उपमा के वन में घूमना' और 'गुमन करना' रोचक नहीं हुआ तो इससे उन में दूषण आरोपण करना उचित नहीं और यदि कोई दूषण लगावे भी तो उन्हीं के कथनानुसार 'क्या चन्द्रमा में कलंक नहीं है'। हम तो गोसाईं जी के नाते उन की सदा प्रशंसा ही करेंगे।

बहुतेरे लोगों का यह भी कथन है कि इस ग्रन्थ में अन्यान्य कथाओं का बीच २ में आना और उनका एक लम्बा चौड़ा विवरण पाश्चात्य देशियों को अरोचक प्रतीत होता है। यदि इस का लक्ष्य केवल उपाख्यानों पर है तब तो अरोचक होना ठीक ही है। परन्तु ऐसे उपाख्यानों का रामायण में घुसाने का दोष गोसाईं जी के माथे नहीं मढ़ा जा सकता। हां, मदन दहन तथा प्रतापभानु आदि का जो कई एक उपाख्यान गोस्वामी जी ने स्वयम् रामायण में लिखा है विदेशियों को रोचक हो या न हो परन्तु हमारे देशीय बन्धुवर्ग उनके पाठ में कम आनन्द नहीं पाते और वे सचमुच उत्कृष्ट तथा आनन्दप्रद भी हैं। इसके सिवाय सब महाकाव्यों में न्यूनाधिक इस प्रकार की उपकथाएँ पाई जाती हैं। इसलिये भी

इससे खाली नहीं है। उपाख्यानों की बात कौन कहे, नद प्रथम कथावर्णन, परस्पर वार्तालाप
छन्दों के समुदाय चरण या चरणांश तथा वाक्यों की असहनीय पुनरुक्तियों से परिपूर्ण है।

रामायण में भी कहीं २ भावों की पुनरुक्ति पाई जाती है और किसी २ छन्द
का अंश या चरणांश दोहराया गया है। यथा —

(१) सफल पूंग फल कदलि रसाला ॥ ३४४ ॥ बा[1]
सफल रसाल पूंग फल केरा ॥ ६ ॥ अ०

(२) सो सब जनु पहिलेहि करि रहऊ ॥ १८३ ॥ बा
सो तहिकाल प्रथम जनु कीन्हा ॥ ७ ॥ अ०

(३) जेहि पितु देइ सो पावइ टीका ॥ १७५ ॥
जेहि पितु दइ राज सो लहई ॥ १७ ॥ } अ०

(४) भूप न बासर नींद न जामिनि ॥ ८१ ॥
भूप न बासर नींद न राती ॥ २१२ ॥ } अ

(५) मांझहि माइ मीन जनु मारी ॥ ५४ ॥
मांझा मनहुं मीन कहँ ब्यापा ॥ १५३ ॥ } अ०

(६) परेउ धरनितल ब्याकुल भारी ॥ १४२ ॥
परे भूमितल ब्याकुल भारी ॥ १६० ॥ } अ

(७) निज हित अनहित पसु पहिचाना ॥ १६ ॥
हित अनहित पसु पच्छिउ जाना ॥ २६४ ॥ } अ०

परन्तु इतने बड़े ग्रन्थ में इतनी थोड़ी पुनरुक्तियां नहीं के बराबर समझनी चाहिये।

और रामायण में जो रामकथा कई एक स्थानों में दुहरा वर्णित हुई है। उसका
कारण तो वहीं स्पष्ट विदित होता गया है।

कई चौपाइयों में १५ मात्रा होने का भी लोग दूषण दिखलाते हैं यथा :—

(१) मानी मर्मी प्रभु स० धनी। बैर बंदि कपि मानसगुनी ॥ ७८ ॥ बा

(२) नाथ भगति अति सुखदायिनी। देहु कृपाकरि अनपायनी ॥ ३४ ॥ सु

(३) अब कृपाल निज भगति पावनी। देहु सदा सिव मन भावनी ॥ ४६ ॥ सु

(४) सुन्दर सुदधि धनगोपालना ॥ अगमय प्रभुता पर्मपददना ॥ १५ ॥ लं

(५) गिर पार सैन कया चित गही। तामें धार धीम मैं पड़ी ॥ ८९ ॥ लं

(६) पड़ी बीच निसाचर अनी। कसमसात आइ अति घनी ॥ ८७ ॥ लं

---

१ इन अंकों का पता पाने के प्रकरण के अंकों का दोहों का कहु सम्मिलित चौ-
पाइयों के ऊपर की चौपाइयों का 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित रामायण में
देखिये।

चौपाई का प्रतिचरण १६ मात्रा का होता है सही परन्तु कहीं २ कभी १५ मात्रा ही पर समाप्त कर देते हैं। केशवदास कृत रामचन्द्रिका[1] में प्रायः यही बात देखी जाती है। और पटियालानिवासी श्रीबाबा रामदासकृत 'छन्द प्रस्तारक प्रकाश भाषा'[2] में १५ कला के छन्दों के बयान में लिखा है :—

"तिथिकल प्रतिसम मतरस होय। यहि विधि कह चौपाई कोय ॥"

और एक अन्य कवि ने कहा है—

"पदरज के सोलह कल राखु। तासु नाम चौपाई भाखु ॥"

तब गोसाईं जी कहीं १५ ही मात्राएँ रखें तो क्या चिन्ता ?

रामायण तथा अन्य ग्रंथों में गोसाईं जी व्यक्तिवाचक नामों का भी कहीं २ अनुवाद करते गये हैं जैसे हाटक लोचन (हिरण्याक्ष) इत्यादि। परन्तु यह बात अन्य कवियों की रचना में भी पाई जाती है। और डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र ने इण्डो एरियन नामक ग्रंथ में बंगाल के पालवंशीय राजाओं के विषय में जो निबन्ध लिखा है, उस में उस वंश के आदि संस्थापक 'गोपाल' को 'लोकपाल' का नामान्तर बताते हुये उन्होंने कहा है कि 'मध्य युग में योरप में लोग अंगरेजी नामों का लैटिन भाषा में अनुवाद कर दिया करते थे और आज भी कविलोग पद मिलाने के लिए व्यक्ति-वाचक नामों को प्रायः बदल दिया करते हैं।[3]'

रामायण में कहीं २ दोहों में भी मात्रा की न्यूनता दिखाई जाती है —

यथा —प्रेम मगन कौसल्या, निसदिन जात न जान।
सुत सनेह बस माता, बाल चरित कर गान ॥२००॥
रोम रोम प्रति लागे, कोटि कोटि ब्रह्मण्ड। ॥२०१॥
देखु भूप मन हरषित, समझु मोह अज्ञान ॥
धर्म सुजस प्रभु तुम कौं, इन्ह कहँ अति कल्यान ॥२०७॥
आ०—करि उपाय रिपु मारे, छन महँ कृपानिधान ॥२२॥
सभा माँझ परि व्याकुल, बहु प्रकार कह रोइ।

---

१ चौपाई संख्या ११९ १०१ १ १ १ ७ १०६ १३१ १५०।

२ यह ग्रंथ पटियालानरेश की आज्ञा से मुद्रित हुआ है।

३ It might apprear repulsive to an Englishman that Mr Black should change into Mr Melanos to suit the convenience of a poet, but in the Middle Ages it was not uncommon in Europe to translate English names into Latin even in prose Epitaphs and in the present day poets not unfrequently change the quantity or proper names to suit their rhyme. In Sanskrit the practice of using synonyms either for the sake of metre or that of rhetoric was at one time not unknown.—*Indo—Aryan* Vol.II pp.227 28

तोहि जियत दसकंधर, मोरि कि असि गति होइ ॥२३॥
क्रोधवन्त तब रावन, लीन्हेसि रथ बैठाइ ।
चला गगनपथ आतुर, भय रथ हाँकि न जाइ ॥२०॥
कि॰—जिमि पापंड बादते, गुप्त होहिं सद्ग्रंथ ॥१५॥
बचन सुनत सब बानर, जहँ तहँ चले तुरंत ।
तब सुग्रीव बोलाये, अंगद नल हनुमन्त ॥२३॥
पवन सहाय करहि मैं, देहु पोचहु जाय ॥२८॥
सु॰—रामकाज कीन्हे बिनु, मोहि कहाँ बिस्राम ॥१॥
अति लघुरूप धरउँ निसि, नगर करउँ पइसार ॥३॥

प्रथम तो ऐसी त्रुटियाँ अयोध्या काण्ड में नहीं देखी जातीं। अन्य काण्डों में होने से लेखकों की भूल का सन्देह हो सकता है, चाहे वह किसी काल में हुई हो। दूसरे ऐसी २ तुच्छ बातें ध्यान देने योग्य नहीं। गोसाईं जी लेखनी का चाक घुमा कर अपनी धुन में लगे हुये छन्दों और पदों की नाना प्रकार की वस्तुएँ बनाते गये हैं यदि उन में किसी का आकारादि कुछ टेढ़ा मेढ़ा हो गया तो इस के लिये आपत्ति क्या? आकारादि में किञ्चित अन्तर ही सही, कविता का चटक रंग चढ़ाकर आपने उन्हें चमकदार तो बना दिया है न! उस के चमक दमक के सामने किसी की दृष्टि ही भला उधर कब जा सकती है और इन पर दृष्टि करना ही अल्पज्ञता है।

और किसी सुन्दर सोहावनी पुष्पवाटिका में किसी पेड़ पौधे की कोई शाखा या पत्ती, समयवश या किसी की असावधानी से टेढ़ी, कुबड़ी या क्यों कुछ भद्दी होने पर भी यदि सुन्दर फूलों से लहलहा रही हो और उस की सुगन्ध चारों ओर फैल रही हो तो क्या कोई आमोदप्रद दृश्य से आह्लादित न हो कर उसकी शाखा और पत्ती को निहारने लगेगा? इसी से कहते हैं कि इस मात्रा त्रुटि आदि की बात छोड़ गोसाईं जी के रचनासौन्दर्य को निहार कर निहाल होना होगा। देखिये, आगे परिच्छेदों में ऐसा ही दृश्य दिखलाया जाता है।

और आप स्वयम् इन के इस 'मानसरोवर' का तथा इन के अद्भुत काव्योद्यान का सुन्दर वायु सेवन कर सुख उठाइये। तब आप कहेंगे कि इसके निर्माणकर्ता कैसे प्रतिभाशाली महापुरुष थे। नहीं तो ग्रेवरिज साहब के समान कदाचित आप भी कहने लगेंगे कि यद्यपि ग्राउस साहब अथवा अन्य व्यक्तियों ने इस ग्रन्थ की बड़ी प्रशंसा की है, परन्तु मुझे इस में कुछ विशेष गुण नहीं दीखता। उन्हों ने रचना के विवरण में ऐसा ही लिखा है। हम कहते हैं कि दीजिये? जब वे स्वयम् पढ़ सकें और समझ सकें तब तो।

नवम परिच्छेद

रामायण में नवों रस

"बीर भयानक हासयुत, अद्भुत करुना चारु।
सान्त बिभत्स्यरु रौद्र ये, रसपति रस शृंगार॥"—भाषाभूषणे।

कविता इन्हीं नव रसों में विभक्त है। यदि यह पूछा जाय कि रामायण की गणना किस रस के काव्य में होगी तो यही कहना उचित और यथार्थ होगा कि यह ग्रन्थ नवो रस-पूर्ण है। कविता प्रेमी इस के पाठ में सब रसों का स्वाद पाते हैं। स्वाद वस्तुतः निज अनुभव की वस्तु है। कहने का नहीं। अतएव पाठकों को यथार्थ स्वाद अनुभव के लिये स्वयम् पुस्तक पाठ करना श्रेयस्कर होगा। तथापि इस परिच्छेद में उदाहरणस्वरूप कुछ रस की छवि दिखलाने की चेष्टा की जायगी।

शृंगार—ग्रियर्सन साहब का यह कथन सच है कि गोसाईं जी ने अपनी कविता कामिनी को 'अश्लील शृंगार' (अर्थात् नायिका भेदादि वर्णन) से भूषित नहीं किया है। परन्तु इन की रचनाओं में शृंगार रस प्रचुर पाया जाता है, क्योंकि केवल नायिकाभेदादि वर्णन ही शृंगार नहीं कहलाता। नायक तथा नायिका का सौन्दर्य गुण परस्पर प्रीति-रीति उन का हाव-भाव संयोग-वियोग ये सभी शृंगार रस में सम्मिलित हैं। और ये सब बातें इन की रचनाओं में इस रीति से दिखलाई गई हैं कि शृंगार रस वर्णन करनेवाले बड़े २ उत्कृष्ट कवि इस विषय के अंकन में भी इन की समता नहीं कर सकते। शान्त करुण तथा वीररस की प्रधानता होते हुये भी रामायण में इन्होंने शृंगार की सुन्दर छटा दिखलाई है। रामचन्द्र तथा जानकी जी का सौन्दर्य इन्होंने पचासों जगह निराला एक से एक न्यारा और मनोहर ढंग से वर्णन किया है।

पाठकवृन्द तनिक हमारे साथ जनकपुर की फुलवारी में चलिये। देखिये अनुपम शोभाधाम श्री राम:—

"जिन निज रूप मोहनी डारी। कीन्हे स्ववस नगर-नर-नारी॥"

अपने परम स्नेहधाम भ्राता के संग गुरु के निमित्त फूल लाने गये हैं और उधर लावण्यमयी श्री जानकी जी जिनके रूप वर्णन में गोसाईं जी ने कहा है कि:—

'जो छवि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छप सोई॥
सोभा रजु मन्दर शृंगारू। मथै पानिपंकज निज मारू॥

इहि बिधि उपजै लच्छि जब, सुन्दरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कवि, कहहिं सीय समतूल॥"

गिरिजा पूजने जाती हैं। इतने में —

"कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि॥
मानहु मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्वबिजय कहँ कीन्ही॥
अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सियमुख ससि भये नयन चकोरा॥
भये बिलोचन चारु अचंचल। मनहु सकुचि निमि तजे दृगंचल॥
देखि सीयसोभा सुख पावा। हृदय सराहत बचन न आवा॥
तात जनकतनया यह सोई। धनुषयज्ञ जेहि कारन होई॥
पूजन गौरी सखी लै आई। करत प्रकास फिरइ फुलवाई॥
जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मन छोभा॥"

अब आप ही सोच कहिये कि यह शृंगार रस में परिगणित नहीं होगा तो किस रस में इसकी गणना होगी। हां गोसाईं जी ने अपनी काव्य चातुरी से इसे पवित्र शृंगार बनाया है इस में सन्देह नहीं क्योंकि आप आगे कहते हैं :—

"रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मन कुपंथ पगु धरै न काऊ॥
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहि सपनेहु परनारि न हेरी॥"

अतएव यह सहज प्रेम है और स्वच्छ शृंगार है। दोनों ओर सहज ही प्रेम है। इसी से उधर जानकी जी :—

"लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्ह पलक कपाट सयानी॥"

और तदनन्तर भवानी के मन्दिर में निज मनोरथ सफल होने के निमित्त प्रार्थना करने लगी हैं और इधर श्रीरामचन्द्र

"परम-प्रेममय मृदु मसि कीन्ही। चारु चित्त भीति लिखि लीन्ही॥"

और सरल स्वभाव के कारण भी विश्वामित्र के पास आकर सब कथा सुनाने लगे हैं। सहज प्रेम कभी व्यभिचारी नहीं होता। दोनों दिशि का लावण्य ही ऐसा था कि दर्शनमात्र से ही प्रेम उत्पन्न हो क्योंकि सौन्दर्य प्रेमजनक है। कवि ने फुलवारी वर्णन में ऐसा सुन्दर भाव दिखलाया है कि उसके पढ़ने और समझने से महानन्द मिलता है।[1]

---

1 राय बहादुर लमगोड़ा एम० ए० ने माधुरी के कई संख्याओं में इस प्रकरण की विशद व्याख्या कर के गोसाईं जी का काव्य कला-कौशल बड़ी उत्तम रीति से प्रदर्शित और प्रतिपादित किया है।

"रामचरित मानस" में इस प्रकार का शृंगार वर्णन बहुतायत से पाया जाता है। इन के अन्य ग्रंथों में भी शृंगार की छटा झलक रही है। शान्त रस के प्रधान ग्रंथ 'विनय पत्रिका' में भी इन्होंने एक स्थान में इस की छवि दिखलाई है।[1]

(२) करुणा—से तो सारा अयोध्या कांड ही प्लावित हो रहा है। कौन ऐसा सहृदय होगा जिसका नेत्र इस के पाठ से अश्रुपूर्ण न होता हो।

जब कौशल्या जी ने रामचन्द्र के मुख से उनके वनवास पाने की बात सुनी है, उस समय की उन की अवस्था विचारिये —

"सहमि सूखि सुनि सीतल बानी। जिमि जवास परे पावस पानी॥
कहि न जाइ कछु हृदय बिषादू। मनहु मृगी सुनि केहरि-नादू॥
नयन सजल तन थरथर कांपी। माँजहि खाइ मीन जनु मापी॥"

अहा क्या सुन्दर भाव है!

रामचन्द्र प्रिय पत्नी तथा परमस्नेही बन्धु के संग श्रीरामचन्द्र वन जा रहे हैं। उस समय घर वालों की बात कौन चलावे नगरनिवासियों की दशा देखिये :—

"चलत राम लखि अवध अनाथा। बिकल लोग सब लागे साथा॥"

क्योंकि उनके वियोग में :—

लागति अवध भयावनि भारी। मानहु कालराति अँधियारी॥
घोर जन्तुसम पुरनरनारी। डरपहिं एकहि एक निहारी॥
घर मसान परिजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहु जमदूता॥
बागन बिटप बेलि कुम्हिलाहीं। सरित सरोवर देखि न जाहीं॥

श्री रामचन्द्र को चित्रकूट पहुँचा कर निषाद के शृंगवेरपुर लौट आने पर सुमंत —

"राम राम सिय लखन पुकारी। परेउ धरनि तल व्याकुल भारी॥"

और इधर

"चितइ दखिन दिसि हय हिहिनाहीं। जनु बिनु पंख बिहंग अकुलाहीं॥"

इतना ही नहीं वरन्

"नहिं तृन चरहिं न पियहिं जल, मोचहिं लोचन बारि।"

घोड़ों ही की दशा देख कर रामचन्द्र के परिवार के दुःख की थाह लगा लीजिये। अधिक कहने की आवश्यकता नहीं।

१ विनयपत्रिका की समालोचना देखिये।

फिर श्रीसीताहरण प्रकरण भी करुणा रस पूर्ण है।

(३) वीर—लङ्काकाण्ड इस रस का भण्डार है। जितनी इच्छा हो वीररस की कविता वहां देख लीजिये।

(४) भयानक—अब देखिये देव, दनुज गन्धर्व मनुज, सबों का मानमर्दक शिवधनुभङ्ग होता है। उसके टूटने से कैसी भयावनी घटना होती है —

"भरे भुवन घोर कठोर रव रवि बाजि तजि मारग चले।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले॥
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें सकल बिकल बिचारहीं।
कोदंड खंडेउ राम, तुलसी जयति बचन उचारहीं॥"

(५) विभत्स—अब विभत्स का रस देखियेगा? राम रावण के युद्ध में रुधिर की नदी बह चली है —

और—"कटकटहिं जंबुक भूत प्रेत पिसाच खप्पर संचहीं।
बेताल बीर कपाल ताल बजाइ जोगिनि नंचहीं॥
रुंडावरी गहि बहुत गीध पिसाच कर गहि भावहीं।
संग्राम पुरबासिन मनहुँ बहु भाल गुरही बढ़ावहीं॥"

यह मजा और देखिये:—
उसी नदी में—

"अस्थिसंधु गज यदपर तुरग खर बिबिध बाहन को गने।
सर सक्ति तोमर सर्प चाप तरंग चर्म कमठ घने॥"
"मज्जहिं भूत पिसाच बेताला। प्रमथ महा झोटिंग कराला॥
काक कंक लै भुजा उड़ाहीं। एक ते छीन एक लै खाहीं॥
खैंचहिं गीध आँत तट भए। जनु बंसी खेलहिं चित दए॥
बहु भट बहहिं चढ़े खग जाहीं। जनु नावरि खेलहिं सरि माहीं॥"

(६) रौद्र—"तेहि अवसर सुनि शिवधनु भंगा। आये भृगुकुल कमल पतंगा॥
देखि महीप सकल सकुचाने। बाज झपट जनु लवा लुकाने॥
गौर सरीर भूति भल भ्राजा। भाल बिसाल त्रिपुण्ड बिराजा॥
सीस जटा ससि बदन सोहावा। रिसि बस कछुक अरुण ह्वै आवा॥

भृकुटी कुटिल नयन रिस राते। सहजहु चितवत मनहुँ रिसाते ॥
कटि मुनि बसन तून दुइ बांधे। धनु सर कर कुठार कल कांधे ॥"

(७) अद्भुत—"सती दीख कौतुक मग जाता। आगे राम सहित सिय भ्राता ॥
फिर चितवा पाछे प्रभु देखा। सहित बंधु सिय सुंदर वेषा ॥
जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना। सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रवीना ॥
देखे शिव विधि विष्णु अनेका। अमित प्रभाउ एक तें एका ॥
बंदत चरण करत प्रभु सेवा। विविध वेष देखे सब देवा ॥" इत्यादि ॥

पुन —"करि पूजा नैवेद्य चढ़ावा। आपु गई जहँ पाक बनावा ॥
बहुरि मातु तहवाँ चलि आई। भोजन करत देखि,सुत जाई ॥
गइ जननी सुत पहँ भयभीता। देखा बाल तहाँ पुनि सूता ॥
बहुरि आइ देखा सुत सोई। हृदय कंप मन धीर न होई ॥
इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा। मतिभ्रम मोर कि आन विसेषा ॥
देखि राम जननी अकुलानी। प्रभु हँसि दीन्ह मधुर मुसकानी ॥
देखरावा मातहिं निज, अद्भुत रूप अखण्ड।
रोम रोम प्रति लागे, कोटि कोटि ब्रह्माण्ड ॥"

(८) हास्य—अब श्री शिव जी की बारात देखकर हास्यरस का आनन्द लीजिये। गोसाईं जी कहते हैं कि अपना समाज देखकर स्वयम् शिव जी को हँसी आ गई थी—

"कोउ मुखहीन विपुल मुख काहू। बिनु पद कर कोउ बहुपद बाहू ॥
विपुल नयन कोउ नयन विहीना। रिष्ट पुष्ट कोउ अति तन छीना।
तन छीन कोउ अति पीन, पावन कोउ अपावन गति धरे ॥
भूषण कराल कपाल कर सब, सद्य सोनित तन भरे।
खर स्वान सुअर सृगाल मुख, गन-वेष अगनित को गनै।
बहु जिनिस प्रेत पिसाच जोगी, जमात बरनत नहिं बनै।
नाचहिं गावहिं गीत, परम तरंगी भूत सब।
देखत अति विपरीत, बोलहिं बचन विचित्र विधि ॥"

बारात ऐसी तो दुल्हा कैसा ? चलकर उसे भी देख लीजिये।

" । जटा मुकुट अहि मौर सँवारा ॥
कुंडल कंकन पहिरे ब्याला। तन विभूति पट केहरिछाला ॥
ससि ललाट सुंदर सिर गंगा। नयन तीन उपवीत भुजंगा ॥
गरल कंठ उर नर सिर-माला। असिव वेष सिव धाम कृपाला ॥

"कर त्रिसूल अरु डमरु बिराजा । चले बसह चढ़ि बाजहिं बाजा ॥"

और "तन छार ब्याल कपाल भूषन नगन जटिल भयंकरा ॥"

तभी तो बेचारे बालकगण प्राण लेकर भाग के माताओं की गोदों में लुके थे। इसी प्रकार के वर्णन से हमारे किसी२ पाठक को हँसी नहीं आवे परन्तु ऐसा समाज देखने से तो निश्चय सब किसी का हँसते हँसते पेट फूल जायगा। और सूर्पनखा की इस बात पर भी अवश्य हँसी आवेगी :—

"तुम्ह सम पुरुष न मोसम नारी । यह संजोग बिधि रचा बिचारी ॥
मम अनुरूप पुरुष जगमाहीं । देखिउँ खोजि लोक तिहुँ नाहीं ॥
तातें अब लगि रहिउँ कुमारी । मन माना कछु तुम्हहिं निहारी ॥"

ऐसी स्त्री हमारे किसी पाठक को देखने सुनने में नहीं आई होगी। इस ने ब्रह्मचारियों की भी नाक काट ली थी। अच्छा हुआ कि इस की भी नाक काटी गई।

इस की दशा देख लक्ष्मणजी को भी भाई से हँसी करने का उमंग आ गया था —

"प्रभु समरथ कोसलपुर राजा । जो कछु करहिं उनहिं सब छाजा ॥"

रामचन्द्र ने भी नारद से हँसी की है :—

"जेहि बिधि होइहि परम हित, नारद सुनहु तुम्हार ।
सोइ हम करब न आन कछु, बचन न मृषा हमार ॥"

बड़ा हित किया कि मुनि को बन्दर बनाया और हँसी का फल भी खूब ही भोगा। हरगणों ने तो हँसी का ऐसा फल पाया कि उन्हें राक्षस बनना पड़ा।

सप्तर्षि ने पार्वतीजी से कहा था कि शिव से विवाह कर के क्या करोगी? उन्हों ने तो काम ही को भस्म कर दिया।

ये सब ही हास्यरस के उदाहरण हैं।

(९) शान्त—पाठकगण अब इतना ही पर शान्तिधारण कीजिये। शान्तरस का उदाहरण हम से न माँगिये। क्योंकि शान्तरसप्रधान तो यह ग्रंथ ही है। बालकाण्ड का आदीन्त पढ़िये। आरण्य काण्ड में मुनियों का दर्शन कीजिये, उत्तरकाण्ड पाठ कीजिये और रामराज्य में निमग्न रहिये।

तुलसीदास की रचनाओं में शान्तादि कई रसों का समावेश-सा होता रहता है। गोसाईं जी ने भक्ति प्रदर्शन का वर्णन करते हुए उस में ईश्वरीय भक्ति अर्थात् शान्तरस की महाप्रचुर धारा प्रवाहित की है जिस रस के पान के सामने सांसारिक सब रस तुच्छ ही

नीरस बोध होता है।[1] शेक्सपियर ने मानवी प्रकृति का चाहे जैसा अच्छा चित्र खींचा हो, परन्तु वह रस प्रस्तुत करना उन के वश में नहीं था। ईश्वरभक्ति उपजाने वाली शक्ति उन की रचनाओं में नहीं है।

---

१ पुष्पवाटिका की कुछ चौपाइयों की व्याख्या में श्री० राजबहादुर लमगोड़ा एम० ए० ने भी अन्य रीति से इस कथन का समर्थन किया है। वह कहते हैं कि 'प्रारंभिक नाटकों के लिखते समय शेक्सपियर को इसका ध्यान भी नहीं था कि यह समस्त जगत नितान्त स्वप्नवत है। कलमसम्मी के दिनों में इधर उनका ध्यान गया और उन्हें अपने दोषों का अनुभव हुआ। उस समय उन्हें मानवीयता एवं आध्यात्मिकता का निस्सन्देह पूर्ण विश्वास हो गया था।

हमारा कवि तुलसी प्रारंभ से ही इसी विश्वासानुसार कार्य करता रहा है और इसी कारण हमें स्थान-स्थान पर मानवीयता तथा आध्यात्मिकता का सम्मिश्रण दृष्टिगोचर होता है।"

'हमारा कवि कुतुबनुमा (दिशा सूचक यन्त्र) की सुई और आध्यात्मिक व्यक्तियाँ (शिव पार्वती इत्यादि) ध्रुवतारा की भाँति इस संसार के मंझधाररूपी पथ में हमारे पथ-प्रदर्शक के समान मौजूद हैं।"

दशम परिच्छेद

रामायण में रूपकादि की बहार

गोसाईं जी की रचनायें सर्वालंकार-भूषित हैं, तो भी रूपकालंकार का इन में बाहुल्य है। इस के रचने में वे बड़े निपुण कहे जाते हैं। आप ने अनूठी उपमाओं से भूषित रूपकालंकार द्वारा विविध वस्तुओं का सुन्दर चित्र खींचा है। पाठकवृन्द! रचनाप्रदर्शनी के इस विभाग की ओर भी दृष्टि डालकर आनन्द लाभ कीजिये। आदि ही से मुख्य मुख्य पदार्थों को देखते चलिये।

रामचरितमानस कैसा सुन्दर सरोवर है इसे तो आप लोग पहिले ही देख चुके हैं। अब सन्तसमाज प्रयाग का दर्शन कीजिये —

"राम भगति जहँ सुरसरि धारा। सरसइ ब्रह्म बिचार प्रचारा॥
बिधि-निषेध-मय कलिमल हरनी। करम कथा रबिनन्दिनि बरनी॥
हरिहर कथा बिराजति बेनी। सुनत सकल मुदमङ्गल देनी॥
बटु बिस्वास अचल निज धरमा। तीरथराज समाज सुकरमा॥"

यह तीर्थ राज —"सबहिं सुलभ सब दिन सब देसा। सेवत सादर समन कलेसा॥"

अतएव निःसन्देह 'अकथ अलौकिक' है और इसी कारण से शरीर रहते ही मनुष्यों को चारों फल देनेवाला है।

श्रीरामचन्द्रादि का रविकुल में आविर्भाव होने पर गोसाईं जी अवध की छवि वर्णन करने में रत हैं —

"अवधपुरी सोहइ यहि भाँति। प्रभुहिं मिलन आई जनु राती॥
देख भानु जनु मन सकुचानी। तदपि बनी सन्ध्या अनुमानी॥
अगर धूप जनु बहु अँधियारी। उड़इ अबीर मनहु अरुनारी॥
मन्दिर मनि समूह जनु तारा। नृप गृह कलस सो इन्दु उदारा॥
भवन वेदधुनि अति मृदुबानी। जनु खग मुखर समय जनु सानी॥
कौतुक देखि पतंग भुलाना। एक मास तेइ जात न जाना॥"

वाह गोसाईं जी! आप धन्य हैं। सूर्य तो ऐसे भुलाये कि एक महीने का एक दिन हो गया। परन्तु आप ने अपनी कवित्वशक्ति से इतने बड़े दिन में भी सन्ध्या की बहार दिखला दी।

जनकपुर पहुँचने के अनन्तर पुष्पवाटिका में श्री सीता जी के दर्शन के दूसरे दिन सूर्योदय देख कर जब रामचन्द्र लक्ष्मण जी से कहते हैं —

"अरुन उदय अवलोकहु ताता। पंकज लोक कोक सुख दाता॥"

उस समय लक्ष्मण जी उसी सूर्योदय के मिस रामचन्द्र का प्रभाव वर्णन करते हैं —

"अरुन उदय सकुचे कुमुद, उडुगन जोति मलीन॥
तिमि तुम्हार आगमन सुनि, भये नृपति बल हीन॥"

"नृप सब नखत करहिं उजियारी। टारि न सकहिं चाप तम भारी॥
कमल कोक मधुकर खग नाना। हरषे सकल निसा अवसाना॥
ऐसेहि प्रभु सब भगत तुम्हारे। होइहहिं टूट धनुष सुखारे॥
रवि निज उदय ब्याज रघुराया। प्रभु प्रताप सब नृपहि दिखाया॥"

श्री लक्ष्मण जी का यह वाक्य सिद्ध करने के लिए गोसाईं जी भी यज्ञस्थल में गिरिमंच पर रविकुलरवि श्रीरामचन्द्र का उदय कराते हैं। अब उस की छटा अवलोकन कीजिये :—

"उदित उदय-गिरि मंच पर, रघुवर बालपतंग।
बिकसे सन्त सरोज सब, हरषे लोचन भृंग॥"

"नृपन्ह केरि आसानिसि नासी। बचन नखत अवली न प्रकासी॥
मानी महिप कुमुद सकुचाने। कपटी भूप उलूक लुकाने॥
भये बिसोक कोक मुनि देवा।"

एवं रवि के उदय होते ही उन लोगों ने प्रत्यक्ष देखा कि रघुवर बाहु-बल सागर में जाकर चाप-जहाज बलरूपी पर्वत से टकरा कर दो टूक हो गया और भिन्न भिन्न लोगों की भिन्न-भिन्न वस्तुएँ उस के साथ ही जाती रहीं।

यह चाप जहाज टूटने का समाचार सुन कर परशुराम जी आते हैं और अपना पराक्रम कठोर वर्णन करते हैं—

"चाप स्रुवा सर आहुति जानू। कोप मोर अति घोर कृसानू॥
समिधि सेन चतुरंग सुहाई। महामहीप भये पसु आई॥
मैं यह परसु काटि बलि दीन्हा। समरयज्ञ जग कोटिन्ह कीन्हा॥"

परन्तु इस अलौकिक भानु के सामने उन का तेज भी दीपक के समान मलीन हो गया।

विवाह के बाद अवध में लौट आने पर परिछन के समय गोसाईं जी ने दीप माला में वर्षा की बहार दिखाई है—

"धूप धूम नभ मेचक भयऊ। सावन घन घमंड जनु ठयऊ॥
सुर-तरु-सुमन-माल सुर बरषहिं। मनहु बलाक अवलि मनु करषहिं॥

मञ्जुल मनिमय बन्दनिवारे। मनहुँ पाकरिपु चाप सँवारे॥
प्रगटहिं दुरहिं अटनि पर भामिनि। चारु चपल जनु दमकहिं दामिनि॥
दुंदुभि धुनि गरजनि घन घोरा। जाचक चातक दादुर मोरा॥
सुर सुगंध सुचि बरषहिं बारी। सुखी सकल सम पुर-नर-नारी॥"

अब देखिये अवध में विपत्ति का बीज बोया जाता है—

"विपति बीज बरषारितु चेरी। भुइँ भइ कुमति कैकयी केरी॥
पाइ कपट जल अंकुर जामा। बर दोउ दल दुखफल परिनामा॥"

अब वर माँग कर कैकेयी सरोष उठ खड़ी हुई हैं उस समय का रूपक देखिये—

"अस कहि कुटिल भइ उठि ठाढ़ी। मानहु रोष तरंगिनि बाढ़ी॥
पाप पहार प्रगट भइ सोई। भरी क्रोध जल जाइ न जोई॥
दोउ बर कूल कठिन हठ धारा। भँवर कूबरी बचन-प्रचारा॥
ढाहत भूप रूप तरुमूला। चली विपति बारिधि अनुकूला॥"

यहाँ पर नदी का एक और रूपक देख लीजिये। चित्रकूट में भरतादि श्रीराम के उपवन के आश्रम पर आ रहे हैं—

"आश्रम सागर शान्तिरस, पूरन पावन पाथ॥
सेन मनहु करुना सरित, लिये जाहि रघुनाथ॥
बोरति ज्ञान विराग करारे। बचन ससोक मिलत नद नारे॥
सोच उसास समीर तरंगा। धीरज तट-तरुवर कर भंगा॥
विषम विषाद तोरावति धारा। भयभ्रम भँवर अबर्त्त अपारा॥
केवट बुध विद्या बड़ि नावा। सकहिं न खेइ एक नहिं आवा॥
बनचर कोल किरात बिचारे। थके बिलोकि पथिक हिय हारे॥
आश्रम उदधि मिली जब जाई। मनहुँ उठेउ अंबुधि अकुलाई॥"

अब आगे चलिये। श्री रामचन्द्र प्रियाविरह से विकल विपिन में ढूँढ़ते डोल रहे हैं। वन वसन्त की शोभा से लहलहा रहा है पर क्या कैसा है जो सुखद पदार्थ किसी वियोगी को दुःखद हो जाता है। वसंत की बहार निहार रामचन्द्र लक्ष्मण से कह रहे हैं—

"देखहु तात बसन्त सोहावा। प्रियाहीन मोहि भय उपजावा॥"

यह वसंत नहीं है, वरन्—

"बिरह बिकल बलहीन मोहि जानेसि निपट अकेल।
सहित बिपिन मधुकर खग, मदन कीन्ह बगमेल॥

विटप विसाल लता अरुझानी । विविध वितान दिये जनु तानी ॥
कदलि तालवर ध्वजा पताका । देखि न मोह धीर मन जाका ॥
विविध भाँति फूले तरु नाना । जनु बानैत बने बहु बाना ॥
कहुँ कहुँ सुन्दर विटप सुहाये । जनु भट बिलग बिलग होइ छाये ॥
कूजत पिक मानहुँ गज माते । ढेक महोख ऊँट बिसराते ॥
मोर चकोर कीर बर बाजी । पारावत मराल सब ताजी ॥
तीतर लावक पदचर जूथा । बरनि न जाय मनोज बरूथा ॥
रथ गिरिसिला दुंदुभी झरना । चातक बंदी गुन गन बरना ॥
मधुकर-मुखर भेरि सहनाई । त्रिविध बयारि बसीठी आई ॥
चतुरंगिनी सेन सँग लीन्हें । विचरत सबहि चुनौती दीन्हें ॥"

इसी विरहावस्था में विचरण करते दोनों भाई पंपासर पर पहुँचे हैं । वह सर कैसा है—

"सन्त हृदय जस निर्मल बारी । बाँधे घाट मनोहर चारी ॥
जहँ तहँ पियहिं विविध मृग नीरा । जनु उदार गृह जाचक भीरा ॥"

किष्किन्धा काण्ड में बरसात तथा शरदऋतु की शोभा वर्णन भी उत्तम और आनन्दप्रद है । उस की कुछ कल्पनाओं की उपमाओं में शिक्षा और सदुपदेश भरा हुआ है । उस का कुछ अंश अन्यत्र उद्धृत हुआ है एवम् कई एक रूपकों का सौंदर्य अन्यान्य स्थानों में दिखलाया गया है । अतएव पाठकों को इधर ही बहुत रखना अच्छा न होगा । रूपकों के सदृश उपमाओं की बहार देखी ही गई है । अब उस की अधिक छवि दिखलाने की भी आवश्यकता नहीं । हाँ इतना कह देना अनुपयुक्त नहीं होगा कि रामायण तथा गोसाईं जी के दूसरे अन्य ग्रन्थों के पद पद में उपमाओं की छटा छलक रही है और वे उपमाएँ बहुत ही मनोहारिणी अनूठी और आनन्ददायिनी हैं ।

गोसाईं जी ने यमक की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है । परन्तु रामायण में अनुप्रास की कमी नहीं देखी जाती । उस का कुछ उदाहरण देखिये :—

"सोहत मौर मनोहर माथ । मंगलमय मुकुतामनि गाथ ॥
बादि बसन बिनु भूषन भारू । बादि बिरति बिनु ब्रह्म बिचारू ॥
सील सँकोच सिंधु रघुराऊ । सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ ॥
समुझत सुनत सुखद सब काहू । सुचि सुरसरि रुचि निदरि सुधाहू ॥"

मगन महामलीन, मुए मारि मंगल वाहन ।
निपट निरंकुस, निठुर निसंकू ।
दलि दसा दुख दारुन भयरू ।
क्रूर कुटिल खल कुमति कलंकी । नीच निसील निरीस निसंकू ॥"

जो लोग 'Full fathom five thy father lies' जैसे अंगरेजी अनु
(alliteration) पर मुग्ध रहते हैं वे गोसाईं के अनुप्रासों का रस अधिक आनन्द पा
और हम उन से यह भी कह देते हैं कि संस्कृत भाषा के कवियों को छोड़ हिन्दी भा
साधारण कवि भी इस विषय में उन्हें बहुत आनन्द अनुभव करा सकते हैं।

गोसाईं जी के ग्रंथों से सब प्रकार के अलंकारों का एक २ उदाहरण दिखलाने के
भी एक विशेष पुस्तक की आवश्यकता होगी। अतएव सब का उदाहरण दिखलाने की
पर चेष्टा नहीं की गई। कई एक टीकाकार रामायण की टीकाओं में जहाँ तहाँ अलंका
दिखलाते गये हैं। उन ग्रंथों से बहुत कुछ ज्ञात हो सकता है।

बिटप बिसाल लता अरुझानी। विविध वितान दिये जनु तानी॥
कदलि तालवर ध्वजा पताका। देखि न मोह धीर मन जाका॥
विविध भाँति फूले तरु नाना। जनु बानैत बने बहु बाना॥
कहुँ कहुँ सुन्दर बिटप सुहाये। जनु भट बिलग बिलग होइ छाये॥
कूजत पिक मानहुँ गज माते। ढेक महोख ऊँट बिसराते॥
मोर चकोर कीर वर बाजी। पारावत मराल सब ताजी॥
तीतर लावक पदचर जूथा। बरनि न जाय मनोज बरूथा॥
रथ गिरिसिला दुंदुभी झरना। चातक बंदी गुन गन बरना॥
मधुकर-मुखर भेरि सहनाई। त्रिविध बयारि बसीठी आई॥
चतुरंगिनी सेन सँग लीन्हें। विचरत सबहि चुनौती दीन्हें॥"

इसी विरहावस्था में विचरण करते दोनों भाई पंपासर पर पहुँचे हैं। वह सर कैसा है—

"सन्त हृदय जस निर्मल बारी। बाँधे घाट मनोहर चारी॥
जहँ तहँ पियहिं विविध मृग नीरा। जनु उदार गृह याचक भीरा॥"

किष्किन्धा काण्ड में बरसात तथा शरदऋतु की शोभा वर्णन भी उत्तम और आनन्दप्रद है। उस की कुछ घटनाओं की उपमाओं में शिक्षा और सदुपदेश भरा हुआ है। उस का कुछ अंश अन्यत्र उद्धृत हुआ है एवम् कई एक रूपकों का सौंदर्य अन्यान्य स्थानों में दिखलाया गया है। अतएव पाठकों को इधर ही बाँधा रखना अच्छा न होगा। रूपकों में सन्निहित उपमाओं की बहार देखी ही गई है। अब उस की अधिक छवि दिखलाने की भी आवश्यकता नहीं। हाँ! इतना कह देना अनुपयुक्त नहीं होगा कि रामायण तथा गोसाईं जी कृत अन्य ग्रन्थों के पद पद में उपमाओं की छटा झलक रही है और वे उपमाएँ बहुत ही मनोहारिणी, अनूठी और आनन्ददायिनी हैं।

गोसाईं जी ने यमक की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है। परन्तु रामायण में अनुप्रास की कमी नहीं देखी जाती। उस का कुछ उदाहरण देखिये —

"सोहत मौर मनोहर माथ। मंगलमय मुकुतामनि गाथ॥
बादि बसन बिनु भूषन भारू। बादि बिरति बिनु ब्रह्म बिचारू॥
सील सकोच सिंधु रघुराऊ। सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ॥
समुझत सुनत सुखद सब काहू। सुचि सुरसरि रुचि निदरि सुधाहू॥"

अथवा महामलीन, मुए मारि मंगल पथ।
निपट निरंकुस, निठुर निसंकू।
दपि दसा दुख दारुन दयरू।
क्रूर कुन्सि मास कुमति कलंकी। मोच निमीस निरोम निसंकू॥"

जो लोग 'Full fathom five thy father lies' जैसे अंगरेजी अनुप्रासों (alliteration) पर मुग्ध रहते हैं वे गोसाईं के अनुप्रासों को देख अधिक आनन्द पावेंगे। और हम उन से यह भी कह देते हैं कि संस्कृत भाषा के कवियों को कौन कहे हिन्दी भाषा के साधारण कवि भी इस विषय में उन्हें बहुत आनन्द अनुभव करा सकते हैं।

गोसाईं जी के ग्रंथों से सब प्रकार के अलंकारों का एक २ उदाहरण दिखलाने के लिए भी एक विशेष पुस्तक की आवश्यकता होगी। अतएव सब का उदाहरण दिखलाने की यहाँ पर चेष्टा नहीं की गई। कई एक टीकाकार रामायण की टीकाओं में जहाँ तहाँ अलंकार भी दिखलाते गये हैं। उन ग्रंथों से बहुत कुछ ज्ञात हो सकता है।

एकादश परिच्छेद

रामायण मे राजनैतिक विचार

ध्यानपूर्वक 'रामचरित मानस' पढ़ने से देखा जाता है कि गोसाईं जी ने इस ग्रंथ को राजनैतिक विचारों से भी भूषित किया है जिस से स्पष्ट बोध होता है कि तत्कालीन राज्यव्यवस्था पर भी इन की दृष्टि पहुँची थी। राजनैतिक विचार की झलक तो इन के पात्रों के सद्व्यवहार ही में देखी जाती है और अनेक स्थानों में इन्होंने राजनैतिक बातें स्पष्ट रूप में स्वयम् भी कही हैं और पात्रों के मुख से भी कहलवायी हैं। श्री रामचन्द्र आदर्श राजा थे। भला उन की कथा वर्णन में वे राजनैतिक बातों का क्यों नहीं समावेश करें? पाठकों के सम्मुख इस का कुछ उदाहरण उपस्थित किया जाता है।

गोसाईं जी राजाओं के अन्ध मद को बुरा नहीं समझते थे। क्योंकि आप कहते हैं —

"बैरी पुनि छत्रिय पुनि राजा। छल बल कीन्ह चहै निज काजा॥"

राजा को प्रजा के अहित की कोई बात नहीं करनी चाहिये इस का उपदेश इस दोहे में इन्होंने दिया है—

"जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥"

आदर्श राजा श्रीराम के मुख से ऐसी बात कहलवा कर क्या गोसाईं जी ने अपने समय के नृपति जहाँगीर के अन्यायिक व्यवहार की समालोचना की है? क्योंकि उस समय काशी में मन्दिर आदि तोड़ने का उत्पात हुआ था।

राजा राजमद के वश में पड़ कर भी प्रायः कुत्सित काम कर बैठते हैं। इसी के विषय में श्री रामचन्द्र के मुख से कहलवाते हैं—

"कही तात तुम नीति सुहाई। सब ते कठिन राजमद भाई॥
सहसबाहु सुरनाथ त्रिसंकू। केहि न राजमद दीन्ह कलंकू॥"

प्रजा का सुराज्य ही में यथार्थ सुख होता है इसी भाव को इन्होंने भरत जी के इस वाक्य में बताया है:—

"भरत दोष वन सैल समाजू। मुदित छुधित जनु पाय सुराजू॥"

और भी कहा कि —

"हरित मनिसि जनु प्रजा दुखारी। त्रिविध ताप पीड़ित ग्रहमारी॥
पाय सुराज सुदेस सुखारी। भइ भरत गति तेहि अनुहारी॥"

इन्होंने सुराज्य की महिमा और भी कही है :—

"राम वास वन सम्पति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाय सुराजा॥
विविध जन्तु संकुल महि भ्राजा। बढ़ी प्रजा जिमि पाय सुराजा॥
अर्क जवास पात बिनु भयऊ। जिमि सुराज्य खल उद्यम गयऊ।"

नीतिज्ञ और प्रजापालक राजा ही प्रशंसा के योग्य हैं। इस बात को इन्होंने इस चौपाई में दिखलाया है :—

"सोचिय नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना॥"

और भी देखिये —

"पंक न रेनु सोह अस धरनी। नीति निपुन नृप की जस करनी॥"

नीति निपुण राजा न होने से क्या हानि होती है यही बात भरत जी के मुँह से कहलाते हैं :—

"मोहि राज हठि देइहहु जबहीं। रसा रसातल जाइहि तबहीं॥
देख बिनु रघुबीर पद जिय की जरनि न जाय।"

राजसभा में सम्मिलित होने का अधिकारी होकर केवल मुँह देखी बातें करनी अयोग्य है, क्योंकि इस में राजा और प्रजा दोनों की हानि होती है इसी से कहते हैं कि—

"कहहिं सचिव सब ठकुर सोहाती। नाथ न मरत होइहि इहि भाँती॥"

रामायण में गीता का उपदेश भी समावेशित है। गोसाईं जी की 'रामगीता' का पेद देखने से यह बात विदित होगी।

द्वादश परिच्छेद

रामायण के पात्र वर्ग

रामायण की पूर्व वर्णित बातों ही पर सन्तोष करना नहीं होगा, क्योंकि वह केवल काव्य रस ही का अनुभव करानेवाला ग्रंथ नहीं है। वह सदुपदेशों के अमूल्य प्रभामय मणि माणिक्य की खान है। संसार में जन्म ग्रहण कर मनुष्य का किस के प्रति क्या कर्त्तव्य है और परस्पर कैसा बर्ताव रखना चाहिये यह जाने बिना हमलोग सुखपूर्वक जीवन निर्वाह नहीं कर सकते। संसार में सानन्द जीवन व्यतीत करने एवम् परलोक में परमानन्द लाभ के लिये जितनी बातें जानने की आवश्यकता है वे सब हम इस ग्रंथ के पात्रवर्ग से सीख सकते हैं। यदि हमलोग उनके द्वारा प्राप्त कल्याण-कारक उपदेशों को हृदयंगम करें तो हमारा निश्चय हितसाधन हो।

संसार में सर्वप्रिय होने सफलता प्राप्त करने तथा स्वर्ग लाभ के हेतु दृढ़ संकल्प सत्यपरता स्वार्थत्याग आत्मसंयम आत्मनिर्भरता सहनशीलता पुरुषार्थ आदि इन सद्गुणों का होना बहुत आवश्यक है। किसी कार्य्य में प्रथम कठिनाई हो अथवा निराशा दीख पड़े परन्तु अपने लक्ष्य और संकल्प से कदापि विचलित नहीं होना चाहिये यह शिक्षा तो इस ग्रंथ के प्रधान और गौण पात्र प्रायः सभी दे रहे हैं। परन्तु हमलोगों को इन के विशेष पात्र से विशेष शिक्षा ग्रहण करनी उचित है कवि ने अनेक आदर्श चित्रों को हमलोगों के सामने प्रस्तुत किया है।[1]

श्री शिवजी—सीता जी का रूप धारण कर रामचन्द्र की परीक्षा लेने जाकर उस बात को पति से गुप्त रखने के लिये शिव जी ने 'यह तन सती भेंट अब नाहीं' यह मन में संकल्प करके सती ऐसी प्यारी पत्नी का परित्याग कर दिया है। निश्चय उन्होंने सती को तिलाक देकर घर से बाहर नहीं किया है। परन्तु किसी आत्मीय से प्रीति रीति में कमी होना ही उस के त्यागने के तुल्य है। इस कार्य्य से उन्होंने दिखलाया है कि भक्ति और पत्नीस्नेह में विरोध पड़ने से किस प्रकार भक्ति का निर्वाह किया जाता है। आज कितने लोग कुल कलंक राक्षस रूपिणी कर्कशा कामिनी की प्रसन्नता के लिये कुलधर्म और ईश्वर से विमुख हो जाते हैं और अपने सकल परिवार को भी छोड़ बैठते हैं।

श्री पार्वती जी—इधर पार्वती जी—

"जन्म कोटि लगि रगर हमारी। बरौं संभु न तो रहौं कुआँरी॥"

---

१ इस परिच्छेद में पात्रों के चरित्रों की सूचि गोसाईं जी के ग्रंथ के अनुसार दिखाई गई है।

यह प्रतिज्ञा कर अपने संकल्प पर ऐसी दृढ़ रही हैं कि किसी साधारण व्यक्ति की कौन कहे सात ऋषियों के भड़काने और बहकाने पर भी ये अपनी प्रतिज्ञा से विचलित नहीं हुई हैं और उन्होंने स्पष्ट कह दिया है कि तुम लोगों की क्या बात है—

"तजौं न नारद कर उपदेसू। आपु कहहिं सत बार महेसू॥"

आत्म गुरु के वचन में विश्वास रखनेवाले और निज प्रतिज्ञा पर अचल रहनेवाले कितने और कैसे लोग हैं यह तो सभी स्वयम् समझ सकते हैं। इसी से पतिव्रता स्त्रियों में इन्हें प्रथम आसन प्राप्त हुआ है जैसा कि जानकी जी ने कहा है—

"पति देवता सुतीय महँ, मातु प्रथम तव रेख।"

और इसीसे ये शीश भूषण (महादेव) के अर्द्धभूषण हुई हैं।

श्री जनक—आपने प्रतिज्ञा की थी कि जो शिवधनु भङ्ग करेगा उसी से जानकी का विवाह करेंगे। जब धनुष यज्ञ में सब राजा हार मान कर सिर नीचा कर बैठ गये और चारों ओर निराशा छा गई उस समय भी अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रह कर इन्होंने कहा—

"सुकृत जाइ जौं प्रण परिहरऊँ। कुँअरि कुँआरी रहउ का करऊँ॥"

परन्तु ऐसे दृढ़प्रतिज्ञ का कार्य सिद्ध न हो यह कदापि सम्भव नहीं। ईश्वर ने उन के प्रण की आप रक्षा की।

श्री दशरथ—इन्हें हमलोग इन के पूर्वजों के समान दृढ़प्रतिज्ञ पाते हैं। यह इन्हीं का वचन है —

"रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाय बरु बचन न जाई॥"

यही कह कर इन्होंने कैकेयी को वर माँगने को कहा था। अपनी सब रानियों में कैकेयी को ये अधिक प्यार करते थे। यह बात हमलोगों ने कैकेयी की दासी के मुख से सुनी है।

"तुम्हहीं न सोच सोहाग बल, निज बस जानहु राउ।"

और कवि ने भी कहा है—

सूल कुलिस असि अँगवनिहारे। ते रतिनाथ कुसुम सर मारे॥"

आह! कैकेयी ने महा कठोर धर्मनाशक हृदयविदारक, सर्वस्वाक्रान्तकारक वर माँगा। ये चाहते तो प्रतिज्ञा भङ्ग कर वर से विमुख हो जाते। स्त्री पुरुष के मध्य ऐसी प्रतिज्ञा की बात को कौन कहे बड़े गम्भीर विचारक प्रतिज्ञा का अनादर कर स्त्रीजन को दण्ड दे देने में सङ्कोच नहीं करते, परन्तु वचनबद्ध होकर उस से पराङ्मुख होना इन्होंने अपने तथा अपने कुल के महत्व के योग्य कार्य नहीं समझा। इसी से इन्होंने कैकेयी को पहले बहुत कुछ समझाया बुझाया कि वे विचार कर वर माँगें परन्तु उस का हठ प्रबल और अदमनीय देख कर अन्त में उससे यही कहा कि अब जन्म भर तुम अपना मुँह मत दिखाओ और भारी रामवियोग—दुःख समझ कर ये मूर्छित हो गिर पड़े।

इन में पुत्रप्रेम का अधिक प्राबल्य था। प्यार तो ये सब पुत्रों ही को करते थे, परन्तु रामचन्द्र इन के कुछ अधिक स्नेहभाजन थे। इन्होंने विश्वामित्र से कहा था—

"सब सुत प्रिय मम प्रान की नाईं। राम देत नहिं बनै गोसाईं॥"

और इन्होंने भरत तथा रामचन्द्र के सम्बन्ध में कैकेयी से कहा है—

"मोरे भरत राम दुइ आँखी। सत्य कहौं करि संकर साखी॥"

यदि भेद था तो यही कि रामचन्द्र दाहिनी आँख थे। कारण यह था कि रामचन्द्र को इन्होंने बहुत कष्ट उठाकर और भारी तपस्या कर के पाया था। जो वस्तु कठिनाई से प्राप्त होती है वह अवश्य अधिक प्यारी होती है। इसी से रामचन्द्र के साथ इन की ऐसी प्रीति थी कि—

"जिअइ मीन बरु बारि बिहीना। मनि बिनु फनिक जिअइ दुख दीना॥
कहउँ सुभाउ न छल मन माहीं। जीवन मोर राम बिनु नाहीं॥"

इसी से थी रामचन्द्र सम्बन्धी कोई बात होने ही से ये बड़े असमंजस और आपत्ति में पड़ जाते थे। विश्वामित्र के रामचन्द्र को माँगने पर भी ये घबड़ा उठे थे किन्तु वशिष्ठ के उपदेश ने इन्हें प्रतिज्ञा पालन का साहस प्रदान किया। आज भी उसी पुत्र वात्सल्य से विह्वल होकर ये मनही मन शंकर को मनाने लगे कि राम वन गमन नहीं करें और कहने लगे—

"अजस होउ बरु सुजस नसाऊ। नरक परौं बरु सुर पुर जाऊ।
सब दुख दुसह सहावहु मोही। लोचन ओट राम जनि होहीं॥"

इस समय स्वयम् रामचन्द्र ने इन्हें प्रतिज्ञाभ्रष्ट नहीं होने दिया। किन्तु इन्होंने पुत्र वियोग में प्राण विसर्जन ही कर दिया। यह सब हुआ सही, परन्तु कैकेयी के बार बार यह कहने पर भी कि 'यदि प्रतिज्ञा पालन न करना हो तो उसे मुकर जाइये' इन्होंने वचन नहीं फेरा और रामचन्द्र को भी अपने मुख से वन जाने को नहीं कहा भला इस से बढ़ कर पुत्रवात्सल्य और सत्यसन्धता का कोई उदाहरण हो सकता है? इसी से भगवान ने इन्हें असत्य नहीं होने दिया इनकी प्रतिज्ञा की भी रक्षा की और इन्हें पुत्र स्नेह का एक परमोत्कृष्ट उदाहरण बनाया।

कैकेयीजी—कवि ने कहा है कि—

"को न कुसंगति पाइ नसाई। रहै न नीच मतें चतुराई॥"

कैकेयी की कथा इस वचन को भली भाँति सिद्ध कर हमलोगों को शिक्षा दे रही है कि कुसंगति करने तथा नीचों की बातों पर काम करने का महा कष्टकारक परिणाम होता है। उस से कुसंगति करनेवाला ही कष्ट नहीं पाता वरन् उस से उस के सब सम्बन्धी तथा परिवार दुःख भोगते हैं। कुसंगति अच्छे अच्छे विद्वानों की मति भी भ्रष्ट कर देती है। अतएव कवि के इस पाठ द्वारा शिक्षा पर ध्यान रख कर सब को कुसंगति से बचना ही चाहिये।

इसलिये कैकयी को यद्यपि क्रोध और मान करना अच्छा लगता था जैसा कि दशरथ ने कहा है—

"तुमहि कोहाब परम प्रिय लागा।"

तथापि उन का हृदय कठोर नहीं था। वह बुद्धिमती भी थी और रामचन्द्र को प्यार भी करती थी क्योंकि उन्हों ने परीक्षा करके देख लिया था कि रामचन्द्र उन से विशेष स्नेह रखते थे। इसी से उन्हों ने राम तिलक का सम्वाद सुन कर कहा था कि—

"राम तिलक जो सांचेहु काली। मांगु देउँ मन भावत आली॥
प्रान ते अधिक राम प्रिय मोरे। तिन के तिलक छोभ कस तोरे?॥"

और उन्होंने पहले किसी का अनभल भी नहीं किया था। परन्तु कुब्जा दासी की बातों पर विश्वास करने और कुसंगति से वे ऐसी वज्रहृदय हो गई अपने कर्त्तव्य से ऐसी भूल गई और ऐसी बुद्धिहीना हो गई कि—

"परौं कूप तव वचन लगि, सकौं पूत पति त्याग।"

ऐसी प्रतिज्ञा करने में भी उन्हें हिचक नहीं हुआ। पति को दुःख से कातर देखकर दया प्रेम के बदले —जले पर नमक छींटती ही गई और अपने आचरण और वाक्यों से उन्हों ने पति को ऐसा अधीर कर दिया कि उनके समान गंभीर और दृढ़प्रण व्यक्ति को भी—

"फिर पछितैहहु अन्त अभागी।"

कहना ही पड़ा उन्हीं सदुक्तियों में भी सुन्दर सीख नहीं मानने के कारण इन्हें दुर्वचन कह ही डाला पति से वियोग हुआ ही पुत्र ने भी—

"इस धर्म दशरथ जनक, राम लषन से भ्रात।
जननी तू जननी भई,"

ऐसा वाक्य कह सुनाया। इन्हों ने अपार अपयश का दुःख भोगा और स्वपरिवारका तथा पुरजन परिजन को भी घोरतापर में डुबाया। इन्हें तो दुःख होना ही चाहता था। क्योंकि वे एक रीति से पति प्राणघातिनी हुईं, परन्तु इनके अपराध से औरों को भी दुःख भुगतना पड़ा। आशा करते हैं कि स्त्री-पुरुष सभी इस विशेष पात्र के आचरण से शिक्षा ग्रहण करेंगे।

कौशल्याजी—ये श्रीरामचन्द्र की धर्मपरायणा शीलवती धर्मिणी माता हैं दशरथ जी के यह कहने पर भी कि हम इस प्रकार के विचार से सुखी रहते थे—

"रामसपथ सत कहउँ सुभाऊ। राममातु मोहि प्रिय न काऊ॥"

कहना पड़ा है—

"आर कौशिल्या मोर भल ताका। तस फल देउँ उन्हें करि साका॥"

और रामचन्द्र ऐसे पुत्र को—

"प्रान प्रान के जीवन जी के।"

पापाचरणया सौत वनवास दिलवा रही है और यह सम्राट पुत्र के मुख से सुन कर अपार शोकसागर में निमग्न होने पर भी कौशल्या कह रही हैं :—

"जो केवल पितुआयसु ताता । तो जनि जाहु जानि बड़ माता ॥
जो पितु मातु कहेहु बन जाना । तो कानन सत अवध समाना ।"

और भरत जी के ननिहाल से आने पर ऐसे ललक कर उन से मिलने को दौड़ती हैं मानों राम ही वन से फिर आये हों। धन्य कौशल्या जी आप का आचरण अवश्य सराहनीय है और सब विमाताओं को अनुकरणीय है। आप के आचरण का अनुसरण करने से आज कितने घरों में सुख शान्ति का राज्य हो सकता है, कितने विमातृ पुत्र आनन्द कालक्षेप कर सकते हैं; इतना ही नहीं आप के वाक्य और कार्य में सर्वथा धर्म तथा नीति भरी हुई है। आप चाहतीं तो सम्भवतः रामचन्द्र का वनगमन रुक जाता और स्वजन परिजन विरहवारिधि में नहीं डूबने पाते परन्तु धर्म्म[1] का अवलम्बन कर आप ने समयानुकूल दूरदर्शिता दिखलाई और अपने उदाहरण से आगामी सन्तति का महोपकार किया —

"राखौं सुतहि करौं अनुरोधू । धर्म जाय अरु बन्धु विरोधू ॥"

भला इस में नीति तथा धर्म का कितना आदर है। जब आप भरत को रामचन्द्र के तुल्य समझती थीं तब दोनों भाइयों में वैर-बीज बोने का क्यों उपाय करतीं ?

रामचन्द्र को तो नीति धर्मविचार से वनगमन से नहीं रोका और पातिव्रतधर्म्म के ध्यान से सीता जी के पति के संग जाने में बाधक नहीं हुईं। केवल यही कह कर रामचन्द्र से पूछती हैं कि "प्रिय जानकी को प्राण में लगाकर रखती थी और—

जीवन मूरि जिमि जुगवत रहऊं । दीपबाति नहिं टारन कहऊं ॥

यही जानकी तुम्हारे साथ जाना चाहती है, हे पुत्र तुम्हारी क्या आज्ञा है? वन में रहने योग्य तो ये नहीं है और घर रह जायं तो हम को बहुत अवलम्ब हो सो सब बातों को विचार कर जैसा कहो उसके अनुसार हम इन्हें शिक्षा दें। इन की ये सब बातें विपत्ति काल में इन के अपार धैर्य्यवती होने का परिचय दे रही हैं। दशरथ जी तो राम विरह में प्राण विसर्जन कर निश्चिन्त हो गये। किन्तु ये १४ वर्ष तक पुत्र और पुत्रवधू के वियोग की असह्य यन्त्रणा सहती रहीं। कौशल्या का एक अनुपम चित्र है। वे धैर्य की मूर्ति कही जा सकती हैं।

सुमित्रा जी—राम और कौशल्या से जो कैकेयी का सम्बन्ध है वही सम्बन्ध सुमित्रा को भी है। परन्तु कैकेयी निज पुत्र को राजसिंहासन पर बैठाने के लिये राम के राज्याभिषेक में विघ्न डाल कर उन्हें १४ वर्ष के लिये वन भिजवा रही हैं और सुमित्रा स्वच्छ हृदय से अपने पुत्र को कह रही हैं :—

---

1 'पितुर्दशगुणा माता गौरवेणातिरिच्यते ।
मातुर्दशगुणा मान्या विमाता धर्मभीरुणा ॥

"जो पै सीय राम बन जाहीं। अवध तुम्हार काज कछु नाहीं॥"

और साथ ही साथ भक्तिपूर्वक सीता राम की सेवा करने का उपदेश दे रही हैं, जिस से उन दोनों को किसी प्रकार का वन में क्लेश न हो।

"उपदेश यह जेहि तात तुम्हरे राम सिय सुख पावहीं।"

अहा! यह कथा अकारण स्वार्थत्याग है। कवि ने कैसा सहज मोहावन यह चित्र खड़ा किया है। आज कितनी माताएँ स्वार्थत्यागिनी हो अपनी सन्तति को ऐसी भ्रातृभक्ति का उपदेश देती हैं और उन्हें भ्रातृसेवा में नियुक्त करती हैं? यदि सभी माताएँ सुमित्रा के समान अपनी सन्तान को भ्रातृप्रेम और भ्रातृसेवा की शिक्षा दिया करें तो इसमें सन्देह नहीं कि सन्तति का बड़ा कल्याण हो।

सुमित्रा जी निश्चय स्नेहमयी बुद्धिमती स्त्री थीं। इन्हें अपनी दोनों सपत्नियों से तुल्य प्रेम था। कालिदास ने लिखा है —

"साहि प्रणयवत्यासीत् सपत्न्योरुभयोरपि।
भ्रमरी वारणस्येव मदनिस्यन्दरेखयोः॥"

अर्थात् भ्रमरी जैसे हाथी के गण्ड की दोनों मदरेखाओं पर बराबर ही अनुरक्त रहती है वैसे ही उभय सपत्नी के प्रति वे स्नेहवती थीं। आप इन के वात्सल्य तथा आत्मनिग्रह का परिचय तो रामचन्द्र के इसी वनवास के समय पा रहे हैं। इसी से कालिदास ने रघुवंश सर्ग १० श्लोक ७१ में इन्हें विद्या से उपमा दी है।

सीता—चरित्रचित्र प्रदर्शिनी में यह पातिव्रत्य का आदर्श चित्र है। सिता की पुष्पवाटी में सखियों के अनुरोध से रामचन्द्र को देख ये उन के रूपलावण्य पर मोहित हुई हैं। परन्तु पिता का प्रण स्मरण कर और धनुर्भङ्ग अन्य कोई उपाय नहीं देख ये भवानी के मन्दिर में जा हाथ जोड़ कर वन्दना करने लगी हैं कि हे माता पतिव्रताओं में आप का प्रथम स्थान है, आप की महिमा अपरम्पार है, आप वरदायिनी हैं, आप अन्तर्यामिनी हैं, हमारे मनोरथ को अच्छी तरह जानती हैं। ये यही कह कर भगवती के चरणों में लिपट गई हैं। भवानी ने उन की मनोकामना को सफल किया है।

जब एक पुरुष को देख उस के लिए मन में सहज पवित्र स्नेह का उद्भव हुआ तो फिर संसार में दूसरा कौन? वही परम पूजनीय बनता हुआ। यही पातिव्रत धर्म है और इस सद्गुण से आप में महिलोचित गुण सुशोभित हैं। इसी से वे संसार भर की स्त्रियों की शिरोमणि समझी जाती हैं।

पातिव्रत धर्मभूषिता सीता पति को वन में जाते देख कब राजमहल के विरहदुःख में किस तरह सह सकती थीं? सदा लाड़प्यार से लालित पालित एवम् कोमल सुकुमार शरीर होने पर भी राजसुख और गार्हस्थ्य से मुख मोड़ कर पति की दुःखावस्था में उनकी सहगामिनी

होने को उठ खड़ी हुईं। परन्तु सास का निरादर नहीं किया। उनसे आज्ञा माँगने के लिये उनके समीप जा कर लज्जाकुल चुप चाप बैठ रहीं। स्वयम् धर्मपरायणा स्नेहमयी सास इस सुकार्य में क्या बाधा दे सकती थीं! रामचन्द्र ने देशकाल विचार कर इन्हें घर रखना चाहा जिसमें ये सासादि की सेवा कर उन्हें कुछ सुख पहुँचा सकें और सहज स्नेह से वन की विपत्तियों का भी वर्णन किया। परन्तु पतिसेवा मुख्य जानकर इन्हों ने सविनय कहा।—

"जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहिं तरनिहुँ त ताते॥
तन धन धाम धरनि पुर राजू। पति विहीन सब सोक समाजू॥"

पतिवियोग दुःख के सामने पतिव्रता को किसी अन्य दुःख का क्या ध्यान हो सकता है! इन्हों ने बहुत ही ठीक कहा—

"नाथ साथ सुर सदन सम, परनसाल सुखमूल।"[1]

और अधिक क्या कहें—

"राखिय अवध जो अवधि लगि, रहत जानिये प्रान।"

और वन में मुझे दुःख होगा, हाय —

"मैं सुकुमारि नाथ वनजोगू। तुमहिं उचित तप मोकहँ भोगू॥"

अहा! कैसा मधुरभाषण है! कितना स्नेहरस टपक रहा है

सीता जी आप धन्य हैं, और आपका अनुकरण कर के जो स्त्रियाँ पातिव्रत धर्म में लगी रहती हैं और लगी रहें एवम् आपही के प्रति अनसूया का यह वाक्य—

"अमितदानि भर्ता बैदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही॥"

स्मरण रख कर कार्यवर्तिनी हों वे भी धन्य हैं, और धन्य हैं आपके सच्चरित्र के चित्रकार गोसाईं जी जिन्हों ने एक विदेशीय पादरी रेवरेण्ड एडविन ग्रीव्स से भी यह कहला दिया कि "क्यों नहीं! ऐसी पतिव्रता स्त्री दुःख और सुख में अपने नाथ के साथ क्यों नहीं रहे! मेरी समझ में सम्पूर्ण रामायण में ऐसी सुन्दरता और रोचकता कहीं नहीं मिलती जैसी इस स्थान में दिखलाई देती है।"

सीता जी ने बड़ी कठिन परीक्षाएँ पास कर ऐसा उच्चस्थान प्राप्त किया है। राजभवन में समस्त सुख भोगते हुए इन्हों ने सहजस्नेह और सेवा से पति को प्रसन्न रखा है। वाल्मीकि जी कहते हैं कि दशरथ ने कौशल्या के सम्बन्ध में कहा था कि 'यह दासी सखी, भगिनी और माता की तरह हमारी सेवा करती है।' सीताजी में भी निस्सन्देह ये गुण वर्तमान थे। आज भी अधिकांश हिन्दू महिलायें इन इन शुभ गुणों से वञ्चित नहीं हैं और किसी प्रकार से पति की सेवा करने में लज्जा नहीं करतीं। समाज संशोधक महाशय चाहे उनकी हजार दुर्दशा वर्णन

1 एक अन्य कवि ने भी कहा है :—

दूर भार घर रतन नग्न पाटम्बर। पिय की बाँह अमित सुख को पूर॥"

कर कितना आंसू बहाया करें और उनके पति को उन्हें केवल काम प्रवर्तिनी यन्त्र ही मानने का गौरव प्रदान किया करें परन्तु वे पतिसेवा को अपना मुख्य धर्म समझती हैं और पति उन्हें सहधर्मिणी तथा गृहलक्ष्मी मानते हैं। फिर सब सुख को तिलाञ्जलि दे, वनवासिनी हो, पति के संग वन वन घूम कर इन्होंने अपने प्रेम, धर्म तथा सेवा से पति को संतुष्ट रखा है। और इस पद के अनुसार— "है खरा खोटा मुहब्बत में ये कैसा 'होशियार'। आतिशे हिज्रां में तप इसको तपा कर देख लो॥"

अशोक वाटिका में पतिवियोग के अत्यन्त दुःख ज्वाले को चिरकाल सहन कर इन्होंने अपना निश्चल पातिव्रत धर्म पालन का परिचय दिया है। रावण का प्रबल प्रताप, मधुर प्रलाप, भयानक ताड़ना, भयावनी राक्षसियों की भीषण यन्त्रणा एवम् स्वर्ण पुरुष लंका का विभव इन के मन को किंचिन्मात्र भी चलायमान नहीं किया। और ये श्री रामचन्द्र के प्रति अटल प्रेम से तनिक भी विचलित नहीं हुईं। यह इन के पातिव्रत का ही बल था कि त्रयलोक-विजयी महाबली रावण को भी जिन के नाम से कंपकंपी भी नहीं लगता था ये सबदा धिक्कार देने को समर्थ हुईं। कहीं तो सीता के समान धीर ललना को उस के सामने चूं करने का भी कब साहस होता![1] इन्होंने न विरहानल में दग्ध हो कर अपने प्रखर प्रेम का परिचय ही दिया है वरन् धधकती हुई आग में सहर्ष प्रवेश कर इन्होंने अपने प्रेम तथा पातिव्रत का प्राबल्य जगत पर प्रकट कर दिया है। इसके अनन्तर गोसाईं जी ने वाल्मीकि के आश्रम में रख कर इन की पुनः परीक्षा की आवश्यकता नहीं रखी है।

इस चित्र से यह भी शिक्षा मिलती है कि कैसी ही पतिपरायणा भी क्यों न हो, पति की रुचि के विरुद्ध एक भी काम करने से चाहे वह विशुद्ध प्रेम के ही आवेग के कारण हो, उसे अवश्य दुःख झेलना पड़ता है। तब जो स्त्री अपनी कुचालों से सुखमय सदन को प्रायः विकट श्मशान बनाये रहती है उसकी क्या गति होगी!

रामचन्द्र—ये ग्रन्थ के प्रधान नायक हैं। इनका चित्र सर्वांगपूर्ण है और बड़े विभागों से दर्शनीय है। महत्त्वपूर्ण, इसी कारण से नहीं कि ये ब्रह्म के अवतार माने जाते हैं, किन्तु विशेषतः इस कारण से कि एक राजवंश में जन्म ग्रहण कर इन्होंने शिष्य, पुत्र, भ्राता, पति, प्रभु, मित्र आदि अनेक रूपों से अपने महान् कार्यों के द्वारा हृदयस्पर्श उपदायी ऐसी सद्शिक्षाएं प्रदान की हैं कि सहस्रों वर्ष व्यतीत होने पर आज भी उन का दृष्टान्त जन से महान् लाभ उठा रही है। ऐसा सर्वांग शिक्षा सुदृढ़ मिलना दुष्कर है। भला रामचन्द्र जैसा सुशील, गम्भीर, आज्ञाकारी गुरुभक्त, पितृभक्त, मातृभक्त, मित्रस्नेही, भ्रातृवत्सल, दास वत्सल, स्वजन रक्षक और मित्र सुखदायक एक ही पुरुष कहाँ बन है! संसार का कौन देश और कौन जाति ऐसा सद्गुण सम्पन्न आदर्श चित्र लोगों के समक्ष में उपस्थित कर सकती है।

इनकी गुरुभक्ति तथा गुरुसेवा विश्वामित्र के एक तुच्छ दास के समान आज्ञाकारी होने एवम् परीक्षादि के सम्मान में प्रकट रही हैं।

---

१ कश्चिते मम मैथिलि दृष्ट्वा पारियम मद।

होने को उठ खड़ी हुईं। परन्तु सास का निरादर नहीं किया। उनसे आज्ञा माँगने के लिये उनके समीप जा कर सजलाश्रु चुप चाप बैठ रहीं। स्वयम् धर्मपरायणा स्नेहमयी सास इस सुकार्य में क्या बाधा दे सकती थीं! रामचन्द्र ने बैराग्यास विचार कर इन्हें घर रखना चाहा जिसमें ये सासादि की सेवा कर उन्हें कुछ सुख पहुँचा सकें और सहज स्नेह से वन की विपत्तियों का भी वर्णन किया। परन्तु पतिसेवा सुखद जानकर इन्हों ने सविनय कहा।—

"जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहिं तरनिहु ते ताते॥
तन धन धाम धरनि अरु राजू। पति विहीन सब सोक समाजू॥"

पतिवियोग दुःख के सामने पतिव्रता को किसी अन्य दुःख का क्या ध्यान हो सकता है! इन्हों ने बहुत ही ठीक कहा—

"नाथ साथ सुर सदन सम, परनसाल सुखमूल।"[1]

और अधिक क्या कहें—

"राखिय अवध जो अवधि लगि, रहत जानिये प्रान।"

और वन में मुझे दुःख होगा हाय '—

"मैं सुकुमार नाथ बनजोगू। तुमहिं उचित तप मोकहँ भोगू॥"

अहा! कैसा मधुरभाषण है! कितना सहजस्नेह टपक रहा है

सीता जी आप धन्य हैं और आपका अनुकरण कर के जो स्त्रियाँ पातिव्रत धर्म्म में लगी रहती हैं और लगी रहें एवम् आपही के प्रति अनसूया का यह वाक्य—

"अमितदान भर्त्ता बैदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही॥"

स्मरण रख कर कार्य्यवर्तिनी हों वे भी धन्य हैं, और धन्य हैं आपके सच्चरित्र के चित्रकार गोसाईं जी जिन्हों ने एक विदेशीय पादरी रेवरेन्ड एडविन ग्रीव्स से भी यह कहला दिया कि क्यों नहीं! सभी पतिव्रता स्त्री दुःख और सुख में अपने नाथ के साथ क्यों नहीं रहें! मेरी समझ में सम्पूर्ण रामायण में ऐसी सुन्दरता और रोचकता कहीं नहीं मिलती जैसी इस स्थान में दिखलाई देती है।'

सीता जी ने कई अग्नि परीक्षाएँ पास कर ऐसा सच्चरित्र प्राप्त किया है। राजभवन में अनन्त सुख भोगते हुए इन्हों ने सहजस्नेह और सेवा से पति को प्रसन्न रखा है। वाल्मीकि जी कहते हैं कि दशरथ ने कौशल्या के सम्बन्ध में कहा था कि 'यह दासी सखी, भगिनी और माता की तरह हमारी सेवा करती है। सीताजी में भी निस्सन्देह ये गुण वर्तमान थे। आज भी अधिकांश हिन्दू महिलायें इन इन शुभ गुणों से वञ्चित नहीं हैं और किसी प्रकार से पति की सेवा करने में लज्जा नहीं करती। समाज संशोधक महाशय चाहे उनकी हवाई दुर्दशा वर्णन

---

[1] एक अन्य कवि ने भी कहा है:—

"दूर घर घर उपवन परिपोषूर। पिय की छाँह जसिरहीं सुख को मूर॥"

कर नित्य आँसू बहाया करें और उनके पति भी उन्हें केवल काम प्रदर्शिनी मात्र ही मानने का गौरव प्रदान किया करें परन्तु ये पतिसेवा को अपना मुख्य धर्म्म समझती हैं और पति उन्हें सहधर्म्मिणी तथा गृहलक्ष्मी मानते हैं। फिर सब सुख को तिलाञ्जलि दे वनवासिनी हो, पति के संग वन वन घूम कर इन्हों ने अपने प्रेम, धर्म्म तथा सेवा से पति को संतुष्ट रखा है। और इस पद के अनुसार— 'है जरा कोठा मुहब्बत में ये कैसा 'होशियार'। आखिरी हिज्रां में खूब इसको तपा कर देख लो ॥

अशोक वाटिका में पतिवियोग के धधकते हुए ज्वाले को चिरकाल सहन कर इन्हों ने अपने निश्चल पातिव्रत धर्म्म पालन का परिचय दिया है। रावण का प्रबल प्रताप, मधुर प्रलाप, भयानक ताड़ना, भयावनी राक्षसियों की भीषण यन्त्रणा एवम् स्वर्ण सुरम्य लंका का विभव इन के मन को किञ्चिन्मात्र भी चलायमान नहीं किया। और ये श्री रामचन्द्र के प्रति अटल प्रेम से तनिक भी विचलित नहीं हुईं। यह इन के पातिव्रत का ही बल था कि त्रयलोक-विजयी महाबली रावण को भी जिस के नाम से देवलोक भी थर्रा उठता था ये सदा धिक्कार देने को समर्थ हुईं। नहीं तो सीता के समान भीरु ललना को उस के सामने चूं करने का भी क्या साहस होता ? [1] इन्हों ने विरहानल में दग्ध हो कर अपने प्रखर प्रेम का सिक्का नहीं डाला है वरन् धधकती हुई आग में सहर्ष प्रवेश कर इन्होंने अपना प्रेम तथा पातिव्रत का प्राबल्य जगत पर प्रकट कर दिया है। इसके अनन्तर गोसाईं जी ने वाल्मीकि के आश्रम में रख कर इन की पुन परीक्षा की आवश्यकता नहीं समझी है।

इस चित्र से यह भी शिक्षा मिलती है कि कैसी ही पतिपरायणा स्त्री क्यों न हो पति की रुचि के विरुद्ध एक भी कार्य्य करने से चाहे वह विशुद्ध प्रेम के ही आवेग के कारण हो, उसे अवश्य दुःख झेलना पड़ता है। तब जो स्त्री अपनी कुचालों से सुखमय सदन को प्राणपीड़क श्मशान बनाये रहती है उसकी क्या गति होगी ?

रामचन्द्र—ये ग्रन्थ के प्रधान नायक हैं। इनका चित्र महत्वपूर्ण है और बड़े विभागों से दर्शनीय है। महत्वपूर्ण, इसी कारण से नहीं कि ये ब्रह्म के अवतार माने जाते हैं, किन्तु विशेषतः इस कारण से कि एक राजवंश में जन्म ग्रहण कर इन्हों ने शिष्य पुत्र, भ्राता, पति, प्रभु, मित्र आदि अनेक रूपों से अपने महान् कार्य्यों के द्वारा गृहस्थधर्म उपयोगी ऐसी सद्‌शिक्षाएं प्रदान की हैं कि सहस्रों वर्ष व्यतीत होने पर आज भी यह जनसमाज उन से महान लाभ उठा रही है। ऐसा सजीव 'शिक्षा गुरु' मिलना दुष्कर है। भला रामचन्द्र जैसा सुशील, गम्भीर, आज्ञाकारी गुरुभक्त पितृभक्त मातृभक्त, प्रियाप्रेमी, भ्रातृवत्सल दास वत्सल, सज्जन परित्राण और मित्र सुखदायक एक ही पुरुष कहां पाते हैं ! संसार का कौन देश और कौन जाति ऐसा सद्गुण सम्पन्न आदर्श चित्र मनोयोगों के नेत्रपथ में उपस्थित कर सकती है।

इनकी गुरुभक्ति तथा गुरुसेवा विश्वामित्र के एक मुख्य छात्र के समान आज्ञाकारी होने एवम् वशिष्ठादि के सम्मान में झलक रही है।

---

१ अनलो सर्व तमांसि दग्ध्वा पातिव्रत मद ।

पितृभक्ति ही तो इस अनुपम चित्र की मुकुटमणि है। जिस समय इन्हें राज्याभिषेक होने को था उसी समय इन की विमाता ने इन के पिता को पहले प्रतिज्ञाबद्ध करा के इन के वनवास का वर माँग लिया। विमाता ही से यह सम्वाद सुन कर खेद विस्मय रहित प्रसन्नचित्त आप कहने लगे—

"सुनु जननी सोइ सुत बड़ भागी। जो पितु मातु वचन अनुरागी ॥

वनगमन में हानि ही क्या है? वहाँ तो मुनियों के दर्शन का अधिक अवकाश और आनन्द मिलेगा मेरा सब प्रकार से हित साधन होगा, और वनवास के लिये पिता की आज्ञा होने से और उस में हे माता! तुम्हारी सम्मति होने से यह तो और सोने में सुगन्ध मिल गया। मैं अभी वन की यात्रा करता हूँ।' बस अपनी माता का दर्शन कर और उनकी आज्ञा ले पतिपरायणा पत्नी तथा भ्रातृभक्त भाई के संग वनगमन के लिये तैयार हो गये। होते क्यों नहीं? राज्यप्राप्ति का लोभ थोड़े ही था। वह तो पहिले ही से कह रहे थे—

'विमलवंस यह अनुचित एकू। बंधु बिहाय बड़ेहि अभिषेकू ॥"

विषय में अनुरक्ति भी तो नहीं—

"नाहिन राम राज के भूखे। धर्म धुरीन विषय-रस-रूखे ॥"

और भरत के राज पाने में आनन्द ही था—

"भरत प्रानप्रिय पावहिं राजू। विधि सब विधि मोहि सन्मुख आजू ॥"

वाह रे भ्रातृभाव! वाह रे पितृभक्ति! केवल यही एक चरित्र इन के चित्र को अमर करता है। और चरित्रों की बात दूर रखिये। इन के इसी चरित्र से मोहित होकर एक सुविख्यात यवन सज्जन ने एक बार एक समाचार पत्र में लिखा था कि 'क्या यह मनुष्य का काम है!'

इनकी मातृभक्ति भी ऊपर की घटना से परिलक्षित होती है और मातृप्रेम के विषय में तो स्वयम् कैकेयी जी ने कहा है—

"कौसल्या सम सब महतारी। रामहिं सहज सुभाय पियारी ॥"

और—

"मो पर करहिं सनेह बिसेषी।"

फिर—

"तुम अपराध जोग नहिं ताता। जननी जनक बंधु सुखदाता ॥"

इन्हीं के कारण वनवास होने पर भी उनके प्रति राम प्रेम में कुछ कमी नहीं हुई और सब माताओं पर पूर्ववत् तथा तुल्य स्नेह बना रहा। इसी से वन जाते समय बार२ हाथ जोड़ कर सबों से इन्हों ने यही विनय किया :—

"मातु सकल मोरे विरह, जेहि न होहिं दुख दीन।
सोइ उपाय तुम करेहु सब, पुरजन परम प्रवीन ॥"

सीता जैसी सुशीला पतिव्रता पत्नी पा कर भी यदि इन में पत्नी प्रेम का अभाव होता तो ये आदर्श पुरुष कैसे होते? ये उन्हें भी प्यार करते थे और उन्हें प्रसन्न तथा सन्तुष्ट रखने की सदा चेष्टा भी किया करते थे। वरन् उनके प्रसन्न करने के उद्योग ही में इन का अपहरण भी हुआ। ऐसे नारीरत्न के वियोग में इनका भारी विलाप कलाप कोई आश्चर्य की बात नहीं। निश्चय ऐसी प्रियतमा सहधर्मिणी के निमित्त इन को काल से लड़ने के लिये उद्यत होना उचित ही था—

"एक बार कैसेहु सुधि जानौं। कालहु जीति निमिष महँ आनौं।"

और इसी सीता के कारण महाराजजी रावण से भयंकर युद्ध कर इन्होंने उस का सपरिवार संहार भी किया। इन्होंने अपनी प्रियतमा को अपने हृदय के सिंहासन पर बिठाया था सही, परन्तु इन्होंने अपना मस्तक उस के हाथ में नहीं दे दिया था और न उस के प्रेमवश आप सब परिवार से मुँह मोड़ बैठे थे। ये भाई को श्री से बढ़ कर समझते थे। हा! आज कितने स्थानों में नारी के घर में प्रवेश करते ही एक उदर का पालन-पोषण-वाला भाई एक घर में वास नहीं करने पाता, एक स्तन से और एक गोद में पला हुआ भाई एक हाँडी से एक चौका पर खान नहीं पाता

परन्तु रामचन्द्र के हृदय में भ्रातृप्रेम भरा था। इसलिये लंका में घनघोर युद्ध हो रहा है लक्ष्मण शक्ति बाण से संज्ञाशून्य भूतल में पड़े हुये हैं हनुमान संजीवनी बूटी लाने गये हैं। यहाँ रामचन्द्र भाई की दशा देख अधीर हो फूट फूट कर रो रहे हैं और कह रहे हैं —

"मम हित लागि तजेउ पितु माता। सहेउ बिपिन हिम आतप बाता॥
जौं जनितेउँ बन बन्धु बिछोहू। पिता बचन मनितेउँ नहिं ओहू॥
सुत बित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा॥
अस बिचारि जिय जागहु ताता। मिलहिं न जगत सहोदर भ्राता॥"

हमारे रामायणी भाई लोग इस स्थान पर तो अवश्य माथा खपाने को तैयार हो जाते हैं कि लक्ष्मण तो सहोदर नहीं थे गोसाईं जी ने ऐसा क्यों लिखा या रामचन्द्र ही ने ऐसा क्यों कहा! परन्तु इस के सदुपदेश को स्वप्न में भी ग्रहण नहीं करते। अरे भाई! रामचन्द्र 'सौतेले' को 'सहोदर' मान उस के जीवन के सामने स्त्री नारी तथा परिवार को तुच्छ बता रहे हैं और तुम दिन रात रामायण पाठ करने पर भी सहोदर को 'सहोदर' ही नहीं समझते और राम के उक्त अमृत के सदृश वचन में भी ध्यान नहीं करते।

भरत भी रामचन्द्र के 'प्राणप्रिय' थे। जिस समय चित्रकूट में भरत को ससैन्य आते देख लक्ष्मण भी क्रोध वश से युद्ध करने को तैयार हुये हैं उस समय भरत जी का शील स्वभाव वर्णन करते रामचन्द्र प्रेमयोग में मग्न हो गये हैं। भरत जी के प्रति भी ये हृदय से सदैव रहते हैं। और यह भी कहा है कि—

"भरत सरिस को राम सनेही। जग जप राम राम जप जेही॥"

वे पुरजन तथा प्रजाजनों को इतना प्यार करते थे कि इन के वनवास होने का समाचार सुनते ही सबलोग विह्वल हो गये इन के साथ चल दिये और बड़ी कठिनाई से वे उन लोगों से अपना पिण्ड छोड़ा सके और लक्ष्मण जी को भी वे प्रजा के सुख के ध्यान ही से अवध में रखना चाहते थे। क्योंकि इन्हों ने कहा था—

"जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥"

यह विचार इन का उस समय था जब ये केवल राजकुमार थे। यह वाक्य नितान्त प्रीति और नीति गर्भित है।

इन की नीति निपुणता के विषय में यह भी कहा जा सकता है कि अवसर पड़ने पर किसी के संग प्रीति मिताई करने में वे संकोच नहीं करते थे। इन्हों ने निषाद तथा वनचरों से प्रीति की सुग्रीव से मिताई कर भालु बानरों को भी अपना बनाया और शत्रु के बन्धु को शरण प्रदान कर इन्हों ने राज नीतिज्ञता का पूरा परिचय दिया। परन्तु जिस से मित्रता हुई वह निष्कपट मित्रता हुई; केवल स्वार्थ साधन के लिये नहीं और वह जन्म भर निबाही गई। एवम् अपना यह कथन—

"जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहिं बिलोकत पातक भारी॥"

सदा सार्थक किया गया।

ये सच्चे प्रेम के बड़े भूखे थे इसी से इन्हों ने शबरी का जूठ खाया और अपने हाथ से गीध का दाह-संस्कार किया। और सचाई में तनिक खोटाई देखने से इन्हें कभी-कभी क्रोध भी आता था। इसी से सुग्रीव के सम्बन्ध में इन्हों ने कहा था—

'जेहि सायक मैं मारा बाली। तेहि सर हतौं मूढ़ कहँ काली॥"

और कुछ ऐसे ही कारण से समुद्र पर भी कोप हुआ था। संसार में कार्य्य साधन के लिये नरम और गरम होना दोनों ही आवश्यक हैं। किसी एक के सर्वथा अभाव से काम नहीं चल सकता। शेख सादी ने कहा है—

"दुरश्ती ओ नर्मी बहम दर बिहस्त।"

अर्थात् गरमी और नरमी का संयोग उत्तम होता है।

दूसरों का दुःख इन के अन्तःकरण में पीड़ा होती थी। इसी से मुनियों के मुख से वन के क्लेश का हाल सुन कर इन्हों ने निशचर विहीन पृथ्वी करने की प्रतिज्ञा की और सुग्रीव की पीड़ा ही देखकर बालि का भी वध किया। परन्तु ओट में होकर वध क्यों किया? यह कथा ले कर हम यहाँ विवाद करना नहीं चाहते। इसका उत्तर स्वयं गोसाईं जी तथा आदि कवि ने देने की चेष्टा की है। वे चाहें सन्तोष-दायक हों, या न हों हम यहां पर यही कहेंगे कि इनके चरित्र में ऐसी कोई बात नहीं रहने से ये हमलोगों से बहुत दूर ऊँचे चले जाते और आदर्श चित्र न हो कर केवल परब्रह्म हो रह जाते। ये बात इन्हें अभिप्रेत नहीं थी क्योंकि ये संसार के मर्यादार्थ संसार में विराजमान हुये थे।

भरत जी—रामायण में यह एक अलौकिक दर्शनीय चित्र है। सद्भाव विशुद्ध भ्रातृभक्ति तथा स्वार्थत्याग एक ही कलेवर में मूर्तिमान रहता है। कैकेयी जी में चाहे दोष क्यों न हो

केवल भरत के समान एक सन्तान प्रगट करने से वे हमलोगों की सर्वथा पूजनीया हो गई हैं। राम की कुचाल से जो भरत जी पर कलंक की टीका लगने की सम्भावना थी उसे इन्होंने स्वार्थ त्याग तथा रामचन्द्र के प्रति निश्छल प्रेम प्रदर्शन कर सर्वथा निर्मूल कर दिया। इन के सद्गुणों को तो लोग पहले ही से जानते थे परन्तु यह इन की जाँच का अवसर था और इस जाँच में भी ये पक्के निकले।

ननिहाल से आने पर अपनी माता का दर्शन पाते ही ये पूछते हैं —

"कहु कहँ तात कहाँ सब माता। कहँ सिय राम लखन प्रिय भ्राता॥"

और माता के मुख से पिता की परलोक यात्रा का हाल सुन कर उस का कारण पूछते हैं उस समय राम के वनवास का वृत्तान्त श्रवण कर—

"भरतहि बिसरेउ पितु मरन, सुनत राम बन गौन।"

इतना ही नहीं। विनाप्रयत्न राज को लोगों के आग्रह करने पर भी इन्होंने स्वीकार नहीं किया और परिवार तथा पुरजन समेत रामचन्द्र की सेवा में पहुँच कर वहाँ इन्होंने ऐसा विशुद्ध प्रेम का परिचय दिया कि सब से इन्द्र का भी कलेजा काँपने लगा कि कहीं ऐसा न हो कि इन के प्रेमपाश में फँसकर रामचन्द्र अवध लौट जाँय और देवों का बना बनाया काम मिट्टी में मिल जाय। अतएव वे फिर सरस्वती की शरण में दौड़े कि वे सहायता करें। शारदा ने कहा कि तुम्हें हजारों आँखें रहते हुए भी नहीं सूझती ? ये क्या कुचक्र किए जाते हैं कि इन पर हमारा दाव चलेगा ? जब रामचन्द्र ने अवध लौटने या नहीं लौटने का विचार इन्हीं पर छोड़ दिया तब धर्मज्ञ भरत जी उन्हें संकोच में डाल कर अपना प्रेम जताना उचित न समझ उन की खड़ाऊँ ले कर लौट आए एवम् इन्हीं पादुकाओं को सिंहासन पर विराजमान कराया। उधर रामचन्द्र १४ बरस वन वन घूमते रहे इधर भरत जी जटा वल्कल धारण किये नन्दीग्राम में समय व्यतीत करने लगे। कवि ने इन के विषय में इसी भाव में बहुत कुछ कह दिया है—

"जौं न होत जग जनम भरत को। सकल धरम धुर धरनि धरत को॥"

संसार में ऐसा स्वार्थ त्याग अलभ्य है।

ये बलवान भी ऐसे थे कि इन का बिना फल का बाण लगने से हनुमान जी द्रोण पर्वत समेत पृथ्वी पर मूर्छा से गिर पड़े थे और उस समय इन्होंने कहा था कि "यदि सर्वथा सहित मेरे बाण पर चढ़िके मैं तुरन्त आप को पहुँचा सकता हूँ।

लक्ष्मण—ये भी भी आज्ञाकर स्नेहपूर्ण भ्रातृ अग्रज अनुरक्त में आत्मविस्मृत और संसारविरक्त हो रहे थे। इन का भाव सब समय में लक्ष्मण से प्रगट होता गया है। इन्होंने स्वप्नमय कभी में इन्होंने उस कभी प्रगट नहीं किया है। ये रामचन्द्र के छाया स्वरूप थे, राम के बिना इन्हें एक क्षण भी चैन नहीं पड़ती थी। इसी से राम के वनवास का वृत्तान्त सुन कर ये व्याकुल हो उठे हैं और अधीर हो उन का चरण पकड़ते हैं। रामचन्द्र इन्हें नाना प्रकार करते हुए इन्हें घर में रहने की सम्मति देते हैं। परन्तु बिना राम के इन्हें चैन कहाँ ! वे वन में इन्हें साथ ले जाने और वे रामराज्य में [illegible] नगर [illegible] है। लक्ष्मण भी कहते हैं कि "आप स्वामी हैं मैं दास हूँ, मुझे नीति शिक्षा देना सर्वथा उचित है। परन्तु बात यह है—

"गुरु पितु मातु न जानौं काहू। कहउँ सुभाय नाथ पतिआहू॥"

क्या जो इस प्रकार से चरणों में रत हो उसे त्याग करना उचित है? इन के प्रेम के कारण रामचन्द्र को इन्हें साथ रखना ही पड़ा। किन्तु यह विकलता क्यों? ये तो सुख-दुःख में समान नहीं रहते थे। ठीक है। यह विकलता उपस्थित या भावी विपत्ति के कारण नहीं, भ्रातृ सेवा से वञ्चित होने की आशंका से थी। नहीं तो हम लोग इन्हें अधीर कब पाते हैं? विराध के चंगुल में सीताजी के फँस जाने एवम् रावण द्वारा अपहृत होने पर भी तो हम इन्हें रामचन्द्र को समझाते ही पाते हैं।

वे राम के बड़े आज्ञाकारी भ्राता थे। इस ने इन्हें वन के विकट वन में दुष्कर दुष्कर काम करते, उन के इशारे से सूर्पणखा की नाक कान काटते उन का रुख देख लङ्का में सीता के अग्नि-प्रवेश के लिये चिता बनाते देखा है।

अपने प्रति वे किसी का अपराध सहन भले ही कर लें परन्तु राम के प्रति किसी का अपराध क्षमा करने को वे तैयार नहीं थे। इसी से सीता जी के मर्म वाक्य को तो इन्हों ने सह लिया परन्तु सुमंत से दशरथ के विषय में कड़ी बातें कहते इन्हें कुछ संकोच नहीं हुआ।

वे निर्भीक तेजस्वी धीरवीर, उत्साही साहसी पुरुषार्थी तथा बुद्धिमान पुरुष थे। उन की निर्भीकता एवम् तेज आदि का प्रकाश धनुर्यज्ञ में खूब देखने में आया है। राजाओं की बकवादी देख—

"अरुन नयन भृकुटी कुटिल, चितवत नृपन सकोप।
मनहुँ मत्त गजगन निरखि, सिंह किसोरहि चोप॥"

और परशुराम जैसे क्षत्री-कुलघातक कोपी वीर पुरुष से निडर हो कह रहे हैं —

"इहाँ कुम्हड़ बतिया कोउ नाहीं। जो तरजनी देखि मरि जाहीं॥"

इन की वीरता लङ्का में देखने में आती है। विशेषतः जब वे शपथ करके कहते हैं कि आज मेघनाद का अवश्य वध करूँगा और राम मुख उसे भू शायी बना ही दिया है।

अपने पौरुष और बल पर भरोसा करना भी इन में विद्यमान था। समुद्र से रास्ते माँगने के समय इन्हों ने रामचन्द्र से बेखटके कह दिया है—

"नाथ दैव कर कौन भरोसा। सोषिय सिंधु करिय मन रोसा॥
कादर मन कहँ एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा॥"

इस गिरी हुई अवस्था में अपने उचित बल और पौरुष पर भरोसा कर देश दशा सुधारने की शिक्षा मनुष्य इनसे महण कर सकता है। इन के इस बात से यह स्पष्ट विदित होता है कि यद्यपि इन की राय रामचन्द्र से नहीं मिलती थी तथापि यह अपनी मति प्रकाश कर देने में भय नहीं करते थे परन्तु सड़ सड़कर उन से विरोध करने को तैयार नहीं हो जाते थे।

ये दोनों पुरुष भ्रातृ भक्ति के आदर्श चित्र हैं। स्वार्थत्याग तथा आत्मसम्मान का नया पाठ इन पर पढ़ा हुआ है। दोनों अपने विशेष प्रभा से दैदीप्यमान हो रहे हैं। एक कोई सुन्दर मनोरम मधुर फल के समान है और एक स्निग्ध व पुष्टिकर खाद्य पदार्थ के तुल्य है।

जब हम एक को बिना प्रयत्न राज्य को परित्याग कर तपस्वीरूप धारण किये नन्दीग्राम में राम के ध्यान में मग्न देखते हैं और दूसरे को निज इच्छा से वनवास स्वीकार कर धनुष-बाण लिये योगी वेष में भ्राता के पीछे वन-वन घूमते उन के दुःख और कष्ट के भागी होते अपनी जान को हथेली पर रखे उन के कार्य साधन के लिये प्रबल शत्रुओं के संग संग्राम करते निरीक्षण करते हैं, तो हमारी बुद्धि चकरा जाती है। हम इन दोनों महापुरुषों को सचमुच स्वर्गीय जीव एवम् आदर का कम तथा परम पूजनीय देवता मानते हैं। ऐसी उज्ज्वल तथा प्रबल भ्रातृभक्ति होने ही से कवि ने भरत के विषय में कहा है कि—

"अगम सनेह भरत रघुवर को। जहँ न जात मन विधि हरिहर को।"

और रामलक्ष्मण ऐसे 'एक जान दो कालिब' होगये हैं कि सीता तथा भरत के बिना राम की कल्पना हो सके तो हो सके परन्तु लक्ष्मण के बिना राम कहाँ? इसी से सीता राम से अधिक राम लक्ष्मण का इस देश में प्रचार है। वे उनके नित्य के काम में मिल गये हैं।

... जिस देश में भ्रातृभक्ति के ऐसे २ आदर्श हैं वहाँ विरोध वश एक भूरि भूमि के लिये भाई, भाई का गला घोटने को उद्यत हो जाते हैं एवं पिर संचित पवित्र धन तथा निजी पार्थिव सम्पति पर पानी फेर देते हैं। क्या उन्हें रामायण से सुन्दर शिक्षा देने वाला कोई नहीं है? क्या रामायण की कथा बाचनेवाले व्यास महाशय कभी अपने श्रोताओं का ध्यान इन बातों की ओर भी आकर्षित करते हैं? क्या रामायण-पाठीगण इन सद् शिक्षाओं का कभी मनन करते हैं? क्या सीता जैसी अकलङ्क राजकिशोर पतिपरायण एवम् कुमारी की झाँकी ही से अपने को कृतार्थ और जगत् का कल्याण समझते हैं? हम भ्रातृस्नेह में इस पार नहीं पाते?

श्री राम, सीता, भरत तथा लक्ष्मण जी के सद्गुणों पर मुग्ध हो कर ग्राउस साहब ने गोसाईं जी कृत मानस रामायण के अँगरेजी अनुवाद की उपक्रमणिका में जो लिखा है, वह पाद नोट में उद्धृत कर दिया जाता है।[1] साहब के कथन का सारांश यह है कि कोई इन लोगों की पूजा न करे सही परन्तु इन के सद्गुणों की सराहना सभी करेंगे। हम कहते हैं कि इन्हें कोई ईश्वरावतार या ईश्वरांश होना स्वीकार करे या नहीं परन्तु अपने अलौकिक सद्गुणों से ये लोग अवश्य ईश्वरत्व तथा देवत्व को प्राप्त हैं और सबसे पूजित होने के योग्य हैं।

---

1 All may admire though they may refuse to worship the piety and unselfishness of Bharat, the enthusiasm and high courage of Lakshaman the affectionate devotion of Sita—that paragon of all wife like virtues—and the purity meekness, generosity and self-sacrifice of Rama the model son, husband and brother the guileless king high self-contained and passionless the Arthur of Indian Chivalry —Introduction to english translation of Ramayan by Tulsidas P XX published by Ram Narayan Lal.

हिन्दू समाज में चिरकाल से घर घर इन की पूजा होती आती है और अवश्य होनी चाहिये। इन्हीं लोगों में श्रद्धा भक्ति रखने इन्हीं की पूजा करने एवम् इन महा पात्रों के पुरुषार्थों से सद् शिक्षा ग्रहण करने तथा उन का अनुकरण करने से हमलोगों का उभय लोक में कल्याण हो सकता है।

हनुमान जी—एक कवि ने सेवा धर्म्म की कठिनाई के विषय में कहा है —'मौना न्मूर्खः प्रवचनपटुर्वातुलो जल्पको वा क्षान्त्या भीरुर्यदि न सहते प्रायशो नाभिजातः । धृष्टः पार्श्वे वसति नियतं दूरतश्चाप्रगल्भः सेवाधर्म्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ॥'

हनुमान जी रामचन्द्र के सेवक थे। पहले ये वानरराज सुग्रीव के मंत्री थे और इन्हीं के द्वारा रामचन्द्र तथा सुग्रीव में मित्रता स्थापित हुई। जब से इन्हें रामचन्द्र का साथ हुआ वे सदा भक्ति पूर्वक अश्रान्त रूप से उन की सेवा में दत्तचित्त रहे। राम की सेवा किये बिना वे विश्राम नहीं पाते थे। वे बड़े साहसी महावीर चतुरचूड़ामणि तथा प्रभुभक्त थे। अकेले मार्गस्थ विघ्नों को दमन करते सुरक्षित लङ्का में प्रवेश कर सीता का पता लगाना लङ्का दग्ध करना, द्रोण पर्वत का उठा लाना इन के साहस बल, वीरता और चातुर्य का पूरा परिचय दे रहे हैं। राम के सम भक्तालाप के समय एवम् लङ्का में रावण के साथ बातचीत करने में हमें इन की विद्या बुद्धि का एक अंदाज मिला है। इन्हों ने एक ही एक मुष्टि का मार रावण कुम्भकर्ण मेघनाद प्रभृति योद्धाओं को व्याकुल कर अपने महावीर नाम का सार्थक किया है। इनकी अकपट प्रभुभक्ति ही से सुग्रीव राज्य प्राप्त कर सके और उस पर अधिकार रखने को समर्थ हुए और इसी भक्तिसेवा से सन्तुष्ट हो कर रामचन्द्र ने कहा—

"सुन कपि तुहि समान उपकारी। नहीं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥
प्रति उपकार करौं का तोरा। सन्मुख होइ न सकत मन मोरा॥"

जिन्हें रामचन्द्र स्वयम् ऐसी सर्टिफिकेट देते हैं उन के विषय में दूसरे किसी को अधिक कहने का क्या आवश्यता है। इन का स्मारक स्वरूप चिन्ह हनुमान गढ़ी आज भी भी अवध में विराजमान है।

अङ्गद—वानर राज बालि के पुत्र तथा सुग्रीव के भतीजे थे। बाल्यावस्था ही में वे युवराज के पद से भूषित हुए थे। बालि ने रामचन्द्र से कहा था कि यह बालक मेरे ही समान बली और विनयी है। यह बात प्रायश ही देखने में आई। इन्हों ने अपने शील स्वभाव और कार्यों से रामचन्द्र को निरन्तर सन्तुष्ट किया। इन का बल पराक्रम तो इसी से प्रकट है कि रावण की भरी हुई सभा में इन के पृथ्वी पर एक बार हाथ पटकने से रावणादि सभी लोग मुह के बल गिर पड़े और इनके पांव रापने पर कोई उसे तिल भर भी हटाने को समर्थ नहीं हुआ। बार रावण के स्वयम् उठने पर इन्हों ने एक ही बात कह कर "कि मेरा पद पकड़ने से तुम्हारा कल्याण नहीं है।" उसे ऐसा लज्जित कर दिया कि वह अपना सा मुह ले कर बैठ गया। यह इनकी चतुराई थी और इसी चतुराई के विचार से रामचन्द्र ने इन्हें पूरा अधिकार दे कर रावण के पास दूत भेजा था और उस समय कहा भी था कि —

"बहुत बुझाय तुम्हैं का कहऊं। परम चतुर मैं जानत अहऊं।"

रावण के साथ सम्भाषण करने में इन्होंने ने अपनी बुद्धिमानी, वाक्यपटुता और हाज़िर जवाबी प्रदर्शित की है। रणक्षेत्र में भी हमने इन्हें हनुमान जी के समान उत्साह और उमंग के साथ युद्ध करते एवम् बल विक्रम प्रकाश करते देखा है। तब इन्होंने समुद्र किनारे क्यों कहा था :—

"जिय संसय कछु फिरती बारा।"

इस का उत्तर देना रामायणियों के बाँटे में है उन्हीं से पूछ लीजिये।

जाम्बवन्त—ये भालुओं के राजा थे। ये वृद्ध और बड़े बली थे। युद्ध काल में रामचन्द्र ने इन्हें अपना मंत्री बनाया था। इन्हीं की सम्मति से लक्ष्मण के शक्ति लगने पर लंका के वैद्य सुषेन लाये गये थे और इन्हीं ने हनुमान को लंका जाने के लिये प्रोत्साहित किया था। वृद्धावस्था होने पर भी इन्होंने एक बार मेघनाद को त्रिशूल प्रहार से मूर्छित कर और उसका पैर पकड़ कर उसे लंका पर फेंक दिया था। अपनी जवानी का बल तो इन्होंने वानरों से स्वयं वर्णन किया है।

सुग्रीव—रामचन्द्र से मिताई कर के अपने भाई का वध कराकर इन्होंने किष्किन्धा का राज्य प्राप्त किया था। परन्तु राज्य पाकर ये विषयासक्त हो गये थे। हनुमान ने नीति ज्ञान का उपदेश करके इन्हें फिर ठिकाने पर लाया था। इन्होंने वानरी सेना से रामचन्द्र की पूरी सहायता कर अपनी कृतज्ञता दिखाई थी और रणक्षेत्र में ये शूर वीर थे। ये रामचन्द्र के प्रधान युद्ध मंत्री और सेनाध्यक्ष थे।

विभीषण—ये रावण के छोटे भाई थे। रावण से अपमानित होने पर राम से मिलकर इन्होंने अपने कुल परिवार का नाश कराया। सुग्रीव और विभीषण यद्यपि भी राम के भक्त थे और इन लोगों से रामचन्द्र को लंका विजय में अच्छी सहायता मिली तथापि इन लोगों की भक्ति हनुमान और अङ्गद के समान स्वार्थशून्य नहीं थी। कहां भरत और लक्ष्मण का स्वर्गीय चित्र और कहां ये बन्धु घातकों का चित्र! परन्तु इन चित्रों को दिखा कर भी कवि हमलोगों को सुन्दर शिक्षा प्रदान कर रहे हैं। घर में विरोध होने से कदापि कल्याण नहीं होता। अतएव घर के किसी व्यक्ति के संग ऐसा बर्ताव करना उचित नहीं जिस से वह शत्रु बनकर सर्वनाश करा डाले।

परन्तु ये लोग कैसे कार्यों से इनके विरुद्ध उठे इस की भी कुछ आलोचना उचित है। सुग्रीव के पक्ष में तो यह कहा जा सकता है कि बालि उन की [1] स्त्री और सब सम्पत्ति छीन कर इन्हें चैन से कहीं रहने भी नहीं देता था परन्तु विभीषण के सम्बन्ध में ऐसा नहीं कहा जा सकता। रावण इन्हें बहुत आदर मान से रखता था। उस ने इन्हें अपनी सभा का मंत्री नियुक्त किया था। इन के रामभजन में भी बाधा नहीं डालता था और ये पूरे मैनाम रामभजन करने वाले थे। यदि यह बात नहीं होती तो हनुमान जी इन का गृह

1 वाल्मीकीय रामायण से वर्णित होता है कि पहले सुग्रीव ने बाली की स्त्री को ग्रहण किया था समुद्र किनारे वानरों के सङ्ग अङ्गद का वार्तालाप पढ़ लीजिये।

रामायुधमन्दिर नहीं देख सकते और न इन्हें रामनाम जपते ही सुनते विभीषण ने जो यह कहा कि—

"सुनहु पवनसुत रहनि हमारी । जिमि दसनन्हि महँ जीभ बेचारी ॥"

तो इस से भी यही अनुमान होता है कि जैसे सर्वदा दाँतों से घिरे रहने पर भी जीभ को क्लेश नहीं होता और वह स्वतंत्रतापूर्वक अपना कार्य्य किया करती है वैसे ही दुराचारी राक्षसों से सदा घिरे रहने पर भी इन्हें भजन भाव में बाधा नहीं होती थी ।

रावण को तो सब लोग ही समझाते रहे परन्तु उसने लात तो किसी को नहीं मारी । इन को लात मारने का कारण यह ही सकता है कि उसे यह समाचार अवश्य मिल गया था कि इन्हीं ने हनुमान जी को सीता का भेद बताया था और ये गुप्तरूप से शत्रु से मिले हुये थे तथा राज्यद्रोही थे । यदि रावण ने अन्याय ही से इन्हें लात मारी थी तौभी पिता के तुल्य भ्राता को जिस की कृपा से ये इतने काल तक सुख भोगते रहे ऐसे कुसमय में परित्याग कर और शत्रु के संग मिलकर राक्षस कुल के संहार का इन्हें उपाय बताते रहना उचित नहीं था । इन में कालोचितता की गंध भी नहीं पाई जाती । बोध होता है, विभीषण का यह कार्य्य दिनों से निन्दनीय समझा जाता है । वाल्मीकि जी ने मेघनाद के मुख से तथा गोसाईं जी के समसामयिक केशवदास ने रामचन्द्रिका में लव के मुख से इन्हें बहुत धिक्कारित कराया है । गोसाईं जी को भी यह बात कुछ अवश्य खटकी है । इस का आभास गीतावली में देखा जाता है । रामायण में तो उन्होंने कुम्भकर्ण के सम्मुख इन्हें अपनी सफाई के लिये ले जाकर उस से इन्हें धन्यवाद और 'कुलभूषण' की पदवी दिलवाई है । परन्तु मदों में चूर रहे मदमत्त कुम्भकर्ण का धन्यवाद ही क्या ? लंका निवासी सब राक्षस इन्हें कुलभूषण समझते हों तब तो ।

इन का कार्य्य निःस्वार्थ तथा उचित तब समझा जाता जब ये सीता के लंका में आते ही उस की खबर श्री रामचन्द्र को पहुँचा देते । या लव के कथनानुसार[1] उसी दम कुल परित्याग कर देते । बात यह है कि जब इन्होंने देखा कि रामचन्द्र पहुँच गये और यहाँ पर अवश्य अधिकार कर लेंगे तब एक महात्मा होकर अपने स्वार्थसाधन के लिये उन से आ मिले तथा इन्होंने लात मारने से तो रावण को त्याग किया परन्तु उस की भार्य्या को अपनी गृहिणी क्यों बनाया ? सुग्रीव ने तो खैर, बदला चुकाने के लिए ऐसा किया होगा और वे बानर थे परन्तु ये तो, उत्तम कुलोद्भूत, पुलस्त्य मुनि के वंशपरम्परागत व्रती थे अपने भाई रावण के समान दुराचारी भी नहीं सुने जाते । श्री रामचन्द्र का इन लोगों के आन्तरिक अभिप्राय के विचार से इधर ध्यान नहीं गया हो परन्तु स्वयम् गोसाईं जी को इन लोगों की यह करतूति खल ही प्रतीत हुई है । इसी से उन्होंने कहा है—

"जेहि अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली । फिरि सुकंठ सोइ कीन्ह कुचाली ॥
सोइ करतूति विभीषण केरी । सपनेहु सो न राम हिय हेरी ॥"

---

1 केशवदास कृत रामचन्द्रिका देखिये ।

यदि गोसाईं जी इस चित्र पर भक्ति का गाढ़ा रोगन न फेरे होते तो यह चित्र दृष्टिपात के योग्य भी नहीं होता।

रावण—लंका का अधीश्वर दृढ़संकल्प महा-बल-शाली, काम निर्भर सुपण्डित वाक्पटु तथा नीतिज्ञ था। इसने तप भी बहुत किया था किन्तु अभिमानी होकर धर्म विमुख और अत्याचारी हो गया था। सूपनखा के मुख से उसके अपमान तथा खरदूषण के वध का हाल एवम् रामचन्द्र का वृत्तान्त सुन कर वह क्रोधाभिभूत हो गया और सोचने लगा कि मेरे तुल्य बलवन्त खरदूषण को सिवाय ईश्वर के कौन मार सकेगा?

"सुर रञ्जन भञ्जन महिभारा। जो जग नाथ लीन्ह अवतारा॥
तो मैं जाय बयर हठ करऊँ। प्रभु के सर भव सागर तरऊँ॥
भजन न हो यहि तामस देहा। मन वच कर्म मन्त्र दृढ़ एहा॥"

फिर क्या था? सीता को अपहरण कर इस ने राम से बैर की ठान ही तो दी और अपने संकल्प पर ऐसा दृढ़ रहा कि न उस ने हनुमान जी के समझाने पर ध्यान दिया न अङ्गद के उपदेशों को कान किया। स्त्री पुत्र भाई मन्त्री सगे सम्बन्धी सब समझा कर हार गये परन्तु वह सभी की बातों को हँसी में उड़ाता गया। वरन् विभीषण को इसी कारण पाद प्रहार भी किया। यह सत्य है कि नीतिज्ञ होने पर भी उस ने यहाँ पर नीति का समुचित विचार नहीं किया। ऐसे समय में उस भाई को रुष्ट करना नहीं चाहता था। परन्तु जब उस ने जान बूझ कर बैर बढ़ाया था और जब वह कहता था कि—

"निज भुजबल मैं बैर बढ़ाया। देहुँ उतर जो रिपु चढ़ि आया॥"

तब उसे नीति विचार की किसी आवश्यकता भी तो नहीं कहा जा सकता। रङ्गशाला में उस का मुकुट अकस्मात् गिरने से अन्य सभासदों के उदास होने पर उस ने साभिमान कहा था—

"सीस गिरे सन्तत सुभ जाकू। मुकुट गिरे कस असगुन ताकू॥"

अपार बल विभीषण पर वानर द्वारा अपनी मृत्यु की रेखा स्वप्न मात्र में देख कर उस ने कहा था कि ब्रह्मा बाबा मूढ़ हो गए स्त्री से उन्होंने अमङ्गल रेखा लिख दिया है। रणक्षेत्र में इस ने वह वीरता और युद्धकौशल प्रदर्शित किया कि अन्त समय तक देव और दानवों को सन्देह ही बना रहा कि देखें किस दल का विजयलक्ष्मी वरण होती है।[1] रामचन्द्र जी के सिवाय दूसरा कोई योद्धा इसका समकक्ष नहीं था और यह मारा भी गया तो उन्हीं के हाथ से। यदि यह वेद तथा शास्त्रज्ञानी ऋषि मुनियों का ऐसा अत्याचारी नहीं

1 "ग्रियर्सन साहब ने लिखा है कि इसने जातीय धर्म करके अति वीरता पूर्वक युद्ध किया अतः मिल्टन कवि ने अपने महाकाव्य में दुष्टात्मा का वर्णन किया है।"

होता तो वह निश्चय पूजा के योग्य था। और एक विचार से तो आज भी वह हमलोगों के धन्यवाद का भागी है। यदि यह न होता तो रामचन्द्र भी नहीं होते और रामचन्द्र आदि के समान आदर्श चित्र भी हम लोगों को सुलभ नहीं होते और न गोसाईं जी की कल्याण-कारिणी तथा मनोहारिणी कविता ही जगत को प्राप्त होती।

अङ्गद के संग बात चीत के समय बराबर बरजस्त जवाब देने में इसकी वाक्यपटुता देखी गई है।

कुम्भकर्ण—यह भीमकाय महाबलवन्त योधा, रावण का छोटा भाई था। यह छः महीना सोया करता था। इस युद्ध के समय यह बहुत यत्न से जगाया गया। रावण की कार्रवाई पर इसने खेद तो प्रकट किया सही परन्तु इस कुसमय में भाई को परित्याग करना इस ने उचित नहीं समझा और अकेले ही रामचन्द्र की सारी सेना से लड़ने के लिए चला आया। रणभूमि में इस ने महाविक्रम प्रकाश किया। सैकड़ों वानरों को पकड़ २ अपने मुखों में और भूतल पर मसलमसल कर प्राण-रहित कर दिया। सब विस्मित वानर वीरों को अचेत कर प्रधान सेनापति सुग्रीव को काँख में दाब मानो रावण का बदला चुकाने ही के लिए गढ़ की ओर ले चला था। ऐसी विशाल सेना से अकेले ही बिना शस्त्र धारण किये संग्राम करने की जिसके शरीर में शक्ति हो ऐसा दूसरा कोई व्यक्ति नहीं सुना गया।

मेघनाद—यह प्रबल पराक्रमी पितृभक्त, रावण का पुत्र था। सुभटों में इस का प्रथम स्थान था। इस ने देवराज इन्द्र का गर्व चूर कर 'इन्द्रजीत' पद प्राप्त किया था। यह पिता का बड़ा ही आज्ञाकारी पुत्र था इस से जो कुछ कहा जाता था उसे यह तुरंत ही कर डालता था। पिता की आज्ञा का उल्लंघन या खंडन यह कभी नहीं करता था। इसी से यह पिता का स्नेह-भाजन बना था। ऐसा सुशील आज्ञाकारी पिता का यश और नाम बढ़ानेवाला पुत्र भाग्य ही से प्राप्त होता है। हम यहाँ पर इस के धर्म्म अधर्म्म का विचार नहीं करते। जो हो यह पैतृक धर्म्म ही का अनुयायी था।

कवि ने सूपनखा को निर्लज्जता की मूर्ति बनी दी है और लक्ष्मण के हाथ से उसकी नाक और कान कटवा कर उसे यथोचित दंड भी दिलवाया है। भक्त लक्ष्मण सिंह ने लिखा है कि पिता की प्रतिज्ञा पालन के लिए राज परित्याग कर वन की प्रशंसा नहीं करनी तो असम्भव है; परन्तु रावण के संग युद्ध करके जिस का अपराध केवल यही मालूम होता है कि उसने अपनी बहन के प्रति अयोग्य अपमान का बदला लिया इतना रुधिरपात की उचित समर्थन करना दुष्कर है।[1] हमारे जानते यह अयोग्य अपमान तब होता जब राह चलत या बैठे २

[1] It is impossible not to admire the feeling which prompted Ram to relinquish the honour of sovereignty ——in order that the promise given by his aged sire might be fulfilled. But it is difficult to justify so much blood-shed in the war that he waged against Rawan whose only fault seems to have been that he revenged a wanton insult to his sister &c —Life of Guru Govind Sinha Chap. XXV P 141

रामचन्द्र या लक्ष्मण उस की नाक के साथ ऐसा व्यवहार करते, इसी प्रकार उसके या उसकी नाक कान काटते। कोई भी सभ्य या शिक्षित इस बात को सहन नहीं करेगा कि जहां वह प्रिय पत्नी, माता, बन्धु या किसी भ्राता ही के संग बैठा हो वहां एक कुलकलंकिनी कामुकी कुनारी पहुँच कर उससे प्रेमपाश जोड़ने और प्रीति रीति करने की प्रार्थना करे, हठ करे और बल प्रयोग करने पर उद्यत हो जाय। लक्ष्मण ने तो नाक कान काटना उचित समझा परन्तु हमारे भाई लक्ष्मण सिंह ऐसी अवस्था में क्या करते उसका आदर करते या अपमान यह जानने की हमारे पाठकों को निश्चय बड़ी उत्कंठा होगी।

इसी प्रकार कवि ने मंथरा को कुटिलता के सांचे में ढाला है और शत्रुघ्न जी की लात से उस का कूबड़ और दांत भी तुड़वाया है।

इस का कार्य भी किसी २ को सराहनीय तथा उचित बोध होता है। और वे कहते हैं कि इस ने अपनी स्वामिनी का हित साधन किया था। परन्तु प्रथम तो उस का इस से कुछ हित साधन नहीं हुआ। दूसरे यदि इसने अपनी अज्ञानता के कारण पहले कुछ कहा भी था तो कैकयी के यह कहने पर—

"जेठ स्वामि सेवक लघुभाई। यह दिनकर कुल रीति सुहाई॥
राम तिलक जो सांचहु काली। देउं मांगु मन भावति आली॥"

इसे चुप रह जाना चाहिए था। परन्तु इस के पेट में कुटिलता भरी थी। इस पर भी वह अनेक प्रकार की मिथ्या बातें कहती ही गई यहां तक कि राजा दशरथ को भी—

"मन मलीन मुंह मीठ नृप,"

अर्थात् कुटिल कह ही डाला और दाम्पत्य प्रेम में विघ्न डालकर सकल परिवार को तथा स्वामिनी को भी विपत्ति-वारिधि में डुबा दिया। तीसरे यदि इसका कार्य सराहनीय है तो अनुकरणीय भी अवश्य ही है। परन्तु इस के कार्य के प्रशंसकों के घर भी यदि उनकी कोई दासी इसका अनुकरण कर के उन के गृहस्थ सुख परिस्थितियों के मध्य कोई झगड़ा खड़ा कर उन के सम्बन्धों को एवम् उन को डांवाडोल करने की चेष्टा करे तो क्या वे लोग या कोई दूसरा प्राणी उस दासी के काम की प्रशंसा करेगा? कदापि नहीं। अतएव हम मंथरा को स्वामिनी हितकारिणी होने की सर्टिफिकेट देने में सहमत नहीं हैं।

इस ग्रंथ में परोपकार के महान आदर्श सम्पाति और जटायु हैं जिन लोगों ने दूसरों का निःस्वार्थ उपकार करने में अपने प्राणों का भी बलिदान कर दिया है।

रामायण [illegible] चित्रों पर ध्यान देने से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि [illegible] तथा [illegible] के निमित्त ही इस ग्रंथ की रचना हुई है और इसकी [illegible] में लग्न हो कर इस के पात्रगण आज भी [illegible] उपाख्यानों से [illegible] के पुरुषोत्तम [illegible] सत्यता, सज्जनता, धीरता वीरता, उदारता सहनशीलता दयालुता आदि की सुन्दर शिक्षा प्रदान कर रहे हैं।

त्रयोदश परिच्छेद

रामायण का आदर और प्रचार

गोसाईं जी को पहले ही से विश्वास था कि सज्जन रामचरित मानस से प्रीति रक्खेंगे और असज्जन इस की अवश्य ही निन्दा करेंगे। इसी कारण से इन्हों ने कहा है —

"छमहहिं सज्जन मोर ढिठाई। सुनिहहिं बाल बचन मन लाई॥
जौं बालक कहि तोतरि बाता। सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता॥
हँसिहहिं कूर कुटिल कुविचारी। जे पर दूषन भूषन धारी॥"

और

"पैहहिं सुख सुनि सुजन सब, खल करिहहिं उपहास।"

इन का यह विश्वास ठीक ही हुआ। सज्जन लोग बालक की तोतरी बोली सी ही इसे सुन कर प्रसन्न नहीं हुये वरन् उन्हों ने इस ग्रन्थ को बहुमूल्य सदुपदेशरत्न-पूर्ण एक सुन्दर मंजूषा समझा और आज भी समझते हैं एवम् इस पर आन्तरिक प्रेम रखते हैं। परन्तु कूर कुटिल इसकी निन्दा करने से नहीं चूके।

भाषा में लिखे जाने के कारण काशी के तत्कालीन पण्डितगण भी इन की निन्दा में मस्त थे। गोसाईं जी को इस का भी भय पहले ही से था और इसी से इन्होंने कहा भी है —

"भाषा भनिति मोर मति भोरी। हँसिबे जोग हँसे नहिं खोरी॥" [1]

सुनते हैं कि एक दिन एक संस्कृतज्ञ पण्डित जी मणिकर्णिका घाट पर स्नान करते समय इनसे [illegible] भी कहे थे कि 'संस्कृत के पण्डित हो कर आप ने अपना ग्रन्थ गँवारी भाषा में क्यों लिखा? इन्हों ने कदाचित उत्तर दिया था कि मेरी गँवारी भाषा अमृतपूर्ण होने पर भी संस्कृत के [illegible] वाले ग्रन्थों से अच्छी ही है क्योंकि :—

"मनि भाजन विष पारई। पूरन अमी निहारि।
का छाँड़िय का संग्रहिय, कहहु विवेक विचारि॥"

---

1 गोसाईं जी के समकालीन कवि केशवदास जी को भी हिन्दी भाषा में रचना करने में भय हुआ था। उन्हों ने भी कहा है —

'भाषा बोल न जानहीं जिनके कुल के दास।
भाषा कवि भो मन्द मति तेहि कुल केशवदास॥

सच तो यह है कि इन्हें अपना पाण्डित्य प्रदर्शन की ममता नहीं थी। इन्हें पाठकों को लाभ पहुँचाना और जगत का उपकार करना अभिप्रेत था। अतएव यदि ये इस ग्रंथ की रचना संस्कृत में करते तो इस से इतने उपकार की सम्भावना नहीं थी। इसी से संस्कृतज्ञ होने पर भी इन्होंने भाषा में जन साधारण के समझने योग्य भाषा में इस की रचना की। इसी अभिप्राय से विलायत में १५२२-३४ के बीच में लूथर के बाइबिल और १५२५ ई० में टिंडल के न्यू टेस्टामेंट की रचना हुई थी। और इसी कारण से लैटिन में कविता करने को समर्थ होने पर भी मिल्टन ने देश प्रचलित भाषा में ही अपनी पुस्तकों की रचना की जिस में अधिकांश लोगों का उपकार हो।

फिर रामायण की प्रामाणिकता में भी बहुत-से पण्डित सहमत नहीं थे तब कदाचित रात को यह ग्रंथ विश्वनाथ जी के मन्दिर में रखा गया और भोर को इस पर उन की 'स्वीकृति' लिखी देखी गई, तब लोगों को हार माननी पड़ी।[1] हमारे सब पाठक सम्भवतः यह बात मानने को तैयार न होंगे। परन्तु महाराज गोपाल दास कृत 'रामायण माहात्म्य' का यह कथन कि 'पहले बहुत से पंडितों ने इस ग्रंथ का आदर नहीं किया तब 'आनन्दकानन' काशी ब्रह्मचारी[2] ने इसकी प्रशंसा में यह श्लोक लिख दिया —

'आनन्दकानने कश्चिज्जङ्गमस्तुलसीतरुः।
कविता मञ्जरी यस्य रामभ्रमरभूषिता॥'

सब लोग इसका आदर करने लगे" मानने में किसी को हिचक नहीं होगा। इस श्लोक का अनुवाद स्वर्गीय काशीराज श्रीमान् महाराजा ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह जी ने इस प्रकार किया है —

---

1 बिहारी सतसई के सम्बन्ध में भी यह किम्वदन्ती प्रसिद्ध है कि जयसाह जी की सभा के प्रधान नामक एक कवि ने बिहारी जी के देखा-देखी एक सतसई की रचना कर कोलाहल मचाया कि उसकी ही सतसई उत्तम थी। इस पर बिहारी जी के प्रस्तावानुसार रात को दोनों ग्रंथ श्री युगल किशोर के समीप रख दिये गये और प्रातःकाल देखा गया कि बिहारी के ग्रंथ पर श्रीयुगलकिशोर का हस्ताक्षर बना हुआ है। इसी समय बिहारी ने यह दोहा बनाया— 'नित प्रति एकत ही रहत, बैस बरन मन एक। चहियत जुगल किशोर लखि लोचन जुगल अनेक॥' व्यास अम्बिकादत्त लिखित 'बिहारी बिहार' की भूमिका का पृ० १०—और देखिये।

२ बेणीमाधव दास के अनुसार मधुसूदन सरस्वती ने गोसाईं जी से शास्त्रार्थ में परास्त होकर इन की प्रशंसा में इस श्लोक की रचना की। पं० रघुवंश जी ने यही बात कह कर इस श्लोक को इस प्रकार लिखा है —'परमानन्दपत्रोऽयं जङ्गमस्तुलसीतरुः' इत्यादि। पं० महादेव प्रसाद ने कवि का नाम नहीं लिखा है और उन के अनुसार 'कविता' के स्थान में 'ललिता' है।

"तुलसी अंगम तरु लसे, आनँद कानन खेत।
कविता जाकी मंजरी, रामभ्रमर रस लेत॥"

आदि में किसी ग्रन्थ का विशेषतः गूढ़ ग्रन्थों का, यथार्थ गुण सर्वसाधारण नहीं समझ सकते और न उस का आदर ही कर सकते। उस के समझनेवालों की संख्या अल्प ही होती है। और यदि कोई प्राणी पूर्व प्रचलित प्रथा का उल्लंघन कर कोई रचना करे एवम् कोई नई राह निकाले तो वह अधिकतर हास्यास्पद तथा निन्दास्पद होता है। प्राचीन प्रथा के अनुयायी उसे नीचा दिखाने को प्रायः जलनशील हो जाते हैं। ऐसी रचनाओं का आगामी सन्तति विशेष आदर करती है। ज्यों २ काल व्यतीत होता जाता है ऐसे ग्रन्थों के आदर सम्मान में वृद्धि होती जाती है। इसी से सुकवि भिखारीदास कायस्थ ने कहा है—

"आगे के सुकवि रीझैं तो तो कविताई,
ना तो राधाश्याम गाइबे को सुन्दर बहानो है।"

इसी प्रकार से गोसाईं जी कृत 'रामचरित मानस' को पहले आदर की दृष्टि से देखनेवाले आनन्दवनवासी मधुसूदन सरस्वती नाभाजी आदि[1] गिने गिनाये ही महात्मा होंगे। सब कैसे समझते। परन्तु भविष्यत् में जब इस का अमूल्य गुण लोगों पर धीरे-धीरे प्रकट होने लगा तब तो केवल सुकवि ही क्यों वरंच सर्वसाधारण भी इसपर लट्टू होने लगे और इनका कवित सीतारामयशकीर्तन का सुन्दर बहाना ही नहीं हुआ वरन् इस का मुख्य कारण तथा परम सहायक हो गया और हो रहा है।

आज कलकत्ता से पंजाब पर्यन्त एवम् हिमालय से नर्मदा पर्यन्त जहां सुनिये रामायण ही रामायण उच्चारण हो रहा है। इतनी दूरी में इस का प्रबल अधिकार तो है ही अन्य प्रान्तों में भी इस का अवश्य कुछ न कुछ प्रचार पाया ही जाता है। क्या राजा क्या रंक, क्या बाल क्या वृद्ध क्या युवक क्या युवती सब अवस्था तथा सब जाति के लोग इसे पढ़ते और इस का आदर करते हैं। कहीं बड़े महाशय व्यासगद्दी लगाय अपने श्रोताओं को रामायण की कथा सुना रहे हैं कहीं गाँवों में ढोल और झाल बजा-बजाकर झूम-झूमकर चिल्ला २ कर लोग इस का गान कर रहे हैं; कहीं दो-चार प्राणी ही किसी पेड़ के तले बैठे यह ग्रन्थ बाँच रहे हैं कहीं कोई एकान्त में शान्तभाव से इस के गूढ़ तत्त्वों को विचार

---

[1] भक्तमाला रामरसिकावली तथा पं० ज्वालाप्रसादजी की बड़ी रामायण के अनुसार एक पंडित से शास्त्रार्थ के लिए महादेव जी के स्वप्नादेश से गोस्वामी जी मुखिया बनाये गये। इन्हीं ने एक शिष्य को पांच पान देकर सब लोगों को बांट देने को कहा। बांटने पर पांच पान ज्यों का त्यों बना रहा। यह देख उस पंडित ने शास्त्रार्थ करना अस्वीकार किया। गोसाईं जी ने उन्हें अपनी रामायण दी। पंडित ने सब पक्षों का खण्डन मण्डन उसी में पाया। उन्होंने यह श्लोक बनाया और वे गोसाईं जी के शिष्य भी हो गये।

पान बांटने से तो गोसाईं जी का पाण्डित्य प्रकट नहीं हुआ? इन की करामात देखी गई। तब पण्डित जी शास्त्रार्थ से भागे क्यों?

रहे हैं। कहीं कोई रामायण समाज ही[1] स्थापित कर बैठे हैं और रामायण के विषयों पर व्याख्या हुआ करती है। कहीं कोई इस के सदुपदेशों पर मोहित हैं, कहीं कोई इस के काव्य लालित्य ही पर वाह-वाह कर रहे हैं, कहीं कोई किसी दोहा चौपाई के अर्थ ही के विचार में मग्न हो रहे हैं। कहीं आँगन में बैठी हुई कोई महिला ही मधुर स्वर से इसे पढ़ रही है और छोटे २ बालक बालिकाएँ उस के निकट बैठ कभी इस का पाठ सुनती हैं और कभी खेल-कूद के लिए इधर उधर दौड़ जाती हैं। शायद कोई नगर नहीं, कोई ग्राम नहीं, जहाँ नित्य प्रति ऐसी लीला नहीं होती हो। ऐसा घर कोई विरला ही होगा जहाँ एक दो प्रतियाँ रामायण की नहीं पायी जायँ। कोई पठित अथवा अपठित व्यक्ति नहीं होगा जिसे रामायण के दो चार दोहे या चौपाइयाँ कंठस्थ न हों और जो यथावत उदाहरण प्रमाण और व्यवहार में उन्हें व्यवहृत नहीं करता हो। रामायण के सैकड़ों वाक्य[2] कहावत में परिणत हो गये हैं।

रामायण केवल कवितारस के प्रेम ही से नहीं पढ़ी जाती। यह धर्म का एक अङ्ग और धर्मशास्त्र की एक प्रधान पुस्तक हो रही है। बहुतों ने रामायण के आद्योपान्त पाठ का नियम कर लिया है और इस का नित्य पाठ किया करते हैं। धर्मशास्त्र ही क्यों? समाज नीति, व्यवहारनीति, राजनीति, सब नीतियों का शास्त्र कहलाने का यह अधिकारी है। गोसाईं जी ने सब प्रकार के नीतिवाक्यों को आप ग्रन्थों से लेकर इस में इस रीति से समावेशित किया है कि सहज में सब की समझ में आ जावे। इसी से यह ग्रन्थ नरनारी सब को रुचिकर हो रहा है, सब प्रकार के मनुष्य अपनी रुचि के अनुकूल इस में उपयोगी बातें पाते हैं और इस के पाठ से आनन्द उठाते हैं। ऐसा सर्वजन-प्रिय और कोई ग्रन्थ नहीं देखा जाता।

---

१ पूना में 'रामचरित मानस' का अध्ययन कराने वाली एक महाराष्ट्र मण्डली है। श्री अयोध्या में तुलसी सत्संग एवम् राजापुर में 'तुलसी स्मारक सभा' है। इन सबों का उद्देश्य गोस्वामी जी रचित रामायणादि के पठन पाठन का प्रचार एवम् गोसाईं जी से सम्बन्ध रखने वाले स्थानों की रक्षा ही है।

२ कुछ उदाहरण देखिये :— होइहि सोइ जो राम रचि राखा; प्रभुता पाइ काहि मद नाहीं; सब ते अधिक जाति अपमाना; होइ न कृपा देवेहि बानी, परवस्या अनेक जग माहीं; बाँझ कि जान प्रसव की पीरा; समरथ को नहिं दोष गोसाईं; जस दूलह तस बनी बराता; पराधीन सपनेहु सुख नाहीं; जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई; का बर्षा जब कृषी सुखानी; मन मलीन तन सुन्दर कैसे, विष रस भरा कनक घट जैसे; मूँदिय आँखि कतहुँ कछु नाहीं; देह जानि संका सब काहू; मूलन पाम परा जनु पानी; कोउ नृप होउ हमैं का हानी; हित अनहित पशु पंछिहु जाना; हृदै न मानहिं आदर माथा; मद गति लेहि सुमुंदर कैसी; सब सुर काज भरत के हाथा; सुरनर मुनि की यही रीती, स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती; जिमि दसनन मँह जीभ बिचारी; जस पाये धन खल बउराई; समुझे खग खग ही की भाषा; जो इच्छा राखहु मनमाहीं हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं। इत्यादि।

लाखों जन इसे अपना जीवन सर्वस्व समझते हैं, करोड़ों इसी का आश्रय ग्रहण कर कतिपय कुत्सित कर्मों से बचते हैं। कितने इस के पाठ से विरक्त साधु बन जाते हैं एवम् कितने पण्डित ज्ञानी कहलाने लग जाते हैं। कोई २ इस के द्वारा उच्चाटन, वशीकरण आदि का प्रभाव बता कर नवाह, सप्ताह बिठाकर इस अमूल्य रत्न का दुरुपयोग भी करने में संकोच नहीं करते। परन्तु ऐसे कुत्सित कार्यों के साधन के लिये गोसाईं जी ने इस अलभ्य पदार्थ को प्रकट नहीं किया, यह निर्भीक रूप से कहा जा सकता है।

रामायण विद्याप्रचार में भी कम सहायक नहीं है। स्कूल की पाठ्य पुस्तकों में इस ग्रन्थ के अवतरण मात्र दिये जाते हैं। महाराष्ट्री, गुजराती तथा बंगभाषा की पुस्तकों में भी इस के अवतरण तथा भाराश समावेशित किये जाते हैं। कलकत्ता विश्वविद्यालय की एन्ट्रेन्स परीक्षा की गौणभाषाओं (Second Languages) में जब हिन्दी भी सम्मिलित थी तब उस की परीक्षा के लिये रामायण ही पाठ्य-पुस्तक नियत होती थी। सिविलियन लोगों के हिन्दी में हाइप्रोफिशियेन्सी (High proficiency) तथा डिगरी आव आनर (A Degree of Honour) की परीक्षा के लिये जिनमें क्रमश १) और १ ••) पारितोषिक दिया जाता है, रामायण एक प्रधान पाठ्य-पुस्तक है।

ग्रियर्सन साहब ने लिखा है कि 'इस की सुख्याति उपयुक्त होने में तनिक भी सन्देह नहीं है। अपने देश में इस ने सब ग्रन्थों पर प्राधान्य लाभ किया है और सर्व साधारण पर इस का ऐसा प्रभाव पड़ रहा है कि उसे बढ़ा चढ़ा कर कहना कठिन कार्य है'[1] विलायत में जितना बाइबिल का प्रचार है उससे कहीं अधिक बंगाल और पंजाब एवम् हिमालय और विन्ध्य के मध्यस्थ प्रदेशों में इस महान ग्रन्थ का प्रचार है।"[2]

एक स्थान में उन्होंने ऐसा भी कहा है कि 'जैसे युरोप के पादरी लोग बाइबिल को आदरणीय समझते हैं वैसे ही भारतवासी इसकी प्रशंसा करते हैं।" सत्य ही और वैसे ही क्यों! यहां तो आर्य्य लोग अक्षत चन्दन पुष्प धूप दीप और नैवेद्य से देवताओं के समान इस की पूजा करते हैं आरती करते हैं। इस का कारण है कि जिस से धर्म्म तथा विद्या का प्रचार आचार व्यवहार का सुधार समाज का उपकार नीतिरीति का सुन्दर परिष्कार और भवरोग से निस्तार हो वह निस्सन्देह बड़े आदर और सत्कार की वस्तु है।

---

१ I do not think that there can be any doubt as to its reputation being deserved. In its own country it is supreme over all other literatures and exercises an influence which it would be difficult to describe in exaggerated terms—J R. A. Society 1903 P 45

२ Over the whole of the Gangetic valley his great work (the Ramayan) is better known than the Bible is in England.
—Ibid, P 459

जिस समय गोसाईं जी का आविर्भाव हुआ था उस के पूर्व ही से मुसल्मानों के संसर्ग से हिन्दू समाज में डाँवाडोल मचा हुआ था। हिन्दुओं पर अत्याचार हुआ करता एवम् कई मत भी निर्मित होकर धर्म के नाम पर कुत्सित कर्म और व्यवहार का प्रचार करने लगे थे। अन्य २ धर्म्म सम्प्रदाय भी अपने २ ढंग से धर्मरक्षा में लगे हुये थे। इन के पूर्व श्री १०८ रामानन्द स्वामी जी वैष्णव धर्म्म के रक्षक और प्रचारक हो गये थे परन्तु रामनाम में प्रेम तथा विश्वास उपजाने वाला एवम् तथा उस समय उत्कृष्ट सद्धर्म्म का प्रचार करने वाला गोसाईं जी से बढ़ कर कोई नहीं हुआ। इन्हों ने उस धर्म्म को पूर्व से परिपक्व रूप बना लिया। इन्हों ने बड़े २ उपदेशों तथा कथनाओं का आश्रय ग्रहण नहीं किया इन्हों ने किसी विशेष सम्प्रदाय की नींव नहीं डाली क्योंकि इनके पूर्ववर्ती सब धर्म्म प्रचारक तो अवश्य इस यत्न में प्रवृत्त रहे कि धर्म प्रचार के झगड़ों को दूर कर जीवों का कल्याण करें परन्तु सम्प्रदाय की [illegible] बनी ही रही और इस से पूरी सफलता नहीं हुई। ये जहां तहां दौड़ कर शास्त्रार्थ भी नहीं करते फिरे और इन्हों ने भिन्न २ प्रान्तों में भ्रमण कर दिग्विजय का डंका भी नहीं बजाया। परन्तु स्वार्थियों के दुख से दुखित होकर इन्हों ने कुछ काल ही [illegible] अवलम्बन किया।

आप एकाग्र चित्त हो श्री प्रभु के माधुर्य्य को अपने हृदयमन्दिर में स्थापित कर अपनी कविता के सहारे चिन्तामणि रूपी कल्पवृक्ष के समान दुखियों का दुख दूर करने दुखियों को यथाशक्य सुखी बनाने एवम् वर्तमान तथा भविष्यत् काल के दुखों और उत्पातों को देखते सोचते एवम् अनुभव करने के भाव बनाकर यथाशक्य उपकारी रह और सदा धार्मिक समाज के उत्थान में दत्तचित्त हुये। ईश्वर ने इन्हें इस काम में सफलता भी दिया।

इन्हों ने रामायण में यह [illegible] ऐसा [illegible] किया कि ज्यों २ ग्रन्थ की मधुर सुगन्ध फैलने लगी, लोग मुग्ध हो भ्रमर की भांति [illegible] करने लगे। आज लगभग ३ [illegible] वर्ष से यह कविता समस्त भारतों को आनन्दित कर रही है एवम् [illegible] से लोगों के हृदय तथा मस्तिष्क को [illegible] करके [illegible] धर्म तथा सदाचारी बना रहा है। [illegible] है कि ऐसे समय में जब कि [illegible] का [illegible] के समागम [illegible] हुआ [illegible] हिन्दुओं का [illegible] हिन्दुओं का [illegible] करता था जब [illegible] के झगड़ों से लोगों की बुद्धि भ्रमित हो रही थी [illegible] में [illegible] ही में ईश्वर की [illegible] थे, [illegible] तथा [illegible] भी [illegible] का [illegible] था और लोग एक दूसरे को घृणा की दृष्टि से देखने लग [illegible] के [illegible] सम्प्रदाय के [illegible] रखने का [illegible] किया जिस से लोग आज [illegible] भी [illegible] क्योंकि [illegible] के [illegible] धर्म की [illegible] हिन्दू धर्म्म एवम् [illegible] पर निरन्तर [illegible] रही है। [illegible] को [illegible] है कि [illegible] सम्प्रदाय के अनुयायी क्या [illegible] क्या [illegible] क्या [illegible] क्या [illegible] क्या [illegible] —सभी [illegible] विशेष [illegible] का [illegible] करते और इस में [illegible] पर [illegible] मान है। जो [illegible] है उस का [illegible] ही क्या है। [illegible] ने [illegible] कहा है —

"हर कृपा परमार पथर होगी, मधु मो मुग्ध भो मोर गिरायन्द ॥"

तत्कालीन मतमतान्तर की धधकती हुई ज्वाला का आप ने अपने शीतल उपदेशामृत से ऐसा ठंढा किया कि फिर वह प्रबल रूप से कदापि प्रज्वलित नहीं होने पाई। रामायण में जहाँ देखिये वहाँ यही पुकार है कि श्रीराम तथा शिव में द्वेषबुद्धि नहीं, श्री शिवजी भी राम को हृदयासन पर बिठाये हुये हैं और कह रहे हैं :—

"रघुकुल मनि मम स्वामि,"
तथा—"सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी।"

एवम् श्रीरामचन्द्र भी रामेश्वर की स्थापना करते हैं और कह रहे हैं —

"शिव द्रोही मम दास कहावे। सो जन सपन मोहि न पावे ॥"

श्रीराम तथा शिव में इन्होंने कैसा घनिष्ठ सम्बन्ध दिखलाया है यह इसी आधी चौपाई से प्रगट है :—

"सेवक सखा स्वामि सियपिय के।"

अब शेष क्या रहा जो कहें। फिर आपने जनकनन्दिनी से गिरिराजकिशोरी को जगज्जननी कहलाकर और उन की पूजा करवा कर शाक्तों का मन ठंढा किया है और नाममाहात्म्य का अद्भुत बखान कर नामोपासक निराकारवादियों को भी आप ने सन्तुष्ट कर रखा है। श्रीराम तथा श्रीकृष्ण की अभेदता की बात पाठक पहले ही सुन चुके हैं।

पं० सत्यदेवजी ने बहुत ही ठीक लिखा है कि "जैसे श्रीमति स्टाउवेल का उपन्यास उत्तरीय तथा दक्षिणीय अमेरिका से हबशी गुलामों का वाणिज्य रोकने का कारण हुआ जैसे हाल ही में अपटन सिंक्लेयर ने अपने उपन्यास के बल से शिकागो के कसाईघर का सुधार कराया जैसे एमिली ने सार्थोगिन उपन्यास द्वारा शिक्षा के प्राकृतिक ढङ्ग का प्रचार किया जैसे इटली की स्वतंत्रताप्राप्ति का कारण गिबनकृत 'रोमनराज का उत्थान और पतन (Decline and fall of Roman Empire) नामक ग्रन्थ हुआ जब अनेक उपन्यासों के द्वारा ईसाई धर्म्म की श्रेष्ठता प्रतिपादित हुई वैसे ही गोसाईं जी की रचनाओं ने शैव तथा वैष्णवों के परस्पर झगड़े एवम् रामोपासक तथा कृष्णोपासक के परस्पर वैमनस्य और और रागद्वेष का दूर कर एवम् हिन्दूधर्म्म की श्रेष्ठता पूर्णरूपेण प्रतिपादित कर देश को महान लाभ पहुँचाया।

इसी से ग्रियर्सन साहब ने लिखा है कि "भारतवर्षीय धर्म्मोन्नति के इतिहासों में जो आगम तुलसीदासजी को प्रदान किया जाता है उस से कहीं उच्चतर आसन के वे अधिकारी देखे जाते हैं। क्योंकि इसमें धर्म्म-प्रचारक की श्रेष्ठता की अपेक्षा उस के कार्य देखने से लगता है। यह कहने में कि ठीक नौ करोड़ मनुष्य इन (महात्मा तुलसीदास) के ग्रन्थों ही पर अपना धर्म्म तथा सदाचार के नियमों को स्थापित किये हुए हैं हम सामान्य गणना से बहुत ही कम अंक

बांधते हैं। वर्तमान काल में इन की रचनाएं लोगों पर जो प्रभाव दिखाती हैं यदि हमलोग उसी से जांच करें तो एशिया के तीन या चार बड़े लेखकों में से एक यही महाशय हैं। [1]

सचमुच हिन्दुओं का इन्होंने ऐसा ही उपकार किया है कि वे लोग इन से कभी उऋण नहीं हो सकते और इन के सरदा वाधित ही रहेंगे।

ग्राउस साहब का यह कथन कि पण्डितमण्डली में रामायण का आदर नहीं है सर्वथा अमूलक है। कदाचित् उन्हें पुरानी कहानी याद आ गई होगी। पंडित लोग भी इस का पूरा आदर करते हैं।

स्वर्गीय महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी साहित्याचार्य पण्डित अम्बिकादत्त व्यास प्रभृति सुप्रख्यात विद्वान इस के प्रशंसकों में प्रसिद्ध हैं। अनेक पण्डितों ने इस की सुन्दर टीकाएँ बनाई हैं। सुप्रख्यात रामायणी प० रामगुलाम द्विवेदी [2] पं० वन्दन पाठक [3] पं० शिवलालजी पं० देवदत्तजी इत्यादि पण्डित ही थे या क्या ? सच तो यह है कि साधु गृहस्थ ब्राह्मण क्षत्रिय कायस्थ वैश्य, शूद्र, पण्डित मूर्ख धनीय, विदेशीय सभी लोग 'रामचरित मानस' पर सहज मोहित हैं एवम् उस का आदर करते हैं।

यहां पर हमें एक बात अच्छी याद आई। पण्डित सुधाकर जी ने रामायण के रचनाकाल के विषय में ग्रियर्सन साहब को लिखते समय उन्हें यह बात भी लिखी थी कि "भाषा में रहने के कारण रामायण का प्रचार पहले कायस्थों तथा वणिकों में हुआ होगा।" उन के यह लिखने का भाव जो कुछ हो परन्तु जिस वस्तु का आज सारा हिन्दू समाज आदर कर रहा है, जिस की प्रशंसा मुक्तकण्ठ से विदेशीय विद्वान भी कर रहे हैं जो आज अधिकांश हिन्दू जाति का जीवन-सर्वस्व तथा धर्मागार हो रहा है, जो आज महान पण्डितों का भी सम्मान भाजन बना हुआ है और हिन्दीसाहित्य-सागर का एक अमूल्य रत्न गिना जाता है, उसके

---

1 We judge of a prophet by his fruits and I give much less than usual estimate when I say that fully ninety millions of people have based their theories of moral and religious conduct upon his (Tulsidas) writings. If we take the influence exercised by him at present time as our test, he is one of the three or *former great writer of Asia J R A S society July 1903 Article* XVI P 455

२ आप हरिद्वार निवासी ब्राह्मण थे और मिर्जापुर में रहा करते थे। रामायण के यह बड़े प्रेमी और भक्त थे। इन्होंने इस ग्रन्थ की एक हस्तलिखित प्रति तैयार की थी जो शुद्ध पाठ के लिए प्रामाणिक मानी जाती है। ग्रियर्सन साहब लिखित 'Notes on Tulsi Das' में इस का नाम लिया हुआ है।

३ बाबू महादेव प्रसाद प्रकाशित मानस में दिये हुए प्रस्तावना में इन का वृत्तान्त पाया जाता है।

गुणग्राही और उसे आदर की दृष्टि से देखनेवाले पहले व्यक्ति थे जिन्होंने यह ग्रन्थ की विद्वत्ता तथा दूरदर्शिता प्रमाणित करता है एवम् हमारे लिये साधारण आनन्द और अहंकार की बात नहीं है।

सचमुच यह ग्रंथ साहित्यसागर का एक अमूल्य रत्न है। कवि-कुल-भूषण भारती तथा साहित्यवेत्ता व महाराज विद्याचार्य ही इस की वास्तविक गुणगरिमा परखने और वर्णन करने को समर्थ हो सकते हैं। इसकी यथोचित प्रशंसा का प्रयत्न हमारे लिए—

"साकयनिक मनि गन-गुन जैसे।"

की बात है। इसकी अद्भुत प्रभा देख चित्त चकित और बुद्धि चकित हो जाती है। जिस ग्रन्थ के पद पद में वाक्य वाक्य में शब्द शब्द में अक्षर अक्षर में गूढाशय अलौकिक भाव चित्ताकर्षक लालित्य एवम् मनमोहिनी कविता कूट कूट कर भरी हुई है उस का वास्तविक गुणकथन हमारे समान अल्पज्ञ मनुष्य से कब सम्भव है? इस ग्रन्थ का अद्भुत गुण कथन यह ग्रन्थ आप ही कर रहा है। और यदि इस जगत पर कृपा कर गोस्वामीजी ही पुनः इस भूमण्डल को पवित्र करें तो वे ही कर सकें। यों तो इस के शब्दों का रस चूस २ कर अर्थ और भाव निकालनेवालों की कमी नहीं है। हमारी लेखनी तो अपनी अक्षमता अनुभव कर दावात में मुंह दिये पड़ी रह जाती है, फिर तक हिलाने का साहस नहीं करती। बलात्कार चलायमान करने से मुंह मोड़ कर दीनता पूर्वक दांत दिखाने लगती है और गले पर छुरी चलाने पर सिर हिला कर मानों यही कहने लगती है कि इस ग्रन्थ रत्न की तथा इस के रचयिता की समुचित प्रशंसा करने की मेरी शक्ति नहीं। कागज भी साफ साफ संकेत करता है कि जब योग्य प्रशंसा की सम्भावना ही नहीं तो कोरा ही रहना उत्तम है। कोष भी स्पष्ट उत्तर देता है कि मेरे शब्दभण्डार में ऐसा उपयुक्त शब्द ही नहीं जिस से इस का गुण वर्णन में सहायता प्रदान कर सकूं। अतएव हम इस महाकाव्य की प्रशंसा करने में अपने को सर्वथा असमर्थ देख मौन ही धारण करना उत्तम समझते हैं।

हां! यहां पर इतना अवश्य कह देते हैं कि इस ग्रन्थ रत्न के गुणों ही पर मोहित हो कर ग्राउस साहब ने इसका गद्य में अंगरेजी अनुवाद किया है उनके पूर्व फोर्ट विलियम कालेज कलकत्ता के एक मुन्शी अदालतराम ने अयोध्या काण्ड का अनुवाद किया था जो १८७१ में मुद्रित हुआ था। लखनऊ के मुन्शी द्वारका प्रसाद (उफ़ुक) ने उर्दू में इस ग्रंथ का अनुवाद किया है। यह ग्रन्थ उर्दू तथा बंगला अक्षर में अविकल भी मुद्रित हुआ है एवम् उड़िया तथा बंगभाषा आदि में भी अनूदित हुआ है।[१]

---

१ उदय भाषा में इस के चार अनुवाद हैं। गोविन्द दास जैसी कृत गोविन्द रामायण, मजफ्फरपुर निवासी बाबू राम प्रसाद बार्टीपुर बी० ए० बी० [illegible] ५ अवधेश भाषा प्रवीण यदी के एक अन्य सुजन कृत तथा नरसिंह प्रकाश का तैयार कराया एक अनुवाद।

ग्रियर्सन साहब ने कई ग्रन्थों में इस की प्रशंसा की है। अन्य साहब लोग भी इस का गुण गान करते गये हैं। श्रीयुत ज्ञानेन्द्र मोहनदत्त ने 'प्रवासी' भा० ११ खंड २ में लिखा है कि 'इस पुस्तक में धर्म्मभाव जिस रूप से जाग्रत है ऐसा धर्मभाव समन्वित दूसरी और कोई पुस्तक नहीं देखी जाती।" कलकत्ता हाइकोर्ट के स्वर्गीय जज श्रीमान् शारदाचरण मित्र ने एक लेख में रामायण का कुछ पद उद्धृत करते हुए गोसाईं जी को 'भक्ति भाजन मातृश्रेष्ठ कवीश्वर' तथा भारतवर्षीय कविगण में अग्रणी लिखा है।

बंग भाषा में श्री मदनमोहन चौधरी बी० ए० पुराकिशा के बर्डास का तैयार किया हुआ अनुवाद है और एक दूसरा अनुवाद 'तुलसी चरणामृत' के नाम से प्रकाश है।

पाद्रे शंकर अमाद्रार आर्गिनकार कानपुर मद्रास ने इस का मराठी भाषा में उलथा किया है।

पं० बलभद्र द्वारा प्रकाशित संस्कृत रामचरित मानस है। इसके सम्बन्ध में एक रहस्यमयी कथा है। इसके छपने पर यह बात उड़ाई गई थी कि गोसाईं जी की सर्गीय रामचरित मानस इसी का अनुवाद है। अब मैं लाला सीताराम बी० ए० के 'माधुरी' में प्रकाशित एक लेख पर इटावा के श्री नारायण चतुर्वेदी ने एक नोट लिखा है जिस से विदित होता है कि उनके वृद्ध पितामह मदार विहारी जी संस्कृतज्ञ थे। उन्होंने अपने शिष्यों के आग्रह से गोसाईं जी विरचित रामायण का संस्कृत में अनुवाद किया। एकबार उन के चाचा के कश्मीर तथा उन के पिता के प्रवास चले जाने पर उन के पड़ोसी सेवाराम ने इस के आधार अपने भाई से उस अनुवाद को हस्तगत करके उसे छपवा दिया। और पुस्तक को प्राचीन साबित करने के अभिप्राय से जिन पंक्तियों में उनका नाम था वे नष्ट कर दी गईं। वह कहता है कि संस्कृत पुस्तक न प्राचीन ही है और न गोसाईं जी की रामायण उस का अनुवाद ही है। बस यही इस का खुलासा है।

इस के फारसी भाषा में कई एक अनुवादों का हाल माघ १६२७ ई० के 'कलकत्ता रिव्यु' से ज्ञात होता है।

जहाँगीर के समय में पानीपत के मुल्लामसीह ने इस का पद्यानुवाद किया एवं दिल्ली के गिरिधरदास कायस्थ ने दूसरा पद्यानुवाद करके जहाँगीर को समर्पण किया।

चन्द्रमा 'बहिश्त' ने एक गद्य में और सर्गिल्लाम नाम ने दूसरा पद्य में अनुवाद किया। इस के पद्यानुवाद की बड़ी प्रशंसा की जाती है। परन्तु एक मित्र के आग्रह से सन् १६२१ ई० में ६० वर्ष की अवस्था में उन्होंने यह काम किया था।

मालपुर (संयुक्तप्रान्त) निवासी रामानन्द कृत एक अनुवाद है। उस के तैयार करने में लगभग २५ वर्ष लगे थे और श्रावण पंचमी सं० १८१२ में उसकी समाप्ति हुई।

लंदन इण्डिया आफिस में 'मजहर' नाम का एक पद्यबद्ध अनुवाद और एक गद्यानुवाद है।

एवम् सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता विन्सेन्ट ए. स्मिथ ने स्वरचित The Onfard History of India के १९११ ई. के संस्करण पृ. ३७२ में हिन्दीभाषा के कवि तुलसी दास को अकबर के समय का प्रधान ग्रंथकर्त्ता होना लिखा है, यद्यपि बादशाह इन्हें स्वयं नहीं जानते थे। किन्तु इन के सर्वोत्तम ग्रन्थ 'रामचरित मानस' का पश्चिमीय भारत में सर्वत्र प्रचार है।

देशीय विदेशीय जितने महानुभावों ने इस ग्रंथ की प्रशंसा में लेखनी प्रचालित की है उन की नामावली ही ऐसी कठिन है। प्रत्येक का लेख उल्लेख करने के लिये तो समय और स्थान चाहिये।

एक दूसरा गद्यानुवाद भी सर विलियम औसले के संग्रह में है।

म्युनिच पुस्तकालय में गद्यानुवाद की एक प्रति है।

ब्रिटिश म्युजियम में देवीदास कायस्थ कृत एक गद्यानुवाद है।

नोट—नहीं कह सकते कि दोनों नामवाले अनुवाद एवम् इण्डिया आफ़िसवाला गद्यानुवाद तीन विभिन्न अनुवाद हैं अथवा एक ही की तीन प्रतियाँ हैं।

चतुर्दश परिच्छेद

क्षेपक और काट छांट

गोसाईं जी ने तो हमलोगों के उपकारार्थ ऐसा सुन्दर लोकोत्तम मनोहर निर्माण किया जिस की प्रशंसा सहस्र मुख से भी नहीं हो सकती परन्तु खेद महाशय इस बात का होता है कि कतिपय महाशय इस की अनुपम शोभा विनष्ट करने में उतारू हो गये हैं। कितने तो कवि के मनोभाव की यथार्थ विवेचना नहीं कर के इस की रचना चातुरी में त्रुटि समझ कर क्षेपक द्वारा उस की पूर्ति करते गये हैं और कितनों ने इस कहावत के अनुसार—

"लोहा अपनी करै बड़ाई, हमहूँ रघुनाथ के भाई।"

इन की समता करने की ममता से इनकी कविता में अपनी कविताएं मिला दी हैं। परन्तु इन दोनों में से किसी श्रेणी के महाशयों ने अपना नाम[1] प्रगट करने का साहस नहीं किया है। नाम कैसे प्रगट करें? उस से तो उन का काम ही बिगड़ जाता। क्षेपककारों ने केवल गोसाईं जी निर्मित चौपाइयों में ही जहाँ तहाँ कंकड़ पत्थर नहीं रख दिया है, परन्तु वे लोग कई जगह काट छांट भी कर गये हैं।

---

१ अपना नाम छिपा कर अन्य प्रसिद्ध लेखकों की रचनाओं में अपनी रचना मिलाने वालों तथा स्वरचित ग्रंथों को सुविख्यात महानुभावों के नाम से प्रकाशित करने वालों के विषय में डाक्टर केम (Dr hem) ने एक प्राचीन के ग्रंथ में सम्बन्ध में कहा है कि "किसी मनुष्य के मस्तिष्क से उत्पन्न हुआ पदार्थ उसी व्यक्ति का माल है इस भावना से वे लोग अर्थात् भारतवासी अनभिज्ञ थे, जो भावना कि पाश्चात्य देश में अब हास्यास्पद सीमा तक पहुँच गई है। इन लोगों की झुकाव उस दूसरे छोर की ओर हुई दुर्भाग्यवश वह उससे भी अधिक हानिकारक है।"

The nation of the productions of a man's mind being his property, a notion Carried to such a ridiculous extent in Europ was unknown to them. Unhappy the opposite extreme they fell into is much more pernicious. Rajendra Lal's 'Indo-Aryan Vol II P 212

गोसाईं जी ने तो इस सरोवर में सात सोपान बनाया और अब लोग इस में एक और सोपान जोड़कर आठकाण्ड की रामायण प्रकाशित करने लगे हैं। इस काण्ड में लव कुश का चरित्र समावेशित किया गया है। परन्तु 'सप्त प्रबंध सुभग सोपाना' को भी बदलकर यदि 'अष्ट प्रबंध सुभग सोपाना' कर देते तो भला कुछ इज्जत भी रह जाती। यों तो पूर्वोक्त अष्ट चौपाई उन्हें स्पष्ट ही मिथ्यासूचक बना रही हैं। 'लवकुश चरित्र' यदि गोसाईं जी का ही रचा हुआ हो तो भी यह रामचरितमानस (रामायण) का अंग नहीं है राम कथा कुछ भले ही हो। यदि हमारे गोसाईं जी को 'लवकुश' की कथा रामायण में सम्मिलित करने की इच्छा होती तो क्या कोई उन का हाथ रोके हुये था कि वे 'सप्तसोपान' के स्थान में 'अष्ट सोपान' नहीं लिख देते? यह काण्ड तो किसी प्राचीन हस्त-लिखित या प्रकाशित पुस्तक में समावेशित भी नहीं देखा जाता। ऐसे प्रकाशक लोग अपने लाभ के लिये न जाने गोसाईं जी के इस अपूर्व रचना-सर की शोभा कहां तक नष्ट कर देंगे। आज एक सीढ़ी जोड़ी गई कल को फिर न जाने कितनी सीढ़ियाँ बनती जावेंगी। हमें तो इस का आश्चर्य होता है कि श्री गोस्वामी तुलसीदास इन सब कृत काण्ड यह सर्वथा मिथ्याजाल ऐसे धर्मग्रन्थ में लिखते और छापते लोगों को कुछ भी हिचक व लज्जा नहीं होती।

हम स्पष्ट पूछ कह सकते हैं कि निश्चय कर के गोसाईं जी को यह कथा लिखनी अभिप्रेत नहीं थी क्योंकि बहुत से लोग सीतानिर्वासन की कटु समालोचना करते हैं और गोसाईं जी अपनी लेखनी से कोई ऐसी बात कदापि नहीं लिख सकते थे जिस से भी रामचन्द्र के सम्बन्ध में कोई दूसरा अन्यथा भाव निकल सके। रामायण में उन के विषय में जहां कहीं किसी के मुख से कोई ऐसी बात निकल पड़ी है वहीं उसी क्षण इन्होंने किसी न किसी से उसे खण्डन करवा दिया है। तब क्या स्वयम् एक ऐसा काण्ड ही निर्माण कर देते जिस से रामचन्द्रगुणकीर्तन रूपी सुन्दर चित्र पर [illegible] फिर जाता। और दूसरे लोगों ने स्वरचित ग्रन्थों में यह कथा वर्णन की है तो उन्होंने तो इन के समान रामचन्द्र में भावना नहीं की है वे लोग इन के सदृश रामचन्द्र के परम भक्त नहीं थे यह बात निःसन्देह कही जा सकती है।

पं० रामेश्वर भट्ट जी स्वरचित रामायण की टीका में लवकुश के विषय में ऐसा कहने वालों को कि यदि उन को आवश्यकता होती तो गोसाईं जी स्वयम् लिखते यह उत्तर देते हैं कि गोसाईं जी स्वयम् बड़े भारी विद्वान थे और जो ऐसे विद्वान् होते हैं वे पुराणों पुराणाम्नायों की कथाओं को जिन का संसार में बहुधा प्रचार होता है लिख कर ग्रन्थ को बढ़ा नहीं बढ़ाते क्योंकि बीच २ में अन्य कथाओं के लिखने से उन के सार प्रभाव में विघ्न पड़ता है जैसा कि [illegible] ऐसा कदापि नहीं करते। स्वयम् [illegible] होने के कारण समझ लेते हैं कि अमुक कथा तो प्रसिद्ध है इस से सब जानते हैं परन्तु जानते तो वे ही जिन्होंने [illegible] किया है—और जो अब [illegible] हैं और यह भी नहीं जानते कि पुराण किस चिड़िया का नाम है तो समझिये कि बिना उनके और [illegible] इतिहास के उन को किस प्रकार सम्पूर्ण कथा ज्ञान हो सकती है।

पंडितजी के कथन का उत्तर हम पहले एक पंडित ही द्वारा दिलाना उत्तम समझते हैं। देखिये 'रसवाटिका' ग्रंथ के रचयिता पं० गंगाप्रसाद अग्निहोत्री इस विषय में क्या लिखते हैं —

'प्रथमतः हम उन सर्वांग पतित प्रचारों का नामोल्लेख करते हैं कि जिन लोगों ने महाकाव्यलक्षणापेक्ष काव्य में बढ़ी चढ़े हुए भाषा के अद्वितीय काव्यरत्न श्रीमद् गोस्वामी बाबा तुलसीदासजी कृत चौपाई रामायण को क्षेपकों द्वारा दूषित करने ही में अपने समस्त पांडित्य का व्यय किया है।

"न जाने इन क्षेपकगायक काव्य विशारदों ने इस बात को क्यों नहीं विचारा कि आज दिन हम जिन कथाओं को विस्तृत करते हैं उन्हें स्वयम् गोसाईं जी ने विस्तृत क्यों नहीं किया ! क्या वे उन्हें विस्तृत नहीं कर सकते थे ? गोसाईं जी ने उन्हें विस्तृत नहीं किया है तो इस का कोई गुप्तर कारण अवश्य होगा। हमें भरोसा है कि हमारे क्षेपक-विधायक लोग यदि इस बात को अपने विचार पथ में स्थान प्रदान करते तो वे केवल कथाप्रिय लोगों की थोथी प्रशंसा के मोह में फँसकर उक्त काव्य में क्षेपक प्रविष्ट कर उसे रस-विच्छेद दोष से दूषित नहीं करते। सारांश इस प्रचण्ड हानि का कारण उनलोगों की विचारशिथिलता ही कही जा सकती है।

आपने नोट में यह भी लिखा है कि 'माना कि क्षेपक एवं केवल कथाप्रियलोग इस बात को नहीं जान सकते कि गोस्वामी जी का प्रधान अभिप्राय श्री रामचन्द्र जी के चरित्र लिखने का था अतः अपने अभिप्राय की पुष्टि के हेतु जितनी गौण कथा अभीष्ट थी उतनी ही गोसाईं जी ने लिखी हैं गौण कथा के विस्तार द्वारा पाठकों को प्रधान विषय की विस्मृत नहीं होने दी है। पर इस बात का विचार हमारे क्षेपक लिखने वाले पण्डितों का कर्तव्य था।

और अब यह श्री महाराज स्वयम् कहते हैं कि बीच बीच में अन्य कथाओं के लिखने से रस प्रसंग में विघ्न पड़ता है और यह कोई भी ऐसा कदापि नहीं करते कि 'बात चल रही है राम की और हम कर शनिचर की' एवम् जब गोसाईं जी ने लवकुश में विशेष दासता तथा अश्वमेधादि कथाएँ लिख कर ग्रन्थ का भार बढ़ाना उचित नहीं समझा तब अन्य लोग क्यों उन की पुस्तक रूपिणी कविता कामिनी के समान्य तथा उपमणालग हुये सर्वांग कमल में क्षेपकों का पैबन्द लगा कर उस की सुन्दरता नष्ट करते हैं, एवम् इन की रचना शैली में बिना विचार किये बुरा भला अनावश्यक क्षेपक बढ़ा रहे हैं और सामान्य दुःखों को कारण दिल करने पर उतारू हुए हैं। गोसाईं जी की रचना के भक्त जिसे यह देखना और जानना चाहते हैं कि गोसाईं जी की लेखनी से क्या निकला हुआ है और यह बात क्षेपक युक्त ग्रन्थों के प्रकाशन से नहीं हो सकती। यदि यही इच्छा है कि अनभिज्ञ लोग क्षेपकोक्त इतिहासों और बातों का पूर्ण रीति से ज्ञान करें तो क्या पूर्वोक्त क्षेपकों को रामायण के अन्त ही में परिशिष्ट में या पद पद के अन्त में दे दिया कीजिये। इस से भी तो आप का अभीष्ट सिद्ध हो जायगा। किन्तु उस सामान्य पाठकों से इन क्षेपक के पदों के ढेरों का अवश्य मोह दीजिये और गोसाईं जी की ललित रचना में पाप न लगाइये। अन्य रचित पदों में क्षेपक घुसाने का बड़ा अनिष्टकर

प्रकट होता है। यह क्षेपककारकों की करनी ही का फल है कि वाल्मीकीय रामायण तथा महाभारत वर्णित कथाओं की सत्यता में पृथक् उन के निर्णय काल में नाना प्रकार का तर्क वितर्क चिरकाल से उठ रहा है।

हम यह मानते हैं कि किसी २ क्षेपककार ने अपनी कारीगरी दिखलाई है और स्वरचित क्षेपक में सुन्दर कविता भी की है। परन्तु क्षेपक कितना ही सुन्दर क्यों न हो है वह क्षेपक ही, और गोसाईं जी की लेखनी से निर्गत नहीं हुआ है। अतएव क्षेपक कैसा ही हो उस का रामायण में रहना उचित नहीं।

इधर तो क्षेपक के मिलाये जाते जाते हैं, और सोपानों में क्षेपकों की भर्ती २ ईंटें जहां तहां जमायी जाती हैं उधर स्वर्गवासी मैनपुरी निवासी मुं॰ शुकदेव लाल जी का यह मत है कि प्रत्येक काण्ड के प्रति प्रस्ताव की चौपाइयों की संख्या का क्रम इस प्रकार उतार चढ़ाव से होना चाहिये जैसे सीढ़ियों का होता है क्योंकि यह मानस (सर) है और उन्होंने अपनी तर्कना से चौपाइयों का प्रमाण आठ २ चौपाई मानकर शेष चौपाइयों को तथा अनेक दोहों और छन्दों को उठाकर रामचरित-मानस की बनी बनायी ईंटों को उखाड़ दिया है।

इतना ही नहीं वरन् एक सोपान के कुछ भाग को भंग कर आपने उसे दूसरे सोपान में मिला दिया है। अर्थात् आरण्य काण्ड के—'चलेराम त्यागा वन सोऊ' से लेकर अन्त पर्य्यन्त सर्वांश उठाकर किष्किन्धा काण्ड में रख दिया है।

बनारस कालेज के भूतपूर्व पण्डित श्री रामजस जीने भी गोसाईं जी के राम चरित मानस के सोपानों की ईंटों के उखाड़ने में हाथ की अच्छी सफाई दिखलाई है।

हम नहीं समझते कि जिन चौपाइयों और दोहों को इन महाशयों ने उठा दिया है उनके सचमुच क्षेपक होने का अनुभव इन्हें कैसे हुआ? क्या गोसाईं जी की आत्मा आप के कानों में कहती गई कि ये सब उनकी रचनाएं नहीं थीं? सम्भव है कि गोसाईं जी के वास्तविक रचे पद उड़ा दिये गये हों और क्षेपक ही ज्यों का त्यों रह गया हो। इस काट छांट में जैसे परिश्रम किया है वैसे ही प्राचीन प्रतियों के हस्तगत करने का यदि यत्न किया जाता तो ऐसी बात नहीं होने पाती। यह काट छांट सर्वथा ठीक नहीं होने का प्रमाण तो रामायण के उन संस्करणों में जो म॰ कु॰ बाबू रामदीन सिंह जी ने रामापुर वाली तथा श्रीकाशीनरेशवाली सं॰ १७०४[1] की लिखी हुई प्रतियों के अनुसार एवम् काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने रामापुर वाली काशीनरेशवाली तथा अन्यान्य प्राचीन प्रतियों को मिलाकर प्रकाशित किये हैं वर्तमान पाया जाता है।

इन संस्करणों के अन्य काण्डों को विलग रखिये क्योंकि वे सब केवल अनेक प्राचीन प्रतियों को देखकर तैयार किये गये हैं और सम्भव है कि उन प्राचीन प्रतियों में भी गड़बड़ हो

---

१ प्रतीत होता है कि रामायण की टीका तैयार करने के लिये १७०४ सं॰ (अर्थात् गोसाईं जी के स्वर्गवास से २४ वर्ष पीछे) की लिखी हुई पुस्तकें जो गोसाईं जी के स्थान से बाबा सम्पत्ति दास जी से मांग कर लाई गई थीं, उन्हीं से यह प्रति तैयार की गई।

या फेर फार हुआ हो। आलोचना केवल अयोध्या काण्ड की ओर दृष्टि कीजिये। दोनों संस्करणों में यह काण्ड गोसाईं जी की राजापुर वाली प्रति के अनुसार होना बोध होता है। यद्यपि इन दोनों के भी अयोध्याकाण्ड में कुछ परस्पर प्रभेद है (जैसा कि पाठकों को आगे के परिच्छेद में विदित होगा) तथापि इन दोनों ही के ८, ६४, १०३ तथा १८५ अंक के दोहों में केवल सात २ चौपाइयाँ एवम् २६ तथा २०२ अंक के दोहों में नौ २ चौपाइयाँ हैं। और मुन्शी जी की रामायण में २६ तथा २०२ के अंक के दोहों में से एक २ चौपाई उड़ाकर और शेष में नीचे लिखी हुई चौपाइयाँ जोड़कर आठ की संख्या पूरी की गई है।

८ वाँ दोहा—बार बार गनपतिहिं निहोरा। कीजै सुफल मनोरथ मोरा॥
६४ वाँ ,, —यहि विधि सिय सासुहिं समुझाई। कहत पतिहिं वर विनय सुनाई॥
१०३ वाँ ,, —सोचिय कोमनिरत अति कामी। सुर मुनि निन्दक परधन स्वामी॥
१८५ वाँ ,, —कहिं न भाय सिय लखमण रामू। मय कह प्रिय हृदय सदा सकामू॥

खड्गविलास प्रेस वाले संस्करण में २२६ अंक वाले दोहे की चौपाइयाँ केवल ८ हैं। उन में से एक चौपाई यह है—

"सकुचई सात कहत इक बाता। भ प्रमोद परिपूरन गाता॥"

मुन्शी जी की टीका में अहुचउ बाता के बाद फिर तबहिं नृप सर्वग जाना यह नया चरण जोड़ा गया है।

तब "तुम कानन गवनहु दोउ भाई। पठुरहिं जरन मीय रघुराई॥"

यह नई चौपाई रखी गई है।

फिर "मुनि मो बचन हृदय दोउ धाता।"

इन नयी अर्ध चौपाई के अनन्तर पूर्वोक्त चौपाई का उत्तरार्द्ध "भे प्रमो" परि पूरन गाता रखा गया है। इस रीति से इस दोहे की चौपाइयों की संख्या आठ की गई है काशी नागरी प्रचारिणी सभा वाली प्रति में ये नये चारों चरण कोष्ठबद्ध कर दिये गये हैं जिस से यह विदित होता है कि राजापुर वाली प्रति में भी २२६ अंक वाले दोहे की चौपाइयाँ सचमुच ८ हैं।

उपर्युक्त ये सब चौपाइयाँ जो निश्चय मुन्शी जी या किसी अन्य पुरुष की रची हुई होंगी। इन के सिवाय इन संस्करणों की प्रतियों से मुन्शीजी की टीका वाली रामायण को मिलाने से शब्दों तथा समुचय चरणों[1] का कतिपय पाठान्तर एवम् कहीं २ चौपाइयों के स्थान क्रम में भेद देखे जाते हैं।

---

1 पाठान्तर देखने के लिए इन तीनों के अयोध्या काण्ड के १७, ३८ ८२, ६६ ९० ९९ १०३ ११ ११२ १२५ १५०, १५१ २०० २११, तथा २२० अंक वाले दोहों की क्रमशः ३ ३ ५, १ ५, ५, १ ४, २ ३ ४ २ ५, ३, ० और ० चौपाइयों का मिलान कीजिये।

राजापुर वाली प्रति में भी चौपाइयों की संख्या में न्यूनाधिक देख कर यह कहा जा सकता है कि गोसाईं जी ने आठ ही आठ चौपाइयों का क्रम नहीं रखा है। और जब मुंशी जी की रामायण के अयोध्या काण्ड में गड़बड़ देखा जाता है तथा वह राजापुर वाली प्रति से सर्वथ नहीं मिलता तो यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि जैसे मुंशी जी ने अपने गड़बड़ तथा काट छाँट से इस काण्ड में गड़बड़ कर दिया है वैसे ही अन्य काण्डों में भी इनके काट छांट से अवश्य गड़बड़ हुआ होगा और यह काट छांट सर्वथा ठीक नहीं माना जा सकता है। यदि यह ठीक है तो राजापुर वाली प्रति को गोसाईं जी की हस्त लिखित मानना उचित नहीं होगा। पाठक जैसा उचित समझें वैसा करें।

पूर्वोक्त पंडित जी ने साहस पूर्वक और भी चतुराई दिखलाई है। उन्होंने ग्रन्थकार की भाषा ही बदल दी है अर्थात् उस समय की प्रचलित भाषा के शब्दों के स्थानों में संस्कृत व्याकरण की रीति से शोधकर शब्द रख दिया है। मुंशी जी ने भी शब्दों को प्रायः संस्कृत ही के ढंग से लिखा है और अन्य प्रकाशक भी पंडित जी का अनुकरण करके शब्दों का रूपान्तर कर ग्रन्थ प्रकाश करने लगे हैं।

गोसाईं जी अपनी रचनाओं में शब्दों को उसी रूप से लिखते थे जैसे वे उस समय बोल चाल में प्रयोग किये जाते थे। उन की रचनाओं में ष ण श ऐसे वर्ण तुम के स्थानों में सर्वत्र ख [1] न स आदि का प्रयोग पाये जाते हैं। न, स, उच्चारण में मधुर होता है। मधुरता की ओर ध्यान रखना कवि का परमावश्यक कर्तव्य है। गोसाईं जी अपिस्टउ मोहरसु, पखाऊ, सुजीनी जागवलिकु, दसरथ भंडउ भगनी ऐसे शब्द भी प्रयोग करते थे परन्तु अब के ग्रन्थ प्रकाशकों ने उन्हें नवीन भाषा की रीति पर संस्कृत के ढंग से और पाणिनीय व्याकरण के अनुसार शोध कर अपिष्टउ, मोहरस, प्रखाद, सुश्रोणी याज्ञवल्क्य आदि सहित बना दिया करते हैं। हमारी समझ में ऐसा परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं। उनके लिखे शब्दों को ज्यों का त्यों ही रखना उत्तम और आवश्यक है। इस से उन के ग्रन्थ के पाठकों को यह ज्ञात हो जायगा कि उस समय विशेष २ शब्द कैसे लिखे जाते थे और उस समय की भाषा कैसी थी। यदि उनकी भाषा वा लेखनशैली आधुनिक लेखप्रणाली तथा भाषा के समान न हो वा वे संस्कृत भाषा के विरुद्ध हों तो कोई चिन्ता नहीं। भाषा एक सी नहीं रहती—यह परिवर्तन शील है।

हम को हाल ही में १८८८ ई० का छपा रेवरेन्ड डब्ल्यु० लियुकस कालिन्स (Rev W Lucas Collins) एम ए कृत होमर, दी इलियड' (Homer The Illiad) नामक ग्रंथ देखने का सुअवसर मिला है। उस में उन्होंने 'होमर' कृत 'इलियड' नामक ग्रन्थ की एक प्रकार की समालोचना की है और प्राचीन अंगरेजी ग्रन्थों के पद्यों का कुछ उल्लेख किया है परन्तु उन पद्यों के उल्लेख करने में उन्होंने शब्दों को जस का तस ही ग्रहण किया है जैसा उन

---

1 रामकृष्णविलास प्रेस द्वारा मुद्रित रामायण के अयोध्या काण्ड में सर्वत्र 'ष' देखा जाता है और काशी नागरी प्रचारिणी सभा वाली प्रति में 'ष' और 'स' दोनों ही पाये जाते हैं।

ग्रन्थों के रचयिता के समय में वे गद्य लिखे जाते थे। पाठक वृन्द ... लोगों के मनोरंजनार्थ हम भी उन पद्यों को यहां पर उद्धृत कर देते हैं।

And when Priam in full thrifty woyse
Performed hath as ye have heard devyse,
Ordained eke, as Guide can you tell,
A certain Nombre of priestes for to dwell
In the temple in their devotions
Continually with devout orisons,
For the Soule of Hector for to pray
× × ×
To which priestes the kyng gave mansyons,
There to abide, and possessyons,
The which he hath to them Martysed
Perpetually, as ye have heard devysed,
And while they kneel pray and wake
I Caste fully me an end to make
Finally of this my thirde booke,
On my rude manner as I undertooke

(*The closing Lines of Lydgate's third book*)

यह पद ईश्वर की सम्पत्ति ... के सम्बन्ध में है। मोर (More) साहब ने युटोपिया (Utopia) पुस्तक १५१६ ई० में गोस्वामी जी के जन्म समय के लगभग लिखी थी। उस का पारसी जे० रासन लम्बी (J Rawson Lumby) द्वारा सम्पादित १८८७ ई० का एक संस्करण हमें देखने में आता है। चार सौ वर्ष पीछे छपने पर भी इस में शब्द वैसे ही दिये गए हैं जैसे १५१६ ई० में लिखे गये थे। हम उस में से भी कुछ शब्दों को यहां उद्धृत कर देते हैं।

Sometyme vertue cleare angelicale againe, realice tudie Occupie Sonne, knowinge, hime parti sett type remembrannce &c.

परन्तु एक ... होकर लिडगेट साहब तथा मोरी साहब के ग्रन्थ में शब्दों को ... कहीं नहीं पाता! यदि वे ऐसा करते तो आज हमें कैसे ज्ञात होता कि उस समय वे शब्द कैसे लिखे जाते थे।

राजापुर वाली प्रति में भी चौपाइयों की संख्या में न्यूनाधिक्य देख कर यह कहा जा सकता है कि गोसाईं जी ने आठ ही आठ चौपाइयों का क्रम नहीं रखा है। और जब मुंशी जी की रामायण के अयोध्या काण्ड में गड़बड़ देखा जाता है तथा वह राजापुर वाली प्रति से सर्वथ नहीं मिलता तो यह निर्विरोध कहा जा सकता है कि उसे मुंशी जी ने अपने रसमस्त तथा काट छांट से इस काण्ड में गड़बड़ कर दिया है वैसे ही अन्य काण्डों में भी इनके काट छांट से अवश्य गड़बड़ हुआ होगा और यह काट छांट सर्वथा ठीक नहीं माना जा सकता है। यदि यह ठीक है तो राजापुर वाली प्रति को गोसाईं जी की हस्त लिखित मानना उचित नहीं होगा। पाठक जैसा उचित समझें वैसा करें।

पूर्वोक्त पंडित जी ने साहस पूर्वक और भी पंडिताई दिखलाई है। उन्होंने ग्रन्थकार की भाषा ही बदल दी है अर्थात् उस समय की प्रचलित भाषा के शब्दों के स्थानों में संस्कृत व्याकरण की रीति से शोधकर शब्द रख दिया है। मुंशी जी ने भी शब्दों को प्रायः संस्कृत ही के ढंग से लिखा है और अन्य प्रकाशक भी पंडित जी का अनुकरण करके शब्दों का रूपान्तर कर ग्रंथ प्रकाश करने लगे हैं।

गोसाईं जी अपनी रचनाओं में शब्दों को उसी ढंग से लिखते थे जैसे वे उस समय बोल चाल में प्रयोग किये जाते थे। उन की रचनाओं में श ष, या ऐसे, या तुम के स्थानों में सर्वत्र प[1] न स जैसे या तुम्ह पाये जाते हैं। न, स उच्चारण में मधुर होता है। मधुरता की ओर ध्यान रखना कवि का परमावश्यक कर्तव्य है। गोसाईं जी कपिन्दु मोहवश, पसाऊ, मुनिहिनी आगवनिउ, दसरथ नंदन भगती ऐसे शब्द भी प्रयोग करते थे परन्तु अब के ग्रंथ प्रकाशकों ने उन्हें नवीन भाषा की रीति पर संस्कृत के ढङ्ग से और पाणिनीय व्याकरण के अनुसार शोध कर कपिन्द्र, मोहवश प्रसाद मुनिहिनी आगवनिउ शब्दों मंडित बना दिया करते हैं। हमारी समझ में ऐसा परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं। उनके लिये शब्दों को ज्यों का त्यों ही छापना उत्तम और आवश्यक है। इस से उन के ग्रंथ के पाठकों को यह ज्ञात हो जायगा कि उस समय विशेष २ शब्द कैसे लिखे जाते थे और उस समय की भाषा कैसी थी। यदि उनकी भाषा या बोलचाल की आधुनिक बोलचाल की तथा भाषा के समान हों या वे संस्कृत भाषा के विरुद्ध हों तो कोई चिन्ता नहीं। भाषा एक सी नहीं रहती—वह परिवर्तन शील है।

हम को हाल ही में १८८८ ई० का छपा रेवरेण्ड डबल्यु लियुकस कालिन्स (Rev W Lucas Collins) एम ए कृत होमर, दी इलियड' (Homer The Iliad) नामक ग्रंथ देखने का सुअवसर मिला है। उस में उन्हों ने 'होमर' कृत इलियड' नामक ग्रंथ की एक प्रकार की समालोचना की है और प्राचीन अंगरेजी ग्रंथों के पदों का कुछ उल्लेख किया है परन्तु उन पदों के उल्लेख करने में उन्हों ने शब्दों को वैसे ही रहने दिया है जैसे उन

---

१ 'खड्गविलास प्रेस द्वारा मुद्रित रामायण के अयोध्या काण्ड में सर्वत्र 'ष' देखा जाता है और काशी नागरी प्रचारिणी सभा वाली प्रति में ष और ख दोनों ही पाये जाते हैं।

ग्रन्थों के रचयिता के समय में वे सब लिखे जाते थे। पाठक गण ... लोगों के मनोरंजनार्थ हम भी उन पदों को यहाँ पर उद्धृत कर देते हैं।

And when Priam in full thrifty wyse
Performed hath as ye have heard devyse,
Ordained eke, as Guide can you tell,
A certain Nombre of priestes for to dwell
In the temple in their devotions,
Continually with devout orisons,
For the Soule of Hector for to pray
× × ×
To which priestes the Kyng gave mansyons,
There to abide, and possessyons,
The which he hath to them Martysed
Perpetually, as ye have heard devysed,
And while they kneel pray and wake
I Caste fully me an end to make
Finally of this my thirde booke
On my rude manner as I undertooke

(The closing Lines of Lydyate's third book)

यह पद 'हेक्टर' की अन्त्येष्टि क्रिया के सम्बन्ध में है। मोर (More) साहब ने यूटोपिया (Utopia) पुस्तक १५१६ ई॰ में गोस्वामी जी के जन्म समय के लगभग लिखी थी। उस का पादरी जे॰ रासन लम्बी (J Rawson Lumby) द्वारा सम्पादित १८९७ ई॰ का एक संस्करण हमें देखने में आता है। चार सौ वर्ष बीत जाने पर भी इस में ... ही दिख पड़ते हैं जब १५१६ ई॰ में लिखे गये थे। हम उस में से भी कुछ शब्दों को यहाँ उद्धृत कर देते हैं।

Sometyme vertue cleare angelicall agayne realme, stud e Occupie Sonne, knowinge, hime parti ; ctt, type remembraunce &c.

परन्तु सम्वत् ... होकर ... साहब ... शब्दों को ... कहीं नहीं पाता ... उस समय के ... लिखे जाते थे।

फिर देखिये शेक्सपियर के समय की भाषा आधुनिक अंगरेजी भाषा से बहुत भिन्न पाई जाती है। शेक्सपियर की रचनाओं में व्याकरण का ऐसा उलट फेर है कि लोगों को हार कर उन की रचनाओं के समझने के लिये एक नूतन व्याकरण ही बनाना पड़ा है जिसे 'शेक्सपीरियन ग्रामर' कहते हैं। उनके पीछे विलायत में बहुत से नामी विद्वान हुये और उन लोगों के ग्रंथों का सैकड़ों संस्करण हुआ परन्तु किसी विद्याचार्य्य ने उन लोगों की रचनाओं पर लेखनी नहीं चलाई उन्हें ज्यों की त्यों छापते गये। लेखनी कैसे चलावें! वे जानते थे कि इस परिवर्तन से कवि के आशयों में भेद पड़ जायगा एवम् परिवर्तित अवस्था में उन के ग्रन्थ का यथार्थ आशय प्रगट नहीं होगा और उससे यथार्थ स्वाद भी नहीं मिलेगा। परन्तु 'राम चरित मानस' के अधिकांश प्रकाशकों का ध्यान इन विचारों की ओर नहीं जाता। वे लोग अपनी ही पंडिताई तथा विद्वता दिखलाने के लिये मरे जाते हैं। गोसाईं जी ही की रचनाओं पर समाप्ति नहीं है। अब प्राचीन ग्रंथों के प्रकाशक प्रायः प्राचीन पुस्तकों में लिखे हुये शब्दों को संस्कृत के ढांचे पर खोल २ कर डालने लगे हैं। ऐसा करना बड़ा ही अनुचित है। ऐसा करने से किस समय कैसी लेखन-रीति तथा कैसी भाषा प्रचलित थी व्याकरण का कितना और कैसा अनुसरण किया जाता था इन बातों का पता लगना तथा निर्णय होना कालान्तर में कठिन हो जायगा।

पञ्चदश परिच्छेद

रामचरित मानस के संस्करण तथा टीकाएं

आज से कई वर्ष पूर्व हिन्दीभाषा के प्रसिद्ध प्रचारक तथा रामचरित मानस के परम प्रेमी म० कु० बाबू रामदीन सिंह जी ने स्वसम्पादित रामायण में लिखा था कि उस समय तक मुद्रकों के द्वारा इस ग्रंथ का ११६ संस्करण हुआ था। इस बीच में और भी अनेक संस्करण अवश्य हुये होंगे क्योंकि कोई ऐसा विरला ही प्रेस है जिसने गोसाईं जी की इस रामायण को न प्रकाशित किया हो। किसी २ ने तो इस का कई संस्करण प्रकाश कर के अभिमत धन प्राप्त किया है।

इन संस्करणों में कितनों में तो केवल मूल ही छपा है एवम् कितनों में टीका सहित मूल छपा है। किन्तु अक्षरों तथा शब्दों के परिवर्तित करने और क्षेपकों के ठूसने के सिवाय प्रकाशकों ने प्रायः मूल पाठ में मनमाना-मौनमा गड़बड़ कर दिया है। इस में सन्देह नहीं कि प्राचीन रचनाओं की मुद्रित तथा हस्त लिखित प्रतियों में प्रायः पाठान्तर पाया जाता है। इसी देश के ग्रन्थों में नहीं वरन् अन्य देशों के ग्रंथों में भी यह बात देखी जाती है। परन्तु इस की भी तो कोई सीमा होनी चाहिये। यहां तो इस पुस्तक के प्रकाशकों ने अपनी २ बुद्धियों की ऐसी दौड़ दी है कि कहीं ने एक नई ही रचना खड़ी कर दी है और एक पुस्तक के दूसरी पुस्तक से मिलाने में विशेष अन्तर दीखता है। और यही रामायणियों में विरोध का कारण हो गया है। कोई एक रामायण का पाठ ठीक बताते हैं और कोई दूसरे का। चार मित्र एक स्थान में बहुत से लोग विवाद की सीमा को उल्लंघन करने के लिये भी कमर कसकर खड़े हो जाते हैं। कहीं पाठान्तर ऐसा भी देखने में आता है जिस से अन्य अर्थ के आगे अनर्थ की टीका करने का भी सम्भावना हो जाती है।

संस्करणों की तो यह दशा और टीकाकारों ने कुछ और ही गुल खिलाया है। जिस की बुद्धि में जैसी राह दिखलाई दी उसने वैसी ही टीका रच दी है। अपनी बुद्धि की चमत्कारी दिखाने में लोगों ने त्रुटि नहीं की है। परन्तु इस बात का कम लोगों को ध्यान रहा है कि कवि का स्पष्ट क्या आशय था और ग्रन्थ के अध्ययन तथा अर्थ के समझने में रामायण के पाठकों को इनकी टीकाओं से कहां तक सहायता मिल सकती है। टीकाकारों का मुख्य उद्देश्य यह होना चाहिए था कि कठिनता एवम् सन्देहों का निवारण करें। किन्तु इन में से कितनों ने

अपनी पंडिताई तथा निपुणाई दिखाने के लिये ऐसी अनेक नई २ कल्पनाएं की हैं और छोटे छोटे पदों तथा शब्दों को तोड़ मोड़ कर उन का ऐसा गूढ़ आशय बयान किया है जिस की ओर कवि का कदाचित कभी ध्यान भी नहीं गया होगा। रामचरितमानस का बिचारा अबोध पाठक टीकाओं के सहारे ग्रंथ का मूल तात्पर्य जानने के बदले टीकाकारों के पाण्डित्य के भँवरजाल में पड़ कर चकरा उठता है।

आज इस ग्रंथ की पचासों टीकाएं प्रकाशित हैं। किसी में भावार्थ, कहीं में शंकासमाधान एवम् किसी में अलकारों की छटा दिखलाई गई है और किसी २ में साधारण सरल शब्दों का राह चूल २ कर मनमाना अर्थ निकाला गया है।

श्रीमहंथ रामचरण दास जी, श्री महात्मा काष्ठजिह्वा (देव) स्वामी पं शिवलाल पाठक, महाराणा देव (कनीशर) दत्त शर्म्मा पं किशोरी दत्त श्री रूप दत्त श्री रामप्रसाद जी परमहंस, महात्मा भाइ सन्त सिंह (पंजाबी) महाराज काशीराज श्री ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह बहादुर, महाराज माधव शरण सिंह (बक्सर) महात्मा जानकी दास जी भक्तभूषण हरिहर प्रसाद जी, पं राम बक्स पाण्डेय पं० बन्दन पाठक श्री महात्मा रघुनाथ दास जी, बाबा बैजनाथ दास जी पं ज्वाला प्रसाद, पं रामेश्वरभट्ट श्री बैजनाथ दास जी इत्यादि की गणना मुख्य टीकाकारों में होती है। परन्तु इन में सब महानुभावों की टीकाएँ मुद्रित नहीं हुई हैं। हम यहाँ पर कई एक टीकाओं की ऐसी समालोचना करनी अनुपयुक्त नहीं समझते।

"रामचरित मानस" के केवल मूल ही के जितने संस्करण हुये हैं उनमें से 'खड्गविलास प्रेस द्वारा प्रकाशित संस्करण तथा 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित, इलाहाबाद इन्डियन प्रेस का छपा संस्करण मात्र शुद्ध तथा गोस्वामी जी के लेख नियम के अनुसार छापे गये हैं। यद्यपि इन दोनों में भी जहाँ-तहाँ परस्पर प्रभेद है तथापि ये दोनों अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा निस्सन्देह प्रामाणिक हैं।

पहले-पहल म. कु. बाबू रामदीन सिंह जी ने ग्रियर्सन साहब के उद्योग से राजापुर के अयोध्या काण्ड की प्रतिलिपि तथा काशीनरेशवाली रामायण के सातों काण्डों की नकल प्रस्तुत करके गोसाइं जी के लेखानुसार केवल मूल ही १८८६ ई० में प्रकाशित किया। उस में गोसाईं जी के हस्त लिखित १ पत्रों का, काशीनरेशवाली रामायण के चार पत्रों का एवम् एक बार टोडर की सन्तति के झगड़े में गोसाईं जी के दिये व्यवस्था पत्र (पंचनामा या फैसला) के फोटो भी दिये गये हैं। अपनी लिखी हुई भूमिका तो है ही ग्रियर्सन साहब लिखित संक्षिप्त जीवनी कोई महापुरुष कृत पद्यबद्ध जीवन चरित्र एवम् साहित्याचार्य पण्डित अम्बिका दत्त व्यास तथा अन्य लोगों की बनाई मानसप्रशंसा की कविताएं भी छापी गई हैं।

म. कु. रामदीन सिंह हमलोगों के हार्दिक धन्यवाद के भागी हैं क्यों कि उन्हों ने गोसाईं जी कृत रामायण की शुद्ध प्रति सब लोगों के लिये सुलभ करने के हेतु उस समय यत्न किया जब कि अन्य लोगों का ध्यान भी उधर नहीं गया था एवम् इस के मुद्रण का सर्वथा भार अपने ही ऊपर लिया। इसमें उनका किसी ने हाथ नहीं बटाया।

१९०३ ई० में 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' ने भी राजापुर वाले अयोध्या काण्ड, काशीनरेशवाली रामायण, तथा एक दो अन्य प्राचीन हस्त लिखित प्रतियों को अपने पांच सदस्यों के द्वारा मिलवा कर तथा शोधवा कर सुन्दर अक्षरों में और अच्छे कागज़ पर 'इण्डियन प्रेस' इलाहाबाद में छपवाकर केवल मूल ही प्रकाशित किया है।

इस में भी गोस्वामी जी की जीवनी छपी है। काशी नरेश के पास जो एक सचित्र रामायण है जिस की तयारी में कदाचित् १९,००० व्यय हुआ था उस के बहुत से चित्रों के इस में फ़ोटो भी दिये गये हैं। अन्त में कथा भाग है जिस में उन पौराणिक बातों का जिनका गोस्वामी जी ने रामायण में संक्षिप्त वर्णन किया है पूरा विवरण दिया हुआ है। खड्गविलास प्रेस वाले संस्करण के १२ वर्ष पीछे यह संस्करण तयार होने से इस के सम्पादकों को कुछ अधिक सावधानी से काम करने का अवसर मिला है और पांच सम्पादकों की सम्मति से काम करने एवम् इस सभा के राजों महाराजों के सहायक होने से इस में चमक दमक कुछ विशेष देखी जाती है।

हम इन दोनों संस्करणों में प्रभेद की बात अभी कह चुके हैं। हम यहां पर अन्य काण्डों का विचार नहीं करते और न हम ने शब्दों के पाठान्तरों पर विशेष ध्यान दिया है। हमारा ध्यान दोनों संस्करणों में अयोध्या काण्ड के प्रत्यक्ष प्रभेदों की ओर आकर्षित हुआ है। 'खड्गविलास प्रेस' संस्करण में २२६ अंक के दोहे की चौपाइयां ६ और २ ५ ८ २० ६८ १७३ १८४ १८५, २१८, २७६ तथा २६१ अंक वाले दोहों की चौपाइयां आठ-आठ एवम् १६ तथा ३०२ अंक वाले दोहों की चौपाइयां नौ नौ हैं और काशी नागरी प्रचारिणीसभा द्वारा प्रकाशित रामायण में केवल ८ ६४ १७३ और १८६ दोहों की चौपाइयां आठ आठ एवम् २६ तथा २ २ दोहों की चौपाइयां नौ नौ हैं। २२६ अंक के दोहे की चौपाइयां हैं तो आठ परन्तु उन में चार चरण छोड़कर हैं जैसा कि गत परिच्छेद में दिखलाया गया है। इन दोनों संस्करणों के अयोध्या काण्ड में इतना प्रभेद होना बड़े आश्चर्य की बात है। क्योंकि इन दोनों के सम्पादक लोग पुस्तक सम्पादन के समय यह काण्ड राजापुर से प्राप्त होना बताते हैं जहां गोसाईं जी के हाथ की लिखी हुई रामायण की स्थिति कही जाती है। 'खड्गविलास' वाली प्रति के आरम्भ में लिखा है कि "उस (राजापुर वाली) प्रति के लिए बहुत यत्न किया गया था। कठिनता से उस का फोटोग्राफ लिया और उसी प्रकार के कागज़ और लिपि में उसके छपाने में बहुत सा द्रव्य व्यय करके उसको निकाला लिया है। एवम् 'काशी नागरी प्रचारिणी सभावाली रामायण' के सम्पादकगण लिखते हैं "इस में न पहले पहल छपी (अर्थात् राजापुर वाली अयोध्या काण्ड की) प्रतियों के प्राप्त करने का सौभाग्य सभा के सभासद बाबू ठाकुर प्रसाद का यत्न है।"

परन्तु इस प्रसंग में तो यह निश्चित रूप से अनुमान किया जा सकता है कि इन दोनों में से कोई एक राजापुर वाली रामायण के अनुसार नहीं है या राजापुर के अधिकारी अन्य भिन्न २ व्यक्ति को भिन्न २ प्रति गोसाईं जी लिखित कह कर निज स्वार्थ साधनार्थ दिखला दिया करते हैं जिस वहां वास्तव में गोसाईं जी लिखित रामायण होने की बात एक ढकोसला ही प्रतीत होता है या सम्पादक महाशयों ने अपने २ संस्करण के प्रकाशन में अपनी बुद्धि से भी काम लिया है। किन्तु

बा रामदीन सिंह जी ने तो यह स्पष्ट कहा है कि 'इस राम चरित मानस में ग्रन्थकार के लेखा नुसार मक्षिका स्थाने मक्षिका रक्खी गई है। कल्पना से काम नहीं लिया गया है।'

अब मित्रवर बाबू रामदीन सिंह जी इस संसार में नहीं हैं और काशी सभावाली रामायण के सम्पादकों में से केवल सुमान्य श्यामसुन्दर दास वर्तमान हैं। उन्होंने हमारे पत्र के उत्तर में यथार्थ लिखा है कि अब फिर राजापुरवाली प्रति देखे बिना कुछ कैसे कहा जा सकता है। परन्तु हम को तो वहां जाकर वह रामायण देखने का समय और अवकाश नहीं है। क्या उस प्रान्त के कोई साहित्यानुरागी अपने ऊपर कष्ट उठाकर इसके निश्चय करने का उद्योग करेंगे?

राजापुर वाली रामायण में तापस की बेजोड़ कथा रहने से भी उस प्रति के विषय में हमारे मन में बड़ा असमंजस उत्पन्न होता है, क्योंकि गोसाईं जी ने रामायण में और कहीं कुछ अप्रासंगिक रीति से नहीं लिखा है।

रोशन लाल कृत टीका—टीकाकार ने लिखा है कि "श्रीमत् पंडित रामबक्स परि रामायणी की सहायता से जिन्हों ने चौदह वर्ष से बहत्तर वर्ष पर्यन्त इसी रामायण के पढ़ने और सत्सङ्ग में सारी अवस्था व्यतीत की यह टीका निर्मित होकर मूल के सहित बड़ी शुद्धता के साथ छापी गयी।' १८७० ई०[1] की छपी हुई इस टीका की द्वितीयावृत्ति हमारे सामने इस समय उपस्थित है। यह टीका 'नूरुल अबसार' यन्त्रालय आगरा में छपी थी। यह टीका बहुत सरल रीति से अंगरेजी भाषा की पुस्तकों के नोट के ढंग पर बनी है। जहां कहीं किसी चौपाई में एक ही शब्द कठिन समझा गया है वहां उसी का अर्थ लिख दिया गया है। कहीं आवश्यकता नुसार चौपाइयों और दोहों की सविस्तर व्याख्या भी हुई है। कहीं किसी विषय का दो एक भाव भी दिखलाया गया है। मूल के अतिरिक्त पौराणिक कथाओं का संक्षिप्त वर्णन भी कर दिया गया है। इस के अन्त में रामायण के शब्दों का कोष भी दिया हुआ है। टीका अच्छी है।

श्रीरामबक्स पाण्डेजी श्रीमन्महाराजा ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंहजी काशीनरेश के रामायण के एक मुख्य पंडितों में से थे। आप रामायण के अच्छे ज्ञाता थे। आपने रामायण की एक टीका भी बनायी है जो श्रीकाशीनरेश के पुस्तकालय में वर्तमान है और उस टीका के बालकांड का उतारा बांकीपुर के खड्गविलास यन्त्रालय में भी है। प्रवाद है कि रामबक्स जी की कथा में मुं० रोशन लाल सर्वदा उपस्थित रहते थे और जो कथा में सुनते थे उसे लिख लिया करते थे। उसी से उन्हों ने अपनी टीका बनाकर प्रकाशित की जो बात कदाचित् पंडित जी को कुछ बुरी भी लगी थी। परन्तु भूमिका के ऊपरवाले उद्धृतांश से इस प्रवाद की पुष्टि नहीं होती।

रामायण परिचर्य्या परिशिष्ट प्रकाश—पहले व्याकरण वेदान्त न्यायादि के महान पंडित काशीनिवासी श्री काष्ठजिह्वा स्वामी ने 'रामचरित मानस' की संक्षिप्त टीका करके उसका नाम 'मानस परिचर्य्या' रक्खा था। उसी को श्री मन्महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायण

---

१ रामचरित मानस की टीका चाहे पहले किसी ने बनाई हो परन्तु बोध होता है कि यही रोशन लाल कायस्थ की बनाई टीका पहले पहल छपकर प्रकाशित हुई।

सिंह जू ने परिवर्द्धित कर उसका नाम 'मानस परिचर्या परिशिष्ट' रखा। उस के प्रकाशन के समय उस में जो कुछ अपूर्ण देखा गया वह श्रीमान् के फुफेरे भाई कसरा जिलान्तगत बगौरा-निवासी महात्मा हरिहरप्रसाद जी द्वारा पूर्ण होकर उसका नाम 'मानसपरिचर्या परिशिष्ट प्रकाश' रखा गया एवम् उसी नाम से तीनों महानुभावों की टीकाएँ सम्मिलित होकर संवत् १९१५ ४० के मध्य काशी का-भयग्रालय तथा लाइटप्रेस में मुद्रित हुई थीं। फिर वही टीकाएँ उपयुक्त नाम से बाँकीपुर खड्गविलास यन्त्रालय से १८९८ ई० में प्रकाशित हुई।

श्री गोस्वामीजी के स्थान से संवत् १७०० की लिखी रामायण प्राप्त कर सं० १८६४ में श्रीअयोध्याविहारदासजी ने यह टीका लिखना आरम्भ किया था।

इस ग्रन्थ का पाठ शुद्ध माना जाता है। टीका अच्छी है। अर्थ सुन्दर स्पष्ट भावप्रदर्शन मनोहर, सुगम तथा बोधगम्य है। इस में संस्कृत ग्रन्थों का एक भी प्रमाण उद्धृत नहीं पाया जाता। भाषा वर्तमान शैली की नहीं है। तौभी अर्थ विषय भाव सब भलीभाँति समझ में आ जाता है। कहीं २ शंका समाधान की भी बहार लगी जाती है। भूमिका की भाषा अशुद्ध है। आजकल के लोगों को उसे पढ़ते अवश्य हँसी आने लगती है।

"मैनपुरी निवासी मुं० सुखदेव लाल सक्सेना कायस्थ कृत टीका"—इस की रचना सं० १९२२ में हुई और १८६१ ई० में लखनऊ के मु० नवलकिशोर के छापेखाने में इस की पाँचवीं आवृत्ति हुई जो हमारे सामने इस समय उपस्थित है। इसका पहला संस्करण कब प्रकाशित हुआ यह हम ठीक नहीं कह सकते। लगभग दसवर्ष पहले हुआ होगा। मुन्शी जी ने सर्वत्र आठ ही आठ चौपाइयाँ रखकर एवम् शेष चौपाइयों को मति दोष से निकाल कर टीका की है। शेष चौपाइयों को आपने क्षेपक माना है। इस की समालोचना पहले हो चुकी है। आप ने चौपाइयों के निकाल देने का कारण भी दिखलाया है और उसका यथार्थ होना सम्भव भी हो सकता है। परन्तु आप को यह कैसे अनुभव हुआ कि अमुक ही अमुक चौपाइयाँ निकाल देने के योग्य हैं। यह बात आपने पाठकों को नहीं बताई है।

यह काम इनका श्लाघनीय न हो परन्तु टीका बहुत सरल स्पष्ट सुन्दर तथा सराहनीय है। सब के पढ़ने और समझने के योग्य है। टीका वाह्याडम्बर से शून्य है। संस्कृत वाक्यों की भरमार नहीं है। तथापि सम्मत प्रमाणों का अभाव भी नहीं है। इस टीका के पढ़ने से रामायण का साधारण ज्ञान हो सकता है।

श्रीरामानन्दलहरी टीका—श्री अयोध्या निवासी महात्मा रामचरण दासजी[1] कृत यह टीका महाराज युगलानन्द स्वामी द्वारा संशोधित होकर महाराज रघुनाथ दास अनुमति के

---

१ बाल्यपुरुष कुल में उदार बचपन सेंके बार ही से सीतानाथ पद अनुरागे हैं। कोई देख भूरति की चाकरी काम नहीं इष्ट देव सदा जान धुन ही में पागे हैं॥ एक दिन रावण की सेना में भूमान उनहीं को कर धरि धाइ हरि जान हैं। जानी जब बात सब हार्दिक मान नहि उगत के साथ रघुनाथ चोर माने हैं॥ 'रसिक प्रकाश भक्तमाल' पर पं० वासुदेवदास कृत टीका भाग १, २१७—२८ पक्तियों को देखिए।

आज्ञानुसार मुं० रघुबरदयाल की सम्मति से लखनऊ के मुं० नवलकिशोर के मुद्रणालय में १८८२ ई० में प्रथमबार पत्रा के आकार में छपी थी। उस में प्रति काण्ड के आरम्भ में टीकाकार कृत कुण्डलव वन्दनादि देखी जाती है। बालकाण्ड के आदि में लिखा है:—

'गुरु कहि तुलसी कृत समुझि, सकल शास्त्र श्रुति ज्ञान।
मम विचार यह आइ हिय, तुलसि दास को ध्यान॥
तब अनुभवित सुमन्द मो, पहर बढ़ दिन पाठ।
अवधपुरी दिन विजय तिथि पैंसठि सत दस आठ॥"

इस से ज्ञात होता है कि इस टीका की रचना १८६५ में आरम्भ हुई। यद्यपि इस दोहा से यह ज्ञात नहीं होता कि यह विक्रमी संवत् है या अन्य कोई सन है परन्तु विराम बिहार-सारन के महन्त श्री सीताराम (युगल प्रिया) जी कृत 'रसिकप्रकाश भक्तमाल' में इन के साकेतवास का समय सं० १८८८ [1] लिखा हुआ है— 'संवत अठार से अठासी माघ शुक्ल नौमी गुरु प्रिय पास गये दुविधा निवारिकै।" इस से १८६५ [2] के भी संवत् ही होने की सम्भावना है।

इस में पुराणों शास्त्रों उपनिषदों तथा वेदों के वाक्यों का यथा योग्य दृष्टान्त देकर आप ने भाषाकथित भावों की पुष्टि की है। कहीं २ चौपाइयों तथा दोहों का अर्थ संक्षेपतः कहा गया है और कहीं २ पृष्ठों तक बढ़ा गया है जिस से कभी २ साधारण पाठकों का मन पढ़ने से कुछ उचट भी जाता है। प्रमाणवाले श्लोकों का अर्थ वा आशय नहीं दिया गया है। और एक ही श्लोक अनेक स्थानों में उद्धृत हुआ है। आप ने प्रत्येक काण्ड के विषयों को, (यथा जन्मसमाज, बालसमाज इत्यादि) तरङ्गों में विभक्त किया है और प्रत्येक तरङ्ग के अन्त में आप कोई छन्द देते गये हैं। कहीं २ अलङ्कार भी दिखलाया गया है।

इस टीका में उपासना भली भांति दर्शाई गई है और इस के लिये यह बहुत उत्तम टीका है एवम् साधु महात्माओं के बड़े काम की है। रामनाम की महिमा अनेक रूपों से निरूपित हुई है। इसकी गणना प्रामाणिक तथा उत्तम टीकाओं में है। इस की भाषा में कहीं २ ब्रजभाषा की झलक आ जाती है।

इसका एक संस्करण १८८८ ई० में मु० रघुबर दयाल जी की सम्मति से हुआ था। फिर १८६५ में इसकी तृतीयावृत्ति हुई। उस में मुन्शीजी का नाम नहीं देखा जाता। इन दोनों संस्करणों में प्रत्येक काण्ड के आदि में प्रथमावृत्ति वाली कुण्डलव वन्दना भी नहीं देखी जाती। इस के पीछे की कोई आवृत्ति हमें देखने में नहीं आई।

इस टीका की प्रशंसा में पूर्वोक्त भक्तमाल भाग १ में यह लिखा है— मानस रामायण प्रसिद्ध पाठ अर्थ करि आगम निगम और पुरान मत लावैगो। अलङ्कार छन्द के प्रबन्ध हाव भाव भेद रसन के भेद जहां तहां दरसायगो। कर्म ज्ञान भक्ति योग अर्थ धर्म काम मोक्ष तत्वबाद संमत परस्य सरसावैगो। सिरी रामचरण तिलक शिशु देखे चीन्ह नृपति उपासना की रीति कहां पावैगो।

[1] रसिकप्रकाश भक्तमाल कवित्त २२१ देखिये।

[2] ग्राउसे साहब ने सं० १८६२ कैसे लिखा है।

मानसतत्त्व प्रबोधिनी—श्रीसीतारामीय बाबू शिवराम सिंह की बनाई केवल किष्किन्धाकाण्ड की टीका है और बाँकीपुर खड्गविलास यन्त्रालय से प्रकाशित हुई है। इस में पहले मूल रख कर तब मानस तत्त्व-टीका रखी गई है, तत्पश्चात टिप्पणियाँ की गई हैं। उस में जहाँ रा० प० लिखा गया है वहाँ प्रबोधिनी श्री बाबू सिद्धा स्वामीकृत रामायण परिचर्या जहाँ रा० प० प० है वहाँ श्री महाराज ईश्वरी प्रसाद नारायण कृत 'रामायण परिचर्या परिशिष्ट' और जहाँ रा० प० पं० प्र० लिखा गया है वहाँ महात्मा हरिहर प्रसाद जी कृत 'रामायण परिचर्या प्रकाश' और जहाँ रा० प० है वहाँ पं० राम वल्लभ पाण्डेय कृत टीका से तात्पर्य है अर्थात् इन सब टीकाओं का भाव यथोचित स्थानों में समावेशित होता गया है। इस टीका में सब से उत्तम यह बात है कि इसे ध्यान पूर्वक पढ़ने से सातों काण्डों के प्रसिद्ध २ स्थानों के शंका समाधान तथा भाव का अच्छा लाभ हो सकता है और अन्य सोपानों के समझने की भी योग्यता प्राप्त हो सकती है। है तो यह सब सोपानों से छोटे सोपान की टीका, परन्तु केवल शंका समाधानादि के कारण ही ८८८ पृष्ठों में इसकी समाप्ति हुई है। यह टीका १८८९ ई० में छपी है।

मानसतत्त्व विवरण—मु० गुरुसहाय लाल रचित केवल बालकाण्ड का तिलक जो पटना के प्रसिद्ध रईस राय काशी प्रसाद साहब की आज्ञानुसार १८८६ ई० में प्रकाशित हुआ। इसमें ८८ पृष्ठों में केवल भूमिका है। अर्थ बहुत विस्तार करके लिखा गया है। 'जेहि सुमिरत सिधि होइ' इसकी टीका लम्बे २ सोलह पृष्ठों में है। इसी से इस के विस्तार की अटकल लगाई जा सकती है। चार संस्कृत वाक्य भी अनुवादित हो उद्धृत हुये हैं। टीका सरल नहीं है। रामायण के पूरा अभ्यास के बिना अथवा किसी अच्छे विद्वान पण्डित की सहायता के बिना इस तिलक का समझना हमारी समझ में कठिन है।

वैजनाथ दासजी की टीका—जिला बाराबंकी मजरा मौजा दहवा मामपुर के निवासी पूर्व वकील सब्बरदार वैजनाथ जी कृत। यह टीका मु० नवल किशोर (सी० आई० ई०) के यन्त्रालय में १८९० ई० में प्रथम बार छपी है। कदाचित् इस का और भी संस्करण हुआ है परन्तु हमें कोई देखने में नहीं आया।

इस टीका का रङ्ग ढङ्ग श्रीमहन्त रामचरणदासजी कृत टीका का है। बोध होता है कि टीकाकार ने उन्हीं का अनुकरण किया है। परन्तु संस्कृत ग्रन्थों के प्रमाण संग्रह करने में चार कदम उनसे भी बढ़ गये हैं। कहीं २ तो दो दो पृष्ठों में प्रमाण ही प्रमाण देख लीजिये। बहुत-सी अप्रयोजनीय बातें भी प्रसङ्ग पर व्यर्थ अर्थविस्तार किया गया है। उदाहरण आप लोग भी स्वयम् देखिये और विचारिये कि इस चौपाई के अर्थ में 'तब प्रभु भूषन बसन मँगाये। नाना रङ्ग अनूप सोहाये।' कितनी व्यर्थ की बातें कही गई हैं। टीकाकार लिखते हैं। 'तब प्रभु [illegible] भूषण तथा किरीट कुण्डल कङ्कण, माला [illegible] पञ्चोपचारादि [illegible] वसन तथा पामरी दुपट्टा [illegible] लाल [illegible] हरित, श्यामी, गुलाबी [illegible] जिस में बादला [illegible] किनारी [illegible]

बने सोहाने अत्यन्त सुन्दर इत्यादि मंगाये।' नहीं मालूम टीकाकार मोजा दस्ताना कमफर्टर शिरवानी कोट, पतलून गंजी इत्यादि मँगाना क्यों भूल गये! और देखिये— "मीच दरद पग कै सन करिहों। अर्थात् इसका दवामि करावना उबटन लगावना, स्नान करावना मपस बसन पहिरावना गंध लगावना बिछौना बिछावना पांव पलोटना इत्यादि मीच दरद। ये सब लिखना निष्प्रयोजनीय था। इन सब बातों का जिन्हें १२ १४ वर्ष का बालक भी जान सकता है इतना विस्तार करना और शास्त्र तथा पौराणादि के वाक्यों को उद्धृत कर उनका भाषा में सारांश भी नहीं जानना यही टीका की परिपाटी सिखाती गई है। इन्हीं महाशय को हम नहीं कहते। प्रायः सभी लोग संस्कृत का पाण्डित्य दिखलाने को प्रायः प्रश्नों के वाक्य तो उल्लेखित कर देते हैं परन्तु पाठक को उसका सारांश भी नहीं बताते मानो वह राजा भोजादि का समय हो कि सर्वसाधारण कुछ न कुछ संस्कृत ही पाये जाते थे।

टीकाकार ने स्वरचित कविताएँ भी कहीं कहीं समावेशित की हैं, स्थान २ में अनेक भाव भी दरसाया है जहां तहां अलङ्कार भी दिखलाया है और ऐसे स्थानों में उन अलङ्कारों का लक्षणादि भी लिखा है। ये बातें उत्तम हैं। कठिन बातों को स्पष्ट करना ही टीका का मुख्य अभिप्राय होना चाहिये। टीका बहुत सरल और सर्वबोधगम्य है। इस टीका को लोग पसन्द भी करते हैं। यदि संस्कृत प्रमाणों का कुछ आशय भी लिख दिया गया होता एवम् अनावश्यक बातें कदापि न लिखी गई होतीं तो यह टीका और भी उपयोगी हो जाती।

सञ्जीवनी टीका—पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र कृत यह टीका प्रथम बार श्री वेंकटेश्वर यन्त्रालय से सं० १९४८ (१८९१ ई०) में प्रकाशित हुई थी और १९१९ ई० तक इस की बारह आवृत्तियाँ हो गईं।

इस में मंगलाचरण के अनन्तर कई एक स्फुट बातें लिख कर गोस्वामी जी का जीवन चरित्र दिया गया है। फिर रामायणमाहात्म्य तब तिलक सहित रामायण लवकुशकाण्ड आरती भजन रामचन्द्र के चतुर्दश वर्ष वनवास का तिथिपत्र और रामायण कोष है। प्रस्तुत जीवनचरित्र निरचय रीवाधिप श्रीमन्महाराज रघुराजसिंह देव कृत भक्तमाला राम रसिकावली' से अविकल उद्धृत किया गया है। पण्डितजी महाराज को कहीं पर यह टिप्पणी कर देनी चाहिये थी। ऐसा नहीं करना बहुत अनुचित और महा दोष है।

यह तिलक कैसा है एवम् इस में कौन २ विषय समावेशित हुए हैं यह बात हम स्वयम् टीकाकार के ही शब्दों में पाठकों को सुना देते हैं। "इस रामायण के तिलक में वेदशास्त्र का जहां जो आशय पाया है वह सप्रमाण संस्कृत वाक्य लिख कर लिखा है और प्रत्येक चौपाई का तिलक उस के नीचे ही लिखा है—प्रत्येक चौपाई का अक्षरार्थ और जहाँ भावार्थ की आवश्यकता देखी है वहाँ भावार्थ भी लिख दिया है—जितने राजों के नाम वा चरित्रों के संकेत रामायण में आये हैं उन के इतिहास इस ग्रन्थ में वर्णन किये हैं और सम्पूर्ण क्षेपक कथा जो कि वाल्मीकीय आदि रामायणों में विद्यमान है, इस में जहां उचित जाना है वहां मिश्रित की है। यह प्रथमावृत्ति की भूमिका में लिखा है। दूसरी आवृत्ति में आपने रामकथावर्णनप्रसङ्ग, रामकलेवा महासंस्कार वशिष्ठजी का तेरह राजों का इतिहास कहना जानकी जी का महावीरजी से परवाचाप रावण की सभा में विचार धूम्राक्षादि का मरण मेघनाद की शक्ति और सुलोचना

मिलने की कथा तथा लवकुशकाण्ड, माहात्म्य की शोभा कोष, रामशलाका प्रश्न एवं श्रीहनुमान महावीर की सर्वांग मूर्ति मिला कर 'इस की शोभा दुगुनी बढ़ा दी है। पंडितजी ने लिखा है कि 'इस रामायण के पाठक महाशयों ने हमारे पास बहुत से प्रशंसापत्र भेजे हैं। पाँचवीं आवृत्ति में 'दो चार कथा वाल्मीकीय से निकाल कर मिला दी है।" एवम् छठी में 'लव राज का भरत-शत्रुघ्न को घर ले जाने और [illegible] केतु का उन के हाथ से वध कराने की कथा अधिक है।'

पाठकवृन्द समझ गये होंगे कि पंडित जी का क्षेपक पर कितना अनुराग है। प्रथम में क्षेपक भरने से आप की तृप्ति ही नहीं होती। जब नई आवृत्ति हुई कि चार न दस पाँच क्षेपक की कथाएँ घर्घट कर के गोसाईं जी की ललित रचना में घुसेड़कर पाठकवर पर मूढ़ की पदवी सी लगा दी और अपने आप उस की दुगुनी शोभा बढ़ा दी। पंडित जी चाहे जैसा समझें; उन के घर चाहे प्रशंसापत्रों की ढेरी लग गई हो क्षेपकानुरागी चाहे उन से कितना प्रसन्न रहते हों एवम् प्रकाशक की कोष वृद्धि करते हों परन्तु क्षेपकों की ऐसी भरमार से कालान्तर में मूल ग्रंथ की क्या दुर्गति होगी? यह मनोहर कुसुमित तथा महामधुर रसभरित से पूरित सुन्दर सोहावन उपवन क्षेपकों की अतिविस्तृत बेढब लताओं से आच्छादित होते २ क्या एक दिन अपना सहजसौन्दर्य खो न बैठेगा? क्या हमारे अंगरेजी पढ़े पाठकों को यह बात रुचिकर होगी कि शेक्सपियर तथा अन्यान्य कवियों की रचनाओं में जहाँ कहीं ऐतिहासिक वा धार्मिक कथा का संक्षिप्त निरूपण हुआ है वहाँ पर वा अन्यान्य स्थानों ही में, कोई टिप्पणीकार (note writer) अपना स्वच्छन्द सविस्तर वर्णन कर के उसे मनमाने में समावेशित कर दे? परन्तु क्षेपकानुरागियों को इस से क्या? चाहे मूल ग्रन्थ का सौन्दर्य विनष्ट हो चाहे कुछ हो परन्तु गँवारों में क्षेपकयुक्त रामायण का प्रचार कर अपना स्वार्थसाधन करने में त्रुटि नहीं होनी चाहिए। हम भी निर्भीकभाव से कह सकते हैं कि बुद्धिमान पाठक तथा रामायणानुरागी लोग क्षेपक पर इस प्रकार का अनुराग कदापि नहीं रखते।

पंडित जी अपने कविताओं को जहाँ तहाँ घुसेड़ने में लग गये हैं यदि वे पत्रों को भी कोई अन्य स्थान प्रदान करते तो उन का काम भी होता और 'मानस' की शोभा भी नहीं बिगड़ती।

छापे की बात दूर रखने पर निःसन्देह यह बहुत सुन्दर शुद्ध सुगम और उपयोगी हुआ है। रामायण के सारे पुराने पद पाठों को अवश्य उद्धार कर पा सकते हैं। इसी से प्रमाणित तथा प्रसिद्ध टीकाओं में इस की गणना होती है।

सब प्रकार के मनुष्यों के लिये सुलभ बनाने के अभिप्राय से चार मैं अपनी टीका को छोटे रूप में गुटका के आकार में भी प्रकाशित कराया है उस में गोसाईं जी का जीवन चरित्र रामायण माहात्म्यादि दिया गया है।

“मानस भाव प्रकाश” —सिक्ख सम्प्रदाय के एक सुप्रसिद्ध धर्मस्थान श्री अमृतसर गुरु दरबार के प्रधान पंडित महंत बाबा अमीर सिंह[1] जी ने इस टीका की रचना की है।

---

1 इनका संक्षिप्त जीवनवृत्तान्त भी इसी टीका में दिया हुआ है।

बने सोहाये अत्यन्त सुन्दर इत्यादि मंगाये। नहीं मालूम, टीकाकार मोजा दस्ताना कमफर्टर शिरवानी कोट, पतलून, मंजी इत्यादि मँगाना क्यों भूल गये! और देखिये—"नीच टहल गृह कै सब करिहों। अर्थात् बुहारा लगाना, दतुनि कराबना उबटन लगावना, स्नान करावना, भगवा बसन पहिरावना, गंध लगावना, बिछौना बिछावना, पांव पलोटना इत्यादि नीच टहल।" ये सब लिखना निष्प्रयोजनीय था। इन सब बातों का जिन्हें १२ १४ वर्ष का बालक भी जान सकता है इतना विस्तार करना और शास्त्र तथा पौराणादि के वाक्यों को उद्धृत कर उनका भाषा में सारांश भी नहीं बतलाना यही टीका की परिपाटी निकली गई है। इन्हीं महाशय को हम नहीं कहते। प्रायः सभी लोग संस्कृत का पाण्डित्य दिखलाने को कार्य प्रमाणों के वाक्य तो उल्लेखित कर देते हैं परन्तु पाठक को उसका सारांश भी नहीं बताते मानो यह राजा भोजादि का समय हो जब कि सर्वसाधारण कुछ न कुछ संस्कृत ही पाये जाते थे।

टीकाकार ने स्वरचित कविताएँ भी कहीं कहीं समावेशित की हैं स्थान २ में अनेक भाव भी दरसाता है जहां तहां अलङ्कार भी दिखलाया है और ऐसे स्थानों में उन अलङ्कारों का लक्षणादि भी लिखा है। ये बातें उत्तम हैं। कठिन बातों को स्पष्ट करना ही टीका का मुख्य अभिप्राय होना चाहिये। टीका बहुत सरल और सर्वबोधगम है। इस टीका को लोग पसन्द भी करते हैं। यदि संस्कृत प्रमाणों का कुछ आशय भी लिख दिया गया होता एवम् अनावश्यक बातें न्यून की गई होतीं तो यह टीका और भी उपयोगी हो जाती।

सञ्जीवनी टीका—पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र कृत यह टीका प्रथम बार श्री वेंकटेश्वर यन्त्रालय से सं० १९४८ (१८९१ ई०) में प्रकाशित हुई थी और १९१२ ई० तक इस की बारह आवृत्तियाँ हो गई।

इस में मंगलाचरण के अनन्तर कई एक स्फुट बातें लिख कर गोस्वामी जी का पद्यबद्ध जीवन चरित्र दिया गया है। फिर रामायणमाहात्म्य तब तिलक सहित रामायण लवकुशकाण्ड आरती भजन रामचन्द्र के चतुर्दश वर्ष वनवास का तिथिपत्र और रामायण कोष है। पद्यबद्ध जीवनचरित्र निरचय रीवाधिप श्रीमन्महाराज रघुराजसिंह देवकृत भक्तमाला राम रसिकावली' से अविकल उद्धृत किया गया है। पण्डितजी महाराज को कहीं पर यह टिप्पणी कर देनी चाहिये थी। ऐसा नहीं करना बहुत अनुचित और महा दोष है।

यह तिलक कैसा है एवम् इस में कौन २ विषय समावेशित हुए हैं यह बात हम स्वयम् टीकाकार के ही शब्दों में पाठकों को सुना देते हैं। "इस रामायण के तिलक में वेदशास्त्र का जहाँ जो आशय आया है वह सप्रमाण संस्कृत वाक्य लिख कर लिखा है और प्रत्येक चौपाई का तिलक उस के नीचे ही लिखा है—प्रत्येक चौपाई का अक्षरार्थ और जहाँ भावार्थ की आवश्यकता देखी है वहाँ भावार्थ भी लिख दिया है—जितने राजों के नाम वा चरित्रों के संकेत रामायण में आये हैं उन के इतिहास इस ग्रन्थ में वर्णन किये हैं और सम्पूर्ण क्षेपक कथा जो कि बाल्मीकीय आदि रामायणों में विद्यमान हैं, इस में जहां उचित जाना है वहां मिश्रित की है।" यह प्रथमावृत्ति की भूमिका में लिखा है। दूसरी आवृत्ति में आपने रावणबाणासुरसम्वाद, रामकलेवा महासंकट पवित्रपञ्जी का तेरह रानों का इतिहास अङ्गदजी का महावीरजी से पश्चाताप रावण की सभा में विचार, धूम्राक्षादि का मरना मेघनाद की शक्ति और सुलोचना

मिलने की कथा तथा लवकुशकाण्ड, माहात्म्य की टीका, कोष, रामशलाका प्रश्न, ससारवत महावीर की सर्वांग मूर्ति मिला कर 'इस की शोभा दुगुनी बढ़ा दी है'। पण्डितजी ने लिखा है कि 'इस रामायण के पाठक महाशयों ने हमारे पास बहुत से प्रशंसापत्र भेजे हैं। पांचवीं आवृत्ति में 'दो बार कथा वाल्मीकीय से निकाल कर मिला दी है।" एवम् छठी में 'इस राम का भरत-शत्रुघ्न को घर से आने और वाग्मुख केतु का राम के हाथ से वध कराने की कथा अधिक है।

पाठकवृन्द समझ गये होंगे कि पंडित जी का क्षेपक पर कितना अनुराग है। ग्रन्थ में क्षेपक भरने से आप की तृप्ति ही नहीं होती। अब नई आवृत्ति हुई कि आप ने दस पांच क्षेपक की कथाएं पद्यबद्ध कर के गोसाईं जी की ललित रचना में घुसेड़कर पाटम्बर पर मूंज की बखिया सी चला दी और मन मानते 'उस की दुगनी शोभा बढ़ा दी। पंडित जी चाहे जैसा समझें; उन के घर चाहे प्रशंसापत्रों की ढेरी लग गई हो, क्षेपकानुरागी चाहे उन से कितना प्रसन्न रहते हों एवम् प्रकाशक की कोष वृद्धि करते हों परन्तु क्षेपकों की ऐसी भरमार से कालान्तर में मूल ग्रंथ की क्या दुर्गति होगी? यह मनोहर कुसुमित तथा महामधुर सरसफल से पूरित सुन्दर शोभायमान ग्रन्थरत्न क्षेपकों की अतिविस्तृत बेंवर लताओं से आच्छादित होते २ क्या एक दिन अपना सहजसौन्दर्य खो न बैठेगा? क्या हमारे अंगरेजी पढ़े पाठकों को यह बात रुचिकर होगी कि शेक्सपियर तथा अन्यान्य कवियों की रचनाओं में जहाँ कहीं ऐतिहासिक वा धार्मिक कथा का संक्षिप्त निदर्शन हुआ है वहां पर या अन्यान्य स्थानों ही में, कोई टिप्पणीकार (note writer) उसका पद्यबद्ध सविस्तर वर्णन कर के उस मूलग्रन्थ में समावेशित कर दे? परन्तु क्षेपकानुरागियों को इस से क्या? चाहे मूल ग्रन्थ का सौंदर्य विनष्ट हो चाहे कुछ हो परन्तु गँवारों में क्षेपकपूर्ण रामायण का प्रचार कर अपना कार्यसाधन करने में त्रुटि नहीं रखनी चाहिये। हम भी निर्भीकभाव से कह सकते हैं कि बुद्धिमान पाठक, सच्चे रामायणानुरागी लोग क्षेपक पर इस प्रकार का अनुराग कदापि नहीं रखते।

पंडित जी उसे कवितादि को जहाँ तहाँ फुटनोट में रख गये हैं यदि वे क्षेपकों को भी कोई अन्य स्थान प्रदान करते तो उन का काम भी होता और 'मानस' की शोभा भी नहीं बिगड़ती।

छपाई की चाल पुर रखने पर तिलक निस्सन्देह बहुत सुन्दर सरल सुगम और उपयोगी हुआ है। रामायण के नये पुराने सब पाठकों को सम्मुख उपकार पहुंचा सकता है। इसी से प्रामाणिक तथा प्रतिष्ठित टीकाओं में इस की गणना होती है।

सब प्रकार के मनुष्यों के लिए सुलभ बनाने के अभिप्राय से आप ने अपनी टीका को छोटे रूप में गुटका के आकार में भी प्रकाशित कराया है उस में गोसाईं जी का जीवन चरित्र रामायण माहात्म्यादि दिया गया है।

"मानस भाव प्रकाश" —सिक्ख सम्प्रदाय के एक सुप्रसिद्ध श्रीअमृतसर गुरुदरबार के प्रधानग्रन्थी महंत भाई शामी सन्त सिंह[1] जी ने इस टीका की रचना की है।

---

1 इनका संक्षिप्त जीवनवृत्तान्त भी उसी टीका में दिया हुआ है।

चैत्र शुक्ल नौमी सम्वत १८७१ (१८१८ ई०) में इस का लिखना आरम्भ हुआ था। समाप्त होने पर श्री पंडित रघुनाथदास जी के द्वारा मानस के परम प्रेमी साधुसेवी श्रीमहाराजा उदित नारायण सिंहदेव की सेवा में काशी भेजी गयी थी। वहां चारमास पर्यन्त राजसभा में इस का पाठ हुआ और सबों ने इस तिलक की बड़ी प्रशंसा की।

यह टीका उत्तम है। आवश्यकता से अधिक इस में कहीं कुछ नहीं लिखा गया है। कहीं २ चार २ छः २ पदों का अर्थ एक दो पंक्तियों में लिखा है और कहीं २ एक ही दोहा या चौपाई के भावार्थ इत्यादि से पृष्ठ का पृष्ठ भूषित है। अर्थ सहज और सुन्दर है। भावों की विलक्षणता पाठक को मनोमुग्ध कर देती है। इस विषय में इन से टक्कर लगाने वाला कदाचित् कोई विरला ही टीकाकार दृष्टिगोचर होगा। जहां तहां गुरु ग्रन्थ साहब और शास्त्रपुराणादि के वाक्य भी अर्थ सहित उल्लेखित होते गये हैं। टीकाकार कहीं २ पाठान्तर भी दिखलाते गये हैं और यथा अवसर शंका समाधान भी करते गये हैं। आपने भानुप्रताप की कथा को क्षेपक माना है। टीका में पंजाबी भाषा की पूरी झलक दिखलाई देती है। इस में बाबू राम दीन सिंह जी तथा बाबू महादेव प्रसाद जी की टिप्पणियों भी यथोचित स्थानों में समावेशित हुई हैं। टिप्पणियों में 'मानस प्रचारिका' तथा मु० रोशनलाल की टीकाओं से बहुत सी बातें ली गई हैं।

एक पश्चिमदेशीय का जिस देश में आज भी हिन्दी भाषा का इतना प्रचार नहीं है, उस समय जब कि उस प्रान्त में सर्वदा लड़ाई भिड़ाई की घटनाएँ देखी जाती थीं और जब आज के समान रामायण की टीकाएं और संस्करणों की भरमार भी न थी जिस से उन्हें किसी प्रकार की सहायता की सम्भावना होती ऐसा सुन्दर सर्वबोधगम्य और साथ ही सान गुणांशों से सम्पन्न तिलक बनाना उन की विद्वता तथा योग्यता का पूरा परिचय देता है।

बाबू रामदीन सिंह ने श्री १०८ बाबा सुमेर सिंह साहब शाहबजादे महन्त श्री हरिमन्दिर पटना की सहायता से इस की एक प्रति हिन्दी में तयार करा कर एवम् १८९८ ई० में निज यंत्रालय में मुद्रित कर लोगों को इस के हस्तगत होने का सुअवसर दिया है। इस टीका के सम्बन्ध में सुप्रसिद्ध व्यास कवि ने यह कविता की है —

"श्री तुलसी मन कोइ रसायन ह्वै सुखदायन यद्यपि ही का।
तद्यपि बाल को बुद्धि जुआन के लायक ह्वै न लिखा इक टीका॥
ह्वाँ मिसरी के डुवा सम स्वाद सो संत मिटै है करयो रस नीका।
भक्त विलासिनी प्रेम प्रकासिनी भासनी भाव विलासिनी टीका॥"

और पूर्वोक्त बाबा सुमेर सिंह जी ने कहा है —

"मानस मञ्जु मरालन के हित मुक्त की खान प्रमान प्रभासिनी।
त्यों सुमेरेस सियावर के गुन मन्थन की मनिमाल विकासिनी॥
संतसिरोमनि संतसुमेस (सिंह) की टीका अनूप बखान मनासिनी।
नीतिनिवासिनी प्रीतिनिवासिनी भक्तिहुलासिनी भावप्रकासिनी॥"

पियूषधारा की टीका — आगरा निवासी श्री पं० रामेश्वरभट्ट कृत—यह टीका संवत् १९५९ में तयार हुई और उसी साल बम्बई के निर्णयसागरयंत्रालय में प्रकाशित हुई। इस टीका की रचना के सम्बन्ध में टीकाकार ने लिखा है:—

"रामचरित्र महात्म यह, सादर सज्जन लेहु।
तुलसीदास प्रसन्न हैं, मो पर करहु सनेहु॥
गुणमंडित गोकुलपुरा, आगरानगर मझार।
पंडित बालमुकुन्द घर, तहँ द्विज कुल अवतार॥
तिन के तनय विचारि मैं, रामेश्वर मतिमन्द।
रामकथा माहात्म्य यह, पूरन आनन्दकन्द॥
सम्वत मृतु सर रस मही,[1] मास असाढ़हिं पाय।
सित माने पूरन कर्‌यो, रामचरन चित लाय॥"

इस पुस्तक के आदि में भूमिका गोसाईं जी की जीवनी रामशलाकाप्रश्न प्रणाली सार्वभौमी रामायण प्रशंसा की कविता रामायण माहात्म्य और एक अंग्रेजी रामायण देकर तब टीका प्रारम्भ की गई है। तदनन्तर लवकुशकाण्ड श्रीरामचन्द्र के वनवास का तिथिपत्र वैराग्यसंदीपिनी हनुमान चालीसा [illegible] चिन्तामणि आदि [illegible] गये हैं। फिर ग्रंथ समाप्ति में टीकाकार ने आत्म परिचय दिया है। टीका सरल और सहज है। कहीं व्यर्थ विस्तार नहीं गई है। मूल के पश्चात् या भावार्थ टीका के अतिरिक्त जो जो अन्य बातें दी गई हैं वे सब टिप्पणी द्वारा प्रदर्शित की गई हैं। यह अच्छा ढंग है। अन्य टीकाओं के समान संस्कृत ग्रन्थों के बारे वाक्य ही यथावश्यक उद्धृत नहीं किये गये हैं वरन् कठिन वाक्यों का अर्थ भी साथ ही दे दिया गया है। टिप्पणी में ऐतिहासिक तथा पौराणिक कथायें भी प्रसंगानुकूल वर्णन की गई हैं। जहां तहां अलंकार भी प्रदर्शित कर दिया गया है और कहीं शंका समाधान भी है। टीका लिखने की अच्छी रीति ग्रहण की गई है और बहुत मनोहर ढंग से छपी भी है। जिस से देखने वालों को उसे आद्योपान्त पढ़ने की इच्छा होती है।

टीका में पाठ और पाठान्तर भी [illegible] दिये हैं। इस की समालोचना हम ने अन्यत्र की है। इस कलियुग में पुनरुक्ति की कुछ आवश्यकता नहीं। यदि [illegible] पर भी टिप्पणी दी गई होती [illegible] [illegible] और यह टीका [illegible] प्रकार से सर्वथा सर्वांगपूर्ण हो जाती।

१९१ [illegible] ई॰ में इस की चौथी आवृत्ति हुई है।

---

1 सम्वत् १९५९।

'मानसमयंक'—पं शिवलाल पाठक[1] विरचित। यह भी 'रामचरित मानस' का एक प्रकार का कूटवत् तिलक है। परन्तु उस का साङ्गोपाङ्ग तिलक नहीं है। उस के मुख्य ९ पद्यों का कहीं भाव कहीं सन्दर्भ कहीं ध्वनि और कहीं अभिप्राय यथावश्यक कथन कर के भक्ति तत्त्व इस में प्रतिपादन किया गया है। जिन पद्यों का तिलक पं किशोरीदासकृत 'मानस सुबोधिनी' श्री योगीन्द्रभक्तदत्त कृत 'मानसतत्त्वबोधिनी' एवम् श्री रामप्रसादजी कृत 'मानससरविहारिणी' में लिखा गया है उन पर जान बूझ कर तिलक नहीं किया गया है।

इस 'मानस मयंक' के टीकाकार बाबू इन्द्रदेव नारायण जी लिखते हैं कि 'मानस मयंक श्रीराम चरित मानस का सारतत्त्व प्रकाश है। इस की विमल चन्द्रिका में रामपंचाङ्ग यथार्थ वर्णित होता है। यह अकलङ्क मयंक तत्त्वदर्शी को रामतत्त्व सुधापान कराय हृदय पुष्ट करता है।——जैसे रामचरितमानस भक्तों का परम प्रिय है वैसे ही यह मयंक भक्तों को परम प्रिय है। इस मयंक की परम सांकेतिक सूत्रवत रचना है।

यद्यपि 'रामचरित मानस' के गूढ़ तत्त्वों का यह एक प्रकार का तिलक है और उस के तत्त्वों के प्रकाश के हेतु इस की एक रचना हुई है तथापि सहज सरल सर्वप्रिय और सर्वहित कर 'रामचरितमानस' की अपेक्षा इस की रचना महाक्लिष्ट हुई है। तिलक और मूल से भी कठिन! इस का यथार्थ कारण और अभिप्राय मयंककार ही जान। हाँ! मयंक के तिलककार का अनुमान है कि "इस महत्त्व का अधिकारी सब को न समझ कर के ऐसा कठिन किया कि अन्य हाथ में रहते भी अनधिकारी की बुद्धि शिला जल की नाईं भेद न करे। हमारे सुयोग विज्ञ पाठक इस विचार से कैसा सन्तोषकार विचारेंगे यह वही लोग विचारें। मूल रामचरितमानस' के रचयिता को अधिकारी तथा अनधिकारी का विचार कदाचित् नहीं था अतएव उन्हों ने अपनी पुस्तक को 'सरल लोकोपकारी' बनाया और उस के तत्त्व प्रकाशक तिलककार मयंक के रचयिता ने अपनी रचना को सरल तर बनाने के बदले अधिकारी अनधिकारी के विचार से तिलक रूपी ऐसा मयंक उदय किया कि उस की विमल चन्द्रिका के रहते साधारण अधिकारी भी 'रामचरित मानस' के तत्त्वों की सुन्दर झलकि छवि अवलोकन से वंचित ही रहते यदि मयंक के तिलककार कृपापूर्वक उस की सरल वार्तिक टीका कर के अपना का यथार्थ उपकार नहीं करते।

यह मानस मयंक' १९ ४ ई में बाँकीपुर खड्गविलास यन्त्रालय से सुन्दर पुष्ट अक्षरों में मुद्रित होकर प्रकाशित हुआ है और निस्सन्देह आनन्ददायक तथा उपकारक ग्रंथ होने के कारण देखने योग्य है। वार्तिक तिलक की सहायता से एवम् किंचित बुद्धि को प्रचालित करने से अब इस के समझने में भी उतनी कठिनाइ नहीं होगी।

अब 'मानस मयंक' की कुछ टीका का नमूना देखिये —

'अस कस कहहु मानि मन ऊना। सुख सोहाग तुम कहँ दिन दूना।"

अर्थ—सात दिन में दो दिन नहीं अर्थात् पाँचहीं दिन सोहाग रहेगा।

"पूँछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची। भरत भुआल होहिं यह साँची।।"

---

1 इन्होंने मानस 'अभिप्राय दीपक' और वाल्मीकीय रामायण पर 'भाष्यसार' नामक संस्कृत भाष्य भी लिखा है।

अर्थ—(भू) पृथ्वी में, (थान) रहने का स्थान बनावेंगे। तात्पर्य यह कि पृथ्वी को खोद कर और अपना स्थान बना कर रहा करेंगे।

"का बापुरो पिनाक पुराना।"

अर्थ—बापुरा=ठग, पुरो=पुरा, पुराना अर्थात् पुराना ठग।

इस प्रकार के अर्थों को रामायणी संसार में लोग चमत्कार अर्थ बताते हैं और इनके टीकाकार कहते हैं कि 'इस तरह अर्थ को समझते ही लगेंगे तो अवश्य भ्रमकूप में गिरेंगे।' पाठक स्वयम् विचार करेंगे कि ऐसी व्याख्या चमत्कार है या अन्धकार एवम् वे 'सत्संगी कहलाना पसंद करेंगे या शठ'।

'मानसमयंक' एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ समझा जाता है और रामायणी संसार में इस की बड़ी प्रतिष्ठा है।

एक लीथो प्रेस की छपी टीका—इस की भूमिका का कुछ अंश यहां पर उद्धृत कर दिया जाता है जिस से इसका वृत्तान्त पाठकों को ज्ञात हो जायगा। "मैं मु० महम्मद हबीब खां प्रबन्धक मत्बे गुलशन आलम शहर आगरे म० यहां के एक नामी लल्लू जी[1] लाल कवि ब्राह्मण गुजराती के आत्मज पं० मन्नूलाल जो भाषा में आज कल के समय अद्वितीय व प्रसिद्ध थे वरन बहुधा लोग उन्हें रामायण के पठन पाठन में साक्षात तुलसी का अवतार कहते थे, उन के परम प्रिय शिष्य प० [illegible] कृपा कर आशीर्वादपूर्वक इस की एक २ चौपाई का अर्थ [illegible] बानी में [illegible] में टीका कराई वरन् बहुत से [illegible] की भी इस में [illegible] स्थानों में सहायता ली गई है और भिन्न यन्त्रालय में पुस्तक के समान सुन्दर मोटे अक्षरों में [illegible] टीका उसके बीच [illegible] बहुत सुन्दर अक्षरों में लिखवा कर छपवाया"।[2] इस में स्थान स्थान में चित्र भी बनाया हुआ है। यह टीका संयुक्त प्रान्त के [illegible] तथा मध्यम परीक्षा के विद्यार्थियों के उपकार और काम के लिये छपी थी। इस की टीका [illegible] से लिखी गई है कि मूल का परित्याग कर यदि उसे पढ़ें तो प्रतीति होती है कि [illegible] गद्य की पुस्तक पढ़ रहे हैं। इस में मुद्रण का समय नहीं दिया हुआ है।

इस से बढ़ कर प्रकाशित टीकाओं की समालोचना की है। [illegible] अप्रकाशित टीकाएं हमारे देखने में नहीं आई हैं। क्योंकि हमारे परिचित पाठकों को भी उन्हें देखने का सौभाग्य नहीं मिलेगा। ये सब बड़ी हैं [illegible] बहुत से [illegible] पोथियों में रखी गई हैं।

इस श्रेणी के ग्रन्थ के बाद भी कई एक अन्य टीकाएं प्रकाशित हुई हैं यहां पर उन का संक्षिप्त विवरण उल्लेख कर दिया जाता है—

रामचरितमानस—टीकाकार पं० महावीरप्रसाद वैद्य और कवि [illegible] के रहने वाले हैं। टीका की भाषा [illegible] है और [illegible] साधारणतया अच्छी है। टीकाकार ने

---

१ इसका वृत्तान्त 'हरिश्चन्द्र' में पाठ कीजिये।

२ यदि हम इस मुद्रण का उल्लेख करते तो हमारे पाठकगण देख पाते कि उस समय कोई २ ऐसी हिन्दी भी लिखते थे।

छन्दोगत अलंकारों का भी उल्लेख कर दिया है। यही इस की विशेषता है और कुछ नहीं।

हाँ टीकाकार ने यह दावा किया है कि इस टीका के लिखने में हम ने कवि के उद्देश्यानुसार ही अर्थ करने की चेष्टा की है। यह कथन कहाँ तक ठीक हो सकता है उसे पाठक वृन्द स्वयं विचार करेंगे। हम तो यही कहेंगे कि कोई टीकाकार मूल लेखक के भावों तक पूर्णरूप से नहीं पहुँच सकता। इसी से कहा है कि 'तसनीफ़ रा मो सन्निफ़ नीको कुनद बयाँ।" अर्थात् किसी रचना के रचयिता ही सुन्दर रीति से व्याख्या कर सकता है।

मानस पियूष—प्रकाशक बाबू सम्मन लाल जी ए० एल एल बी। यह बालकांड के १७ से २७ दोहे तक की टीका है। इस में भावार्थ शंकासमाधान टिप्पणी आदि देकर अच्छी खूब ही पुष्टी की गई है। इसमें बहुत छानबीन की गई है। सम्भवतः आगे इसके और भी भाग प्रकाशित हों।

मानस-मंजूषा—(बालकांड, प्रथम भाग)—लेखक शोभाराम बेनुसेवक। इसमें आदि कांड की रचना की खूबियाँ दिखलाई गई हैं। कवि के गूढ़ भावों का रहस्योद्घाटन कवितागत रसों का विश्लेषण तथा उदाहरणों के साथ अलंकारों का वर्गीकरण करने में लेखक ने युक्ति और परिश्रम से काम लिया है। बहुत सी शंकाओं का समाधान भी किया है। बहुत सी व्यर्थ की शंकाएं हैं। जिन लोगों ने मानस शंकावली मानसदर्पण आदि पुस्तकें देखी हैं उन के लिये इस में कुछ विशेष नवीनता नहीं है।

कविता की भाषा में अन्य भाषाओं के शब्द भी ढूंढ निकाले गये हैं। अरबी और फारसी के ही नहीं अंगरेजी के शब्द भी दिखलाये गये हैं। यथा 'फलन्ति नो भवारीं' में नो No' और 'धर्राहिं अवनि भूमि निअराए' में Near आए = निअर आकर। इन शब्दों के निकालने में टीकाकार को यह बात न सूझी कि गोसाईं जी के समय न भारत में अंगरेजों का ऐसा भरमार ही था और न इस देश में अंगरेजी का ऐसा प्रचार। तब सर्वसाधारण के मुख में और सन्त कवियों की रचनाओं में उस भाषा के शब्द कैसे और कहाँ से आकर घुसते।

तुलसी-सूक्ति-सुधाकर-भाष्य—लेखक तथा प्रकाशक पं० बाबू राम शुक्ल। इसमें आपने—

"सब कर मत खग नायक एहा।
करिय राम-पद-पंकज नेहा॥"

का १९७२,१४६ अर्थ किया है। उसमें विस्तार से सूचित २७८ और संक्षेप से १९ ७४ ६२१ हैं। पण्डितजी का परिश्रम सराहनीय हो सकता है। पर इस अर्थ विस्तार की उपयोगिता में सन्देह ही नहीं है वरन् यह सर्वथा व्यर्थ कहा जायगा। इस के सीधा सादा अर्थ में ही चौपाई का गौरव है।

रामायण-भाष्य—बदरगाँव जिला राय बरेली (अवध) के पं० रामेश्वर दास शुक्ल इस के लेखक हैं। किष्किन्धा काण्ड पर यह टीका लिखी गई है। भाषा सरल और विचार बुद्धि-युक्त तथा उपादेय हैं। पृष्ठ संख्या ८४ है। इसी प्रकार की बाँकीपुर के खड्ग विलास प्रेस द्वारा प्रकाशित टीका २८८ पृष्ठों की है।

मानसकोष का नया ज्ञान—लेखक बाबू श्याम दास। आपने क्षेपकहीन कोष प्रकाशित करने का यत्न किया है। यह भी प्रशंसनीय काम है। परंतु आप ने लिखा है कि प्रचलित क्षेपकों के सिवाय बहुत सा ऐसा विषय है जो गोसाईं जी का लिखा माना जाता है पर असल में है नहीं। रामायण के अंतिम भाग इण्डियन प्रेस बाबूसाहब की राय में शुद्धीकृत हुए नहीं हैं। घाटों के वर्णन के प्रसंग में पुष्टि उक्ति को पुष्टि-प्रकाशी आप ने मूल और व्याख्यानों पर बढ़ाई है। बाकी का प्रसंग तथा कई एक अंश जोड़ कर ढँक दिये गये हैं।

आप के पूर्व मानसपीयूष-संपादक लाला भगवानदास जी ने भी अपने संस्करण में आठ ९ चौपाइयों रख कर बहुत सी बातें छोड़ कर दी हैं। किन्तु उन्हें भी फुलवारी के प्रकरण पर कदाचित्-प्रकार घटाने का साहस नहीं हुआ है। प्रस्तुत उनके विचारानुसार सब प्रथम वही अंश लिखा था। और उस कथन के समर्थन में उन्होंने भी दलीलें प्रस्तुत की हैं। युक्ति बल से आम को इमली और इमली को आम मनुष्य को पशु सिद्ध किया जा सकता है। तो क्या अनुभव वही यथार्थ समझा जायगा। हम प्रायः विद्वान रामायण-प्रकाश चाहते हैं पर सविस्तार शून्य नहीं चाहते। इस बात में बहुत से लोग हमारे साथ सहमत हैं। काशी नागरी प्रचारिणी सभा की दृष्टि में भी यह प्रामाणिक नहीं है।

रामायण तथा अन्यान्य रचनाओं की टीका लिखने के सिवाय आजकल गोसाईंजी के महत्त्व-प्रकाशन में सब पत्र-पत्रिकाओं में प्राय लेख निकला करते हैं। कोई आप की सुन्दर सूक्तियों पद्यों के चित्र प्रस्तुत करता है तो कोई मनोरंजक उपमाओं और रूपकों का गुणगान पेश करता है। कोई आप के अनुभवों को सुनाता है और कोई आप की रचनाओं के नाम द्वारा प्रदत्त सद् शिक्षाओं की चर्चा करता है। एवम् कोई आप के मनोधर्म-नीति आदि के सिद्धान्तों की आलोचना प्रत्यालोचना कर आनन्द अनुभव करता है। और भी विविध दृष्टिकोण से लोग इसे देखते हैं। यह गोस्वामीजी और राम के प्रेमी या समालोचना की दृष्टि से देखनेवाले भावुक सज्जनों तथा विद्वज्जनों का काम है। इन सब कथनों और विचारों से काव्य-कला-कौशल, अगाधित साधन का अपूर्व रत्न और उस की परम महत्ता पूर्ण रूपेण प्रतिपादित होती है।

षोडश परिच्छेद

कवित्त रामायण या कवितावली

इस ग्रन्थ के उत्तर काण्ड में नीचे लिखी [redacted] एक कविता है —

"एक तो कराल कलिकाल सूलमूल तामें कोढ़ में की खाजु सी सनीचरी है मीन की। वेदधर्म दूर गये भूप चोर[1] भूप भए साधु सिद्ध मान मन विष पाप पीन की॥ दूबरे को दूसरो न द्वार राम दयाधाम रावरोई गति बल विभव-विहीन की। लागैगी पै लाज या विराजमान विरदहि महाराज आजु जो न देत दाद दीन की॥" (नं० १७१)

अर्थात् एक तो दुखदायक कलि अपना प्रबल प्रभाव दिखा ही रहा है दूसरे मीनराशि के शनीचर होने से और भी उत्पात की वृद्धि हो रही है। इत्यादि।

महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी जी ने सूर्यसिद्धान्त के अनुसार गणना करके ग्रियर्सन साहब को बतलाया है कि गोस्वामी जी के समय दो बार मीन के शनीचर हुये थे। एक बार ५ दुरी चैत्र सं० १६४ (=१५०२ ई०) से ज्येष्ठ सं० १६४२ (=१५८५ ई०) तक और दूसरी बार २ दुरी चैत्र सं० १६६६ (=१६१२ ई०) से ज्येष्ठ सं० १६७१ (=१६१४ ई०) तक। संवत् चालिकपति में तीन बीसियां होती हैं अर्थात ब्रह्मबीसी विष्णुबीसी तथा रुद्रबीसी। रुद्रबीसी सं० १६२५ (=१५६८ ई०) में आरम्भ हुई और जन रस में मुसलमानों का अधिकतर उत्पात जहांगीर बादशाह के समय अर्थात् १६०५ ई० के कुछ काल पीछे आरम्भ हुआ। इस से लोगों का अनुमान है कि इस ग्रन्थ की रचना सं० १६६६–७१ (=१६१२–१६१४ ई०) के भीतर दूसरे बार मीन के शनीचर होने के समय हुई।

पूर्वोक्त कविता एवम् अन्य कविताएं जो इस प्रकार के उत्पातों के वर्णन में हैं १६१२–१६१४ ई० के भीतर भी बनी कही जा सकती हैं परन्तु ऊपर के अनुमान के आधार पर समूचम ग्रन्थ की रचना १६१२–१४ ई० के मध्य माननी निश्चय भूल होगी। इस ग्रन्थ की सब कविताएं किसी विशेष समय में कदापि नहीं बनाई गईं। मन में जब जैसा तरंग उठता गया

1 यदि शाहजहां बादशाह के कैद करने से भूपचोर का अर्थ औरंगजेब पर है जैसा कि काशी ना० प्र० सभा द्वारा प्रकाशित रामायण में लिखा है तो इस कवित्त को अवश्य क्षेपक मानना पड़ेगा। परन्तु टीकाकारों ने भूप चोर का कुछ अन्य अस्पष्ट अर्थ किया है। औरंगजेब गोसाईं जी से बहुत पीछे बादशाह हुये।

गोसाईं जी कविता करते गये और पीछे से सब पुस्तकाकार में संगृहीत हुईं चाहे उन्हें स्वयम् गोसाईं जी ने संग्रह किया हो चाहे उन के किसी शिष्य ने संग्रह किया हो।

इस ग्रन्थ के बालकाण्ड के कवित्त सं० २ तथा उत्तर काण्ड के कवित्त सं० १२७ में गोस्वामी जी का नाम नहीं है, वरन् "रघुराम"[1] का नाम है। कोई २ कहते हैं कि गोस्वामी जी के यही रघुराम शिष्य ने इन के स्वर्गवास के अनन्तर इन की कविता संग्रह कर कवितावली गीतावली दोहावली नाम रक्खा है और उसी से फिर पण्डित रामगुलाम जी तथा पं० शिवलाल जी ने उलट पलट कर क्रम लगाया है।

गोस्वामीजी ने कोई ग्रन्थ प्रणयन के अभिप्राय से इन कवित्तों की रचना नहीं की। इस का एक प्रमाण यह भी है कि कई एक कविताएं संग्रह में जिन प्रकरणों में रक्खी गई हैं उन प्रकरणों से पूरा सम्बन्ध नहीं रखतीं, केवल सांकेतिक सम्बन्ध रखती हैं और बिना प्रकरणविरोध के वे दूसरे स्थानों में भी रक्खी जा सकती हैं। बहुत-सी ऐसी भी हैं जिन्हें हम केवल हनुमानजी की स्तुति मानें तो कोई क्षति नहीं हो सकती। इसी से संग्रहकर्ता ने जिन कवित्तों का किसी विशेष काण्ड से कुछ भी सम्बन्ध देखा है उन्हें काण्ड में समावेशित किया है और शेष कवित्तों को उत्तरकाण्ड में रख दिया है।

फिर जिन कविताओं में 'तुलसी' के स्थान पर रामबोला लिखा है वे तो अवश्य इन के तुलसीदास होने के पूर्व ही रची गई होंगी जिस से यह भी अनुमान किया जा सकता है कि ये विरक्त होने के पूर्व भी कविता किया करते थे।

चार पांच मरी वाली कविता जब कि इन्होंने मृत्यु के समय गंगातट पर एक चील्ह को देख कर बनाई थी जैसा कि बहुत से लोग मान रहे हैं[2] और वह कवित्त भी इस ग्रन्थ में रक्खा गया है तब यह कैसे हो सकता है कि समुचय कवितावली की रचना सं० १६६९—७१ के मध्य में हुई ?

इस में बहुत सी कविताएं समस्यापूर्ति के ढंग की हैं यथा —

"अघघन के घालक चार सदा तुलसी मनमन्दिर में बिहरैं।"

"होइ भले को भलोई भलाई।"

"गुमान गोविन्दहि भावत नाहीं।"

"राजिव लोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाईं।"

फिर यदि गोसाईं जी पुस्तक बनाने के अभिप्राय से इन कवित्तों की रचना करते तो जिस अंगद और रावण के सम्वाद को इन्होंने रामचरितमानस में इतना लम्बा चौड़ा तथा ललित बनाया है उसे क्या इस ग्रन्थ में इतना फीका कर देते कि लङ्काकाण्ड के ६ से ११ तक के

---

1 'शिवसिंह सरोज' में रघुराम का सं० १७०८ में लिखा पर यही १२७वां कवित्त उनके नाम से दिया हुआ है। लेखक का उनके उस समय वर्तमान रहने से तात्पर्य है। पर मूल का अभिप्राय नहीं होगा।

2 इस विषय में इसी परिच्छेद में आगे भी लिखा गया है।

कवित्तों में तो अङ्गद के मुँह से रामचन्द्र का सुयश वर्णन कराते और रावण के मुख से एक अक्षर भी नहीं उच्चारण कराते? कैकेयी सूपनखा सीताहरणादि की बातें भी नहीं लिखते? और तब उत्तरकाण्ड में गोपी उद्धव सम्वाद श्रीप्रह्लाद कथादि विषयक कविताएं भी नहीं लिखी जातीं। इस से तो पुस्तक प्रणयन के अभिप्राय से इन कवित्तों की रचना दूर रहे इन्हें सम्यक् संग्रह कर इन के पुस्तकाकार बनाने में भी सन्देह है क्योंकि गोसाईं जी ऐसे नहीं थे कि कवित्तों को संकलित करने में असम्मिलित विषयों की कविताओं को ग्रन्थ में स्थान देते और ग्रन्थ के आदि में वन्दना का एक छन्द भी नहीं रखते। अतः एव संग्रह भी किसी दूसरे का किया हुआ है चाहे वे संग कवि हों चाहे कोई अन्य व्यक्ति।

यह ग्रन्थ ब्रजभाषा मिश्रित कवित्त सवैया घनाक्षरी झूलना तथा छप्पय छन्दों में है एवम् बाल अयोध्यादि सात काण्डों में विभक्त है।

इस के छन्द बड़े उत्तम मधुर तथा प्रभावशाली हैं। इस में प्राकृतिक वर्णन मनोहर है। इस में कवि ने निज की भी बहुत-सी बातें लिखी हैं। बाललीला लङ्कादहनादि प्रकरण बड़ा ही उत्तम ढंग से वर्णन किये गये हैं।

कवित्त रामायण का विषय

बालकाण्ड—इस में २२ छन्द हैं। १–७ तक बाललीला का विशद वर्णन है। ८ ११ धनुर्भङ्ग १२–१७ विवाहानन्द १८–२२ भृगुनन्दन का आना और अपना धनुष राम को देकर वनगमन करना है।

इस में १७वें कवित्त को लोग क्षेपक बताते हैं।

अयोध्या काण्ड—२८ छन्द। १–२ वनयात्रा। ३–४ कौशल्या और सुमित्रा-सम्वाद ५–१ केवट से बातचीत तथा गंगापार होना ११–२८ चित्रकूट तक पहुँचना। २६–२७ में अहेर खेलना लिखा है। यह बात रामायण में नहीं पाई जाती।

"बिंध के वासी उदासी तपो व्रतधारी महा बिनु नारी दुखारे।
गौतम तीय तरी तुलसी सो कथा सुनि भे मुनिवृन्द सुखारे॥
ह्वै हैं सिला सब चन्द्रमुखी परसे पद मंजुल कंज तिहारे।
कीन्ही भली रघुनायक जू करुना करि कानन को पगु धारे॥"

यह देख कर बड़ा आश्चर्य होता है कि गोसाईं जी ने ऐसी अनुपयुक्त कविता क्यों लिखी। क्या भगवान के विंध पर पहुँचने से वहाँ के उदासी तपी तथा व्रतधारी को इसी बात का आनन्द होना चाहता था कि प्रभु के वहाँ पदार्पण से सब शिलाएँ कमनीय रमणी बन जायेंगी और वे लोग उन नव नारियों के सहवास का सुख लूटेंगे? या प्रभुदर्शन तथा प्रभुकृपा से अपना जन्म सफल कर अक्षय सुख मुक्ति भक्ति की आशा तथा आकांक्षा करनी उचित था? यदि स्त्रीवियोग से ऐसी व्याकुलता थी तो क्यों तपी तथा व्रतधारी क्यों बने थे उन्हें घर ही बैठे खाते कौन मना करता था? इस कविता के क्षेपक होने का हमें बड़ा सन्देह है यद्यपि यहाँ तक

हमारी जानकारी है अभी तक किसी ने इसे नहीं माना है। गोसाईं जी ऐसी कविता इस अवसर में कभी नहीं करेंगे।

बैजनाथ दास ने लिखा है कि गोसाईं जी ने हास्यरस में यह कविता की है। यह तो बेवक्त की शहनाई हुई। और यह हासप्रमोद किस के साथ है? रामचन्द्र के प्रति या मिथ वासी मुनियों के प्रति? गोसाईंजी ऐसे बेजोड़ हंसी करनेवाले नहीं थे जिस में धर्मनाश की चमक दीख पड़े।

और यदि आप ने निषाद के मुंह से परसे पगधूरि तरै तरनी घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू कहलवाया है तो इसमें भी धर्म का लक्ष्य रखा है। निषाद किसी उपाय से रामचन्द्र का पदपंकज प्रक्षालन करना चाहता था और तरनी के तरुणी होने की सम्भावना से शंकित नहीं होता था वरन् उस से भयभीत तथा चिन्तान्वित ही हो रहा था।

आरण्यकाण्ड—इस में एक ही छन्द पञ्चवटी की कुटी से कुरङ्ग के पीछे जाने की है।

किष्किन्धाकाण्ड—इस में भी एक ही छन्द हनुमानजी के लङ्का की ओर कूच करने का है।

सुन्दरकाण्ड—३२ छन्द। २४ वें तक में हनुमानजी का लङ्काप्रवेश लंकादहन तथा समुद्र में कूद कर लूम बुझाना है। २५–२७ जानकी जी से बिदा होना २८–३१ समुद्र इस पार लौट आना एवम् सब वानरों के संग मिलजुल कर वहां से चलना और ३२ वें में रामचन्द्रादि का तीन दिन उपवास करते हुये सागरतट पर पहुंचना वहां विभीषण का मिलना तथा सन्धि बनाया जाना।

लङ्कादहन का वर्णन बहुत सुन्दर हुआ है। लंका निवासियों का चीज़-वस्तु घरों से निकालने के लिए इधर-उधर दौड़ना, पानी के लिये चिल्लाना घरों में खड़खड़ाहट अग्निज्वाला की चटचटाहट पुरजनों की घबड़ाहट इन विषयों का ऐसा विशद वर्णन हुआ है एवम् ऐसा सच्चा चित्र खींचा गया है कि पाठकों को यही प्रतीत होता है कि वे लोग सचमुच वहीं खड़े होकर इन घटनाओं को देख रहे हैं और इन बातों को सुन रहे हैं।

देखिये 'लंका में आग लगी है। कैसी घबड़ाहट कैसी व्यग्रता कैसी निराशा पुरवासियों के मुखाकृति, कार्य तथा बातों से प्रकट हो रही है।

"जहां तहां बुबुकि बिलोकि बुबुकारी देत, जरत निकेत धाओ धाओ लागी आगि रे। कहां तात, मात, भ्रात, भगिनी, भामिनी, भाभी, ढोटा, छोट छोहरा अभागे भोड़ भागि रे॥ हाथी छोरो घोरा छोरो महिष वृषभ छोरो, छरी छोरो सोव सो जगावो, जागि जागि रे। तुलसी बिलोकि अकुलानि जातुधानि कहैं बार बार कह्यो पिय कपि सों न लागि रे।

पानी पानी, मयरानी अकुलानी कहौं जाति हैं परानी गत जानी गज चालि हैं। बसन बिसारे मनि भूषन संभारत न, आनन सुखान, कहैं क्योंहू कोउ पालि है॥

। तुलसी मंदोवे मीं‍ज हाथ धुनि माथ कहै काहू कान कियो न मैं कह्यो केतो कालिहै।
बापुरो विभीषन पुकार बार बार कह्यो बानर बड़ी बलाइ घनेघर धालि है ॥

लागि लागि आग भागि भागि चले जहां तहां धीय को न माय बाप पूत न सँभारहीं। छूटे बार बसन उघारे धूम धुंध अंध कहैं बारे बूढ़े बारि बार बारि बारहीं ॥
हय हिहिनात भागे जात घहरात गज भारी भीर ठेलि पेलि रौंदि खौंदि डारहीं।
नाम लै चिलात बिललात अकुलात अति तात तात तौंसियत झौंसियत झारहीं ॥"

बस नमूने के लिये इतना बहुत है। यदि अधिक पढ़ने की इच्छा हो तो पुस्तक पढ़कर आनन्द उठाइये।

लंकाकाण्ड—इस में ५८ छंद हैं। १ सचित्र सब आगामी दशा सोच कर कहते हैं कि अब आपरता की आशा नहीं २—३ त्रिकूट और सीता सम्बन्ध ४ ५ पुरजनों की परस्पर बातचीत ६-७ सेतु-बन्धन ८ युद्धारम्भ का रावण को रामसेना का हाल कहना ६—१६ अङ्गद का रावण की सभा में श्रीरामयश वर्णन करना और पांव रोपना १५—२६ मन्दोदरी का रावण को समझाना ३—८ युद्ध वर्णन जिस में ३६ से ४७ कवित्त तक हनुमानजी का युद्ध कौशल्य विशदरूप से वर्णन किया गया है, ५१ रामरावण युद्ध, ५२—६६ लक्ष्मणजी को शक्ति लगना सञ्जीवनमूरि का आना और उन का फिर चैतन्य होना ५७ रावण और कुम्भकरण वध ५८ देवताओं का फूल बरसाना।

उत्तरकाण्ड—इस में १७७ छंद हैं। यह काण्ड ग्रन्थ के अर्द्धांश से भी अधिक है। इस में बहुत से ऐसे कवित्त हैं जिन से काशी में कराल कलिकाल जनित उत्पात महामारी प्रकोप दुर्भिक्षादि देश दशा तथा कवि की निज जीवन दशा की बहुत कुछ बातें ज्ञात होती हैं। महामारी आदि का वर्णन बहुत सुन्दर हुआ है। श्री रामचन्द्र की महिमा भक्ति तथा कृपा का इस में अधिक वर्णन है।

४१—५३ में यही वर्णन है कि भवयातना से छुड़ानेवाले केवल ईश्वर ही हैं ८० ८१—८६ और ८७ आदि अनेक कवित्तों में काशी में कलिकाल की करालता का वर्णन है ६१ में देश दशा का अच्छा चित्र खींचा गया है ११२—१२४ में प्रह्लाद कथा वर्णन १२६—१२८ में श्रीकृष्ण एवम् गोपी उद्धवसम्वाद है १४३—६० शिवपञ्चमा १६३—६२ तक शिवाशिव से काशी में कलिकाल की विकरालता रोकने की विनती १६७—७ में काशी में महामारी होने का वर्णन एवम् श्री पार्वती तथा हनुमानजी से उस के निवारण की प्रार्थना है।

१७१ मीन के शनीचर के विषय में है, १७२ में कहते हैं कि राम नाम ही मेरा सब कुछ है। १७३ में यह कहा गया है कि जो पटोही और ब्राह्मण को बध करके या अन्य अन्याय से लोगों को दुःख देकर धन सञ्चय करेगा वह गोसाईं के कोप से शीघ्र ही नाश होगा। कदाचित काशी में उस समय राजउपद्रव होने से यह कविता की गई थी।

१७४ में एक बोमकरी को देखकर इन्हों ने कहा है "पितु सगेम पयान समय सब सोच विमोचन छ मकरी है"। बस इसी पयान समय के लिखने से लोग इसे इन की अन्त समय की कविता बताते हैं।

१७५-७६ में काशी में कलिप्रभावजनित उत्पात के निवारण के लिये हनुमानजी से प्रार्थना की गई है और १७७ में कहते हैं कि रामचन्द्र न समय देखकर दुःख दूर कर दिया।

इन सब बातों के अतिरिक्त श्री काशी अन्नपूर्णादि चित्रकूट प्रयागराज श्रीगङ्गा इत्यादि की भी वन्दना है।

'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित रामायण में कवितावली की समालोचना १७४वें कवित्त पर समाप्त हुई है क्योंकि महामहोपाध्याय पं सुधाकर द्विवेदीजी ने इसे गोसाइं जी की अन्त समय की कविता मानी है। बैजनाथ दास के अनुसार गोसाईंजी ने कभी यात्रा के समय सोनचरी (चील्ह) को देख कर उस की प्रशंसा की है। मिथिलाशरणनिम्बार्कस्वामी बालरामजी तथा मानसभूषण बाबा दीनबन्धु दास जी ने इस कविता का रामचन्द्र के ब्याह से सम्बन्ध मिलाया है जैसा कि म कु० रामदीन सिंह ने लिखा है। इन बातों से तो इस ग्रन्थ के किसी विशेष समय में रचे जाने में और भी सन्देह होता है।

महात्मा हरिहरप्रसाद जी ने अपनी टीका में १७५–७७ कवित्तों को भी इसी ग्रन्थ में दिया है। इन में से दो अन्त की कवित्तों को काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने अपनी समालोचना में बाहुक में रखा है और पं रामगुलाम द्विवेदी जी ने भी १७५–१७७ नम्बर की कवित्तों को बाहुक ही में दिया है। हमारी समझ में इन तीनों कवित्तों को प्रसङ्गानुसार कवित्त रामायण ही में रखना चाहिये। न उस ग्रन्थ के अन्त में रखना चाहिये और न बाहुक में।

इस ग्रन्थ की टीका महात्मा हरिहरप्रसाद जी ने की है जो बांकीपुर के खड्गविलासप्रेस में १८९७ ई० में छपी है उसी को देख कर हम ने ऊपर की समालोचना लिखी है।

बैजनाथ दास ने भी इस की अच्छी टीका बनाई है।

हनुमान बाहुक

कहते हैं कि बांह में पीड़ा होने से गोसाईंजी ने उस की निवृत्ति के लिये हनुमानजी से प्रार्थना की थी और पीड़ा छूट गई। इसी से इस पुस्तक का नाम बाहुक रखा गया।[1]

इस का सब अंश नहीं किन्तु वह अंश जिस में बांह की पीड़ा का बयान है निस्सन्देह किसी विशेष समय में लिखा गया है। और यदि उसी बांह पीड़ा से इन्हों ने शरीर त्याग किया चाहे वह ग्रियर्सन साहब के लेखानुसार प्लेगजनित हो चाहे किसी के कारण हो तो उस अंश की रचना सं १६८ में हुई। परन्तु इस बात की पीड़ा से उन के स्वर्गपयान का कोई दृढ़ प्रमाण नहीं मिलता।

यदि सब अंश एक ही समय रचा गया तो यह निश्चय है कि इस की रचना बांह में पीड़ा आरम्भ होने के पूर्व ही आरम्भ हुई थी, क्योंकि १८वां कवित्त पर्यन्त पीड़ा की कुछ बात नहीं है। इस से इस का सकल एक समय रचे जाने में सन्देह है—चाहे

---

१ पं ज्वाला प्रसादजी ने लिखा है कि हनुमानमन्दिर में इसका ४ दिन पाठ करने से शरीर की पीड़ा तथा प्रेतबाधा छूट जाती है।

पं० सुधाकर जी से उनके पूज्यपाद पिता जी कहते हों कि इस की सवैया रचना चार दिन में हुई चाहे सुप्रसिद्ध रामायणी पं० रामगुलाम द्विवेदी कहते हों।

वस्तुतः जो हो, इस 'बाहुक' में छप्पै झूलना घनाक्षरी और सवैया छंद हैं। इस की भाषा कवित्त रामायण के सदृश है और इसके छन्द उस के छन्दों से बड़े बड़े हैं। इस में गोस्वामी जी ने अपनी ही बातें लिखी हैं तथा स्तुति प्रार्थना की है। यह एक उत्कृष्ट तथा सराहनीय पुस्तक है।

१५वें कवित्त तक हनुमान जी की सुन्दर वन्दना है, १६वें में कवि कहते हैं कि 'हम तो तुम्हारे हैं, किसी का बिगाड़ते नहीं तब हम से लोग क्यों रुष्ट रहते हैं! बताइये तो आगे से सावधान हो जायं। १७वें में कहते हैं कि आप ने इतने गरीबों का नेवाजा है क्या मेरे ही बार बूढ़े हो गये? १८वें में दुःखदायक कष्टों के दमन की प्रार्थना है १९वें में कहते हैं कि 'पाप ताप तथा शाप तीनों से तुम मेरी रक्षा करने वाले हो।

२०वें कवित्त से ४३वें तक बाहु पीड़ा का वर्णन है एवम् उस के निवारणार्थ श्री हनुमान भूतनाथ रघुनाथ आदि से प्रार्थना की गई है। एक प्रकार से इस का सविस्तार वर्णन स्वर्गस्थान के प्रकरण में हो चुका है। यहां पर पिष्टपेषण की आवश्यकता नहीं।

अन्त में यह कविता है —

"कहौं हनुमान सों सुजान रामराय सों कृपानिधान संकर सों सावधान सुनिये। हरष विषाद राग रोष गुन दोष मई बिरची बिरंचि सब देखियत दुनिये॥ माया जीव काल के करम को सुभाय के करैया राम बेद कहैं सांची मन गुनिये। तुम ते कहा न होय हाहा सो बुझैये मोहि हौंहू रहौं मौन ही बयो सो जानि लुनिये॥

अर्थात् तीनों देवताओं को सम्बोधन करके कहता है कि 'माया जीव काल कर्म, स्वभाव सब के करने वाले तो राम हैं, सो हे राम! तुम से क्या नहीं हो सकता सो समझाय कर कहो कि हम भी चुप बैठ जावें। और आप ईश्वर पर भरोसा कर चुप बैठ भी गये हैं।

प्रतीत होता है कि गोसाईं जी की बांह में प्रायः पीड़ा हो जाया करती थी। महात्मा हरिहर प्रसाद जी कृत बाहुक की टीका के अन्त में, जिसे बाबू रामदीन सिंह जी ने टिप्पणी सहित छापा है लिखा है कि एक बार बांह में पीड़ा हुई तो कवितारामायण उत्तर काण्ड के १५८, १६ १६१ और १६२ चार कवित्त बनाये गये और पीड़ा छूट गई। परन्तु १५८वें और १६१ वें कवित्तों को पीड़ा से क्या सम्बन्ध है सो हम नहीं समझ सकते। और स्पष्ट बांह पीड़ा तो दो शेष कवित्तों में भी नहीं पायी जाती। यदि किसी को इन कवित्तों में बाहुपीड़ा प्रतिबिम्बित ही होती हो तो कौन जाने ये कविताएं भी बाहुक ही के हों और संग्रहकर्ता ने भूल से कवितारामायण में इन्हें समावेशित कर दिया हो। बाहुक को कवितावली का

ऐसा मानते हैं तो कवित्तों के उलट फेर हो जाने में क्या आश्चर्य है? इधर उधर हो जाने की बात अन्य कवित्तों के सम्बन्ध में कही भी जाती है।

एक बार पीड़ा होने से कदाचित् इन्होंने दोहावली के २२९— २३६ दोहों का 'बाहुकाष्टक' बनाया था। उन में २२९—२३३ तक श्री हनुमान जी की प्रशंसा है, पीड़ा की बात नहीं। शेष दोहों में अवश्य पीड़ा की बात है।

"तुलसी तनसर सुखजलज, भुजरुज गज बर जोर।
दलत दयानिधि देखिए, कपि केसरी किसोर॥२३४॥
भुज तरु कोटर रोग अहि, बरबस कियो प्रबेस।
बिहंग राज बाहन तुरत, काढ़िए मिटै कलेस॥२३५॥
बाहु बिटप सुख बिहंग थल, लगी कुपीर कुआगि।
राम कृपा जल सींचिए, बगि दीन हित लागि॥२३६॥"

इन दोहों के विषय में कोई २ यह भी कहते हैं कि एक बार पीड़ा हुई तो २२९—२३४ की रचना हुई, दूसरी बार पीड़ा के कारण २३५वां दोहा बना और तीसरी बार पीड़ा के कारण २३६वाँ दोहा बना। न जाने बाहुक वाला पीड़ा सम्बन्धी प्रत्येक छन्द की रचना भी विशेष २ समय की क्यों नहीं कही जाती।

बाबू रामदीन सिंह जी लिखते हैं कि गोसाईं जी के ग्रन्थों के ज्ञाता बहुत से साधु ऐसा कहते हैं कि एक बार बांह में पीड़ा होने से गोसाईं जी दोहावली के १७ १८—१९ २१—२२ ८१-८४, ९६ ९७ १४६—१४८, १०९—१११ इन २१ दोहों की रचना की थी। परन्तु पठकवृन्द दोहावली पाठ कर स्वयम् देख सकते हैं कि यह कहाँ तक ठीक है।

बांह में पीड़ा होने पर बराबर श्रीरामचन्द्र श्री विश्वनाथ तथा श्री हनुमान जी की प्रार्थना करने से विदित होता है कि गोस्वामी जी औषधि प्रयोग से देवस्तुति अधिकतर फलदायक मानते थे एवम् अपने सच्चे विश्वास का फल भी पाते थे।

कोई २ इसे एक स्वतन्त्र पुस्तक मानते हैं और कोई इसे कवितावली का अंश बताते हैं। हमारी समझ में यह एक स्वतंत्र पुस्तक है। कवितावली से इसे कुछ सम्बन्ध नहीं। इसमें कवि ने केवल देवस्तुति तथा निज बांह-पीड़ा का वर्णन किया है। कवित्त रामायण में रामकथा है एवम् उस के संग अन्य विषय भी आ गये हैं। अतएव कवितावली का अंश मानने से ही उत्तम यह बात होगी कि उस ग्रन्थ में जो कविताएं बाहुपीड़ा सम्बन्धी मान जाते हैं वे तथा पीड़ा सम्बन्धी दोहे भी उठाकर इसी बाहुक में समावेशित कर दिये जायं। दोनों ग्रन्थ साथ रहने के कारण हमने एक ही परिच्छेद में दोनों की समालोचना की है।

१८८३ ई० फरवरी में जो 'हनुमान बाहुक' मु० नवलकिशोर के छापेखाने से प्रकाशित हुआ है उस में 'बाहुक' के आदि का यह छप्पै 'सिंधु तरन, सिय सोच हरन रबिबालबरण तनु' नहीं देकर तीन दोहे तीन सवैये तथा एक झूलना छन्द दिये हुए हैं। 'शिव सिंह सरोज' में भी यह झूलना और कुछ प्रकार उलट फेर कर दिया हुआ है। लखनऊवासी

पुस्तक में ८ से लेकर २२ तक जो कविताएं छपी हुई हैं उनमें क्रम से माथा और कान दन्त सब की पीड़ा की बातें लिखी हुई हैं। तब यह 'बाहुक' क्यों? इस का नाम 'नख शिख पीड़ा' रखना चाहता था। पूर्वोक्त कविताएं भी सर्वथा संदेही हैं। यह लेखकवरों तथा लेखक-प्रेमियों की कृपा है कि यह पुस्तक इस दुरवस्था को प्राप्त हुई है।

सप्तदश परिच्छेद

गीतावली

रामचरित मानस के समान इस ग्रन्थ का ग्रन्थ क्रम से बनना प्रतीत होता है। लीलाओं की घटी तथा विषयों का श्रृंखलाबद्ध क्रम मिलता है। कथा भाग तो रामायण ही सदृश है। परन्तु बाललीला हिंडोला होली आदि का वर्णन कृष्णलीला की छाया पर लिखी गई है। इस से अनुमान होता है कि ब्रज में कृष्णलीला अवलोकन के अनन्तर एवम् रामायण के प्रणयन के पीछे इस की रचना हुई है। यह ग्रन्थ विनयपत्रिका से टक्कर लगाता है। इस में माधुर्य लीला का विशेष वर्णन होने से यह ग्रन्थ माधुर्य रस में पगा हुआ मोदक के समान मन को संतुष्ट करता है। इस की भाषा भी ललित सरल सराहनीय मधुर तथा मर्मभेदिनी है। यदि इस ग्रन्थ पर किसी रामप्रेमी धर्मनिष्ठ हिन्दू का मन मोहित हुआ तो क्या ! हिन्दीरसिक विदेशीय भी इस की रचना देख अत्यन्त आह्लादित हो जाते हैं। ग्रियर्सन साहब ने लिखा है कि 'गोसाइं' जी ने श्रीरामजी के बालपन के बयान में और वनयात्रा के समय दुःखजनक मार्ग चलने और सुवासित रहने के बखान में और ग्रामीण स्त्रियों के बोल चाल में जो अनेक भाव दिखलाया है उस से अधिक मनोहर और क्या बयान कोई कवि कर सकता है।'[1]

परन्तु दो चार स्थानों में ऐसा देखा जाता है कि एक पद में एक विषय का वर्णन हो जाने पर फिर भी आगे के पदों में वही घटना या उस घटना के पीछे की बातें वर्णन की गई हैं। जैसे मुनि के संग जाने के समय ५२वें पद के अन्त में कहा है —

"एक तीर तकि हती ताड़का विद्या विप्र पढ़ाई। राख्यो यज्ञ जीत रजनीचर भइ जग विदित बड़ाई। चरन कमल रज परसि अहिल्या निज पति लोक पठाई। तुलसीदास प्रभु के मुख मुनि सुरसरि कथा सुनाई॥"[2]

---

1 खड्गविलास यन्त्रालय द्वारा प्रकाशित 'रामचरित मानस' में ग्रियर्सन साहब के लेख का पृ० ११ देखिये।

2 यह वर्णन रामायण के समान है परन्तु, जो विद्या मुनि ने पढ़ाई उस का नाम न रामायण में दिया हुआ है और न इस ग्रंथ में। वाल्मीकि तथा कालिदास ने उस का नाम बला अतिबला दिया है। उस के जानने से भूख प्यास का कलेश नहीं होता। भट्टी में उसका नाम बला और अतिबला दिया हुआ है। रामचरित मानस, वाल्मीकीय रामायण तथा भट्टी के अनुसार यह विद्या केवल रामचन्द्र को सिखाई गई। रघुवंश से दोनों भाइयों का यह विद्या पाना ध्वनित होता है।

पुस्तक में १ से लेकर १२ तक जो कविताएं छपी हुई हैं, उनमें क्रम से माथा ओंठ कान दन्त सब की पीड़ा की बातें लिखी हुई हैं। तब यह 'बाहुक' क्यों? इस का नाम 'मथ शिर पीड़ा' रखना चाहता था। पूर्वोक्त कविताएं भी सर्वथा नहीं हैं। यह लेखकारों तथा क्षेपक प्रेमियों की कृपा है कि यह पुस्तक इस दुरवस्था को प्राप्त हुई है।

सप्तदश परिच्छेद

गीतावली

रामचरित मानस के समान इस ग्रन्थ का ग्रन्थ क्रम से चलना प्रतीत होता है। लीलाओं की लड़ी तथा विषयों का श्रृंखलाबद्ध क्रम मिलता है। कथा भाग तो रामायण ही सदृश है। परन्तु बाललीला हिंडोला होली आदि का वर्णन कृष्णलीला की छाया पर लिखी गई है। इस से अनुमान होता है कि ब्रज में कृष्णलीला अवलोकन के अनन्तर एवम् रामायण के प्रणयन के पीछे इस की रचना हुई है। यह ग्रन्थ विनयपत्रिका से टक्कर खाता है। इस में माधुर्य लीला का विशेष वर्णन होने से यह ग्रन्थ माधुर्य्य रस में पगा हुआ मोदक के समान मन को संतुष्ट करता है। इस की भाषा बड़ी ही ललित सरल सराहनीय मधुर तथा मर्मभेदिनी है। यदि इस ग्रन्थ पर किसी रामप्रेमी धर्मनिष्ठ हिन्दू का मन मोहित हुआ तो क्या ! हिन्दीरसिक विदेशीय भी इस की रचना देख अत्यन्त आह्लादित हो जाते हैं। ग्रियर्सन साहब ने लिखा है कि 'गोसाईं' जी ने श्रीरामजी के बालपन के बखान में और वनयात्रा के समय दुःखजनक मार्ग चलने और प्रवासित रहने के बखान में और ग्रामीण स्त्रियों के बोल चाल में जो अनेक भाव दिखलाया है उस से अधिक मनोहर और क्या बखान कोई कवि कर सकता है। [1]

परन्तु दो चार स्थानों में ऐसा देखा जाता है कि एक पद में एक विषय का वर्णन हो जाने पर फिर भी आगे के पदों में वही घटना या उस घटना के पीछे की बातें वर्णन की गई हैं। जैसे मुनि के संग जाने के समय ५२वें पद के अन्त में कहा है :—

"एक तीर तकि हती ताड़का विद्या विप्र पढ़ाई। राख्यो जग्य जीति रजनीचर भइ जग विदित बड़ाई। चरन कमल रज परसि अहिल्या निज पति लोक पठाई। तुलसीदास प्रभु के पूछे मुनि सुरसरि कथा सुनाई॥" [2]

---

१ खड्गविलास यन्त्रालय द्वारा प्रकाशित रामचरित मानस में ग्रियर्सन साहब के लेख का पृ० ११ देखिये।

२ यह वर्णन रामायण के समान है परन्तु, जो विद्या मुनि ने पढ़ाई उस का नाम न रामायण में दिया हुआ है और न इस ग्रन्थ में। वाल्मीकि तथा कालिदास ने उस का नाम बला अतिबला दिया है। उस के जानने से भूख प्यास का कष्ट नहीं होता। यहाँ में उसका नाम बला और अतिबला दिया हुआ है। रामचरित मानस, वाल्मीकीय रामायण तथा यहाँ के अनुसार यह विद्या केवल रामचन्द्र को सिखाई गई। रघुवंश से दोनों भाइयों को यह विद्या पाना ध्वनित होता है।

फिर ५३ और ५४ में मुनि के संग जाने की बात लिखकर ५५वें पद में लिखा है —

“बयालहि वधी ताड़िका देखि रिपु देत असीस अघाई ॥
पूछत प्रभु सुरसरि प्रसंग कहि निज कुल[1] कथा सुनाई ॥”

और अहिल्योद्धारतक ५७, ५८ और ५९वें पदों में फिर वर्णन किया गया है।

बोध होता है कि दो चार स्थानों में जो पद बेजोड़ पाये जाते हैं वे पीछे जोड़ दिये गये हैं। नहीं तो पूर्वापर का पूर्ण ध्यान रखने वाले गोसाईं जी केवल दो चार स्थानों में इस प्रकार बेजोड़ पदों को रख कर विषयक्रम को नहीं बिगाड़ते। या पीछे पुस्तक नकल करने वालों से लिखने में इधर उधर हो गये हैं।

यह ग्रन्थ राग रागिनियों में रचा गया है और यह भी सात काण्डों में विभक्त है।

बालकाण्ड—इसमें ११ पद हैं। जिस पुस्तक[2] को देख कर हम इस की समालोचना कर रहे हैं। उस में टीकाकार कृत एक श्लोक एक सोरठा तथा एक दोहा के अनन्तर गोस्वामी जी का 'नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गम्' श्लोक है और तब गीतावली के पद हैं।

चारों भाइयों का जन्मोत्सव तथा नामकरण (१–६ पद), राजा तथा रानियों का प्यारे शिशुओं का लाड़ प्यार; गोद में खेलाना; कब बड़े होंगे कब चलने लगेंगे इत्यादि[3] बातों की अभिलाषा करना उबटना तेल लगाना स्नान करना एवं शैशवावस्था का सौन्दर्य (७–११); रामचन्द्र का अनरस (अस्वस्थ) होना माता का दूध न पीना ऋषिराज वशिष्ठजी के मंत्र पढ़ कर रामचन्द्र के माथे पर हाथ फेरने से उन का स्वस्थ होना सब लोगों का आनन्द मनाना एवम् ऋषि का प्रभुत्व वर्णन करना (१२–१६) फिर शंकर जी का ज्योतिषी बन कर राजा के अन्तःपुर में जाना एवम् चारों भाइयों को देख कर उन लोगों के सम्बन्ध में भविष्यद् वाणी कहना (१७)।

[यशोदा के घर शंकर आगमन की लीला रासधारी सब भी किया करते हैं।]

कवि कहते हैं: —“हौं जैंमात अलसात तात तेरी बानि जानि मैं पाई। गाई गाइ हलराइ बोलिहौं सुख नींदरी सुहाई ॥”

इस में तथा रामचरित मानस में अहिल्या के पतिलोक जाने की बात है। वाल्मीकीय रामायण में गौतम जी अहिल्या के शापमोचन का समाचार सुनकर वहीं पहुँचे हैं।

१ रामायण में विश्वामित्र ने इस ठिकाने गंगा जी की कथा नहीं सुनाई है। वाल्मीकि जी सुनाना बताते हैं।

२ श्री महात्मा हरिहर प्रसाद जी कृत टीका, 'खड्गविलास प्रेस' द्वारा प्रकाशित।

३. श्री कृष्ण के सम्बन्ध में सूरदास जी ने भी इन सब बातों का वर्णन किया है।

पुन —"पालने रघुपतिहिं झुलावै। लैलै नाम सप्रेम सरस स्वर कौसल्या कल कीरति गावै॥ केकिकंठ दुति स्याम बरन बपु बाल विभूषण विरचि बनाए। अलकैं कुटिल ललित लटकन भ्रू नीलनलिन दोउ नयन सुहाए॥ सिसु सुभाय सोहत जब कर गहि बदन निकट पद पल्लव ल्याए। मनहु सुभग जुग भुजग जलज भरि लेत सुधा ससि सों सचुपाए॥"

सूरदासजी कहते हैं :—

"जसोदा हरि पालने झुलावै। हलरावै दुलराइ मल्हावै जोइ सोई कछु गावै॥ मेरे लाल को आउ निदरिया काहे न आइ सुवावै। तू काहे न बेग सी आवै तो को कान्ह बुलावै॥ कबहुं पलक हरि मूंद लेत हैं कबहुं अधर फरकावै। सोवत जानि मौन ह्वै है रहि कर करि सैन बतावै। इहि अन्तर अकुलाइ उठे हरि जसुमति मधुरे गावै। जो सुख सूर अमर मुनि दुर्लभ सो नन्द भामिनि पावै॥"

एक पद्य पर जगे हुए शिशु की शोभा और उस के लाल्य का चित्र दिखलाया गया है एवम् दूसरे पर निद्रावशीभूत शिशु की छवि तथा उस के सुलाने वाले का स्वाभाविक कार्य दिखलाया गया है। हम पाठकों को अनुमति देंगे कि वे इस ग्रन्थ के शिशु लीलावर्णन को सूरदासवर्णित श्री कृष्ण की शिशुलीलावर्णन के साथ मिलाकर पढ़ें और दोनों में तुलना करें। इस में उन्हें बहुत आनन्द मिलेगा।

पलना पर ठीक ठीक कर सुलाना तथा उस अवसर की शोभा का वर्णन (२४ पर्यन्त)।

बालविनोदशोभा के विषय में गोसाईं जी कहते हैं —

"बाल विनोद मोद मंजुल मनि किलकनि खानि खुलावौं। तेइ अनुराग ताग गुहिबे कहुं मतिमृगनयनि बुलावौं॥ तुलसी भनित भली भामिनी उर सो पहिराइ फुलावौं। चारु चरित रघुबर तेरे तेहि मिलि गाइ चरन चित लावौं॥"

३३—४४ तक के पदों में शिशुलीला का सुन्दर स्वाभाविक चित्र खींचा गया है।

४५वें तथा ४६वें पदों में सब भाइयों के चौगान खेलने का वर्णन है अर्थात् उस प्रकार से गेंद खेलने का वर्णन है जैसे आज कल साहब लोग लम्बा २ डंडा हाथों में लेकर घोड़ों पर सवार हो मैदानों में खेला करते हैं और जो खेल पोलो के नाम से प्रसिद्ध है। उसका वर्णन सुनिये।

"राम लखन इक ओर भरत रिपुदमन लाल इक ओर भये। सरजू तीर सम-सुखद भूमि थल गनि २ गोइआ बांट लए॥ कंदुक केलि कुसल हय चढ़ि २ मन कस कसि ठोंकि २ खए। कर कमलनि बिचित्र चौगाने खेलन लगे खेल रिझए॥ एक लै बढ़त एक फेरत सब प्रेमप्रमोद बिनोद मए। एक कहत भइ हार राम जू की एक कहत भइया भरत जए॥"

केशवदासजी ने 'रामचन्द्रिका' में चौगान का यों वर्णन किया है :—

"एहि विधि गये राम चौगान। सावकास सब भूमि समान॥
सोभत एक कोस परिमान। रच्यो रुचिर तापर चौगान॥
एक ओर रघुनाथ उदार। भरत दूसरे ओर विचार॥
सोहत हाथे लीन्हें छरी। कारी पारी राती हरी॥
गोला जाय जहां जहँ जबै। होत तहीं तितही तित सबै॥
गोला जाके आगे जाय। सोई ताहि चलै अपनाय॥
बल ते छल छल ते बल होइ। नेकहु ढील न पावै कोई॥"

श्रीरामचन्द्र के समय इस रीति से गेंद खेलने का निश्चय प्रमाण नहीं पाया जाता। इस से इन कवियों के इन वर्णनों को लोग असामयिकवर्णन (anachronism) कह कर दूषणीय कहेंगे। परंतु ऐसा असामयिक वस्तुओं का वर्णन विदेशीय कवियों की रचनाओं में भी देखा जाता है। सुप्रसिद्ध नाटककार शेक्सपियर के नाटकों में भी उस समय की एक वस्तुओं का वर्णन पाया जाता है जब कि उन वस्तुओं का व्यवहार उस देश में नहीं था।[1]

श्रीरामचन्द्र के समय चौगान का प्रचार हो या न हो परंतु गोसाईं जी के समय में भारतवर्ष में चौगान अवश्य खेला जाता था और भारतवर्ष ही से यह खेल योरप में गया। कर्नेल मेलसन् कृत "अकबर" नामक पुस्तक में यह स्पष्ट लिखी हुई है।[2]

---

१ 'जुलियस सीज़र नाटक में घड़ी', 'हेनरी छठवां' (Henry the Sixth) में—कागज़ बनाने का कारखाना और छापाखाना, 'किंगलियर' के अंक १ दृश्य २ में—चश्मा का व्यवहार, 'किंगलियर' के समय जिस का वर्तमान होना इतिहासवेत्तागण ईस्वी शताब्दी के नौ सौ वर्ष पूर्व बताते हैं। मेमूरियम दरवाज़ा का वर्णन है जिसकी नींव १३२० ई. तक भी नहीं पड़ी थी (दृश्य २)। इसी नाटक में 'फ्रांस' शब्द आता है जिस का प्रयोग ५वीं शताब्दी में आरम्भ हुआ। हैमलेट में—विटनबर्ग के विश्वविद्यालय में उस के संस्थापन के कई सौ वर्ष पूर्व ही वह भेजा गया है। 'किंग जान' के अंक २ दृश्य १ में तोप का वर्णन आता है।

२. The native historians record that in those times of peace his (Akbar's) great delight was to spend the evening in the game of *Chaugan* *Chaugan* is the modern polo, which was carried to Europe from India. But Akbar whilst playing it in the day time in the manner in which it is now played all over the world devised a method of playing it in the dark nights which supervene so quickly on the day light in India.

श्रीविश्वामित्रागमन उन का स्वागत वशिष्ट जी के समझाने से राजा का रामलक्ष्मण को उन के साथ जाने देना ताड़कावध तथा यज्ञरक्षा (४७ ५६)।

कवि ने दोनों भाइयों के राह चलते समय बालपने की चपलता तथा चकितचित पदार्थों के देखने का क्या सच्चा और मनोहर चित्र खींचा है

"पैठत सरनि सिलन चढ़ि चितवत पग मृग बन रुचिराइ।
सादर सभय सप्रेम पलकि मुनि पुनि पुनि लेत बोलाई॥"

पुन.—"चलत चलत करत मग कौतुक बिलमत सरित सरोवर तीर।
तोरत लता, सुमन, सरसीरुह, पियत सुधा सम नीर॥
बैठत बिमल सिलनि बिटपनि तर पुनि पुनि बरनत छांह समीर।
दखत नटत केकि कल गावत मधुप मराल कोकिला कीर॥"

अहिल्या शाप मोचन, दोनों भाइयों को कौशिक के संग आते देख मिथवासियों का आनन्दित होना; जनकपुर पहुंचन पर जनकराज का कौशिक का दर्शन करना श्रीराम और लखन का परिचय पाना, पुरवासियों का रूप के रूप पर मोहित होना उन की प्रशंसा करना, और कौशिक के निमित्त बाग में फूल बीनने के समय श्री राम और श्री जानकी जी का परस्पर दर्शन (६७—७१)।

गोसाईं जी ने गीतावली में श्री गिरजापूजन के समय गिरजा जी से स्पष्ट वरदान दिलवाया है।

'मूरति कृपाल मंजु माल दै बोलत भई, पूजो मन कामना भावतो वरु वरि कै।
राम काम तरु पाय बलि ज्यों बोरी बनाइ मांग कोपि पोपि फैलै फूलि फरि कै।
रहोगी कहोगी तब सांची कही अंबा सिय गहे पांय द्वै चढाय माथ हाथ धरि कै॥"(७२)

जो लोग गिरिजामूर्ति की मुसकानाही पर नाना प्रकार का प्रश्न उठाते हैं वे प्रतिमा की बातें करने पर क्यों नहीं उठाते!

रंगभूमि में जाना दोनों भाइयों के देखने के लिये वहां पर नारियों की भीड़ होनी उन लोगों का परस्पर कथोपकथन, श्री जानकी जी का रङ्गभूमि में लाया जाना बन्दी का श्री जनकराज का प्रण सुनाना सकल राजाओं का धनुष तोड़न श्रम का विफल होना श्री राम का धनुर्भङ्ग करना (७३—८२)।

जनकराज और पुरवासियों का आनन्द, क्रूर राजाओं का निरर्थक गाल बजाना, जानकी जी का रामचन्द्र को जयमाल देना और सबों का आनन्द मनाना (८३—८८)।

For this purpose, he had balls made a *palas* wood—a wood which is very light and which burns for a long time and set them on fire. He had the credit of being the keenest Chaugan player of his time Clonel Malleson's Akbar, P 102

श्री रामलखन के घर नहीं रहने के कारण कौशिल्या तथा सुमित्रा का विलाप (१६६ १ १)।

"भूप पियास सीत सम सकुचनि क्यों कौसिकहिं कहिंगे ॥ को भोरहिं उबटि अन्हवै है काढ़ि कलेऊ दैहैं। को भूपन पहिराई निछावरि करि लोचन सुख लैहैं ॥"[1]

इसी विलाप के समय श्री भरत जी का मातुल आगम में आकर जनकपुर का समाचार सुनाना सबों का आनन्द मनाना जनकपुर बारात जाना वहाँ विवाहोत्सव का परमानन्द और वरकन्या के अवध आने पर मातुपक्ष तथा परिजनों को अकथनीय आनन्द प्राप्त होना (१ १—११)।

गीतावली के १ ६वें पद के इसी वाक्य में 'दुष्टदरोप मूरति भृगुपति अति नृपति निकर खरकारी। क्यों सौंप्यो सारंग हारि हिय करिहैं बहुत मनुहारी ॥' परशुराम जी की कथा का आभासमात्र पाया जाता है और कहीं कुछ वर्णन नहीं आया है।

अयोध्याकाण्ड—इसमें ८६ पद हैं। मङ्गलाचरण में टीकाकार-कृत चार दोहे हैं। पहिले पद में राजा का श्री रामचन्द्र को युवराज पद देने का विचार तथा कैकेयी के कारण श्री रामचन्द्र का वनवास कौशल्या जी का रामचन्द्र के रहने के लिये विनती करनी और परस्पर समझाने बुझाने के अनन्तर श्रीराम जानकी तथा लक्ष्मण लाल का वनगमन।

श्री राम जानकी और लक्ष्मण का सब से विदा होकर वनपथ में चलना उस का रूप ग्रामवासियों का इन दोनों की सुकुमारता सुन्दरता शोभा तथा अवस्था देख चकित होना मोहित होना नाना प्रकार का संकल्प विकल्प करना एवम् इन लोगों के वनगमन पर खेद प्रकाश करना फिर इन लोगों का चित्रकूट में आकर वहाँ कुटी बना कर रहना (२—४१)।

चित्रकूटनिवासिनी किरातिनियों का इन लोगों की अवस्था की समालोचना करनी और कवि का चित्रकूट की शोभा तथा महिमा कथन (४३—५)।

४०वें पद में गोसाईं जी ने फाग के रूपक में चित्रकूट के शोभाविभव में अच्छी चमत्कारी दिखलाई है—

"तपनसाल कहत रघुनन्दन देखिय बिपिन समाज। मानहुँ चयन मयनपुर आयउ प्रिय रितुराज ॥ चित्रकूट पर राउर जानि अधिक अनुराग। सखा सहित जनु रितुपति आयउ खेलन फाग ॥ झिल्ली झाँझ झरना डफ पवन मृदंग निसान। भरि वर्पंग सुक रव ताल कीर कल गान ॥ हंस कपोत कबूतर बोलत चक्क चकोर। गावत मनहुँ नारि नर मुदित नगर चहुँ ओर ॥ चित्र विचित्र विविध मृग डोलत डोंगर

---

१ कृपया मति यशोदा के इन वाक्यों से तुलना कीजिये :— प्रात समय उठि माखन रोटी को माँगे बिन दैहै। 'अब यह सूर मोहि निसुबासर बड़ो रहत जिय सोचु। मेरे अलक लड़ैते लालन ह्वै है करत संकोचु ॥

डाग। जनु पुरवीथिन्ह विहरत छैल संवार स्वांग ॥ नटहिं मोर पिक गावहिं सुस्वर राग बंधान। निरतत तरुन तरुनि जनु पवहि समय समान। भरि २ सूपक करनि सय जहँ तहँ डारहिं वारि। भरत परसपर पिचकनि मनहुँ मुदित नर नारि ॥ पीठ चढ़ाइ सिसुन्ह कपि कूदत डारहिं डार। जनु मुह लाइ गेरुमसि भये खरनि असवार ॥ खिप पराग सुमन रस डोलत मलय समीर। मनहुँ अरगजा छिरकत भरत गुलाल अबीर ॥"

५ वें पद में चित्रकूट में वर्षा ऋतु की शोभा भी सुन्दर उपमाओं के साथ वर्णन की गई है।

कौशल्या का रामविरहजनित परिताप-(५१-५५ सुमन्त्र प्रत्यागमन दशरथ का शोक तथा प्राणत्याग (५६-५९) भरतजी का कैकेयी को धिक्कारना कौशल्या का आश्वासन भरतजी का राज्यदण्ड ग्रहण करना अस्वीकार कर चित्रकूट की ओर प्रस्थान (६ -६५) शुकसारिका सम्वाद (६६-६७) शृंगवेरपुर में निषाद से भेंट चित्रकूट में रामचन्द्र जानकी जी तथा लक्ष्मण से भेंट और रामचन्द्र के वन से नहीं लौटने के कारण उन का चरणपादुका लेकर भरत जी का अवध आना और उसी को सिंहासनासीन कर स्वयम् मुनिव्रतधारी हो नन्दीग्राम में निवास करना (७३-७९) भरतजी की प्रशंसा (८०-८२), कौशल्या विलाप (८३-८७); ८८वें में रामचन्द्र के चित्रकूट से अनत जाने का समाचार तथा ८६वें में रेवा और विन्ध्य के मध्य में डेरा जमाने का हाल गुह के पत्र से ज्ञात होना। यह बात रामायण में नहीं है।

८६वें और ८७वें में कौशल्या रामचन्द्र के घोड़ों को देख विलाप करती है।

अरण्यकाण्ड—इस में १७ पद हैं। टीकाकार-कृत मङ्गलाचरण एक बरवा छन्द।

विपिन शोभा तथा राम आखेट (१-२); कपट कुरङ्ग वध और सीताहरण (३-६) सीता के खोजते समय जटायु से भेंट सीता हरण समाचार पाना जटायु का शरीरसंस्कार; शबरी भेंट (५-१७)।

किष्किन्धाकाण्ड—इस में केवल दो पदों में सुग्रीव का रामचन्द्र को सीता जी का वसन भूषण दिखाना एवम् वर्षा विगत होने पर सीता की खोज में चतुर्दिक् वानरों के पठाने का हाल वर्णित हुआ है।

सुन्दरकाण्ड—इस में ५१ पद हैं। टीकाकार के मङ्गलाचरण का कोई छन्द नहीं है।

मुद्रिका पाकर जामवन्त आदि के संग हनुमान का जाना; संपाती भेंट सीता दर्शन;सीता का मुद्रिका से प्रश्न तथा उस का उत्तर देना (३-४) हनुमान सीतासम्वाद (५-११) रावण प्रति हनुमान वाक्य सीता जी को सन्तोष देकर हनुमान का लंका से विदा होना (१२-१५)। इस में हनुमान जी के अशोक वाटिका में पहुँचने पर वहाँ रावण नहीं गया है।

१४वें पद के इस वाक्य में लंका दाह छर आगिबो सोच राम सेवक को कहिबो लंकादहन का आभासमात्र है। कवि ने कवितावली में लंकादहन का अच्छा चित्र दिखलाया है।

श्री लक्ष्मण का रामचन्द्र को हनुमान के आगमन का समाचार बताना, हनुमान जी का सीता जी की दशा वर्णन करना (११–२०), रामचन्द्र का शोकातुर होना, लंकायात्रा सेतु बन्धनादि (२१–२१)।

अब श्रीरामचन्द्र ससैन लंका की ओर पयान करते हैं :—

“भय रघुबीर पयानो कीन्हो।
छुभित सिंधु डगमगत महीधर सजि सारंग कर लीन्हो॥
सुनि कठोर टंकार घोर अति चौंके बिधि त्रिपुरारी।
जटापटल से चली सुरसरि सकत न संभु सँभारि॥
भय बिकल दिगपाल सकल भय भरे भुवन दस चारि॥
खर भर लंक-ससंक दसानन गरभ स्रवहिं अरिनारि॥
पवन पंगु पावक पतंग ससि दुरि गये थके बिमान॥
गए पूरि सर धूरि भूरि भय अग थल जलधि समान॥
चली चमू चहुँ ओर सोर कछु बनै न बरनत भीर।
किलकिलात कसमसत कुलाहल होत नीर नीधितीर॥” (२२)

श्रीरामसेना के आगमन का समाचार रावण को पाना मन्दोदरी आदि का उसे समझाना तथा विभीषण का उस से लात खाकर श्रीरामचन्द्र की सेवा में आना (२३–४६)।

इस में विभीषण के रामचन्द्र के पास आने की कथा इस प्रकार से लिखी हुई है कि रावण के पदप्रहार के अनन्तर उन्हों ने अपनी माता के पास जाकर अपनी कथा सुनाई जिस पर उन की माता बोली 'तात भलो तव लात मारे बलो भाई है' 'सचिव सिंधु समान बलुधाम को सिवाइ ताके अपमान तेरी भलीये भलाई है।' और 'तोष किये रोष सहे उनसे सदा ही है' तथा 'हां से बिमुख भये राम की सरन गये भला' है तो सही परन्तु 'नेकु लोक राखे निपट निकाई है।' तब माता को शीश नवा कर तथा उन से आशीर्वाद पाकर वे कुबेर से सम्मति लेने गये हैं और वहीं शिवजी ने उन्हें उपदेश किया है कि राम की शरण में जाने में कुदिन ढूंढ़ने की आवश्यकता नहीं। तब संकर सिख आसिष पाइ कै मन में अनेक लालसा करते हुये वे सचिव के सह रामजी की सेवा में पहुंचे हैं।

इस वर्णन से प्रतीत होता है कि विभीषण ने कुअवसर में अपने भाई ही को नहीं त्याग किया परन्तु अपनी माता की सम्मति का भी उल्लंघन किया। कदाचित् गोसाईं जी ने यही कलंक मिटाने के लिये शिवजी के उपदेश से इन का जाना कहा है।

श्रीसीता जी का त्रिजटा से वार्तालाप इत्यादि (४७–५१)।

लंकाकाण्ड —इसमें २३ पद हैं। टीकाकार इस काण्डारम्भ का एक दोहा है।

मन्दोदरी की रावण के प्रति चिन्ता तथा प्रार्थना अंगद रावण सम्वाद (१–४); लक्ष्मण जी का मेघनाद के शक्तिप्रहार से आहत हो मूर्छित होना, हनुमानजी का संजीवन लाना, रास्ता में भरतजी से भेंट, वार्तालाप लक्ष्मणजी का फिर चैतन्यता लाभ करना (५–१२)।

श्रीरामचन्द्र रिपु को जीतकर सानुज तथा ससैन्य रणक्षेत्र में शोभायमान हो रहे हैं। इस समय उन की मूर्ति का दर्शन कीजिये।

"राजत राम कामसत सुन्दर। रिपुरनजीत अनुज संग सोभित फेरत चाप बिसिष बनरुह कर॥ स्याम सरीर रुचिर स्रमसीकर सोनितकन बिच बीच मनोहर। मनु पयोतनिकर हरि हित गन भ्राजत मरकत सैल सिखर पर॥ घायल बीर बिराजत चहुँदिस हरषित सकल रीछ अरु बनचर। कुसुमित किंसुक तरु समूह महँ तरुन तमाल बिसाल बिटप बर॥ राजियनयन बिलोकि कृपा करि किये अभय मुनिनाग बिबुध बर। तुलसि दास यह रूप अनूपम हृदिसरोज बस दुसह बिपतिहर॥"

कौशल्या का रामचन्द्र का शुभागमन सोचना काग तथा क्षेमकरी से शकुन पूछना रामचन्द्र के निकटागमन का समाचार सुनने से नगर में सर्वत्र आनन्दकोलाहल, रामचन्द्र का आना, यथायोग्य सबों से मिलना एवम् तिलक पाकर सिंहासन पर विराजमान होना (१६–२२)।

इस ग्रन्थ में युद्ध वर्णन विशेष नहीं है। और जब द्रोण पर्वत लाते समय भरत जी के तीक्ष्ण बाण लगने से हनुमान जी मूर्छा में गिरे हैं तब सुमित्राजी ने लक्ष्मण जी के युद्धक्षेत्र में घायल हो अचेत पड़ने का समाचार सुन कर सहज भाव से आँखों में जल भर हनुमान से कहा है कि 'यद्यपि रामचन्द्र का दूसरा सहायक उन का धनुष है तथापि शोक इसी बात का है कि वे बड़े कुअवसर में बन्धुहीन हो गये' और यह कह कर उन्हों ने अपने दूसरे पुत्र रिपुसूदन को हनुमान जी के संग जाने की आज्ञा दी है। वे सानन्द उठ खड़े हुए हैं। हनुमान जी तथा भरतादि को सुमित्रा जी और शत्रुघ्न का यह कार्य देख बहुत ग्लानि हुई है और भरत जी ने समझाबुझाकर सुमित्राजी का परितोष किया है तथा शत्रुघ्न जी भी घर रखे गये हैं।

अहा! सुमित्रा जी आप धन्य हैं! विमाता होकर रामचन्द्र के हितार्थ अपने एक पुत्र के युद्धक्षेत्र में बलिप्रदान होने पर आप अपने दूसरे पुत्र को भी उसी अवस्था में सानन्द भेज रही हैं और धन्य २ शत्रुघ्न! जो सानन्द जाने को उद्यत हैं।

सूरदास जी के अनुसार इस अवसर में कौशल्या को दुःखित देख सुमित्रा ने उन्हें इस प्रकार समझाया है —

"धन जननी जो सुभटहि जावै। भीर परे रिपु को दल दलि मलि कौतुक कर दिखरावै॥ कौसल्या सों कहत सुमित्रा जिनि स्वामिनि[१] दुख पावै। लछमन जनि हौं भई सपूती राम काज जो आवै॥ जीवै तो सुख बिलसै जग में कीरति लोगन गावै। मरै तो मंडल भेदि भानु को सुरपुर जाइ बसावै॥ लोह गहै लालच करि जिय को औरो सुभट लजावै। सूरदास प्रभु जीत शत्रु को कुशल क्षेम घर आवै॥"

भरत जी के समीप उस समय सुमित्रा[२] के रहने के कारण यह कहा जाता है कि लक्ष्मण जी को शक्ति लगने पर सुमित्रा जी ने स्वप्न देखा था कि भुजा को सर्प लील गया और

१ परन्तु स्वामिनी' क्यों? बड़े होने के कारण सन्मान सूचना के लिये।

श्री लक्ष्मण का रामचन्द्र को हनुमान के आगमन का समाचार जनाना; हनुमान जी का सीता की दशा वर्णन करना (१६-२०) रामचन्द्र का शोकातुर होना लंकायात्रा हेतु लक्ष्मणादि (२१-२२)।

अब श्रीरामचन्द्र ससैन लंका की ओर पयान करते हैं —

अब रघुबीर पयानो कीन्हो।
छुभित सिंधु डगमगत महीधर सजि सारंग कर लीन्हो॥
सुनि कठोर टंकार घोर अति चौंके बिधि त्रिपुरारी।
जटापटल ते चली सुरसरि सकत न संभु सँभारि॥
भये बिकल दिग्गज सकल भय भरे भुवन दस चारि॥
खर भर लंक-ससंक दसानन गरभ स्रवहिं अरिनारि॥
पवन पंगु पावक पतंग ससि दुरि गये थके बिमान॥
गए पूरि सर धूरि भूरि भय अग थल जलधि समान॥
चली चमू चहुँ ओर सोर कछु बनै न बरनत भीर।
किलकिलात कसमसत कुलाहल होत नीर नीधितीर॥" (२७)

श्रीरामसेना के आगमन का समाचार रावण को पाना मन्दोदरी आदि का उसे समझाना तथा विभीषण का उस से लात खाकर श्रीरामचन्द्र की सेवा में आना (२३-४६)।

इस में विभीषण के रामचन्द्र के पास आने की कथा इस प्रकार से लिखी हुई है कि रावण के पदप्रहार के अनन्तर उन्हों ने अपनी माता के पास जाकर अपनी कथा सुनाई जिस पर उन की माता बोली भला भयो तात लात मारे मरो भाई है सहित सिंधु समाज जातुधान को तिलक ताके अपमान तेरी बड़ीये बड़ाई है। और 'रोष किये दोष सबै उसमें भलाई है' तथा 'यहाँ ते विमुख भये राम की सरन गये भला है तौ सही परन्तु 'नेकु सोच राखे लिख्यो सिखाई है।' तब माता को सीस नवा कर तथा उन से आशीर्वाद पाकर वे कुबेर से सम्मति लेने गये हैं और वहीं शिवजी ने उन्हें उपदेश दिया है कि राम की शरण में जाने में शङ्किन हूजिये की आवश्यकता नहीं। तब 'संकर सिव आसिष पाइ कै' मन में अनेक लालसा करते हुये वे हर्षित के सह रामजी की सेवा में पहुँचे हैं।

इस वर्णन से प्रतीत होता है कि विभीषण ने कुसमयर में अपने भाई ही को नहीं त्याग किया परन्तु अपनी माता को सम्मति का भी उल्लंघन किया। कदाचित् गोसाईं जी ने यही कलंक मिटाने के लिये शिवजी के उपदेश से इन का जाना कहा है।

श्रीसीता जी का त्रिजटा से वार्तालाप इत्यादि (४७-५१)।

लंकाकाण्ड —इसमें २३ पद हैं। टीकाकार इन मङ्गलाचरण का एक दोहा है।

मन्दोदरी की रावण के प्रति शिक्षा तथा मानना; अंगद रावण सम्वाद (१-४), लक्ष्मण जी का मेघनाद के शक्तिप्रहार से आहत हो मूर्छित होना, हनुमानजी का सञ्जीवन लाना, रास्ता में भरतजी से भेंट, वार्तालाप लक्ष्मणजी का फिर चैतन्यता लाभ करना (५-१५)।

श्रीरामचन्द्र रिपु को जीतकर अनुज तथा ससैन्य रणक्षेत्र में शोभायमान हो रहे हैं। इस समय उन की मूर्ति का दर्शन कीजिये।

"राजत राम कामसत सुन्दर। रिपुरनजीत अनुज संग सोभित फेरत चाप बिसिख बनरुह कर॥ स्याम सरीर रुचिर स्रमसीकर सोनितकन बिच बीच मनोहर। जनु खद्योतनिकर हरि हित गन भ्राजत मरकत सैल सिखर पर॥ घायल बीर बिराजत चहु दिस हरषित सकल रीछ अरु बनचर। कुसुमित किंसुक तरु समूह महँ तरुन तमाल बिसाल बिटप बर॥ राजिवनयन बिलोकि कृपा करि किये अभय मुनिनाग बिबुध बर। तुलसि दास यह रूप अनूपम हृदिसरोज बस दुसह बिपतिहर॥"

कौशल्या का रामचन्द्र का शुभागमन सोचना काग तथा क्षेमकरी से शकुन पूछना रामचन्द्र के निकटागमन का समाचार सुनने से नगर में सर्वत्र आनन्दकोलाहल, रामचन्द्र का आना, यथायोग्य सबों से मिलना एवम् तिलक पाकर सिंहासन पर विराजमान होना (१६–२३)।

इस ग्रन्थ में कुछ वर्णन विशेष नहीं है। और जब द्रोण पर्वत लाते समय भरत जी के सींक बाण लगने से हनुमान जी भूतल में गिरे हैं तब सुमित्राजी ने लक्ष्मण जी के युद्धक्षेत्र में घायल हो अचेत पड़ने का समाचार सुन कर सहज भाव से आंखों में जल भर हनुमान से कहा है कि 'यद्यपि रामचन्द्र का दूसरा सहायक उन का अनुज है तथापि शोक इसी बात का है कि वे बड़े कुअवसर में बन्धुहीन हो गये' और यह कह कर उन्हों ने अपने दूसरे पुत्र रिपुसूदन को हनुमान जी के संग जाने की आज्ञा दी है। वे सानन्द उठ खड़े हुए हैं। हनुमान जी तथा भरतादि को सुमित्रा जी और शत्रुघ्न का यह धर्म देख बहुत ग्लानि हुई है और भरत जी ने समझाबुझाकर सुमित्राजी का परितोष किया है तथा शत्रुघ्न जी भी घर रखे गये हैं।

अहा! सुमित्रा जी आप धन्य हैं! विमाता होकर रामचन्द्र के हितार्थ अपने एक पुत्र के युद्धक्षेत्र में बलिप्रदान होने पर आप अपने दूसरे पुत्र को भी उसी अवसर में सानन्द भेज रही हैं और धन्य २ शत्रुघ्न! जो सानन्द जाने को उद्यत हैं।

सूरदास जी के अनुसार इस अवसर में कौशल्या को दुखित देख सुमित्रा ने उन्हें इस प्रकार समझाया है —

"धन जननी जो सुभटहि जावै। भीर परे रिपु को दल दलि मलि कौतुक कर दिखरावै॥ कौसल्या सों कहत सुमित्रा जिनि स्वामिनि[१] दुख पावै। लछमन जनि हौं भई सपूती राम काज जो आवै॥ जीवै तो सुख बिलसै जग में कीरति लोगन गावै। मरै तो मंडल भेदि भानु को सुरपुर जाइ बसावै॥ लोह गहे लालच करि जिय को औरो सुभट लजावै। सूरदास प्रभु जीत शत्रु को कुशल क्षेम घर आवै॥"

भरत जी के समीप उस समय सुमित्रादि के रहने के कारण यह कहा जाता है कि लक्ष्मण जी को शक्ति लगने पर सुमित्रा जी ने स्वप्न देखा था कि सुमित्रा का पुत्र शक्तिहीन हो गया और

१ परन्तु 'स्वामिनी' क्यों? बड़े होने के कारण सन्मान सूचना के लिए।

वशिष्ठजी ने कहा था कि श्री लक्ष्मण जी को जो कुग्रह अरिष्ट है उस की शान्ति के निमित्त यज्ञ होना चाहिये यदि भरत जी राक्षसों से इस की रक्षा करें। वही यज्ञ सम्पादन हेतु सब लोग नन्दीग्राम में आये थे और भरत जी बिना गाँसी का बाण धनुर्बाण पास धरे हुये थे। उसी समय हनुमान जी पहुँचे और राक्षस के धोखे में भरत जी ने उन्हें बाण मारा जिस से वे भूतल में गिर पड़े।

उत्तरकाण्ड—३८ पद। टीकाकार इस मङ्गलाचरण का एक दोहा।

वन से लौट आने पर और राजसिंहासन पर बैठने पर श्री रामचन्द्र का ऐश्वर्य (१); प्रातःकाल श्रीरामचन्द्र के जागने पर मानसिक सुमंगल स्नान कर के पाट पर खड़े रहने समय की शोभा के दर्शन भी रामचन्द्र के सिंहासन पर विराजमान रहने के समय की छवि वर्णन राम रूप वर्णन (२–१७)।

१२वें पद में श्री रामचन्द्र की देह का यमुना से रूपक बाँधा गया है, यथा—

"सुन्दर स्याम शरीर सैल तें धसि जनु है जमुना अवगाहै। अमित अमल जलबल परिपूरन जनु जनमी सिंगार सबिता है। चारु बान, कुसुमधनु, भूषण, जलचर भँवर सुभग सब घाटहैं। बिलसति बीच बिचे बिरुदावलि कर सरोज सोहत सुखमा हैं॥

झूला की शोभा अयोध्या की प्रशंसा वसन्त समय अवध में दीपमालिका की शोभा का वर्णन (१८–२१)। ये सब वर्णन बहुत उत्तम हुये हैं। इस ग्रंथ में गोसाईं जी ने शृंगार वर्णन अति विशदता से किया है और वह कहीं पर भी अश्लीलता से दूषित नहीं है।

गोसाईं जी के समय भी लोग गलियों पर चढ़ कर स्वांग बनाते थे एवम् नरनारियां परस्पर हास्यरस की गालियां देती थीं।

"चढ़ै धरनि बिदूषक स्वांग साजि। करैं कूट निपट गई लाज भाजि॥ नर नारि परस्पर गारि देत।"

अवध की स्तुति समृद्धि (२२) श्री रामचन्द्र का न्याय, स्वान योगी तथा ब्राह्मण के मृतक बालक की कथाएं (आभासमात्र) और श्री सीता जी का वाल्मीकि जी के आश्रम में भेजा जाना (२४-३२)। वाल्मीकि जी के आश्रम में सीता जी का वास लवकुश जन्म इत्यादि (३३–३७) और अन्त के ३८वें पद में संक्षिप्त रामायण वर्णित है।

इस में लक्ष्मण जी सीता जी को लेकर मुनि को सौंप आये हैं। परन्तु वाल्मीकीय रामायण तथा रघुवंश में वे सीता को गंगा पार उतार मुनि के आश्रम का मार्ग बता कर चले आये हैं। वाल्मीकीय में शिष्यों से समाचार पाकर वाल्मीकि जी सीता को लाये हैं और रघुवंश के अनुसार वाल्मीकि जी सीता का रुदन रोदन सुन कर उन के पास जा कर उन्हें ले गये हैं।

इस गीतावली में गोसाईं जी ने अथवा वाल्मीकि जी, कालिदास भवभूति किसी ने लवकुश के युद्ध का वर्णन नहीं लिखा है। केशव दास ने रामचन्द्रिका में अवश्य लिखा है।

जब लक्ष्मण जी सीता जी को वाल्मीकि मुनि के पास रख के चले हैं उस समय दुःख से कातर सीता जी का वचन सुन कर सब व्याकुल हो गये हैं यहां तक कि 'मुनि व्याकुल समेत तरु कम्पु कहाँ न जाइ।'

कवि की सार्वभौमिक-सहानुभूति-स्वभाव जगद्व्यापी प्रेमतत्व को उस के नेत्रों के सामने खड़ा कर देता है। विकास की सारी अवस्थाएं तथा अभिव्यक्तियाँ जिन के द्वारा प्रकृतिरूपा प्रकट तथा अनुभूत होती है एकता के बन्धन में बंधे रहने के कारण यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है यदि कवि की सूक्ष्म दृष्टि में ये सब भिन्न २ अभिव्यक्तियां सर्वथा एक अखण्डित पदार्थ-सी दीखती हैं एवम् वह उन सभों में ठीक वैसा ही प्रेमसम्बन्ध पाता है जैसा किसी चैतन्य जीव के अंग प्रत्यंग में हो। इसी से इन की दृष्टि में वनस्पतियां तथा क्षुद्रजीव जन्तु भी मनुष्य के सुख दुख में सहानुभूति प्रदर्शित करते हैं।

इसी से यहां गोसाईं जी ने तरुवरों की विकलता एवं शुक सारिका का वार्तालाप कहा है और रामायण में सुमन्त्र के शृङ्गवेरपुर से रथ लेकर चलने पर 'रथ हांकेउ हय राम तन हेरि हेरि हिहिनाहिं।' और इसी से भी कृष्ण जी के मथुरा गमन पर, सूरदास जी के अनुसार 'चिनु नहीं पय सवहिं रुधिर मुख चरत नहीं तृन कन्द' तथा 'प्रभु न मिले धेनु दुबल भई स्याम विरह की मारी॥' और कालिदास ने कहा है:—

"मृगश्च दर्भाङ्कुरनिर्व्यपेक्षास्तवागतिज्ञं समबोधयन् माम्।
व्यापारयन्त्यो दिशि दक्षिणस्याम् उत्पक्ष्मराजीनि विलोचनानि॥"

—रघुवंश सर्ग १३ श्लोक २५।

यह पुस्तक 'डिगरी ऑफ आनर' (Degree of Honour) की परीक्षा की पाठ्य-पुस्तकों में सम्मिलित है जिस का पारितोषिक हजार रुपया है।

अष्टदश परिच्छेद

विनयपत्रिका

कोई श्री रामचन्द्र जी की माधुर्यलीला पर मोहित हो उसी के गान में मस्त रहते हैं कोई उन के ऐश्वर्य ही के बखान में आनन्द पाते हैं कोई माधुर्य तथा ऐश्वर्य मिश्रित गुण कथन का सुख उठाते हैं एवम् कोई आर्त्त होकर उन का गुणगान किया करते हैं। गोसाईं जी ने चारों रीतियों से श्री रामगुणगान किया है। गीतावली में माधुर्य का विशेष लक्ष्य रखा है और कवितावली में ऐश्वर्य का। रामचरित मानस में उन का मिश्रित गुणगान किया गया है एवम् विनयपत्रिका में आप ने आर्त्त होकर ईश्वर का भजन किया है जैसा कि इस की रचना की कथा से विदित होता है।

कहते हैं कि जब गोसाईं जी ने हत्यारे ब्राह्मण को अपने साथ खिलाया और उस के हाथ का प्रसाद श्री विश्वनाथ जी के नान्दी को खिलवा कर उस का पापरहित होना काशी के पंडितों पर सिद्ध कर दिया तब यह देख कर सहस्रों मनुष्य हरिभक्ति के रंग में रंग कर हरिभजन में निरन्तर निमग्न रहने लगे। इस से 'कलियुग' को बड़ा क्रोध हुआ और वह प्रत्यक्षरूप से गोसाईं जी का सर्वनाश करने को धमकाने लगा। गोसाईं जी ने श्री हनुमान जी से कलियुग के धमकी देने का हाल निवेदन किया। हनुमान जी ने कहा कि आजकल कलियुग का अधिकार है बिना प्रभु की आज्ञा के उसे दण्ड देना उचित नहीं। तुम एक विनय की पत्रिका लिखो उसे श्रीरामचन्द्र की सेवा में उपस्थित कर श्री प्रभु से कलियुग के दण्ड देने की आज्ञा ले ली जायगी।' इसीसे इस ग्रन्थ की रचना हुई।

इस से प्रतीत होता है कि गोसाईं जी ने इसे अन्त के ही काल में रचा होगा—चाहे लगातार हो, चाहे क्रमशः। तथापि इस में विशेष २ समय के रचे कुछ पद भी पाये जाते हैं जैसे महावीर जी की स्तुति के वे पद जिन का दिल्ली में इन के कारागार में रखे जाने के समय बनना कहा जाता है।

लोग कहते हैं कि इस ग्रंथ का सब अंश नहीं तो कुछ अंश काशी के गोपाल मन्दिर के पश्चिम दक्खिन वाले कोने की कोठरी में जो तुलसीदास की बैठक के नाम से प्रसिद्ध है अवश्य बना है क्योंकि इस ग्रन्थ में बिन्दुमाधव, विश्वनाथ काशी दण्डपाणि भैरव त्रिलोचन मणिकर्णिका पञ्चगङ्गा पंचकोश अन्नपूर्णादि का विशेष वर्णन है। पूर्वोक्त कोठरी की बाहरी दिवाल में एक पट्टी लगाई गई है और उसपर अंग्रेजी में अंकित है। "Here Goswami Tulsi Das composed his Vinay Patrika" अर्थात् यहां पर गोसाईं जी ने विनयपत्रिका' की रचना की।

यह विनय का एक उत्कृष्ट भाग है और कवि ने इस में भारी कविता शक्ति दिखलाई है। बहुत लोगों का तो यह मत है कि ऐसी कवित्वशक्ति तथा ऐसा पाण्डित्य इन्हों ने अपने अन्य ग्रन्थों में नहीं दिखलाया है। इस के आदि के कतिपय पदों की भाषा क्लिष्ट है एवम् वे संस्कृत के ढङ्ग के पद हैं। सर्वसाधारण उन्हें सहज ही नहीं समझ सकते और न रस का भान ही कर सकते। परन्तु शेष पदों की भाषा सरल तथा मनोहारिणी है। इस में व्रजभाषा के शब्द का भी बहुत प्रयोग किया गया है, कल्पों की भी अच्छी छटा देखी जाती है और विनय के बड़े उत्तम २ हृदयग्राही पद वर्तमान हैं। इस में भावों की पुनरुक्ति भी बहुत है जिस से पढ़ने के समय कभी २ मन चाहता है कि शीघ्र आगे बढ़ते तो कदाचित नये भाव का आनन्द मिलता। यह ग्रन्थ बड़ाही प्रभावशाली है। इस के पाठ से मन को बड़ी शान्ति प्राप्त होती है। इस में भक्ति तथा नाम माहात्म्य एवम् नाम पर भरोसा रखना पूर्ण रीति से दिखाया गया है। सब बातों के विचार करने से यह कहना अनुचित नहीं होगा कि ऐसा उत्तम विनय का ग्रन्थ कदाचित् विरलाही पाया जायगा।

इस ग्रन्थ से गोसाईं जी की अपनी बातें भी बहुत सी जानी जाती हैं। इस ग्रन्थ के आरम्भ में भी गणेश जी की वन्दना है और उन से यही प्रार्थना है 'मांगत तुलसिदास कर जोरे। बसहु राम सिय मानस मोरे।' इसी मनोरथ से इन्हों ने इस ग्रन्थ की रचना के लिये लेखनी उठाई है और इसी के सफल होने से कलिकाल कृत उत्पातों के शमन की रट लगाया है।

फिर पंचदेवों में से सूर्य की वन्दना है जिन के वंश को कवि के उपास्य देव ने जन्म धारण कर पवित्र किया है।

फिर क्रमशः श्री शिव जी भैरव काली की गङ्गा, यमुना की स्तुति काशी तथा चित्रकूट महिमा वर्णन एवम् हनुमानजी की स्तुति है। [इन में से २९, ३१ और ३४वें पदों की रचना किसी की घटना के समय कही जाती है।]

फिर श्री जानकी, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न जी की वन्दना है। इनलोगों की वन्दना केवल रामही के नाते हुई है और सब से प्रायः यही प्रार्थना है जिस में श्रीराम की कवि पर कृपा हो।

४१वें पद में संक्षिप्त रामचरित वर्णन है। ४७वें में श्रीरामचन्द्र की आरती है। निस्सन्देह सब किसी को निज इष्टदेव की ऐसी ही आरती करनी चाहिए।

"ऐसी आरती राम रघुबीर की करहि मन। हरनि दुखद्वन्द गोविन्द आनन्द घन ॥ टेक ॥ अचरचर रूप हरि सर्वगत सर्वदा बसत इति बासनाधूप दीजे। दीप निजबोध गतक्रोधमदमोहतम प्रौढ़अभिमान चितवृत्ति छीजे ॥ भाव अतिसय विसद प्रवरनैवेद्य शुभ श्रीरमन परमसन्तोषकारी। प्रेम ताम्बूल गतसूल संसय सकल विपुल भवबासना बीजहारी ॥ असुभ सुभ कर्म घृतपूर्ण दसवर्तिका त्यागपावक सतोगुन प्रकासं। भक्तिवैराग्य विज्ञान दीपावली अर्पि नीराजनं जगनिवासं ॥ बिमल हृदि

भवनकृत्व शान्तिपर्य्यंक सुभसयन विश्राम रामराया। छमाकरुणा प्रमुख तंत्र परिचारिका यत्र हरि तत्र नहिं भेद माया ॥ एहि आरती निरत सनकादि श्रुति सेष सिव देवऋषि अखिलमुनि तत्वदरसी। जोइ करै सोइ तरै परिहरै काम सब बदत इति विमल मति दास तुलसी ॥"[1]

४९वें में श्रीहरिहर की वन्दना और ५० वें में सातो काण्डों की कथा संक्षेप से सूचित की गई है। फिर १ पदों में श्री रामस्तुति तब बिन्दुमाधव छवि वर्णन इत्यादि के अनन्तर २०६ पद पर्य्यन्त कविने मन की मूढ़ता चित्त की चंचलता इन्द्रियों की दुष्टता, कलि की कुटिलता वर्णन करते पश्चात्ताप करते मन को धिक्कार देते एवं उपदेश करते अत्यन्त नम्रता दीनता तथा अनन्यता के साथ प्रेमपूर्ण हृदय से अपने प्रभु श्रीरामचन्द्र को कहीं केशव कहीं माधव कहीं हरि, कहीं मुरारी नाम से सम्बोधन कर के उन की बड़ीही विशद स्तुति लीलावर्णन तथा नामकीर्तन किया है और उन की कृपादृष्टि तथा निज उद्धार के लिये विह्वल चित्त से प्रार्थना की है। इन वन्दनाओं में इन्हों ने कहीं २ पृथक और प्रायः एक ही पद में श्री रामावतार तथा श्री कृष्णावतार की लीलाओं का गान किया है। सब पदों का भाव प्रकट करना तो दुष्कर है तो भी यहां पर कुछ कहने की चेष्टा की जाती है।

राम नाम का प्रभाव बताते और उस के जपने का उपदेश करते कवि कहते हैं कि "तुलसिदास भवदान ज्ञान तप सुद्धि हेतु श्रुति गावै। रामचरन अनुरागनीर बिनु मल अति नास न पावै ॥"

आगे चल कर कवि प्रभु के शरणापन्न होते हैं और यह विनती करते हैं कि "निज भवन द्वार प्रभु दीजै रहन परयो।" यदि गोसाईं जी के समान शुद्ध हृदय से हमलोग भी ऐसी विनती करें तो निस्सन्देह प्रभु की कृपा के भा गी हों।

देखिये गोसाइं जी ऐसा अनन्य भक्त अपने को महा कुकर्मी मान कर क्या कह रहे हैं — "तब न मेरे अघ अवगुन गनिहैं। जौं यमराज काज सब परिहरि यहै ख्याल उर अनिहैं ॥ चलिहैं छूटि पुंज पापिन के असमंजस जिय जनिहैं।" इत्यादि।

फिर कवि कहते हैं कि :—

"विषयवारि मनमीन भिन्न नहिं होत कबहुं पल एक। तेहि तें सहौं विपति अति दारुन जनमि कुजोनि अनेक ॥" अतएव "कृपा डोरि बनसी पदअंकुस परम प्रेम मृदु चारो। एहि विधि बेधि हरहु मेरो मन कौतुक नाथ तुम्हारो ॥" इतनाही नहीं वरन् "कुटिल कर्म लै जाहि मोहि जहं जहं अपनी बरिआई। तहं २ जनि छिन छोह छाड़िये कमठअंड की नाई ॥"

---

1 इस आरती की श्री गुरु नानक कृत आरती से तुलना कीजिये।

और स्वयम् यह प्रण करते हैं कि "अबलौं नसानी अब ना नसैहौं। राम कृपा भव निसा सिरानी जागेउ फिर ना डसैहौं॥ पायो नाम चारु चिन्तामनि उर कर ते न खसैहौं। स्यामरूप सुचि रुचिर कसौटी चित कंचन हिं कसैहौं॥ परवस जानि हस्यों इह इन्द्रिन निजवस ह्वै न हसैहौं॥ मन मधुपहि पन कै तुलसी रघुपति पद कमल बसैहौं॥"

आगे चलकर गोसाईं जी एक अन्य प्रेमी के समान जो कहता है कि

"बैठे हैं तेरे दर पै तो कुछ करके उठेंगे।
या वस्लही हो जायगा या मर के उठेंगे॥"

हठपूर्वक ईश्वर के द्वार पर बैठते हैं।

"पन करि हौं हठि आजु तें राम द्वार पर्यो हौं। तुम मेरे यह बिनु कहे उठिहौं न जनम भरि प्रभु की सौंह करि निवर्यो हौं॥ है धका-धमसट धके टारे टर्यो हौं। उदर दुसह सांसति सहि बहु बार जनमि जग निदरी निकर्योहौं॥ हौं मचलत लै छूटिहौं जेहि लागि पर्यो हौं। प्रगट कहत जो सकुचिये अपराध भर्यो हौं। तौ मन में अपनाइये तुलसिहिं कृपा करि कलि बिलोकि हहर्यो हौं।"

इसी प्रकार अनेक भावों से श्रीरामचन्द्र जी की विनती कर के १७६ पद के अन्त में गोसाईं जी कहते हैं —'दशरथ के समरथ तुही त्रिभुवन जस गायो। तुलसी नमत अवलोकि, बलि बांह बोल दै बिरुदावली बोलायो।" अर्थात् आप की बिरदावली बांह का सहारा दे के हमें लाई है, हम आप के चरण कमलों पर सीस नवाते हैं। हे प्रभो आप कृपादृष्टि कीजिये।

२७७ में अपनी 'विनय-पत्रिका' प्रभु की सेवा में उपस्थित कर उस पर सही करने के लिये भी प्रभु को सविनय निवेदन करते हैं "विनय पत्रिका दीन के धाप आप ही बांचो। हिये हर तुलसी लिखी सो सुभाय सही करि बहुरि पूछिये पांचो।"

जैसे कोई कचहरी में हाकिम के पास दरख्वास्त देकर और अपना हाल सुना कर वहां के अमलों से भी कह रखता है कि सुअवसर पा कर मेरी दरख्वास्त पेश कर दीजियेगा वैसे ही गोसाईं जी ने भी प्रभु की सेवा में 'विनयपत्रिका' उपस्थित कर एवम् अपनी प्रार्थना सुना कर एक पद में श्री प्रभु के दरबार के लोगों से भी विनय किया है कि मिस २ अवसर में करुणानिधि को इस दीन की सुधि दिलाइयेगा।

समय पाकर मारुतनन्दन तथा भरत जी की रुचि देख लखन लाल के गोसाईं जी कृत 'विनयपत्रिका' के विषय में श्री रामचन्द्र से निवेदन करने पर सब लोग उस का अनुमोदन करते हैं और श्री प्रभु विहंसि कर कहते हैं कि 'हां मुझे उसकी खबर है' एवम् उस पर सही कर देते हैं और गोसाईं जी का कार्य्य सिद्ध होता है।

"मारुति मन, रुचि भरत की लखि लषन कही है। कलिकालहु नाथ नाम सों प्रतीति प्रीति एक किंकर की निबही है॥ सकल सभा सुनि लै उठी जानि

रीति रही है। कृपा गरीबनवाज की देखत गरीब को साहब बांह गही है॥ बिहसि राम कह्यो सत्य है सुधि मैं हूं लही है। मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की, परी रघुनाथ सही है॥"

पं० ज्वाला प्रसाद के अनुसार विश्वनाथ जी के मन्दिर में 'विनयपत्रिका' रखे जाने पर जब इस पर उन की सही हुई उस समय का यह पद है 'तुलसी अनाथ की परी रघुनाथ सही है।' परन्तु इस पद के ऊपर के प्रसंग से यह कथन ठीक नहीं जचता। इस ग्रन्थ में २८ पद हैं। महात्मा हरिहरप्रसाद जी ने अपनी टीका में इसका दो भाग करके २६वां पर इस ग्रंथ का पूर्वार्द्ध समाप्त किया है। बहुत से महात्माओं ने इस ग्रन्थ के विषय को दीनता मानमर्षता भयदर्शन, भर्त्सन आश्वासन मनोराज्य तथा विचार इन छः भागों में विभक्त किया है।

महामहोपाध्याय पं सुधाकर द्विवेदीजी ने इस विषय का संस्कृत गीत बनाया है। महात्मा हरिहर प्रसाद जी ने हिन्दी में इस की बहुत उत्तम टीका की है। सुनते हैं कि चुनारनिवासी पं भानु प्रताप तिवारी इस का अंग्रेजी अनुवाद कर रहे हैं।

पं० लल्लूलाल जी ने इस ग्रन्थ को कलकत्ता 'फोर्ट विलियम कॉलेज' के छात्रों के लिये पहले पहल १८२६ ई० में मुद्रित किया था।

ऊनविंशति परिच्छेद

दोहावली

यह ग्रन्थ गोस्वामी जी ने पुस्तकाकार किसी विशेष समय में नहीं लिखा था। यह गोसाईं जी कृत दोहों का संग्रहमात्र है। संकलन इन के समय में हुआ या पीछे इन के किसी प्रेमी ने किया या इन्हों ने स्वयम् किया यह बात ठीक ज्ञात नहीं होती। हां! यह कथा अवश्य प्रसिद्ध है कि इन्होंने राजा टोडरमल्ल के अनुरोध से अपने पूर्वरचित पुस्तक' के दोहों को एकत्रित कर तथा कुछ नवीन दोहों की रचना करके यह धर्म्म और नीतिपूर्ण संग्रह तैयार किया था। परन्तु इसमें 'रामाज्ञा' के भी एक दोहे पाये जाते हैं राजा टोडरमल्ल के अनुरोध से यह संग्रह तैयार होने में ग्रियर्सनसाहब को सन्देह हुआ है क्योंकि मु क्कन लाल के अनुसार 'रामाज्ञा' की रचना सं० १६५५ में हुई और यहां सं १६४६ में राजा टोडरमल्ल का स्वर्ग पयान हो गया था।

परन्तु जब कोई २ महाशय सं० १६५५ रामाज्ञा के प्रणयन का नहीं वरन् उस प्रति के लिखे जाने का समय मानते हैं जिस से मु क्कन लाल ने नकल की थी और जब दोहावली की हस्तलिखित एक प्राचीन पुस्तक में जो स्वयम् ग्रियर्सन साहब को प्राप्त हुई थी रामाज्ञा का एक भी दोहा नहीं था तो दोहावली का राजा टोडरमल्ल के समय संग्रहीत होना असम्भव नहीं दीखता। प्रत्युत इस से यह बात सिद्ध होती है कि दोहावली में रामाज्ञा के दोहे पीछे सम्मिलित किये गये हैं।

और हमारा तो यह अनुमान है कि गोस्वामी जी ने राजा टोडरमल्ल के अनुरोध से नहीं वरन् अपने मित्र काशीनिवासी टोडर के अनुरोध से जिन का ऊपर वर्णन हो चुका है, दोहावली का संग्रह तयार किया होगा। यह अनुमान स्वीकार करने से सब ब्योरा ठीक हो जाता है। क्योंकि टोडर के स्वर्गवास के अनन्तर आप सं० १६६९ में उन के लड़के और पोते के झगड़े में पंच हुये थे। तब निश्चय उन की मृत्यु भी उस के थोड़े ही दिन पहले हो होगी क्योंकि किसी की सम्पत्ति बांटने के लिये उस के उत्तराधिकारियों में प्रायः उस की मृत्यु के कुछ ही काल पीछे झगड़ा उठ खड़ा होता है। तब यदि रामाज्ञा का प्रणयन सं १६६५ में भी हुआ हो तो दोहावली के टोडर के अनुरोध से संगृहीत होने की कहानी असत्य प्रतीत नहीं होती और उसके संग्रह का समय चाहे १६५५ के पहले या पीछे माना जाय इस से भी कुछ क्षति नहीं।

हां! इससे राजा टोडरमल्ल काशीवाले टोडर अवश्य हो जायंगे। परन्तु हम जानते हैं कि दन्तकथा एवं किसी २ की लेखनी ऐसा गड़बड़ अकसर कर देती है और मुख्य व्यक्ती को छोड़ कर

किसी सुप्रसिद्ध व्यक्ति के साथ किसी घटना का सम्बन्ध जोड़ने में भूलि नहीं करती। सिक्ख गुरुओं की जीवनी के प्राचीन लेखकों ने भी मिर्जा राजा जयसिंह के बदले सवाई जयसिंह का नाम एवम् राजा रामसिंह के स्थान में विष्णुसिंह का नाम लिख दिया है। ग्रियर्सन साहब बराबर दोनों टोडर को एक मान कर भ्रम में पड़ते गये हैं। दोनों टोडर एक ही व्यक्ति नहीं थे यह बात अन्यत्र दिखलाई जा चुकी है। जो हो, इस संग्रह को टोडर नामक व्यक्ति से अवश्य सम्बन्ध है, चाहे वे काशीवाले टोडर हों चाहे दिल्लीवाले हों। दोनों ही का होना सम्भव है जैसा कि ऊपर दिखलाया गया है। वस्तुतः कौन थे ऐसा कहने की कोई सामग्री नहीं है।

परन्तु प्राचीन संग्रह में पीछे लोगों ने और दोहादि जोड़ दिया है ऐसा अनुमान करने का प्रमाण पाया जाता है। एक तो ग्रियर्सन साहब का एक प्राचीन प्रति में रामाज्ञा का कोई दोहा नहीं पाया है। दूसरे 'कटिगा भारी कपूर को उचित न पिय तिय त्याग। कै कटिगा मोहि मेलि कै बिमल बिबेक बिराग ॥' इस का इस ग्रन्थ में होना है। यह दोहा गोस्वामी जी की स्त्री का रचा कहा जाता है और 'मनि मानिक मँहगी किये सहगी तृन जल नाज। तुलसी याते जानिये, राम गरीबनिवाज ॥' इस दोहे को लोग रहीम खानखाना के नाम से भी सुनना बताते हैं। इस के सम्बन्ध में तो यह कहा जा सकता है कि इन दोनों महानुभावों में परस्पर स्नेहभाव रहने के कारण सम्भव है कि उन्होंने इसे बनाकर गोसाईं जी के पास भेजा हो और इन के रचनाओं के साथ रहने से यह भी संग्रह हो गया हो या गोसाईं जी ही से यह उन को प्राप्त हुआ हो और उन के नाम से प्रसिद्ध हो गया हो। परन्तु इन की स्त्री के नाम से प्रसिद्ध दोहा के विषय में ऐसी बात भी नहीं कही जा सकती क्योंकि उन्हों ने आप से भेंट होने पर यह दोहा सुनाया कहा था। लोग ऐसा ही कहते हैं। फिर ग्रन्थ में बड़ा वहाँ छोटा का आना है जो 'दोहावली' नाम में बट्टा लगा रहा है। यह अविचारपूर्ण कार्य गोसाईं जी या प्राचीन किसी संग्रहकर्ता का हो ही नहीं सकता। यह करनी हमारे प्रतीत के पक्षानुरागियों ही की होगी जिन्हें गोसाईं जी की रचनाओं में इधर उधर से निरर्थक जोड़ लगाये बिना सन्तोष ही नहीं होता।

वर्तमान दोहावली में ५७३ छन्द हैं जिन में से ८५ वाले रामायण में २ वैराग्यसन्दीपनी में, ३५ रामाज्ञा में तथा १३१ सतसई में पाये जाते हैं और शेष नये दोहे हैं।[1] इस में सब मिलाकर २२ सोरठे हैं। दोहे तथा सोरठे सब नाममाहात्म्य भक्ति नीति के उपदेश एवम् अनेक विषयों के वर्णन में हैं और भक्ति का रूप दरसाते हैं। इन बातों से गोस्वामी जी के समय की अवस्था तथा वैराग्यता की बहुत कुछ झलक लग सकती है।

1 ग्रियर्सन साहब ने बाबू रामदीन सिंह की सहायता से एक सूची इस बात की तैयार कराई थी कि गोसाईं जी कृत किस २ ग्रंथ के कौन २ दोहे दोहावली में पाये जाते हैं। उसी से ये जोड़ संख्याएँ यहां पर लिखी गई हैं।

दोहावली के कई एक ऐसे दोहे जो गोसाईं जी के अन्य ग्रन्थों में नहीं पाये जाते, नीचे उद्धृत किये जाते हैं।

"मोर मोर सब कहँ कहसि, तू को कहु निज नाम।
कै चुप साधहि सुनु समुझ, कै तुलसी जप राम ॥१८॥
बिगरी जन्म अनेक की, सुधरे अब हीं आज।
होइ राम को राम जप, तुलसी तजि कुसमाज ॥२२॥
जे जन रूखे विषय रस, चिकने राम सनेह।
तुलसी ते प्रिय राम क, कानन बसहिं कि गेह ॥६१॥
तुलसी जो पै राम सों, नाहिन सहज सनेह।
मूड़ मुड़ायो बादहीं, भांड भयो तजि गेह ॥६३॥
तुलसी परिहरि हरि हरहिं, पांवर पूजहिं भूत।
अंत फजीहत होहिंगे, ज्यों गनिका क पूत ॥६५॥
साहब सीता नाथ सों, जब घटिहैं अनुराग।
तुलसी तब ही भाल तें, भभरि भागिहैं भाग ॥७०॥
मुख मीठ मानस मलिन, कोकिल मोर चकोर।
सुजस धवल चातक नवल, रह्यो भुवन भरि तोर ॥२६६॥
तुलसी जे कीरति चहहिं, पर की कीरति खोय।
तिन क मुंह मसि लागिहैं, मिटहि न मरिहैं धोय ॥३८६॥
तुलसी पावस क समय, धरि कोकिलन मौन।
अब तो दादुर बोलिहैं, हमैं पूछिहैं कौन ॥५६४॥"

इसके कुछ दोहे 'बाबुक' की समालोचना में उद्धृत हुए हैं।

विंशति परिच्छेद

रामाज्ञा

यह पुस्तक ७ अध्यायों में विभक्त है। प्रत्येक अध्याय में ४९ दोहे हैं। इन्हें सात भागों में बांटने से सात ७ दोहों के सात ७ सप्तक होते हैं। इस पुस्तक में रामायण की कथा आयी है परन्तु उस क्रम से नहीं। पहले तथा चौथे अध्यायों में बालकाण्ड की कथा है, दूसरे में अयोध्याकाण्ड एवम् कुछ आरण्यकाण्ड की कथा तीसरे में आरण्य और किष्किन्धा, पांचवें में सुन्दर तथा लङ्का, छठें में राज्याभिषेक, मृतबालक, वन उलूक, यति-श्वान, और सीता परित्यागादि की बातें एवम् सातवें में स्फुट कविताएँ हैं।

कहते हैं कि इस ग्रन्थ को गोसाईं जी ने अपने एक मित्र प्रह्लादघाटनिवासी गंगाराम ज्योतिषी का प्राण संकट में पड़ने से शकुन विचारने के लिये बनाया था। कथा ऐसी है कि काशी में राजघाट के राजा गहरवारवंशीय एक क्षत्रिय थे जिन के वंशधर अब मांडा और कन्तित में राज करते हैं। एक बार उन का कुमार अहेर खेलने गया। उस के एक साथी को बाघ पकड़ ले गया। राजा को खबर मिली कि उसके पुत्र ही को बाघ खा गया। इस से व्यथित हो राजा ने पूर्वोक्त ज्योतिषी को बुलाया और अपने पुत्र के विषय में प्रश्न कर कहा कि 'यदि आप की बात सत्य होगी तो एक लाख पारितोषिक पाइयेगा, नहीं तो आप का सिर काट लिया जायगा। ज्योतिषी जी उत्तर देने के लिये एक दिन का समय मांग घर आकर उदास पड़ रहे। वे नित्य सायंकाल में गोसाईं जी के संग गङ्गा पार सन्ध्यावन्दन को जाया करते थे। उस दिन उन के साथ जाना अस्वीकार करने पर तथा उस का कारण जानने पर गोसाईं जी ने उन्हें अभयदान किया। निदान दोनों मित्रों के गङ्गा पार से लौट आने पर कलमदावात के अभाव में गोसाईं जी ने पानडिब्बा से कत्थ निकाल और घोल कर एक सरई के टुकड़े से ६ घंटे में यह पुस्तक लिखकर ज्योतिषी जी के हवाले किया। गोसाईं जी के आदेशानुसार शकुन विचार उन्हों ने प्रातः काल जा कर राज पुत्र के सकुशल लौटने का समय बता दिया। राजा ने उस समय तक उन्हें बन्दीगृह में रहने की आज्ञा दी। ठीक बताये समय पर राजकुमार घर आ पहुंचा। आनन्द निमग्न राजा ज्योतिषी जी के स्मरण दिलाने पर उन्हें मुक्त किया और उन के अस्वीकार करने पर भी साग्रह नियत पारितोषिक दे कर उन्हें विदा किया। वे सीधे गोसाईं जी की सेवा में उपस्थित हो सब रुपया उन के चरणों में अर्पण करने लगे और उन के लेने में सहमत नहीं होने पर उन्हों ने आग्रहपूर्वक गोसाईं जी को दस हजार रुपया दिया। उस द्रव्य से गोसाईं जी ने हनुमान जी का एक मन्दिर बनवा दिया, जिन में दक्षिणाभिमुख स्थापित मूर्त्तियां अभी तक वर्तमान हैं।

यह कथा म॰ कु॰ रामदीन सिंह ने ग्रियर्सन साहब से कही थी और उन्होंने इसे अपने प्रबन्ध में सन्निवेशित किया है। परन्तु उन्होंने पाद नोट में यह भी लिखा है कि 'पं॰ सुधाकर द्विवेदी कहते हैं कि इस आख्यायिका में ठीक समय बतलाया जाना ही इस की सत्यता में बट्टा लगाता है। रामाज्ञा से ठीक समय निर्णय नहीं होता। इस से तो कोई नया कार्य आरम्भ करने के लिये शुभाशुभ शकुन का विचार होता है। अन्तिम छन्द के १–२ दोहों से यह बात स्पष्ट विदित होती है।'[1]

इस पुस्तक की एक प्राचीन प्रति गोसाईं जी के हाथ की लिखी हुई काशी के प्रह्लाद घाट में एक ब्राह्मण के पास थी जिससे मिरजापुर निवासी मु॰ छक्कन लाल ने अपने लिये एक प्रति तैयार की थी। उन्होंने लिखा है कि 'श्री संवत् १६५५ ज्येष्ठ सुदी १० रविवार को लिखी पुस्तक श्री गोसाईं जी के हस्तकमल की प्रह्लादघाट श्री काशी में रही। उस पुस्तक पर से श्री पं॰ रामगुलाम जी के सम्बन्धी छक्कन लाल कायस्थ रामायणी मिरजापुर ने अपने हाथ से संवत् १८८४ में लिखा।'

पं॰ सुधाकर जी के कथनानुसार उक्त ब्राह्मण महाशय का नाम रामकृष्ण था और उन के कथा बांचने के लिये कहीं जाने के समय अन्य पुस्तकों के साथ यह भी रेल से चोरी चली गई।[2]

उनके घर गोसाईं जी का चित्र भी वर्तमान होना और उन के स्वर्गप्रयाण की तिथि को सर्वसाधारण को उस का दर्शन कराया जाना कहा जाता है। कदाचित् यह चित्र जहाँगीर ने अकबर बादशाह के निमित्त तैयार कराया था।[3] तब यह ब्राह्मण महाशय को कैसे हाथ लगा?

'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित रामायण में लिखा है कि 'इच्छा थी कि इस का फोटो लिया जाय परन्तु इसके मालिक के मर जाने से अब नहीं जानते कि किस के अधिकार में है।'

उस में यह भी लिखा है कि 'उस समय (गंगाराम जी के समय) राजघाट का किला ध्वंस हो चुका था, महमूद गज़नवी के सेनानायक सय्यद सालार मसऊद (गाज़ी मियाँ) की लड़ाई में यह किला टूट चुका था। मुसल्मानी समय में यहाँ के क़िलेदार मुसल्मान होते थे। अन्तिम क़िलेदार मीर रुस्तम अली थे जो दशाश्वमेध के पास मीर घाट पर रहते थे जिसको वर्तमान

---

१ Vide Indian Antiquary—Notes on Tulsi Das p. 27 28

२ चुनार के पं॰ भानुप्रताप तिवारी ने ग्रउस साहब को खबर दी थी कि गोसाईं जी की हाथ की लिखी हुई एक प्रति काशी में गोसाईं जी संस्थापित सीताराम के मन्दिर में विद्रोह के समय तक थी फिर चोरी हो गई। और सं॰ १००० की लिखी हुई प्रति की उनके पास एक नकल है।

इसी पुस्तक की हर जगह से चोरी क्यों?

३ Notes on Tulsi Das, by Grierson, p. 8-9 note.

काशीराजवंश के संस्थापक मनसाराम ने भगा कर यहाँ की राजगी ली थी।' अर्थात उस समय यहाँ कोई हिन्दू राजा नहीं था।

इस से पुस्तक लिखे जाने का कारण निःसार सिद्ध होता है। और गोसाईं जी क्या आजकल के कालेज के छात्रों तथा अन्य शौकीन बाबूओं के समान सदा अपने पाकेट—नहीं नहीं अपनी पोती वा अंगेठी में—पान का डिब्बा लिये फिरते थे या आधुनिक हंडमुसंड महंथों के सदृश भरी मसनदविलासी भाव विमेटराभिलाषी तथा विलासप्रिय थे कि विशा संकट के समय अध्यात्मचिन्तन के समय भी पान का डिब्बा साथ नहीं छोड़ता था? निश्चय उसी प्रकार की किसी सिपाही से यह पुस्तक लिखी गई होगी। ऐसा कहने का हम साहस करते हैं और इस का कारण है। हमारे पास लगभग सौ वर्ष की लिखी हुई गुरुमुखी अक्षर में एक पंचग्रंथी है। अपने चार भाइयों में सबसे बड़े हमारे पूज्यपाद काका मुन्शी हरिवंश सहाय जी नित्य इस का पाठ किया करते थे जिन को स्वर्गप्रयाण किये प्राय ५० वर्ष हुआ होगा। इस ग्रंथ की लिपि का रंग भी कत्थे के रंग जैसा है।

पं० सुधाकर जी ने १६५५ ई० को रामाज्ञा के प्रणयन का समय नहीं वरन उस प्रति के लिखे जाने का समय माना है, जिस से मुन्शी छक्कन लाल ने नकल उतारी थी। उन का यह कथन ठीक प्रतीत होता है क्योंकि इस पुस्तक की कविता साधारण है इस में गोसाईं जी की प्रौढ़ लेखनी की झलक नहीं देखी जाती। यदि इसे गोसाईं जी ने बनाई हो तो इस की रचना किसी ऐसे समय हुई होगी जब उन की लेखनी पूर्ण बलवती नहीं हुई थी।

हमारी समझ में यह बात भी नहीं आती कि गोसाईं जी ऐसा कोई धुरन्धर कवि प्रथम अध्याय में बालकाण्ड की कथा कह कर फिर तुरत ही चौथे अध्याय में उसी काण्ड की बातें लिख कर इतनी बड़ी लम्बी चौड़ी पुनरुक्ति का दोष अपने ऊपर क्यों आने देता और दोनों वर्णनों में प्रभेद भी क्यों होने देगा? प्रथम अध्याय में परशुराम जी बारात लौटती समय आते हैं और चौथे में उन का आगमन ही नदारद, परन्तु जानकी जी की उत्पत्ति की बात है। रामचरितमानस में भी कई स्थानों में अनुक्रम रामकथा संक्षिप्त रूप से वर्णित हुई है। परन्तु उस का कारण वहीं पर स्पष्ट विदित हो जाता है। इस में तो ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलता। यदि कहिये कि सात अध्याय पूरा करने के लिये ऐसा किया गया तब दो दो काण्डों की कथाएँ एक अध्याय में देने की क्या आवश्यकता थी। उन्हीं का कुछ विस्तार करने से सात अध्याय हो जाता। और एक अध्याय में तो स्फुट कविता भी देखी जाती है। ये सब बातें निस्सन्देह सन्देह-उत्पादिनी हैं। परन्तु रामाज्ञा से शकुन विचारा जाया करता है अतएव हम उस की रीतियाँ नीचे लिख देते हैं।

एक रीति यह है कि एक मुट्ठी कमलगट्टा लेकर सात ७ करके गिनता जाय शेष संख्या अध्याय की संख्या होगी फिर दूसरी मुट्ठी लेकर उसी रीति से सप्तक की संख्या एवं तीसरी से दोहे की संख्या स्थिर करके शकुन का विचार करे। गिनने में यदि कुछ भी शेष नहीं रहे तो सात माना जायगा और उसी के अनुसार अध्याय सप्तक वा दोहा देख कर शकुन विचारा जायगा।

दूसरी रीति यह है कि एक सात घरों का और दूसरा ४९ घरों का दो चक्र बना ले। पहले में उँगली रखने से जिस अंक पर उँगली पड़ेगी वही अध्याय की और दूसरे चक्र की जिस संख्या पर उँगली पड़ेगी वही दोहा की, संख्या होगी। बस उस अध्याय के उस दोहे को पढ़ कर हानि लाभ जान लेना होगा।

शकुन विचारने की रीति ७वें अध्याय के ४३ ४४ दोहों में भी बताई गई है:—

"सुदिन साँझ पोथी नेवति, पूजि प्रभात सप्रेम।
सगुन विचारब चारुमति, सादर सत्य सनेम॥
मुनि गनि, दिन गनि, धातु गनि, दोहा देखि विचारि।
देस करम करता वचन, सगुन समय अनुहारि॥'

परन्तु धातु तो आठ (अष्ट धातु) प्रसिद्ध हैं। तब कैसे बनेगा? और शकुन विचारने के समय यदि इन्हीं दोहों में से कोई एक निकल आवे तब क्या फलाफल निकलेगा? गोसाईं जी इतना अवश्य सोच सकते थे। ये तथा इस के आगे के दोहे भी सन्देहजनक ही हैं।

नोट—यह जीवनी छपवाने के थोड़े ही दिन पहले हम को काशी की 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका'[1] में रणछोड़ लाल व्यास जी का एक लेख देखने में आया। आप अपने को पं० गंगा राम ज्योतिषी का वंशधर बताते हैं और लिखते हैं कि गंगारामजी दो भाई थे। दूसरे का नाम दौलत राम था। उन के वंशजों में पं० गिरिधर व्यास हुए। इन के पास ही ग्रियर्सन साहब ने गुसाईं जी की तसवीर देखी थी। मैं उन का भांजा हूँ। असल में 'रामाज्ञा' नहीं किन्तु 'रामशलाका' थी जो रामचन्द्र (मेरे बहनोई के भाई) और गंगाधर (मेरी मा के बुआ के पुत्र) के हाथ से सं० १९२०—२२ के करीब लुटेरों ने श्रीनाथजी की यात्रा के समय उदयपुर के निकट लूट ली थी। उस रामशलाका की नकल मिरजापुरनिवासी पं० रामगुलाम जी द्विवेदी के श्रोता छक्कन लाल जी के पास है। तसवीर मेरे पास सुरक्षित है। रामाज्ञा की रचना के सम्बन्ध में जो बातें ग्रियर्सन साहब ने लिखी हैं उन्हीं का सारांश इन्हों ने 'राम शलाका के विषय में लिखा है।

चलिये छुट्टी हुई। 'रामाज्ञा' की सब बातें हवा हो गईं। उस की जगह पर 'रामशलाका' विराजमान कराई गई। परन्तु ग्रियर्सन साहब ऐसा खोजी पुरुष ने क्या बिना निश्चय किये ही छक्कन लाल लिखित अथवा सम्बन्धी बातों को 'रामाज्ञा' के विवरण में जोड़ दिया है? जो हो इन सन्दिग्ध बातों से तो यह अनुमान करना अनुचित नहीं होगा कि अति प्राचीन काल से लोगों ने 'रामाज्ञा' का सम्बन्ध गोसाईं जी से जोड़ रखा है, जैसा कि आज लोग बहुत से ग्रन्थों को उन्हीं की रचना में सम्मिलित करते आ रहे हैं। परन्तु वस्तुतः यह उन का रचा ग्रन्थ नहीं है। हम आगे 'रामशलाका' की भी समालोचना किये ही देते हैं।

किन्तु इस के पूर्व चित्र के विषय में कुछ कहना आवश्यक समझते हैं। लोगों का कथन है कि प्रह्लादघाटवाले चित्र को ग्रियर्सन साहब ने जाकर स्वयम् देखा था। परन्तु उन्हों ने

1 भाग १४ [illegible]

यह बात कहीं स्पष्टरूप से नहीं कही है। 'रामविलास' वाली रामायण में जो चित्र दिया गया है (और जिस पुस्तक के प्रकाशन में उन्हों ने सहायता की थी) उस के सम्बन्ध में केवल यही लिखा हुआ है 'हाथ के लिखे हुये अति प्राचीन और प्रामाणिक चित्र से लिया गया है। यह कहा से और कैसे हस्तगत हुआ उस का कुछ हाल नहीं लिखा है।

पूर्वोक्त पं० रणछोड़ दास व्यास काशी तुलसी-स्मारक की सहायता के लिये प्रह्लाद घाटवाला चित्र (जो वे अपने पास सुरक्षित होना बताते हैं) छपवाकर अब बेंचने लगे हैं। काशी नईबस्ती के रहनेवाले सुप्रसिद्ध ज्योतिषी पं० रमानाथरण जी ने एक बार बाबू रामदीन सिंह से कहा था कि 'बाहुपीड़ा से गोस्वामी जी का हाथ सूख गया था, उसी समय प्रह्लाद घाटवाला चित्र उतारा गया और उसमें एक हाथ सूखा है। पीछे वह हाथ दुरुस्त हो गया था। व्यास जी जो चित्र बेंच रहे हैं उस में एक ही बांह नहीं वरन् दोनों हाथ और दोनों पैर सूखे हैं। देखने से प्रतीत होता है कि प्लीहारोगग्रस्त किसी प्राणी का चित्र हो। उपर्युक्त दोनों चित्रों में तनिक भी सादृश्य नहीं पाया जाता।[1]

रामशलाका

व्यास रणछोड़ दास के कथनानुसार जो रामशलाका पुस्तक चोरी हो गई वह कैसी थी सो तो नहीं कह सकते, परन्तु प्रचलित रामशलाका वस्तुतः कोई विशेष पुस्तक प्रतीत नहीं होती। रामचरित मानस की कई एक चौपाइयों को लेकर लोगों ने शकुन विचारने का एक ढंग स्थिर किया है। पं० रामेश्वर भट्ट के स्वसम्पादित रामायण में इसे सन्निवेशित किया है। और एक चक्र दे कर शकुन विचारने की रीति भी बताई है। उस में शुभाशुभफल जानने के लिये नीचे की चौपाइयां दी हुई हैं।

"१ सुनु सिय सत्य असीस हमारी। पूजिहि मनकामना तुम्हारी॥
२ प्रबिसि नगर कीजे सब काजा। हृदय राखि कोसलपुर-राजा॥
३ उघरे अंत न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू॥
४ बिधि बस सुजन कुसंगति परहीं। फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं॥
५ होइहैं सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावहिं साषा॥
६ मुद मंगल मय संत समाजू। जिमि जग जंगम तीरथराजू॥

१ श्री रामदास गौड़ ने भी एक लेख में लिखा है कि यह चित्र उस समय का है 'जब वह शायद प्लीहा या यकृत के किसी रोग से पीड़ित होंगे।

उन्होंने रामकृष्ण दास के यहां के एक चित्र का भी हाल लिखा है और कहा है कि इस चित्र में 'रोगी का सा रूप भी नहीं है तो भी बाईं बांह सूखी हुई है। जब यह दोनों चित्र अंतकाल के नहीं हैं तब उनकी बांह का सूखना अंतकाल की घटना नहीं हो सकता।'

७ गरल सुधा रिपु करै मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई॥
८ बरुन कुबेर सुरेस समीरा। रन सनमुख धरि काहु न धीरा॥
९ सफल मनोरथ होहिं तुम्हारे। राम लखन सुनि भये सुखारे॥"

और मैनेजर भार्गव पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित रामायण में १–८ चौपाइयों के बदले निम्नलिखित चौपाइयां देखी जाती हैं —

"आयत हरि सर अति कठिनाई। राम कृपा बिनु आइ न जाई॥
सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परसि कुधातु सुहाई॥
कठिन कुसंग कुपथ कराला। तिन के बचन ब्याघ्र हरि ब्याला॥
जपहिं नाम जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥"

शिवसिंह सरोज में रामशलाका का जो रूप ग्रहण किया गया है वह वस्तु का दोनों महाराजों में से किसी की रामशलाका में नहीं देखा जाता —

पं० ज्वालाप्रसादादि की रामायण में केवल पाठ देकर यह लिखा हुआ है कि नियमानुसार इस कोष्ठ के अक्षरों को लेने से जो चौपाई बनेगी उस के अर्थ के अनुसार शुभाशुभफल समझना होगा।

इन सब बातों से स्पष्ट विदित होता है कि 'रामशलाका' गोसाईं जी कृत कोई विशेष पुस्तक नहीं है।

एकविंशति परिच्छेद

जानकीमङ्गल

रामचन्द्र तथा अन्य तीनों भाइयों के विवाह का हाल इस पुस्तक में वर्णन किया गया है। इसमें १९२ अरुण[1] छन्द और २४ हरिगीतिका छन्द हैं। आठ २ अरुण छन्द के पीछे एक हरिगीतिका है।

इस का मङ्गलाचरण देखिये :—

"गुरु गनपति गिरिजापति गौरि गिरापति।
सारद सेस सुकवि श्रुति संत सरल मति॥
हाथ जोरि करि विनय सबहि सिर नावौं।
सिय रघुबीर बिबाहु यथा मति गावौं॥
सुभ दिन रच्यो स्वयंबर मंगलदायक।
सुनत स्रवन हिय बसहिं सीय रघुनायक॥"

इस पुस्तक से या किसी अन्य रीति से इस का रचना काल ज्ञात नहीं होता।

इस में राम लक्ष्मण फुलवारी में नहीं गये हैं। यज्ञशाला में ही राम सीता का परस्पर संदर्शन हुआ है। कवि कहते हैं—

"राम दीख जब सीय सीय रघुनायक।
दोउ तन तकि तकि मैन सुधारत सायक॥"

अन्य राजाओं के धनुष नहीं तोड़ने पर विश्वामित्र ने कहा है कि रामचन्द्र को धनुष तोड़ने की आज्ञा दीजिये और राम की सुकुमारता के विचार से जनक के हृदय संकोच करने और हिचकने पर विश्वामित्र ने रामचन्द्र की महिमा वर्णन की है। तब जनक जी से धनुष तोड़ने की आज्ञा पाकर रामचन्द्र ने धनुष उठाकर तोड़ डाला है।

कोहबर में जूआ खेलने की विधि हुई है। इस में विवाह के अनन्तर परशुराम जी का आगमन हुआ है और लक्ष्मण जी से कुछ बातचीत नहीं हुई है।

इन बातों के सिवाय अन्य कथाएं रामायणवर्णित कथाओं से मिलती हैं। वरन् इस के कई छन्दों के चरण भी सर्वथा वा अंशमात्र रामायण के दोहे और चौपाइयों के चरणों से मिलते हैं। रामायण के समान शकुन तथा पुष्पवृष्टि भी होती गई है।

---

[1] यह छंद २० मात्रा का होता है। श्री बाबा रामदास कृत गद्यप्रस्तारक मञ्जरी भाग देखिये।

अब इस की कुछ कविता अवलोकन कीजिये। देखिये मुनि के संग दोनों भाई अवध से चल कर राह में कैसे जा रहे हैं :—

"गिरितरु बेलि सरित सर बिपुल बिलोकहिं।
धावहिं बालसुभाय बिहँग मृग रोकहिं॥
सकुचहिं मुनिहिं सभीत बहुरि फिर आवहिं।
तोरि फूल फल किसलय माल बनावहिं॥"

रामायण में गोसाईं जी इस सुन्दरता के साथ दोनों भाइयों को मुनि के संग नहीं ले गये हैं। हां! गीतावली में यह छवि अच्छी रीति से दिखलाई गई है।

जनकपुर में दोनों भाइयों को देख जनक जी को महानन्द प्राप्त हुआ है। कवि कहते हैं :—

"देखि मनोहर मूरति मन अनुरागेउ।
बँध्यो सनेह बिदेह बिदेह बिरागेउ॥
प्रमुदित हृदय सराहत भल भवसागर।
जहँ उपजहिं अस मानिक बिधि बड़नागर॥
पुन्य पयोधि मातु पितु ए सिसु सुरतरु।
रूप सुधा सुख देत नयन अमरनि बरु॥
केहि सुकृति के कुँअर कहिये मुनिनायक।
गौर स्याम छबिधाम धरे धनुसायक॥
बिषय बिमुख मन मोर सेइ परमारथ।
इनहिं देखि भयो मगन जानि बड़ स्वारथ॥"

इस पुस्तक में गोसाईं जी की लेखनी की भी कहीं २ चमत्कारी देखी जाती है :—

"कलस नयन रद लसहिं दमक जनु दामिनि।"

"होति बिरहसर मगन देखि रघुनाथहिं।
फरकि बाम भुज नयन देहिं जनु हाथहिं॥"

अन्त में कवि कहते हैं :—

"उपबीत ब्याह उछाह जे सियराम मंगल गावहीं।
तुलसी सकल कल्यान ते नर नारि अनुदिन पावहीं॥"

'श्रीवेंकटेश्वर' छापाखाना द्वारा प्रकाशित षोडश रामायण देख कर दोहावली रामाज्ञा जानकीमङ्गल, पार्वतीमङ्गल, कृष्ण गीतावली, कवितारामायण और संकट मोचन की समालोचना की गई है।

द्वाविंशति परिच्छेद

पार्वतीमङ्गल

इस पुस्तक के आदि में ये कई छन्द दिये गये हैं जिन से इस की रचना का कारण तथा काल ज्ञात होता है।

"विनय गुरुहिं गुनगनहिं गिरिहिं गननाथहिं।
हृदय आनि सियराम धरे धनु भाथहिं॥
गावउँ गौरि गिरीस विवाह सुहावन।
पापनसावन पावन मुनि-मन-भावन॥
कवित रीति नहिं जानउँ कवि न कहावउँ।
संकर चरित सुसरित मनहिं अन्हवावउँ॥
पर अपवाद विवाद विदूषित बानिहिं।
पावन करौं सो गाइ भवेस भवानिहिं॥
जय सम्बत् फागुन सुदि पाँचय गुरुदिन।
अस्विनि विरचेउँ मङ्गल सुनि सुख छिनु छिनु॥"

इस से स्पष्ट विदित होता है कि यह पुस्तक जय संवत् फाल्गुन सुदि पंचमी बृहस्पतिवार को अश्विनी नक्षत्र में बनी या उस दिन इस की रचना आरम्भ हुई। परन्तु यह नहीं जाना जाता कि जय संवत् कौन विक्रमीय संवत् था। महामहोपाध्याय पं० सुधाकर जी ने गणना कर के बताया है कि जय संवत् १६४२ विक्रमीय संवत् में पड़ रहा था। उस हिसाब से ग्रियर्सन साहब ने इस पुस्तक की रचना बृहस्पतिवार २ फ़र्वरी १५८६ ई० लिखा है। उन्होंने 'नोट्स ऑन तुलसी दास' शीर्षक लेख में १८९३ ई० के इन्डियन ऐन्टीक्वेरी के पृ० ७-८ में इस गणना का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।

इस पुस्तक में १४८ 'अरुण'[1] छन्द और १६ हरिगीतिका छन्द हैं। हरिगीतिका छन्द एक नियम से नहीं रखा गया है। एक स्थान में ६ एक स्थान में १० तीन स्थानों में १२, एक स्थान में १६ और शेष में ८ अरुण छन्दों के बाद हरिगीतिका का वर्णन होता है।

इस पुस्तक में शिवपार्वती विवाह की कथा वर्णित है। परन्तु जिस ढङ्ग से गोसाईं जी ने यह कथा रामायण में लिखी है उस ढङ्ग से इसमें नहीं कही गई है। इस में महाकवि कालिदास कृत 'कुमार सम्भव' का अनुसरण किया गया है।

---

१ [illegible] २ ने इस पार्वतीमङ्गल के छन्द को सोहर छन्द लिखा है। सोहर छन्द २२ मात्रा का बतलाया गया है, जैसा कि '[illegible]' में है

नारद के इस उपदेश पर 'अवसि होइ सिध साहस फलै सुसाधन। कोटिकल्पतरु सरिस संभु अवराधन॥ तुम्हरे आस्रम अबहिं ईस तप साधहिं। कहिये उमहिं मनुलाइ जाय अवराधहिं।' मातापिता की सम्मति से सखियों के साथ पार्वती शिवजी की सेवा में उपस्थित हो उन की सेवा आराधना करने लगी हैं। उसी समय देवतों के भेजे कन्दर्पको भस्म कर[1] उस की स्त्री को वर देकर उदासचित महादेव जी दूसरी जगह चले गये हैं।

इधर पार्वती जी उन की प्राप्ति के अर्थ कठिन दुष्कर तप में प्रवृत्त हुई हैं। सखी उस तपोवन में इन के साथ ही थी। इन की तपस्या से प्रसन्न हो महादेव जी स्वयं ब्रह्मचारी का भेष धारण कर इन की प्रेमपरीक्षा को आये हैं और इन की सखी के मुख से तप का कारण सुन कर वे आप अपनी निन्दा करने लगे हैं।

"कहहु काह सुनि रीझिहु बर अकुलीनहिं।
अगुन अमान अजाति मातु पितु हीनहिं॥
भीख मांगि भव खाहिं चिता नित सोवहिं।
नाचहिं नगन पिसाच पिसाचिन जोवहिं॥
भांग धतूर अहार छार लपटावहिं।
जोगी जटिल सरोष भोग नहिं भावहिं॥
एकहु हरहिं न बरगुन कोटिक दूषन।
नरकपाल गजखाल ब्याल बिष भूषन॥
कहँ राउर गुन सील सरूप सुहावन।
कहाँ अमंगल भेष बिसेष भयावन॥"[2]

और यह २० कला का छन्द है। श्री वेंकटेश्वर-यन्त्रालय-प्रकाशित 'षोडश रामायण' में इस छन्द को 'बरवै' लिखा है। बरवै रामायण के छन्द से मिलाकर देख लीजिये कि यह कहाँ तक ठीक है। पर जब कि इस ग्रन्थ के प्रकाशक ने अपने ग्रन्थ का नाम जिस में पार्वतीमङ्गल तथा 'कृष्णगीतावली' सम्मिलित हैं अन्याय रीति से 'षोडश रामायण' रखा है तो उन्हें छन्द का अशुद्ध नाम लिख देने में क्या हिचक है? गोसाईं जी ने किसी देवता के विषय में कविता की हो तो क्या सब रामायण ही कहलावेगी?

१ कुमारसम्भव के अनुसार जब पार्वती जी महादेव जी के पास उन के पूजनार्थ उपस्थित थीं उसी समय काम भस्म किया गया है। सती होने के लिये उद्यत रती को आकाशवाणी हुई है कि 'शरीर मत नष्ट करो तुम्हें निजपति का पुनः संग होगा।

२ 'वपुर्विरूपाक्षमलक्ष्यजन्मता दिगम्बरत्वेन निवेदितं वसु।
वरेषु यद्बालमृगाक्षि मृग्यते तदस्ति किं व्यस्तमपि त्रिलोचने॥' —कुमार सं

इतना कहने पर भी पार्वती को अपने प्रण में अटल पाकर वे इन्हें अपने यथार्थ स्वरूप का दर्शन दे वहां से चले गये हैं और पार्वती भी आनन्द से हृष्टपुष्ट शरीर हो सखियों के साथ बिना किसी के बुलाये घर चली आई हैं।

पीछे महादेव जी ने सप्तर्षियों तथा अरुन्धती को भेज कर अपना विवाह ठीक कराया है। बारात आने पर जब शिव और उन के गणों के भेषभूषण का समाचार सुन कर मैना को क्षोभ तथा पश्चात्ताप हुआ है तब हिमवान ही ने ईशान भगवान की महिमा बताकर उन्हें सन्तुष्ट किया है। अगवानी होने के अनन्तर ही वे जनवासा में चले गये हैं। विवाह के समय सुन्दर रूप धारण कर मण्डप में आने पर परिछन हुआ है। और लोकाचार विवाह के पीछे हुआ है। जानकीमङ्गल के समान कोहबर में जुआ की विधि भी हुई है। आकाशवाणी, पुष्पवृष्टि तथा शकुन भी होता गया है।

नगर निकट आने पर हरि ने परिहास से कहा था कि अपना २ समाज बिलग कर चलते जायें —

"बिबुध बोलि हरि कहेउ निकट पुर आयहु।
आपन आपन साज सबहिं बिलगावहु॥
प्रमथनाथ के साथ प्रमथगन राजहिं।
बिबिध भाँति मुख बाहन बेष बिराजहिं॥
नरकपाल जल भरि २ पियहिं पियावहिं।
कमठ खपर मढ़ि खाल निसान बजावहिं॥
बर अनुहरत बरात बनी हरि हँसि कह।
सुनि हिय हँसत महेस केलि कौतुक मह॥"

इस हँसी के पलटे में शिव जी ने अमरगण को खूब ही छकाया है। नगर निवासियों को भयभीत देख आप ने अपना तथा अपने गणों का ऐसा सुन्दर भेष सँवारा कि उस के सामने सब का रङ्ग फीका पड़ गया। कवि कहते हैं:—

"लखि लौकिक गति संभु जानि बड़ सोहर।
भए सुन्दर सतकोटि मनोज मनोहर॥
नील निचोल छाल भई फनि मनि भूषन।
रोम २ पर उदित रूपमय पूषन॥
गन भए मङ्गल भेष मदनमनमोहन।
सुनत चले हिय हरषि नारिनर जोहन॥

संभु सरद राकस नपतगन सुरगन।
जनु चकोर महुँ ओर विराजहिँ पुरजन॥"[1]

कदाचित् इसी से कालिदास ने कहा है कि यदि चाहने के योग्य रूपवाले इस जोड़े (शिवाशिव) को (ब्रह्मा नहीं मिलावे तो ब्रह्मा का इस जोड़े में रूप बनाने का परिश्रम व्यर्थ हो जाता।

"परस्परेण स्पृहणीयशोभं न चेदिदं द्वन्दमयोजयिष्यत्।
अस्मिन् द्वये रूपविधानयत्नः पत्युः प्रजानां विफलोऽभविष्यत्"

कवि ने इस ग्रन्थ के अन्त में कहा है —

"कल्यान काज उछाह ब्याह मनेह सहित जो गाइहैं।
तुलसी उमा संकर प्रसाद प्रमोद मन प्रिया पाइहैं॥"

इस का रङ्ग ढङ्ग और नाम सब जानकीमङ्गल के समान है। इन दोनों पुस्तकों की कथाएँ भी रामायण वर्णित जानकीविवाह तथा पार्वतीविवाह से भिन्न पाई जाती हैं और प्रभेद अधिकतर पार्वतीमङ्गल में देखा जाता है। दोनों एक ही छन्द में लिखे गये हैं और दोनों की कविता में भी उतना अन्तर नहीं है। इस से अनुमान किया जा सकता है कि इन दोनों की रचना एक ही कवि द्वारा एक ही समय कुछ दिन आगे पीछे हुई और पहले पार्वतीमङ्गल का प्रणयन हुआ क्योंकि जानकीमङ्गल की कविता अपेक्षाकृत कुछ अधिक उत्तम है। अर्थात् इन दोनों की रचना सं० १६४३ में रामायण लिखे जाने के १२ वर्ष पीछे हुई। परन्तु आश्चर्य है कि रामायण सी प्रौढ़ता इन के छन्दों में नहीं देखी जाती यद्यपि कहीं २ उस के भावों की झलक और उस का छन्दांश इन ग्रंथों में अवश्य दृष्टिगोचर होता है।

यदि यह कहें कि वयोवृद्धि के कारण इन ग्रन्थों की कविता में शिथिलता आ गई तो भी नहीं हो सकता क्योंकि इस संवत् के पीछे की कवितायें जो कवितावली में समावेशित हैं रामायण ही के समान उत्कृष्ट देखी जाती हैं। और क्या संवत् को जो हमारे लिये क्या हमारे सम्मान रुवारों के लिये एक नई वस्तु है लेखक मानने का भी हमें कोई कारण नहीं दीख पड़ता। एवं ज्योतिर्विद् पं० सुधाकरजी की गणना के सामने उसे विक्रमीय संवत् १६४३ नहीं मानने का भी हमें साहस नहीं होता। तब यह अनुमान किया जा सकता है कि जानकीमङ्गल की रचना गोसाइंजी ने रामायण के पहले की और उसी का अनुकरण कर के किसी अन्य तुलसी कवि ने पार्वतीमङ्गल बनाया अथवा किसी कवि की प्रभा सबकाल में समान ही देदीप्यमान नहीं रहती अतएव गोस्वामी की कृत होने पर भी इन ग्रन्थों में शिथिलता आ गई। जो हो परन्तु पार्वतीमङ्गल के गोसाइंजी कृत होने में बहुत से लोग सन्देह करते हैं।

1 कुमारसम्भव श्लोक ६९–६७, सर्ग ७ देखिये।

त्रयोविंशति परिच्छेद

कृष्णगीतावली

यह ग्रन्थ गोसाईं जी ने ग्रन्थ के ढंग से नहीं लिखा था इस में सन्देह नहीं। इस के पद समय समय पर लिखे गये थे और पीछे से संकलित हुये। इन पदों की रचना गोसाईं जी ने ब्रजगमन पर वहीं की थी या वहां से लौट आने पर या कुछ वहां और कुछ लौट आने पर या जाने के पूर्व ही की थी ठीक नहीं कहा जा सकता। सब बातें सम्भव हैं। इस की भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है।

इस ग्रन्थ में भिन्न २ रागों के ६१ पदों में श्रीकृष्ण ब्रजविहारी की कई एक लीलाएं यथारुचि वर्णन की गई हैं। ब्रजभाषा में यह ग्रन्थ होने के कारण कोई २ इस के गोस्वामी की कृत होने में सन्देह करते हैं।[1] परन्तु यह केवल भ्रममात्र है। उस समय ब्रजभाषा का पूर्ण प्रचार था। कवि लोग ब्रजभाषा ही में कविता किया करते थे। गोस्वामी जी ब्रज भी पधारे थे। कृष्णलीला का ब्रजभाषा में वर्णन करना उपयुक्त समझ कर यदि इन्होंने उसी भाषा में इन पदों की रचना की तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। इन की कवितावली भी ब्रजभाषा मिश्रित है। और कृष्णलीला वर्णन भी आश्चर्यजनक नहीं क्योंकि कवितावली तथा विनय पत्रिका में भी कृष्ण सम्बन्धी कविताएं तथा पद देखे जाते हैं।

पहले पद में कृष्णचन्द्र मा की गोद में बैठे तोतली बातें कर रहे हैं; दूसरे में चिकनी चुपरी छोटी मोटी रोटी खाने को मांग रहे हैं और बड़ा भैया को नहीं देने का विचार कर रहे हैं; तीसरे में एक गोपी उराहना दे रही है; चौथे में कृष्ण कह रहे हैं कि 'यह हमें झूठे ही दोष लगा रही है'; पांचवें में यशोदा कहती है कि यह तो अपने घर ही ऐसा करता है दूसरे के घर क्या जाता है। ११वें तक इसी प्रकार की बातें हैं। १४-१७ में यशोदा रोष तथा उसकी बंधन है। माता के हाथ में दामना के निमित्त लकुटी देख कर आप रो रहे हैं। कवि कहते हैं —

"मंजु अंजन सहित जलकन चुवत लोचन चारु।
स्यामसारस मग मनो ससि स्रवत सुधा सिंगारु॥

---

१ ग्रियर्सन साहब का कथन है कि इन की भाषा गोसाईं की कृत अन्य पुस्तकों की भाषा से भिन्न होने के कारण बहुत से विद्वान इसे गोसाईं की कृत होना स्वीकार नहीं करते। (Indian Antiquary p 45 1893 A D) और मैं समझता हूं कि यह पुस्तक ऊपर वर्णन किये गये तुलसीदास की बनाई न होगी। (The Modern Vernacular Literature of Hindustan)

सुभग उर दधि बिन्दु सुन्दर लखि अपनपो वारु।
मनहुँ मरकत मृदु सिखर पर लसत बिसद तुषारु॥"

१८वें में अपनी पूजा न पाने से इन्द्र का कोप देखिये। कवि ने इसे राग मलार में वर्णन किया है।

"ब्रज पर घन घमंड करि आयो।
अति अपमान बिचार आपनो कोपि सुरेश पठायो॥
दमकति दुसह दसहुँ दिसि दामिनि भयो तम गगन गँभीर।
गरजत घोर बारिधर धावत प्रेरित प्रबल समीर॥
बार बार पविपात उपल घन बरसत बूँद बिसाल।
सीत सभीत पुकारत आरत गोकुल गोपी ग्वाल॥
राखहु रामकान्ह यहि अवसर दुसह दसा भइ आई।
नन्द बिरोध कियो सुरपति सों सो तुम्हरो बल पाई॥
सुनि हँसि उठ्यो नन्द को नाहरु लियो कर कुधर उठाइ।
तुलसिदास मघवा अपने सों करि गयो गर्व गँवाइ॥"

२०वें तक गोवर्द्धन धारण, गोचारण शोभावर्णन इत्यादि के अनन्तर २१ से मथुरागमन जनित गोपीगण विरह बहुत उत्तम रीति से वर्णन किया गया है। ३३ से उद्धव तथा एक भ्रमर को सम्बोधन कर के गोपियों का निज प्रेम तथा प्रेमव्यथा कथन एवम् कुब्जा कूबरी, उद्धव और भ्रमर पर व्यंग की बौछार है—

"ऊधो या ब्रज की दसा बिचारो। ता पीछे यह सिद्धि आपनी जोग कथा बिस्तारो॥ जा कारन पठये तुम माधव सो सोचहु मन माहीं। कतिक बीच बिरह परमारथ जानत हौ किधौं नाहीं॥ परमचतुर निज दास स्याम के संतत निकट रहत हौ। जलबूड़त अवलंब फेनु को फिरि फिरि कहा गहत हौ॥ वह अति ललित मनोहर आनन कौने जतन बिसारौं। जोग जुगुति अरु मुकुति बिबिध बिधि या मुरली पर वारौं॥ जिहि उर बसत स्याम सुन्दर घन तिहि निर्गुन किन आवै। तुलसीदास सो भजन बहावै जाहि दूसरो भावै॥"

"ऊधो जू कह्यो तिहारो कीबो। नीके जिय की जानि अपनपो समुझि सिखावन दीबो॥ स्याम बियोगिनि ब्रज के लोगनि जोग जोग जो जानो। तौ संकोच परिहरि पा लागौं परमारथ हो बखानो॥ गोपी ग्वाल गाइ गोसुत सब रहत रूप अनुरागे। दीन मलीन छीन तनु डोलत मीन मजा सों लागे॥

तुलसी है स्नेह दुखदायक नहिं जानत प्रस को है। सठ म होत कान्ह को सो मन सबै साहिबी सोहै ॥"

अपनी विरहव्यथा वर्णन करते २ एक गोपी कह उठती है—

"गये कर तें घर तें आंगन तें ब्रज हू तें ब्रजनाथ। तुलसी प्रभु गयो चहत मनहु तें सो तो मेरे हाथ॥" अर्थात् मैं मन से कैसे जाने दूंगी!

और ऊधो आप जो योग २ कह रहे हैं सो—

"सगुन छीरनिधि तीर बसत ब्रज तिहुंपुर विदित बड़ाई। आकहुइन तुम्ह कह्यो सो परिहरि मोहि यह मति नहिं भाई॥"

और यदि कोई कहे कि ऐसा प्रबल प्रेम है तो उन के वियोग में तुम्हारा प्राण क्यों नहीं प्रयाण करता तो उस का कारण सुनिये —

"ज्ञान कृपान समान लगत उर बिहरत छिन छिन होत निनारे।
अवधि जरा जोरति इति पुन पुन या तें रहत सहत दुख मारे॥
पावक बिरह समीर स्वास तनु तूल मिले तुम्ह जारनिहारे।
तिन्हहिं[1] निदरि अपने हित कारन राखत नयनन जुगल रखवारे॥"

पुनः—"बिनु ब्रजनाथ ताप नयनन को कौन हरै?" अर्थात् कोई नहीं हर सकता। क्योंकि—

"कन कुंभ भरि-भरि पियूषजल बरषत थाक कलप सत हारे।
कदली सीप चातक को कारज स्वाति बारि बिनु कोउ न सँवारे॥
सब अँग ललित किसोर स्याम घन जेहिं हृदयसदन बसत हरि प्यारे।
तेहि उर किमि समात बिराटवपु सोमित सहित सिंधु गिरि भारे॥
मथ्यो अति प्रेम प्रलय के घट ज्यों बिपुल जोगजल बोरि न पारे।
तुलसि दास ब्रज बनितन को ब्रत को समरथ करि सकत निवारे॥"

इसी प्रकार योग पर प्रेम की प्रधानता प्रतिपादन करते अपने परम पुनीत प्रेम प्रकाश से विमोहित कर गोपियों ने उद्धव ऐसे प्रतीप ज्ञानी को भी प्रेम प्रवाह में बहा दिया है। गोपीयश आप धन्य हैं। आपका प्रेम धन्य है। आप प्रेम-पथ-पथिकों के शिरोमणि, पथप्रदर्शक तथा परम पूजनीय हैं। आप के चरणों में बारम्बार नमस्कार है।

इस के अनन्तर द्रौपदीचीर सम्बन्धी दो पद हैं।

---

[1] इसे रामायण के 'बिरह अगिनि तनु तूल समीरा' इत्यादि से मिलाइये।

इस ग्रन्थ में विशुद्ध शृंगार तथा प्रेम बहुत विशदरूप से वर्णन किया गया है। कविता बड़ी ही सरस, रुचिकर तथा मनोहर है। सुन्दर भावों का भी अभाव नहीं है।

अब हम यहाँ पर केवल एक बात कह कर आगे बढ़ते हैं। ऊपर उल्लिखित पदों में से यह पद 'ऊधो या ब्रज की दसा बिचारो' हमें मु० नवल किशोर के यन्त्रालय का छपा 'सूरसागर' में सूरदास जी के नाम से देखने में आया है। यह समालोचना हम श्रीवेंकटेश्वर सम्पादित 'षोडशरामायण' देख कर लिख रहे हैं। दोनों ग्रन्थों में दोनों महाकवियों के नाम से एकही कविता यह अचम्भे की बात है तथा ग्रन्थप्रकाशकगण पुरातन महानुभावों की रचनाओं के संग्रह में कैसा गड़बड़ कर देते हैं और कर रहे हैं उस का यह एक प्रत्यक्ष प्रमाण है। इन दोनों ग्रन्थों में से किस का लेख ठीक माना जाय ? हम तो कहेंगे कि प्रकाशक ने उसका 'सूरसागर' नाम ही व्यर्थ रखा है क्योंकि उस में सूरदास जी के अतिरिक्त नन्ददास, छीतस्वामी चतुर्भुजदास आदि के भी पद वर्तमान हैं। उस का नाम 'अष्टछाप पदावली संग्रह', 'अष्टछाप भक्तिरत्नभण्डार' जैसा कोई रखा जाता तो ठीक होता और जब 'सूरसागर' नाम रखा तो उस ग्रन्थ में केवल सूरदास जी ही के पद संग्रह किये जाते। परन्तु ऐसा दूषण 'षोडश रामायण' में भी है जो कि पार्वतीमंगल की समालोचना में दिखलाया गया है।

चतुर्विंशति परिच्छेद

वैराग्य सन्दीपिनी

इस के प्रणयन का समय नहीं जाना जाता। लोगों का अनुमान है कि गृहत्यागी होने पर कवि ने इसकी रचना की है। इसका तात्पर्य यही होगा कि विरक्त होने के थोड़े ही दिन पीछे इस की रचना हुई। नहीं तो विरक्त होने पर तो इन्होंने सब ग्रन्थों ही की रचना की है।

इस पुस्तक में ४६ दोहे २ सोरठे और १८ चौपाइयां हैं। इस के पहले दोहे में श्री सीताराम की युगल मूर्ति का ध्यान है; दूसरे दोहे का यह भाव है कि बिना राम के ध्यान के तथा गुणानुवाद के चित्त प्रफुल्लित नहीं होता। तीसरे दोहे में रामचन्द्र का सर्वांग में वर्णन हुआ है। इस के अनन्तर एक सोरठा में सब अद्वैत ज्ञानादि गुण विशिष्ट ईश्वर के नर तन धारण करने का हेतु कहा गया है। इस के अनन्तर नीचे लिखे हुये दो दोहे हैं —

"तुलसी यह तन तवा है, तपत सदा त्रैताप।
सांति होइ जब सांति पद, पावै राम प्रताप॥
तुलसी यह तन खेत है, मन बच कर्म किसान।
पाप पुण्य द्वै बीज हैं, बवै सो लवै निदान॥"

यह 'वैराग्य सन्दीपिनी' क्या है इसे कवि ने इस दोहे में बताया है :—

"तुलसी वेद पुरान मत, पूरन सास्त्र विचार।
यह वैराग्यसँदीपिनी, अखिल ग्यान को सार॥"

यह ग्रन्थ तीन प्रकाशों में विभक्त हुआ है। पहले में २६ (२२ दो० + ४ च०) छन्दों में सन्तस्वभाव वर्णन किया गया है। दूसरे प्रकाश में ६ (६ दो + १ सो + २ च०) छन्दों में सन्त महिमा कही गई है। तीसरे में ११ दोहे तथा ७ चौपाइयों में शान्ति का वर्णन है।

सुप्रसिद्ध रामगुलाम पाठक ने इस की टीका की है। वही इस समय हमारे सामने उपस्थित है। बाबू महादेव प्रसाद ने १८८८ ई० में यह टीका सम्पादकीय टिप्पणियों के साथ प्रकाशित की है। मैनपुरीनिवासी बैजनाथ दास ने भी इस की टीका की है। पहली टीका बांकीपुर 'खड्गविलास' प्रेस में एवम् दूसरी लखनऊ के मु० नवलकिशोर के प्रेस में मुद्रित हुई है। 'इण्डियन एण्टीक्वेरी' पृ २ —२१ में ग्रियर्सन साहब ने इस का पूरा अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया है। पहली टीका सरल तथा संक्षिप्त है, दूसरी टीका एक लम्बी चौड़ी एवम् संस्कृत के प्रमाणों से पूर्ण है।

संत महिमा के विषय में गोसाईं जी ने कहा है —

"को बरनै मुख एक, तुलसी महिमा संत की।
जिनके विमल विवेक, सेस महेस न कहि सकत॥[1]
महि पत्री करि सिंधु मसि, तरु लेखनी बनाइ।
तुलसी गनपति सों तदपि, महिमा लिखी न जाइ॥
तुलसी भगत स्वपच भलो, भजै रैन दिन राम।
ऊँचो कुल केहि काम को, जहाँ न हरि को नाम॥"[2]

'शान्ति प्रकरण' का सारांश यह है कि भक्ति भूषित दास यदि ज्ञानवान हो और सर्वत्यागी हो कर ईश्वर ध्यान में मग्न रह शान्ति धारण कर एवम् सहनशील हो तो वह महानन्द अनुभव करेगा। शान्ति के समान कहीं कोई सुख नहीं। शान्ति धारण करने से उस भक्त के हृदय में राम की जोहारें फिर जाती हैं कामक्रोधादि भाग जाते हैं एवम् वह कामना हीन, अहंकारशून्य तेजसम्पन्न हो जाता है। जिस की ऐसी अवस्था हो जाती है वही ज्ञानी है, वही ध्यानी है, वही गुणी है, वही सर्वश्रेष्ठ है और वही ऐसा कह सकता है :— "न मतलब है भलाई से न यह ख़्वाहिश कि शाही हो। इलाही हो वही जो कुछ कि मर्ज़ीये इलाही हो॥"

---

१ गोसाईं जी के कथन को नीचे लिखे कथनों से तुलना कीजिये —

"संत की महिमा वेद न जानहि।
"नानक संत प्रभु भेद न भाई।" } सुखमनि साहब, महला ५

२ "राम नाम संग मन नहिं हेता। जो कछु कीनो सोउ अनेता।
या तें उत्तम गनिये चंडाला। नानक जेहि मन बसहि गोपाला॥"

पञ्चविंशति परिच्छेद

बरवै वा बरवा रामायण

यह छोटी-सी पुस्तक बरवा छंद में है। इस छंद का प्रति चरण १९ कला का होता है एवम् १२ और फिर ७ कला पर यति (Cesura) होता है। प्रवाद है कि गोस्वामी जी ने अपने मित्र रहीम खानखाना के अनुरोध से बरवै छंद में इस पुस्तक की रचना की थी। उन के एक मुंशी छुट्टी लेकर अपने घर अपना विवाह करने गये थे। छुट्टी पूरी होने पर घर से आने के समय पहले उन की स्त्री ने उन्हें ठहराने का यत्न किया परन्तु उन के राज़ी नहीं होने पर उस ने यह बरवा 'प्रेम प्रीति कै बिरवा चलेउ लगाय। सींचन की सुधि लीजो, मुरझि न जाय' लिख कर उन्हें खानखाना की सेवा में उपस्थित करने को दिया। खानखाना उसे देख कर ऐसे प्रसन्न हुवे कि उन्हों ने उस मुंशी को तुरन्त घर लौट जाने की आज्ञा दी और उस छंद में उन्हों ने स्वयम् भी बहुत-सी कविताएं कीं एवम् अपने इष्ट मित्रों को भी उस छंद में कविता करने का अनुरोध किया।[1]

रामचरितमानस के सुप्रसिद्ध वक्ता श्रीवन्दन पाठक जी ने बरवै रामायण की 'स्नेह प्रकाशिका' टीका लिखी है। उसे श्रीरामदीन सिंह जी ने १८११ ई॰ में प्रकाशित किया है। बैजनाथ दास मन्नपुरी ने भी इस की टीका की है जो लखनऊ के मु॰ नवलकिशोर के छापेखाने में छपी है। दोनों टीकाएं अच्छी हैं। परन्तु इन में बहुत से छन्दों के स्थान क्रम में मतभेद है। हम प्रथम टीका को आगे रखकर यह समालोचना लिख रहे हैं।

बरवै रामायण में सब मिलाकर ६९ छन्द हैं। और येही ७ काण्डों में विभक्त किये गये हैं। परन्तु उन में रामकथा आभासमात्र ही पाई जाती है।

पुस्तक के आदि में रामचरितमानस प्रभृति के समान मंगलाचरण नहीं है।

बालकाण्ड—में १९ छन्द हैं। १–७ तक में श्री रामचन्द्र का एवं ८–१३ तक में श्री जानकी जी का सौन्दर्य वर्णन है। पाठक जी ने 'बड़े नयन कुटि भृकुटि भाल विसाल। तुलसी मोहत मनहि मनोहर बाल॥" को आदि में रखकर 'बाल' शब्द का अर्थ बालराजकुमार श्रीराम किया है। और बैजनाथ दास ने पाठक जी के ८–११ तक के छन्दों को क्रम से १, २, ३, ४ और आगे एवम् पूर्वोक्त प्रथम बरवा को ५वां लिख कर 'बाल' का अर्थ श्री जानकी लिया है और तदनन्तर उन्हों ने पाठक जी के मंगलाचरण ७ तथा १–६ बरवा दिया है। कदाचित इन महात्माओं ने अपनी २ उपासना के अनुसार इन छन्दों का स्थान क्रम स्थिर

---

[1] परन्तु मु॰ देवीप्रसाद कृत खानखाना की जीवनी में इस का वर्णन नहीं है यद्यपि इस प्रकार की बहुत-सी दूसरी बातें उस में देखी जाती हैं।

किया है। परन्तु न मालूम ग्रियर्सन साहब ने कौन सी पुस्तक देखकर लिखा है कि 'तीन छन्दों में भी सीता छविदर्शन के अनन्तर रामायण की कथा सूक्ष्मरीति से कही गई है।' क्योंकि उपयुक्त दोनों पुस्तकों में युगल मूर्तियों की छविदर्शन के अनन्तर रामायण की कथा—धनुभङ्ग २ छन्दों में तथा विवाह २ छन्दों में—आभासमात्र देखी जाती है।

अयोध्याकाण्ड—में ८ छन्द। कैकेयी कोप (आभासमात्र), और वनयात्रा दो छन्दों में मार्गस्थ ग्रामवासियों का वार्तालाप; गङ्गा माहात्म्य तथा पगप्रक्षालन फिर ग्रामवासियों का वचन। वाल्मीकि वचन एक छन्द।

अरण्यकाण्ड—'बिरनाम करि, अँगुरिन पंक्ति प्रकास। पठयो सूपनखा ही, लखनके पास॥' इस में कूट का ढङ्ग देखा जाता है। गोसाईं जी को और कहीं तो कूट कहते नहीं पाते।[1] क्या यहाँ सूपनखा के आने ही से इन के मन में कूट का उमङ्ग हुआ? दो छन्दों में कंचन मृग प्रसङ्ग और शेष तीन में जानकीविरहजनित रामचन्द्र का सन्ताप।

किष्किन्धा—दो छन्दों में हनुमान तथा सुग्रीव से रामचन्द्र का परिचय और वार्तालाप जैसा कि टीकाकारों ने दिखलाया है।

सुन्दरकाण्ड—६ छन्दों में भी जानकी जी का हनुमान से राम विरहजनित सन्ताप (आभासमात्र) वर्णन और हनुमान जी का उन की दशा रामचन्द्र से निवेदन करना।

लंकाकाण्ड—में एक ही छन्द बिबिधबाहिनी बिलसत सहित अनन्त। जलधि सरिस को कहै राम भगवंत। टीकाकार कहते हैं कि विविध वाहिनी=नाना प्रकार की सेना बिलसते—क्रिया से शत्रुविजय, जानकी प्राप्ति विभीषणराज्य कवि ने लखाया है। यदि इस रीति से छन्दों को काण्डों में विभक्त करके रामायण बनाई जाय तो केवल रामचरित मानस ही में से अनेक रामायण बन सकती हैं, गोसाईं जी की अन्य रचनाओं की बात दूर रहे।

उत्तरकाण्ड—२७ छन्द। दो में चित्रकूट महिमा और शेष में श्रीराम जी के पादपद्म में नेह तथा रामनाम जपने अर्थात् ईश्वर भक्ति का आदेश और माहात्म्य है। इन छन्दों में रामायण के नाम माहात्म्य का बहुत सा भाग ज्यों का त्यों आ गया है। वरन् कुछ अक्षर इधर उधर कर देने से ये बरवै भी चौपाइयों के समान हो जायेंगे।

इस पुस्तक के एक तिहाई छन्द शृङ्गाररस के होंगे। यद्यपि यह शृंगार-वर्णन दूषणीय नहीं है, तथापि हनुमान जी का यह वाक्य "सिय वियोग दुख केहि बिधि कहउँ बखानि। फूलबान ते मनसिज बेधत आनि॥" सीता जी का रामवियोगजनित दुख नहीं वरन् कामजनित दुख बताता है जो गोसाईं जी की लेखनी तथा हनुमान जी के मुख के योग्य नहीं। कूट भी कान में खटकता है। अतएव यदि हम इस पुस्तक के गोसाईं जी कृत होने में सन्देह करें तो कुछ अनुचित नहीं होगा। परन्तु लोगों के कथनानुसार अब प्रचलित—'बरवा

---

१ रामसतसई का तीसरा सर्ग कूट ही में कहा गया है। परन्तु उस ग्रन्थ को भी बहुत से माननीय पुरुष गोस्वामी जी कृत होना नहीं मानते और न मानने का एक कारण यही कूट का होना बताते हैं।

उपासना' अपूर्ण है तब अपूर्ण पुस्तक को देखकर पूरी सम्मति देनी उचित नहीं। हाँ! वर्तमानावस्था में हम इतना अवश्य कहेंगे कि गोसाईं जी ने नियमपूर्वक इस नाम का कोई ग्रंथ नहीं रचा है। मन के उमंग में उन्होंने कुछ स्फुट करखा छन्दों की रचना की होगी और उनके संग्रह के समय अन्यविरचित करखे भी उनमें सम्मिलित हो गये होंगे या कर दिये होंगे और वे ही कानों में खटकते हैं एवम् मन में सन्देह उत्पन्न करते हैं। पूर्वोक्त दोनों टीकाकारों की पुस्तकों में छन्दों के स्थानक्रम में प्रभेद होना भी इसे संग्रहमात्र ही सिद्ध करता है।

षड्विंशति परिच्छेद

रामलला नहछू

यह पुस्तक एक ग्राम छन्द में लिखी गई है। इस का प्रतिचरण २१ कला का है एवम् १२ और १० पर यति है। इस का नाम लोग सोहर छन्द कहते हैं। 'काशी ना० प्र० सभा द्वारा प्रकाशित रामायण में लिखा है कि 'इसर का ग्राम ग्राम छन्द सोहर है जो कि स्त्रियाँ पुत्रोत्सव और विवाहोत्सव आदि आन दोत्सव पर गाती हैं बिहारप्रान्त में पुत्र जन्मोत्सव ही के समय के गीत को सोहर कहते हैं अन्य समय के गीतों को नहीं।

बारात जाने के पूर्व नहछू की विधि होती है। वर को माता गोद में लेकर बैठती है और नाइन वर के केवल पैरों का नख काटती है और नखों को महावर से रंग देती है। जिस समय तक नहछू नहीं होता पैर के नखों को नाई भी नहरनी से नहीं काटते।

सुनते हैं कि संयुक्त प्रदेश तथा मिथिलादि प्रदेशों में यज्ञोपवीत के समय भी नहछू की विधि होती है। प० रामगुलाम द्विवेदी जी के कथनानुसार यह नहछू चारों भाइयों के यज्ञोपवीत के समय का है। इसके टीकाकार पं० बन्दन पाठक[1] इसे मुन्डन का नहछू कहते हैं। मुण्डन प्रायः यज्ञोपवीत के समय हुआ करता है। परन्तु इसमें अन्य तीनों भाइयों के नहछू होने का वर्णन संकेतमात्र भी नहीं है। यद्यपि रामायण में भी चक्रलोगों के यज्ञोपवीत तथा विवाह का सविस्तार वर्णन नहीं है तथापि गोसाई जी ने दो चार छन्दों ही में उसका हाल पाठकों को बता दिया है।

इसमें अवधपुरी ही में स्त्रियाँ रामचन्द्र को स्पष्ट गाली दे रही हैं। रामायण तथा जानकीमङ्गल में कवि जनकपुरवासियों का गाली देना संकेत द्वारा जताया है। यदि हम इन गालियों को समयानुसार उचित परिहास मान भी लें तो भी हम इस वाक्य को 'अहिरिनि हाथ दहेंड़िया सगुन लेइ आवइ हो। उनरत योवन दपि नृपति मन भावइ हो॥' दशरथ जी तथा गोसाई जी के योग्य परिहास नहीं मान सकते। यह दशरथजी को दुराचारी बता रहा है। बेचारी अहिरिन तो शगुन की दहेड़ी लेकर आवे और आप उसके योवन पर मोहित होकर उसे पसन्द करने लगें। गोसाई जी ऐसा कदापि नहीं कह सकते।

इन बातों के विचार से इस पुस्तक को गोसाई जी कृत होना मानने में हमको हिचक होती है।

यह पुस्तक २० छन्दों में समाप्त हुई है और इसकी भाषा प्रायः ग्राम्य भाषा है। इसका कुछ नमूना देखिये।

---

१ यह टीका बाँकीपुर खड्गविलास प्रेस में छपी है।

"नयन बिसाल नउनियाँ भौंह चमकावइ हो।
देइ गारि रनिवासहिं प्रमुदित गावइ हो॥
काहे राम जिउ साँवर लछिमन गोर हो।
की दहुँ रानि कौसिलहिं परिगा भोर हो॥
राम अहहिं दसरथ के लछिमन आनक हो।
भरत सत्रुहन भाइ तौ श्री रघुनायक हो॥
गोद लिये कौसल्या बैठी रामहिं वर हो।
सोभित दूलह राम सीस पर आँचर हो॥"

[मुण्डन और यज्ञोपवीत के समय भी विवाह ही का गीत गाया जाता है।]

यह नहछू किसी का रचा हुआ हो हम अपने पाठकों से अनुरोध करेंगे कि वे अपने घर की स्त्रियों में उपयुक्त समय पर इसके गाने का प्रचार करेंगे क्योंकि इससे गान का आनन्द और रामनामोच्चारण दोनों ही होगा और इसका फल तो ग्रन्थकर्ता ने स्वयम् ही लिख दिया है, 'जो यह नहछू गावइ गाइ सुनावइ हो। रिद्धि सिद्धि कल्यान मुक्ति नर पावइ हो॥'

भला इससे बढ़कर और क्या चाहिये !

सप्तविंशति परिच्छेद

सतसई वा रामसतसई

इस ग्रन्थ के गोसाईं जी कृत होने में चिरकाल से सन्देह हो रहा है। आप की शिष्य परम्परा में पं० रामगुलाम द्विवेदी तथा प० शिवदत्त जी दो विख्यात पुरुष हो गये हैं। प्रथम महात्मा ने इसे गोसाईं जी कृत ग्रंथावली में परिगणित नहीं किया है। दूसरे ने इसे गोसाईं जी विरचित होना मानकर इसकी टीका भी बनाई है। प्रथम के शिष्य मु० छक्कनलाल मिश्र से प० सुधाकर जी के पिता रामायण पढ़ते थे वह लोगों से दृढ़तापूर्वक कहा करते थे कि सतसई गोसाईं जी कृत नहीं है। यह बात स्वयम् पं० सुधाकर जी ने ग्रियर्सन साहब से कही थी। और दूसरे के पुत्र के शिष्य बैजेराम ने एक छप्पै[1] में सतसई के भिन्न २ सर्गों की भी जानकी जी के भिन्न २ अंगों से तुलना की है। लोगों का कथन है कि प० शिवदत्त जी का टीका लिखना कोई प्रमाण नहीं हो सकता क्योंकि उन्होंने यह काम उस समय किया था जब किसी को इस ग्रन्थ के गोस्वामी जी कृत होने में सन्देह नहीं हुआ था तब छप्पै की बात कौन चलावे।

लोगों का यह कहना कि रामगुलाम जी कथित 'दोहावली' से सतसई का ही तात्पर्य है सर्वथा निःसार है। सतसई ग्रन्थ के कई एक दोहों से यह बात स्पष्ट प्रगट है कि इसका नाम सतसई है। तब यदि वे इसे गोसाईं जी कृत होना मानते तो इसका वास्तविक नाम न देकर उसके लिये एक भ्रमोत्पादक शब्द क्यों लिख देते? दोहावली शब्द दोहावली ही के लिये प्रयोग हुआ है।

इस पुस्तक के प्रथम सर्ग के २१वें दोहे से विदित होता है कि वैशाख शुक्ल नवमी गुरुवार १६४२ में इसकी रचना हुई "*अहिरसना थन धेनुरस गनपति द्विज गुरुवार। माधव* सित सियजन्मतिथि सतसइया अवतार।" सम्वत् १६४२ में तो गोसाईं जी अवश्य वर्तमान थे परन्तु यह १६४२ क्या है सो ज्ञात नहीं होता। पं० सुधाकर जी ने ग्रियर्सन साहब से कहा था कि यदि तिथि ठीक है तो इसे अवश्य विक्रमीय संवत् मानना पड़ेगा। साहब ने कई रीतियों से गणना करके देखा है। वह कहते हैं कि "यदि तिथि ठीक है तो इस के लिखने में गोसाईं

१ श्री जू प्रेमा पाथ संग अति जोर परा है। चक्रकेलि है अधर रामरस अमिय भरा है॥ हृदय आतम बोध कर्म सिद्धान्त गला है। आतम नाम सिवांत कहाँ है मध्य हुआ है॥ राजनीति है सीससिख यह विधि तुलसी दास दिय। आदि अंत लौं वर्णिये सतसइया है सत्यसिय॥

जी ने विक्रम सम्वत् (चैत्र आदि) नहीं वरन् प्रचलित सम्वत् (कार्तिक आदि) प्रयोग किया है[1] जिस के प्रयोग की चाल उन के समय में उस प्रान्त में नहीं थी और जैसा कि उन्होंने अन्य किसी ग्रंथ में नहीं किया है। एवम् इसे वाक्य सत् मानने से दिन मिलता है किन्तु इस का रचनाकाल गोसाईं जी के शरीर त्याग के १ वर्ष पीछे हो जाता है। इन कारणों से लोगों को इस दोहा के क्षेपक होने का सन्देह होता है। पं सुधाकर जी ने निस्सन्देह उपयुक्त दोहे के आधार पर 'तुलसी सुधाकर'[2] पृ १६ में सतसई की रचना का समय वैशाख शुक्ल ९ गुरुवार सं १७७७ लिखा है किन्तु १७७७ किस गणना से हुआ यह बात समझ में नहीं आती।

इस के रचना काल में जो सन्देह हो परन्तु इस के २६४वें दोहे से मान होता है कि इस के रचयिता काशी में वास करते थे। 'रविसिंगल अरु भटगव्य बीच सुवास विचारि। तुलसिदास आसन करे अवनिसुता उर धारि ॥'[3] एक और दोहे से भी यही ध्वनि निकलती है। परन्तु जब इस पुस्तक में ७ से ४७ दोहे अधिक हैं तो इन दोहों का भी किसी के द्वारा इसमें घुसाया जाना क्या असम्भव है?

पं सुधाकर जी इस ग्रन्थ को गाजीपुरनिवासी तुलसी नामक कायस्थ का बनाया इन कारणों से मानते हैं कि इसमें मकरा के लिये 'कमा' शब्द प्रयोग किया गया है। जैसा कि गाजीपुर प्रान्त में होता है इस के १६२ ६६ दोहों में ऐन गैन की कल्पनाएं की गई हैं एवम् कुछ गणित जाननेवाले कायस्थों सा ११६—११८वें दोहों में कुछ गणित सम्बन्धी कल्पनाएं भी हैं।

केवल इन्हीं कारणों से हम इसे गाजीपुरी तुलसी विरचित होना मानने को तैयार नहीं हैं। गोसाईं जी ने रामायण में लिखा है 'धुँआ देखि खरदूषन केरी'। तो क्या जिस प्रान्त में धुँआ मृतक शरीर को कहते हैं वहीं के कोई तुलसीदास रामायण के कर्ता माने जायंगे! फ़ारसी के उन शब्दों के प्रयोग का विचार नहीं करने पर भी जो पण्डित जी के कथनानुसार हिन्दीभाषा में मिल जाने के कारण गोसाईं जी के मातृभाषा के शब्द हो गये थे, उनके लिये ऐन गैन की कल्पना कोई बात नहीं थी जब कि हम लोग रामायण में बताते हैं कि उन्होंने फ़ारसी के पद्य का ज्यों का त्यों अनुवाद कर दिया है। यथा 'फूलै फलै न बेंत यदपि सुधा बरषहिं जलद।

'और गर आबे ज़िन्दगी बारद। हरगिज़ अज़ शाख़े बेद बर न ख़ोरी।'

कई दोहों में जो कुछ गणित की कल्पनाएं हुई हैं वे भी ऐसी कठिन नहीं हैं कि गोसाईं जी के समान सिद्ध पुरुष उन्हें नहीं कर सके। वे अत्यन्त साधारण हैं। केवल गी का पहाड़ा जानने ही से वैसी कल्पनाएं हो सकती हैं। और कायस्थ कुछ ही गणित क्यों जानने लगे? यह

१ चैत्र-आदि के अनुसार गणना करने से १५८५ ई० के १८ अप्रैल बुध को सूर्योदय के तुरत ही बाद नवमी समाप्त हुई थी और कार्तिक आदि के अनुसार एक रीति से १५८६ ई के १७ अप्रैल रविवार को एवम् दूसरी रीति से १५८४ ई के ६ अप्रैल बृहस्पति को सूर्योदय के १ घड़ी ७ पला बाद नवमी समाप्त हुई।

२ हम इसी पुस्तक को देख कर यह समालोचना लिख रहे हैं।

३. रविभवन = लोलार्क, भटगव्य = गङ्गा। काशी में गङ्गा और असी के बीच में लोलार्क घाट है। यहाँ प्रति वर्ष भादों शुक्ल षष्ठी को रात भर मेला होता है और उसी [illegible] से उस नगर में कजली गाना बन्द किया जाता है।

तो मानो उन के बाटे ही पड़ा है। आज भी अधिकांश कायस्थ बड़े २ गणितज्ञ पण्डितों से सौ पैग आगे ही निकल जायंगे।

परन्तु पूर्वोक्त कारणों के सिवाय इस में और भी सन्देहोत्पादिनी बातें देखी जाती हैं। गोसाईं जी के अन्य ग्रन्थों के दोहों के समान इस के दोहे सरल नहीं हैं। इसी पुस्तक में जो लगभग सवा सौ दोहे दोहावली के पाये जाते हैं उन से अन्य दोहों को मिला कर देख लीजिये। लोग कहते हैं कि विषय के गूढ़त्व से दोहे क्लिष्ट हो गये हैं। ऐसा मान लेने पर भी कूटपद एक सर्ग की आवश्यकता नहीं दीखती। सुनते हैं कि गोसाईं जी कूटरचना के विरोधी थे। उन के विरोधी होने में सन्देह नहीं। कूट सर्वसाधारण की समझ से बाहर होता है और इन्हें इस ढङ्ग से कुछ लिखना अभिप्रेत नहीं था जिससे जनसमाज लाभ नहीं उठावे।

इस के अधिकांश दोहे अपना अर्थ स्वयम् व्यक्त नहीं करते। अतएव टीकाकार और शिक्षक को उनका अर्थ बोधगम्य बनाने के लिये अपनी ओर से बहुत से शब्दों के जोड़ने की आवश्यकता होती है। रामायणादि के दोहे कम से कम एक अर्थ स्वयम् सूचित कर देते हैं। उनका गूढ़ार्थ इत्यादि बताने के लिये कोई चाहे उन के शब्दों को कितना ही तोड़ा मरोड़ा करे या अपनी ओर से उन में शब्दों को जोड़ा करे।

इस में बहुत से शब्द भी ऐसे प्रयोग हुये हैं जो गोसाईं जी के अन्य पुस्तकों में नहीं देखे जाते। जैसे, चाय (चाहि) मारि, (मदन) परिहरा तोहरो (तुम्हार), राउम (तुम्हा), आउम (पति) अगन (अगत,जग) कमान (सेना), मामिना, चाह (इच्छा) दुजिम (दुःख) इत्यादि।

इस की वन्दना भी गोसाईं जी के अन्य ग्रन्थों के समान नहीं है। इस में भी रामचन्द्र की अपेक्षा श्री जानकी जी की उपासना का अधिक उपदेश है। कदाचित् इसी से कोदोराम ने भी इस के सर्गों को भी सीता जी के काण्डों से तुलना की है। और यदि प्रथम सर्ग का २१वाँ दोहा ठीक हो तो इसी से इसका अवतार भी जानकी जी की जन्मतिथि को बताया गया है।

फिर यदि गोसाईं जी ने सतसई की रचना की और दोहावली के दोहों को उस में समावेशित किया अथवा ये दोहे पहले इसी पुस्तक में थे और यहीं से उठाकर दोहावली में रखे गये तो एकही ग्रन्थ में एक वस्तु के गुण दोष वर्णन वाले दो दोहों में परस्पर विरोध नहीं देखा जाता जैसा कि मीन के दोहों में देखा जाता है। 'तु अधीन जाचक नहीं सीस नाइ नहिं लेत' और 'चातक मन तजि दूसरो जियत न नाईं नारि। प्रथम दोहा दोहावली में भी है। ये दोनों एक ही कवि के रचे नहीं हो सकते। यदि हों भी तो वह स्वयम् दोनों को एक ग्रन्थ में पास ही पास नहीं रख सकता। पार्वतीमङ्गल की कथा में तथा रामायणवर्णित शिवविवाह में भी प्रभेद है। परन्तु ये दो भिन्न २ ग्रन्थों में हैं। तो भी इसी कारण से प्रथम पुस्तक के गोसाईं जी कृत होने में लोग सन्देह करते हैं।

इन कारणों से हमें भी सतसई के गोसाईं जी विरचित होने में सन्देह होता है। जो हो पर ग्रंथ बहुत आनन्दप्रद और ज्ञानोत्पादक है। यदि सचमुच यह तुलसी नामक किसी

कायस्थ का बनाया हुआ है तो इसकी हमें महाममता है और हम उनकी बड़ी प्रशंसा करते हैं कि उन्हों ने एक ऐसी उत्तम पुस्तक की रचना की जो गोस्वामी जी की ग्रन्थावली में परिगणित होने लगी।

इस के सात सर्गों में क्रमशः प्रेमाभक्ति, पराभक्ति, उपासना (कूटद्वारा), आत्मज्ञान, कर्मसिद्धान्त, ज्ञानसिद्धान्त तथा राजनीति का दार्शनिक मतानुसार उपदेश दिया गया है। शिक्षा तथा सिद्धान्त गोस्वामी जी के मत से मिलता है। इस पुस्तक का गुण केवल इस पाँच दोहों के उद्धृत कर देने से नहीं जाना जायगा। अतएव इसका कोई अन्य उल्लेख नहीं करके हम पाठकों को परामर्श देंगे कि वे इसे स्वयम् पढ़कर लाभ उठावें।

पूर्वोक्त बैजनाथदासकृत इस पुस्तक की टीका भी लखनऊ के मु० नवलकिशोर के छापेखाने में १८८६ ई० में प्रकाशित हुई है। टीका निस्सन्देह उत्तम है।

ऐसी कई एक पुस्तकें पुरातन काल से गोसाइं जी की बनाई कही जाती हैं। अतएव इन की विस्तार पूर्वक समालोचना की गई है। इधर लोग बहुत से और भी ग्रन्थ गोसाईं जी के माथे मढ़ते गये हैं और मढ़ते जा रहे हैं। यहाँ तक कि उनकी संख्या अब १९ तक पहुँच गई है। किन्तु इधर वाले ग्रन्थों में से किसी को कोई गोसाईं जी कृत होना मानता है और किसी को कोई। इसका विवरण इस पुस्तक के पृ० १६१ में दिया गया है। इन में से दो चार के सिवाय हमें अन्य पुस्तकों के देखने का सौभाग्य नहीं हुआ है। जिन्हें देखा है वे निश्चय गोसाईं जी विरचित प्रतीत नहीं होतीं। यथा 'रामशलाका'। इस की समालोचना पृ० १५४ में हो चुकी है।

छप्पै रामायण—हनुमाननाटक तथा कवितावली के छप्पै से इस के छन्दों का मिलान कीजिये। उनके ५वें तथा ६ठे चरणों में अट्ठाइस २ मात्रायें हैं एवम् १५ तथा ११ कलाओं पर यति है जैसा कि नियमानुसार होना चाहिये। इस पुस्तक के प्रत्येक छन्द के छठे चरण में २८ मात्रायें हैं एवम् १४ और १४ कलाओं पर यति है और ५वें चरण में तेरह २ मात्रों पर यति है। गोसाईं जीकृत छप्पै में ऐसा होने की सम्भावना नहीं। कई स्थानों में विभक्ति में भी गड़बड़ है। यथा 'निसरेउ कर से तीर चाप संधानहि मारी', 'सुधि व्याधा बिकलाने', 'भक्ति हेतु राम आपना।' कई एक शब्द भी विचित्र हैं। यथा इतिहासना (इतिहास), दिहि (दत्त, दिया)।

संकटमोचन या हनुमानाष्टक—श्री हनुमान जी की स्तुति में आठ सवैयाओं की यह एक छोटी सी पुस्तिका संकट निवारण के हेतु बनाई गई है, क्योंकि अन्त की सवैया में कहा है "बेगि हरो हनुमान महा प्रभु जो कछु संकट होय हमारो" और इसके अन्त में कहा है "यह अष्टक हनुमान को, विरचित तुलसी दास। गंगा दास सु प्रेम सों, पढ़े होय दुख नास॥" यह गंगादास कौन हैं? और जब किसी सवैया में गोसाईं जी का नाम नहीं है तो इन्हों ने इसे तुलसीदासविरचित कैसे कहा यह ज्ञात नहीं होता।

हनुमानचालीसा—इस के आदि में रामायण वाला दोहा "श्री गुरु चरन सरोज रज निज मन मुकुर सुधारि। बरनो रघुबर बिमल जस- - -" है। परन्तु इस में रघुबर बरन नहीं बरन हनुमान यश

वर्णन किया गया है। यह दोहा क्या पीछे जोड़ा गया? इस में ४० चौपाइयां और आदि अन्त में एक १ दोहा है। अन्त की चौपाइयों में कहा गया है "यह सत बार पाठ कर जोइ। छूटे बन्दि महा सुख होइ॥ जो यह पढ़ै हनुमान चालीसा। होइ सिद्ध साखी गौरीसा॥" इसी से जनश्रुति ईश्वरी गोसाईं जी के दिल्ली के बन्दिगृह में रख जाने के समय इस की रचना बताती है और बहुत से लोग सिद्धिप्राप्ति के लिये इसका नित्य पाठ भी करते हैं।

हमारी समझ में गोस्वामी जी के सिर पर पुस्तकों का भारी बोझ देने की आवश्यकता नहीं। यदि लोगों का यह ख्याल हो कि रचना का बाहुल्य ही गोसाईं जी की सुख्याति का कारण है और होगा तो हम इसे महाभूल और भ्रम कहेंगे। छः एक प्रामाणिक ग्रन्थों के सिवाय यदि अन्य सब दो प्रथ अन्य कवियों के बनाये सिद्ध हो जाय तो भी इन महात्मा की सुख्याति में कदापि बट्टा नहीं लग सकता। केवल एक रामचरित मानस ही के कारण इन का मस्तक जगत् में सर्वदा उन्नत रहेगा और साहित्यसंसार में ये सदा पूज्य तथा उच्चासन के अधिकारी रहेंगे।

अष्टाविंशति परिच्छेद

गोसाईं जी की संस्कृतज्ञता

गोसाईं जी केवल हिन्दी भाषा ही के प्रवीण पण्डित नहीं थे; आप संस्कृतभाषा के भी पूरे ज्ञाता थे और आप ने संस्कृत ग्रन्थों का पूर्ण रूप से परिशीलन किया था जिसके प्रभाव से संस्कृत ग्रन्थों के विषय आशय और भाव इन के चित्त पर भली भांति अङ्कित हो गये थे। इसी से ये संस्कृत श्लोक भी बना सके हैं और इसी से वेद शास्त्र पुराण तथा अन्यान्य ग्रन्थों की बातें अपनी रचनाओं में ऐसी अनुपम रीति से समावेशित करने में इन्हों ने ऐसी सफलता पाई है। संस्कृत ग्रन्थों के बहुत से उत्तम भाव तथा ललित उपमायें भी कहीं ज्यों की त्यों और कहीं रूपान्तरावस्था में इन की पुस्तकों में पाई जाती हैं। इस परिच्छेद में उसी के कुछ उदाहरण दिखलाये जाते हैं।

बालकाण्ड।

१ मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिबर गहन।
जासु कृपा सो दयाल, द्रवउ सकल कलिमल दहन॥
"मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम्॥"

२ बंदउँ मुनिपद कंज रामायन जेहि निरमयेउ।
सखर सुकोमल मंजु दोष रहित दूषन सहित॥
"नमस्तस्मै कृता येन पुण्या रामायणी कथा।
सदूषणाऽपि निर्दोषा सखराऽपि सुकोमला॥"

३ धोइ मरुत गगन अमित सेवाता।
"धूमज्योतिःसलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः।"—मेघदूत

४ एक छत्र एक मुकुटमनि सब बरननि पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के बरन बिराजत दोउ॥
"नियर्णं रामनामैकं वर्णानां च स्वराधिकम्।
सर्वेषां मुकुटं छत्रं मकारो रेफव्यञ्जनम्॥"

—महारामायण

५. बाम्क की जान प्रसव की पीरा।
"नहि वन्ध्या विजानाति गुर्वीं प्रसववेदनाम्।"

६ बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना॥ इत्यादि।
"अपाणिपादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्॥"—उपनिषद्।

७ जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥ इत्यादि।
"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥"—गीता।

८ संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस ते नाना॥
यस्यांशेन समुद्भूता ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥"—महारामायण।

९ ....अद्भुत रूप बिचारी। लोचन अभिरामं.......खरारी॥
"तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं चतुर्भुजं शङ्खगदाद्युदायुधम्।
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम्॥"—भागवत।

१ ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै।
मम उरबासी यह उपहासी सुनत धीरमति थिर न रहै॥
"जठरे तव दृश्यन्ते ब्रह्माण्डाः परमाणवः।
त्वं ममोदरसम्भूत इति लोकान् विडम्बसे॥"—अध्यात्म।
पुनः—"बिभर्षि सोऽयं मम गर्भगोऽभूदहो नृलोकस्य विडम्बनं हि तद्"—भागवत।

१ प्रभु हँसि दीन्ह मधुर मुसुकानी।
देखरावा मातहि निज ... कोटि कोटि ब्रह्माण्ड॥
अगनित रबि ससि सिव चतुरानन। बहु गिरि सरित सिंधु महि कानन॥
"मुखं लालयती राजन् जृम्भतो ददृशे इदम्।"
"खं रोदसी ज्योतिरनीकमाशाः सूर्येन्दुवह्निश्वसनाम्बुधींश्च॥
द्वीपान्नगांस्तद्दुहितॄर्वनानि भूतानि यानि स्थिरजङ्गमानि॥" भागवत।

११ जिन के रही भावना जैसी । हरि मूरति देखी तिन तैसी ॥ इत्यादि ।

"मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्।
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः ।
मृत्युर्भोजपतेर्विराड् विदुषां तत्त्वं परं योगिनां ।
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रङ्गं गतः साग्रजः ॥"—भाग ।

१३ रावण बाण महा भट भारे । इत्यादि ।

"शृणुत जनकवाक्यं क्षत्रिया शुल्कमेतद् दशवदनभुजानां कुण्ठिता यत्र शक्तिः ।
नमयति धनुरैशं यस्तदारोपणेन त्रिभुवनजयलक्ष्मीर्जानकी तस्य दारा ॥"
—हनुमन्नाटक ।

१४ वीर बीप के भूपति नाना । वीर विहीन मही मैं जाना ॥

"आद्वीपात्परतोऽप्यमी नृपतयः सर्वे समभ्यागताः
कन्यायाः कलधौतकोमलरुचेः कीर्तेश्च लाभः परः ।
नाकृष्टं न च टङ्कितं न नमितं नोत्थापितं स्थानतः
केनाप्यस्य महद्धनुर्धनुरिदं निर्वीरमुर्वीतलम् ॥"—हनुमन्नाटक ।

१५ दिस कुंजरहु कमठ अहि कोला । धरहु धरनि धरि धीर न डोला ॥

"पृथ्वी स्थिरा भव भुजङ्गम धारयैनां त्वं कूर्मराज तदिदं द्वितयं दधीथाः ।
दिक्कुञ्जराः कुरुत तत्त्रितये दिधीर्षां रामः करोति हरकार्मुकमाततज्यम् ॥"
—हनुमन्नाटक ।

१६ हमहि तुम्हहि सरबर कस नाथा ।

देव एक गुन धनुष हमारा । नव गुन परम पुनीत तुम्हारा ॥

"नो ब्रह्मन्समता समं न घटते संग्रामवार्तापि नो
सर्वे हीनबला वयं बलवतां यूयं स्थिता मूर्धनि ।
यस्मादेकगुणं शरासनमिदं सुव्यक्तमुर्वीभुजा-
मस्माकं भवतो यतो नवगुणं यज्ञोपवीतं वसम् ॥"—हनुमन्नाटक ।

अयोध्याकाण्ड ।

१ को न कुसंगति पाइ नसाई । रहइ न नीच मते चतुराई ॥

"धीरोऽप्यन्तदयान्वितोऽपि सुगुणाचारान्वितो वाथवा
नीतिज्ञो विविधादवैशिकपरो विद्याविवेकोऽथवा ।
दुष्टानामतिपापभावितधियां सङ्गं सदा चाश्रय—
न्तद्बुद्ध्या परिभावितो व्रजति तत्साम्ये क्रमशः स्फुटम् ॥"—अध्यात्म ।

२ काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सब भ्राता ॥
"सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः ॥"

३ चरन कमल रज कहुँ सब कहई। मानुष करनि मूरि कछु अहई ॥
"मानुषीकरणरेणुरस्ति ते पादयोरिति कथा प्रथीयसी।"

४ आरत काह न करइ कुकरमू।
"बुभुक्षित किं न करोति पापम्।"

५ अरध तजहिं बुध सरबस जाता।
"सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पण्डित ।"

अरण्यकाण्ड

१ मातु पिता भ्राता हितकारी। अमितदानि भर्ता बैदेही।
"मितं ददाति जनको मितं भ्राता मितं सुतः।
अमितस्य हि दातारं भर्तारं पूजयेत्सदा ॥"—शि० पुराण।

२ वृद्ध रोग बस जड़ धन हीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना ॥
ऐसेहु पति कर किएँ अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना ॥
"क्लीबं वा दुरवस्थं वा व्याधितं वृद्धमेव वा।
सुस्थितं दुःस्थितं वापि पतिमेकं न लङ्घयेत् ॥"—शि० पु०

अन्यच्च—"दुःशीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि वा।
पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी ॥"—भागवत।

३ जग पतिब्रता चारि बिधि अहहीं। इत्यादि।
"चतुर्विधास्ताः कथिता नार्यो देवि पतिव्रताः ॥
स्वप्नेऽपि यन्मनो नित्यं स्वपतिं पश्यति ध्रुवम्।
नान्यं परपतिं भद्रे उत्तमा सा प्रकीर्तिता ॥
या पितृभ्रातृसुतवत् परं पश्यति सद्धिया।
मध्यमा सा हि कथिता शैलजे वै पतिव्रता ॥
बुद्ध्वा स्वधर्ममनसा व्यभिचारं करोति न।
निकृष्टा कथिता सा हि सुचरित्रा च पार्वति ॥"—शिवपुराण।

४ आगे राम अनुज पुनि पाछे । ... ब्रह्म जीव बिच माया जैसी ॥
"अग्रे यास्याम्यहं पश्चात्त्वमन्वेहि धनुर्धर ।
आवयोर्मध्यगा सीता मायेवात्मपरात्मनो ॥"—अध्यात्म ।

५ पूछत चले लता तरु पाती । ... तुम देखी सीता मृगनैनी ॥
"भो भो वृक्षा बहुकुसुमयुता वायुना घूर्णमानो
भो भो श्रेयपादपमृगगणा वृषदर्शीमरण्या ।
भो भो सर्वे जीवाश्च महिजलेऽग्निवायुर्नभश्च
भो भो गिरिगिरि गिरिश च दृष्टा प्राणप्रिया जानकी ॥"

६ शास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिय । भूप सुसेवित बस नहिं लेखिय ॥
राखिय नारि जदपि उर माहीं । जुवती सास्त्र नृपति बस नाहीं ॥
"शास्त्रं सुचिन्तितमपि प्रतिचिन्तनीयं
स्वाराधितोऽपि नृपतिः परिशङ्कनीयः ।
अङ्के स्थिताऽपि युवतिः परिरक्षणीया
शास्त्रे नृपे च युवतौ च कुतो वशित्वम् ॥"

७ फल भारि नम बिटप सब, रहे भूमि निअराय ।
"भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैः ।"

किष्किन्धाकाण्ड

१ कुपथ निवारि सुपंथ चलावा । गुन प्रगटइ अवगुनन्हि दुरावा ॥
बिपति काल कर सतगुन नेहा । श्रुति कह संत मित्र गुन एहा ॥
"पापान्निवारयति योजयते हिताय, गुह्यानि गूहति गुणान्प्रकटीकरोति ।
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले, सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः ॥"

२ आगे कह मृदु बचन बनाई । पाछे अनहित मन कुटिलाई ॥ इत्यादि ।
"परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम् ॥"

३ अनुज बधू भगिनी सुत नारी । इत्यादि ।
"दुहिता भगिनी भ्रातुर्भार्या चैव तथा स्नुषा ।
समा यो रमते तासामेकामपि विमूढधीः ॥"
पातकी स तु विज्ञेयः स वध्यो राजभिः सदा ।
त्वं तु भ्रातुः कनिष्ठस्य भार्यां यो रमसे बलात् ॥—अध्यात्म ।

४ लछिमन देखु मोरगन नाचत बारिद पेखि।
गृही बिरतिरत हरष जस बिष्नु भगत कहुँ देखि॥

"मेघागमोत्सवा हृष्टाः प्रत्यनन्दन् शिखण्डिनः।
गृहेषु तप्ता निर्विण्णा यथाच्युतजनागमे॥"—भाग॰

५. दामिनि दमक रह न घन माहीं। खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं॥

"लोकबन्धुषु मेघेषु विद्युतश्चलसौहृदाः।
स्थैर्यं न चक्रुः कामिन्यः पुरुषेषु गुणिष्विव॥"—भाग॰

६ बूँद अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के बचन संत सह जैसे॥

"गिरयो वर्षधाराभिर्हन्यमाना न विव्यथुः।
अभिभूयमाना व्यसनैर्यथाऽधोक्षजचेतसः॥—भाग

७ छुद्र नदीं भरि चलीं तोराई। जस थोरेहुँ धन खल इतराई॥

"आसन्नुत्पथगामिन्यः क्षुद्रनद्योऽनुशुष्यतीः।
पुंसो यथाऽस्वतन्त्रस्य देहद्रविणसम्पदः॥"—भाग॰

८. दादुर धुनि चहु दिसा सोहाई। बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई॥

"श्रुत्वा पर्जन्यनिनदं मण्डूकाः व्यसृजन् गिरः।
तूष्णीं शयानाः प्राग्यद्वद् ब्राह्मणा नियमात्यये॥"—भाग

९ नव पल्लव भे बिटप अनेका। साधक मन जस मिलें बिबेका॥

"पीत्वाऽपः पादपाः पद्भिरासन्नानात्ममूर्तयः।
प्राक्क्षामास्तपसा श्रान्ता यथा कामानुसेवया॥"—भाग॰

१० ससि संपन्न सोह महि कैसी। उपकारी कै संपति जैसी॥

"क्षेत्राणि सस्यसम्पद्भिः कर्षकाणां मुदं ददुः।
धनिनामुपतापं च दैवाधीनमजानताम्॥"—भाग

११ सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा॥

"शरदा नीरजोत्पत्त्या नीराणि प्रकृतिं ययुः।
भ्रष्टानामिव चेतांसि पुनर्योगनिषेवया॥"—भाग॰

१२. भानु पीठि सेइअ उर आगी। स्वामिहि सर्ब भाव छल त्यागी॥

"पृष्ठतः सेवयेदर्कं जठरेण हुताशनम्।
स्वामिनं सर्वभावेन परलोकममायया॥"

सुन्दरकाण्ड

१ साखामृग कै बड़ि मनुसाई। साखा ते साखा पर जाई॥ इत्यादि

"शाखामृगस्य शाखायाः शाखां गन्तु पराक्रमः।
यत्पुनर्लङ्घितोऽम्भोधिः प्रभावोऽयं प्रभो तव॥"—हनु० ना०

२ जो संपति सिव रावनहिं, दीन्हि दिये दस माथ।
सोइ सम्पदा बिभीषनहिं सकुचि दीन्ह रघुनाथ॥

"या विभूतिर्दशग्रीवे शिरश्छेदेऽपि शङ्करात्।
दर्शनाद्रामदेवस्य सा विभूतिर्विभीषणे॥"—हनु० ना०

लंकाकाण्ड

१ प्रियबानी जे सुनहिं जे कहहीं। ऐसे नर निकाय जग अहहीं॥
बचन परम हित सुनत कठोरे। सुनहिं जे कहहिं ते नर प्रभु थोरे॥

"सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः॥"

२ कह प्रभु कठिन बचन सब सहऊं। नीति धर्म मैं जानत अहऊं॥

"रे रे शाखामृग त्वामहं धर्मशीलतया कटुप्रलापिनमपि न हन्मि यतो च—
यथोक्तवादी दूतः स्यात् न स वध्यो महीभुजा॥"—हनु० ना०

३ तव प्रभु नारि बिरह बलहीना। अनुज तासु दुख दुखी मलीना॥
तुम्ह सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ। अनुज हमार भीरु अति सोऊ॥—इत्यादि।

"रामस्त्रीविरहेण हारितवपुस्तच्चिन्तया लक्ष्मणः
सुग्रीवोऽग्रजराज्यभेदकतया निम्नं नदीकूलद्रुमः।
गवयः कस्य विभीषणः स च रिपोः कारुण्यवैन्यातिथि—
र्लङ्कादाहहिरण्यवाहकपटुर्वध्यो ममैकः कपिः॥"—हनु० ना०

४ कहु रावन रावन जग केते।—इत्यादि।

"रे रे रावण रावणाः कति महीतलेऽप्ययं शृणुम
प्रागेकं किल कार्तवीर्यनृपतेर्दोर्दण्डपिण्डीकृतम्।
एकं नर्तनदापितान्नकवलं दैत्येन्द्रदासीगणै
रन्यं चक्षुमपि त्रपामहे इति त्वं तेषु कोऽन्योऽथवा॥"—हनु० ना०

५ राम मनुज कस रे सठ बंगा। धन्वी काम नदी पुनि गंगा॥

"रे रे रावण हीनदीनकुमते रामोऽपि किं मानुषः
किं गङ्गापि नदी·······कामोऽपि धन्वी नु किम्॥"—हनु० ना०

१ जौं पसु भयेसि राम कर द्रोही । ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोही ॥
"रामवध्यो न शक्तः स्यात्त्रातुं सुरसत्तमै ।
ब्रह्मरुद्रेन्द्रसंज्ञैश्च त्रैलोक्यमुनिभिस्त्रिभिः ॥"

उत्तरकाण्ड

१ नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी । कोउ एक होइ धरम व्रतधारी ॥ इत्यादि ।
"सुभगे शृणुष्व मनुजोऽपि सहस्रमध्ये धर्मव्रती भवति सर्वसमानशील
तेष्वेव कोटिषु भवद्विषये विरक्तः सदासको भवति कोटिविरक्तमध्ये ।
ज्ञानिषु कोटिषु तृतीयकोऽपि मुक्तः कश्चित्सहस्रनरजीवनमुक्तमध्ये
विज्ञानरूपविभक्तोऽन्यय ब्रह्मलीनस्तेष्वेव कोटिषु सकृत् खलु रामभक्तः ॥"

—महारा० ।

२. जो ज्ञानिन्ह कर चित अपहरई । बरिआई बिमोह मन करई ॥
"ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ॥"—मार्क० पु० ।

३ सो दासी रघुबीर कै समुझे मिथ्या सोपि ।
छूट न रामकृपा बिनु नाथ कहउँ पद रोपि ॥
"दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥"—गीता ।

४ निज सिद्धान्त सुनावउँ तोहि । सुनि मन धरु सब तजि भजु मोही ॥
"सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।"—गीता ।

५. भगतिवंत अति नीचउ प्राणी । मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी ॥
"अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥"—गीता ।

६ जोइ तन धरउँ तजउँ पुनि अनायास हरिजान ॥
जिमि नूतन पट पहिरइ, नर परिहरइ पुरान ॥
"वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥"—गीता ।

७. ईस्वर अंस जीव अबिनासी ।
"ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।"—गीता ।

८ जे असि भगति जानि परिहरहीं । केवल ज्ञान हेतु स्रम करहीं ॥
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी । खोजत आक फिरहिं पय लागी ॥

"ये रामभक्तिममलां सुविहाय रम्यां ध्याने रताः प्रतिदिनं परिविशिष्टमार्गे ।
आरान्महेन्द्रसुरभीं परिहृत्य मूर्खा अर्कं भजन्ति सुभगे सुखदुग्धहेतुम् ॥"
—महा० रा०

१ सो तनु धरि हरि भजहिं न जे नर । होहिं विषयरत मंद मंदतर ॥
कांच किरिच बदले ते लेहीं । कर तें डारि परसमनि देहीं ॥
"अन्येषु व्यर्थतां नीतं भवभोगोपलिप्सया ।
काचमूल्येन विक्रीतो हन्त चिन्तामणिर्मया ॥"

गीतावली

१ खेलत बसत करत मग कौतुक बिलमत सरित सरोवर तीर ।
तोरत लता सुमन सरसीरुह पियत सुधा सम नीर ।
बैठत बिमल सिलनि बिटपनि तर पुनि पुनि बरनत छाँह समीर ॥
"लतानुपातं कुसुमान्यगृह्णात् स नद्यवस्कन्दमुपास्पृशच्च ।
कुतूहलाच्चारुशिलोपवेशं काकुत्स्थ ईषत् स्मयमान आस्त ॥"
—भट्टिकाव्य, सर्ग २ ।

२. गहि करतल मुनि पुलक सहित कौतुकहिं उठाय लियो ।
नृपगन मुखनि समेत नमित करि सजि सुख सबहिं दियो ॥
आकरष्यो सिय मन समेत हरि हरष्यो जनक हियो ।
भंज्यो भृगुपति गर्ब सहित तिहुँलोक बिमोह कियो ॥
"उत्क्षिप्तं सह कौशिकस्य पुलकैः सार्द्धं मुखैर्नामितं
भूपानां जनकस्य संशयधिया सार्द्धं समास्फालितम् ।
वैदेही मनसा समं च सहसा कृष्टं ततो भार्गव—
प्रौढाहङ्कृतिदुर्मदेन सहितं तद्भग्नमैशं धनुः ॥"—हनुमन्नाटक ।

३ मंदाकिनि मज्जत अवलोकत त्रिविध पाप त्रयताप नसाई ।
"मन्दाकिनीं समासाद्य सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥"—महाभारत ।

४ दसरथ सो न प्रेम प्रतिपाल्यो हुतो सकल जग साखी ।
बरबस हरत निसाचरपति सों हठि न जानकी राखी ॥
मरत न मैं रघुबीर बिलोक्यो तापस बेष बनाए ।
चाहत चलन प्रान पाँवर बिनु सियसुधि प्रभुहिं सुनाए ॥
"न मैत्री निर्व्यूढा दशरथनृप राज्यविषया
न वैदेही त्राता हठहरणतो राक्षसपतेः ।
न रामस्यास्येन्दुर्नयनविषयोऽभूत्सुकृतिनो
जटायोर्जन्मेदं वितथमपकार्यपरहितम् ॥"—हनुमन्नाटके ।

कवितावली

आँधरो अधम जड़ जाजरो जरा जवन सूकर के सावक ढकाढकेला मग में।
गिर्‌यो हिय हहरि 'हराम हो हराम' हन्यो हाय हाय करत परीगा काल फग में॥
तुलसी बिसोक ह्वै त्रिलोकपति लोक गयो नाम के प्रताप बात बिदित है जग में।
सोइ राम नाम जो सनेह सों जपत जन ताकी किमि महिमा कही है जात अग में॥

"दंष्ट्राग्रक्षतसायकेन निहतो म्लेच्छो जराजर्जरो।
हा रामेति हतोऽस्मि भूमिपतितो जल्पंस्तनुं त्यक्तवान्॥
तीर्णो गोष्पदवद्भवार्णवमहो नाम्नः प्रभावात्पुनः।
किं चित्रं यदि रामनामरसिकास्ते यान्ति रामास्पदम्॥"—वाराहपुराण

वैराग्यसन्दीपिनी

महि पत्री करि सिंधु मसि तरु लेखनी बनाइ।
तुलसी गनपति सों तदपि महिमा लिखी न जाइ॥

"असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे।
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी॥
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं।
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति॥"

नवविंशति परिच्छेद

गोसाइँ जी का मत

गोसाइँ जी सुप्रसिद्ध धर्म्मसंशोधक श्री १०८ स्वामी रामानन्दजी के सम्प्रदाय के वैष्णव थे और इन का मत विशिष्टाद्वैत था। श्री १०८ शङ्कराचार्य्य जी एवम् श्री १०८ रामानुज स्वामी जी के अद्वैत मत से और इन के मत से आचार व्यवहार आदि की विभिन्नता के अतिरिक्त मुख्य भेद यह देखा जाता है कि श्री शङ्कराचार्य्य के ब्रह्म के स्थान में श्री रामानुज स्वामी ने विष्णु वा नारायण को माना है वैसे ही गोसाइँ जी ने दशरथ-नन्दन श्रीरामचन्द्र ही को परब्रह्म ज्योतिस्वरूप सर्वव्यापी आदिगुणविशिष्ट जगत का कारण एवम् ब्रह्मा विष्णु महेशादि का उत्पत्तिकर्ता माना है।

"बिनु पग चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। गहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥
जेहि इमि गावहिं बेद बुध, जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दशरथसुत भगत हित, कौसलपति भगवान॥
पुनः—जगत प्रकास प्रकासक रामू। मायाधीश ज्ञान गुन धामू॥
पुनः—संभु बिरंचि बिष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना॥
ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीलातनु गहई॥"

और श्री सीता जी को इन्हों ने आदि शक्ति का अवतार माना है—

"आदि शक्ति जो जग उपजाया। सोउ अवतरहि मोर यह माया॥"

और आप ने कहा है कि श्री रामचन्द्र तथा सीता जी एवम् परब्रह्म तथा उस की शक्ति कथनमात्र ही में भिन्न है नहीं तो वस्तुतः दोनों एक ही हैं—जैसे

"गिरा अर्थ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न।"

ये बाल्यावस्था ही में वैष्णव हुये थे। यह बात 'बाहुक' के ४०वें कवित्त 'बालपने सूधे मन राम सनमुख भयो' से सिद्ध होती है।

ये शुद्ध रामोपासक थे और अन्य देवतों की वन्दना स्तुति केवल राम ही के नाते करते थे क्योंकि इन का सिद्धान्त यह था कि 'पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते। मानिय सकल राम के नाते॥' और सबों से इन्हीं की कृपा तथा भक्ति प्राप्ति के लिये विनय करते थे। विनयपत्रिका इस बात की पूरी साक्षी दे रही है। जिस देवता तथा प्राणी को भी रामचन्द्र से जितना अधिक

प्रेम सम्बन्ध था वे भी उसे उतना ही अधिक मानते थे। 'सेवक सखा स्वामि सिव.पिय के' तथा राममक्तिदाता जानकर आप ने शिवजी को सब देवतों से श्रेष्ठ माना है। जब रामचन्द्र जी ही ने कहा है 'संकर भजन बिना नर, भगति न पावै मोरि' तब वे उन का गुणगान तथा सम्मान क्यों नहीं करते और उन्हें सर्वश्रेष्ठ क्यों नहीं समझते?

हां! इन्हों ने कहीं २ देवतों को दीन कहे, देवराज को भी कुवाच्य कहा है। परन्तु यह बात केवल ऐसे अवसरों में देखी जाती है जब वे लोग किसी राममक्त के प्रतिकूल कोई बात विचारने या करने पर उद्यत हुवे हैं, अन्यथा नहीं। क्योंकि ये राम के दास को राम से अधिक समझते थे। नहीं तो इन्हें किसी देवता में द्वेषबुद्धि नहीं थी और होती कैसे? ये श्रीराम के अनन्यमक्त थे और अनन्य का लक्षण इन्हों ने रामचन्द्र के मुख से यह कहलाया है 'सो अनन्य जा के असि मति न टर हनुमंत। मैं सेवक सचराचर रूप रासि भगवंत ॥

जब देवतों के सम्बन्ध में ऐसी बात थी तब राक्षसगण को जो खुले मैदान भी राम तथा राममक्त के विरोधी और महान् अपकारक थे, ये कुवाच्य कहने में क्यों सकोच करते, एवम् कोई अन्य निन्दनीय पुरुष ही इन के क्रोध और कुवाक्य से कैसे बचता?

ये रामगुणगान में निर्गुण ब्रह्म का भी विशेष वर्णन और प्रतिपादन करते गये हैं। ऐसा करना उपयुक्त ही था क्योंकि निर्गुण और सगुण वस्तुतः दोनों अभिन्न हैं —

"सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा।
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेमवस सगुन सो होई ॥"[१]

हमारी समझ में निर्गुण को सगुण का नामान्तर मानना भी अयोग्य नहीं है। विज्ञान पाठी जानते हैं कि धूप में जो उजला दीखता है अनेक रङ्गों का सम्मेलन है। परन्तु अनेक रङ्ग सम्पन्न होने पर भी वह रङ्गरहित अर्थात् उज्ज्वल ही कहलाता है क्योंकि उसे कोई विशेष रङ्ग कहना योग्य नहीं जब तक किसी कारण विशेष से उस उज्ज्वल पदार्थ का कोई विशेष रङ्ग देदीप्यमान हमलोगों को देखने में नहीं आवे। उसी प्रकार सर्वगुणसम्पन्न रहने अर्थात् सगुण रहने पर भी ब्रह्म निर्गुण ही कहलावेगा जब तक कोई कारणवश कोई विशेषगुण विशिष्ट हो वह मूर्त्त में आविर्भूत होकर उसे पवित्र नहीं करे।

जब सगुण और निर्गुण एक ही वस्तु है तब ज्ञानयोग तथा भक्तियोग समान ही फल दायक होगा क्योंकि भक्त अपने उपास्यदेव में मन लीन कर देता है और ज्ञानी निज आत्मा ही में मन को लीन रखता है यह बात भी गोसाईं जी भली भांति जानते थे। इन्हों ने स्पष्ट ही कहा है कि ज्ञान और भक्ति में कुछ भेद नहीं है और दोनों भवजनित दुःख के नाशक हैं।

"भगतिहिं ज्ञानहिं नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा।"

---

[१] श्रीगुरु नानक ने भी कहा है:— निर्गुन आप सगुन भी ओही। कलाधार जिमि सगली मोही ॥ निराकार आकार आप निर्गुन सर्गुन एक। एकहिं एक बखानतो, नानक एक अनेक ॥" (सुखमणि)

भवसंभव क्लेश के विनाश करने में तो ज्ञान और भक्ति में कुछ भेद नहीं, परन्तु ज्ञान दुष्कर तथा दुष्प्राप्य है और भक्ति सहज तथा सुगमप्राप्य है। क्योंकि संसार सर्वथा माया का वशीभूत हो रहा है। इस के पंजे से निकलना और इसके फंदे से बचना बड़े ही धीरवीर का काम है। गोसाईं जी कहते हैं कि योग ज्ञान विराग ये सब पुरुष हैं और माया तथा भक्ति स्त्रीस्वरूपिणी हैं। भक्ति और माया दोनों स्त्रीरूपिणी होने से माया भक्ति को नहीं मोह सकती क्योंकि नारी को नारी क्या विमोहित करेगी। परन्तु ज्ञान के पुरुष रूप होने से विश्व मोहिनी माया का प्रपंच शीघ्र अनायास उसे अपने जाल में फंसाने को समर्थ हो जाता है। अर्थात् ज्ञानप्राप्त होने पर भी माया के प्रभाव से ज्ञानी का ज्ञान भ्रष्ट हो जाने की सम्भावना है। और परमेश्वर की भक्ति पर सानुकूल रहने से ईश्वरपरावर्तिनी माया भक्ति के निकट जाने का साहस नहीं करती तथा भग जाती है।

माया क्या है उसी को बताते हैं कि 'गो गोचर जहं लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई ॥' उसी के वश में संसारमात्र है और वह दो प्रकार की है— विद्या और अविद्या। वन में से 'एक रचै जग गुन बस जाके। प्रभुप्रेरित नहिं निज बल ताके ॥ एक दुष्ट अतिसय दुख रूपा। जा बस जीव परा भव कूपा ॥ सो प्रभु भ्रूविलास खगराजा। नाच नटी इव सहित समाजा ॥' इसी से वह अविद्या रूपी माया प्रभु के भक्तों पर प्रभाव दिखलाने को समर्थ नहीं होती।

भक्त पर ईश्वर के सानुकूल रहने का कारण यह कहा गया है कि वे ज्ञानी को प्रौढ़ सुत के सम और भक्त को अबोध शिशु के समान समझते हैं, क्योंकि ज्ञानी को अपना बल रहता है और भक्त को ईश्वर का भरोसा होता है। अर्थात् ज्ञानमार्ग निराश्रय है और भक्ति पथ में सगुण उपासना का सहारा है। अतएव ज्ञानमार्ग दुष्प्राप्य और भक्तिपथ सगुन ब्रह्म के अवलम्बन से सुगम एवम् सुलभ है। 'रामचरित मानस' के उत्तरकाण्ड में 'ज्ञानदीपक निरूपण' प्रकरण में ज्ञानमार्ग की कठिनाई की रूपक द्वारा व्याख्या कर के इस गूढ़ विषय को इन्होंने सरल रीति से समझा दिया है और इन के तथा गीता के मत से कोई वास्तविक विरोध नहीं रह गया है। इस मार्ग की कठिनाई के ध्यान ही से इन्होंने 'ज्ञान पंथ कृपान के धारा। परत खगेस न लागहिं बारा ॥' कहा है एवम् ज्ञान पर भक्ति की प्रधानता दी है और रामचन्द्र के मुख से भी कहलवाया है कि सुविचारी बुद्धिमान 'पावहु ज्ञान भगति नहिं तजहीं' जिस में माया की धोखेबाज़ी से सुरक्षित रहें।

इन्होंने बहुतेरों के समान केवल ज्ञान ही को मुक्ति का कारण और भक्ति को ज्ञान प्राप्ति का एक मुख्य साधन नहीं माना है वरन् भक्ति को ही मुक्ति माना है राम भगति सोई मुकति गोसाइं। क्योंकि भक्ति करते २ अविद्याजनित अज्ञानान्धकार विनाश हो चित्त शुद्ध हो जाता है और नित्यप्रति प्रभु पादपद्म में उत्तरोत्तर प्रीति बढ़ते २ ध्यानमग्न तल्लीन होने पर भी भक्त को मुक्ति आप ही आप प्राप्त हो जाती है। इसी से जिस में भक्ति का प्राधान्य न [illegible] ऐसी मुक्ति इन्हों ने कभी नहीं मांगी है। और इसी से इन्हों ने कहा है 'जेहि जोनि जन्मों करमवस सिय राम पद अनुरागऊं।' अन्य कोइ भक्त भी ऐसी मुक्ति और ज्ञान नहीं चाहता।

पूर्वोक्त बातों से गोसाईं जी का यह सिद्धान्त प्रगट होता है कि प्रथम तो भक्ति बिना ज्ञान का होना ही असम्भव है और यदि हो भी तो भक्ति द्वारा पुष्टित नहीं रहने से थोड़े ही में माया के फंदे में फंस कर उस के नष्ट हो जाने का भय रहता है जैसा कि गुरु नानक जी ने भी कहा है कि 'भक्ति बिना बहु डूबे सियाने। भक्ति में डर का भय नाहीं।' क्योंकि जैसे माता-पिता छोटे बालकों की रखवारी करते हैं वैसे ही प्रभु भक्त की रखवारी करते रहते हैं। स्वयम् श्री रामचन्द्र जी कह रहे हैं कि 'भक्त मुझे प्राणप्रिय है और भक्तिहीन पुरुष मुझे नहीं भाता। भक्तिहीन बिरंचि किन होई। सब जीवन सम प्रिय मोहि सोई॥' सच है, छोटा बालक किस को प्यारा नहीं होता ? और यदि वह ज्ञानवान हो तब तो वह और भी अधिक स्नेहपात्र होता है। इसी कारण से आर्त अर्थार्थी जिज्ञासु तथा ज्ञानी ये चार प्रकार के भक्तों में से गोसाईं जी ने 'ज्ञानी भक्त' को प्रभु का विशेष प्यारा कहा है। वही पराभक्ति का अधिकारी होता है। पराभक्ति ही को गोसाईं जी पूर्ण भक्ति मानते थे जिसका लक्षण आपने विनयपत्रिका के १६७वें पद में कहा है :—

"रघुपति भगति करत कठिनाई। कहत सुगम करनी अपार जानै सोइ जेहि बनि आई॥ जो जेहि कला कुसल ता कहँ सोइ सुलभ सदा सुखकारी। सफरी सनमुख जल प्रवाह चले सुरसरि बहै गज भारी॥ ज्यों सर्करा मिलै सिकता महँ बल तें न कोउ बिलगावै। अति रसज्ञ सूक्षम पपीलिका बिनु प्रयासहिं पावै॥ सकल दृश्य निज उदर मेलि के सोवै तजि निद्रा जोगी। सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख अतिसय द्वैत बियोगी॥ सोक मोह भय हरष दिवस निसि देस काल तहँ नाहीं। तुलसिदास यह दसा हीन संसय निरमूल न जाहीं॥"

उपर्युक्त चारो प्रकार के भक्तों को नाम ही का आधार होता है। परमेश्वर की प्रसन्नता के निमित्त भगवतभजन और नामजाप ये दो मुख्य साधन हैं। प्रथम के विषय में आपने कहा है कि 'रामचन्द्र के भजन बिनु जो चह पद निरबान। ज्ञानवंत अपि सोपि नर पसु बिनु पूँछ बिषान॥' तथा 'बिनु हरिभजन न भव तरहिं, यह सिद्धान्त अपेल' और रामनाम का माहात्म्यवर्णन में तो रामचरितमानस में आप ने अपूर्व पाण्डित्य प्रदर्शन किया है अर्थात् रामनाम की अनेक उपमायें देकर आपने अपनी प्रबल कविताशक्ति का भी परिचय दिया है। 'बन्दउँ राम नाम रघुबर के' यहाँ से प्रारम्भ कर कई चौपाइयों और दोहों में नाम माहात्म्य वर्णन करते २ इन्होंने यहां तक कह दिया है 'राम न सकहिं नाम गुन गाई' इस नाममहिमा वर्णन में इन्हों ने उपनिषद तथा वेदान्त विषय को भी बड़ा रुचिकर और सरल रीति से बोधगम्य बना दिया है। इन्हों ने यह भी स्पष्ट कहा है कि कलि में कर्मयोग एवम् ज्ञानयोग साधन मनुष्यों के लिये कठिन है, अतएव परमेश्वर का नाम जपने ही से जीव का कल्याण होगा।

श्री गुरु नानक जी ने भी नाम की महिमा का बहुत बखान किया है और कहा है :—

"सभी जप सभी तप सभी चतुराई। ऊजड़ी भ्रमे राहि न पाई॥

बिनु बूझे कोये ना पाय। नाम बिहूणा मट्ठे जाय ॥"—महला १।

"नाम बिहूना मुकति न होइ।" —महला ५।

प्राचीन तथा मध्य युग के क्रस्तानी धर्मपुस्तकों में भी ईसाइयों के प्रभु महात्मा ईसामसीह के नामोच्चारण की महिमा का वर्णन पाया जाता है। ओरिजेन कहता है कि 'ईसामसीह के नामोच्चारण में जो उन के जीवन-कथा-पाठ में हुआ करता है यमदूतों के भगाने की शक्ति है। नाम रहस्य का भी गुप्त विज्ञान है, जो उसके शिष्यवर्ग को शक्ति प्रदान करता है। ईसा का नाम भी इसी नामविज्ञान के अन्तर्गत है। दूसरे लोगों का कथन सुनिये। टामस ए केम्पिस—पवित्र नामोच्चारण पाठ में लघु स्मरण में सहज मनन में सुखद एवम् रक्षा में बलिष्ठ है। पी पेल्बर्ट—अपने महापवित्र नाम के प्रभाव से जो पाँच[1] अक्षरों का है वह नित्यप्रति पापियों का उद्धार किया करता है। एस० बोनावेन्चुरा—ऐसा कोई नहीं है जो भक्तिपूर्वक उस का नाम उच्चारण करे और उस से लाभ न उठावे। पुनः—नाम प्रतापवान और अद्भुत है। जो इसे धारण करेंगे उन्हें मरण काल में भय नहीं व्यापेगा। रिकार्डस डी० एस० लारेन्शियो—रोगनिवृत्ति के निमित्त नाम ही अलम है क्योंकि कोई ऐसी महामारी नहीं जो नामप्रभाव से निश्चय जाता न हो। एस० विमेंट्—नाम उच्चारण सुन कर भूत प्रेत ऐसा भागते हैं मानो आग के सामने से भागते हों। सब भूत प्रेतादि इस नाम का सम्मान करते और इस से भय खाते हैं। जिस जीव को वे चंगुल में पकड़े रहते हैं उसे नाम-उच्चारण सुन कर वे परित्याग कर देते हैं। ऐनोरियस—नाम सर्वोपरि मधुर है और इसमें स्वर्गीय स्वाद मिलता है।[2]

---

1 Jesus (जीसस)।

2 *Origen* himself says that the power of Exorcism lies in the name of Jesus, which is uttered as the stories of 'His life are being narrated' He talks of a 'Secret science of names which confers powers upon the initiated. The name of Jesus,' he adds 'comes under this science of names.' *Thomus a Kempis*—'The holy utterance, short to read, easy to retain, sweet to think upon, strong to protect." P *Pelbart*—"By his most holy name, which consists of five letters He daily offers pardon to sinners" *S Bonaventura* "No one can devoutly utter Thy name without profit" and again "Glorious and wonderful is the name. Those who keep it will have no fear when at the point of death" *Recardus de S Laurentio*—"The name alone is sufficient for healing; for there is no plague so obstinate that does not

। । श्रीभूमिक इस्लामी भजनों में भी नाम के आदर का चिन्ह देखा जाता है।

।। । इन कथनों से स्पष्ट मान होता है कि हरिनामकीर्तन का बड़ा माहात्म्य है और इस बात को सब देश के धर्मप्रचारक मानते आते हैं। परन्तु हरिनाम कीर्तन तथा ईश्वर में अनुराग बिना सत्संग के नहीं हो सकता और इस के बिना भक्ति भी प्राप्त नहीं हो सकती। "बिन सत्संग न हरिकथा, तेहि बिनु मोह न भाग। मोह गए बिनु रामपद होइ न दृढ़ अनुराग।" और "भगति सुतंत्र सकल गुन खानी। बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी।" इसी से नवधा भक्ति में प्रथम भक्ति सत्संग ही बताई गई है।

गोस्वामी जी में नवधा भक्ति वर्त्तमान थी। भिन्न इष्ट देव में भक्तों की शृंगार दास वात्सल्यादि भिन्न २ प्रकार की भावनाएं होती हैं। गोसाईं जी का श्री रामचन्द्र में दास्यभाव ज्ञात होता है और उस में कुछ वात्सल्य की भी झलक देखी जाती है।

गोसाईं जी भक्तिपथ के एक प्रधान पथिक तथा पथप्रदर्शक हुये हैं। इन की भक्ति पराकाष्ठा की थी। इसी से वे अपने ग्रन्थों को ऐसा भक्तिपूर्ण बनाने और उस में ऐसा भक्ति स्रोत बहाने को समर्थ हुए हैं कि उन के पाठ से पाठक भक्तिरस में निमग्न हो जाता है। इन की प्रत्येक पुस्तक भक्तिरस में पगी हुई है। सूरदास जी के सिवाय अन्य कोई इन के समान भाषा का भक्तकवि दृष्टिगोचर नहीं होता। ये सर्वदा भक्तिभाव में विभोर श्री रामचन्द्र के चरणकमलों में चित्त लगाये प्रेमपूर्वक उन्हीं का गुणगान करते भक्तिरीति रचाते प्रेमाभक्ति की प्रधानता तथा आवश्यकता दिखलाते और जताते गये हैं। प्रेम की प्रधानता इन्होंने स्वयम् ही नहीं कही है वरन् शिवजी के मुख से भी कहलाया है — "हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम ते प्रगट होहिं मैं जाना॥ अगजग मय सब रहित बिरागी। प्रेम तें प्रभु प्रगटै जिमि आगी।"

ये निष्काम भक्त थे क्योंकि ये जानते थे कि संसार में भक्ति से बढ़ कर अन्य कोई पदार्थ नहीं उसी की प्राप्ति में सब कुछ प्राप्त हो गया। अन्य कामना की क्या आवश्यकता। निष्काम भजनानन्दी के हृदय में भगवान सदा वास करते हैं जैसा कि कहा है :—

"वचन, कर्म, मन मोर गति, भजन करैं निष्काम।
ता के हिरदयकमल में, सदा करौं बिसराम॥"

---

inevitably yield to the name." *S Bridget*—"Evil spirits flee, as if from fire when they hear the Name, and "all demons honor this Name and fear it. When they hear it, they at once release the soul which they have been holding in their talons. *Honarius*—"The Name is full of all sweetness and of divine relish" Vide "Gleanings from the Bhakta Mala" by G A. Grierson and the Translation of Ramayan of Tulsi Das, by Growse, Bal Kand, p 19 note,—edited by Ram Narayan Lal.

प्रिय पाठकों से हमारी प्रार्थना है कि वे किसी सम्प्रदाय वा धर्म के अनुयायी क्यों न हों निज इष्ट देव प्रभु के पादपद्मों में सदा सानुराग चित्त दिये प्रेमपूर्वक उन के भजन और गुणकीर्तन में अनुरत रहेंगे। इसी से ईश्वर के कृपापात्र होने और उभय लोक में कल्याण की आशा है। शेली (Shelly) के कथनानुसार सामान्य कीटानुकीट भी प्रेम और पूजन द्वारा परमात्मा में लीन हो सकता है।

"The spirit of the worm beneath the sod,
By love and worship blends itself with God.

त्रिंशत् परिच्छेद

वाल्मीकीय तथा अध्यात्म रामायण

इन रामायणों का विषय वर्णन करने के पूर्व हम वाल्मीकीय रामायण के रचना कालादि के सम्बन्ध में कुछ कहना उचित समझते हैं। अन्य प्राचीन ग्रन्थों के समान इस के प्रणयनकाल में भी मतभेद है। सर विलियम जोन्स इस का निर्माणकाल ई० सन् के २०१४ वर्ष पूर्व बताते हैं, टाड ११० , बेन्टली ६६० तथा गोरेशियो १२ वर्ष ईसा के पहले मानते हैं।

कोई २ कहते हैं कि यूनानी लेखकों ने रामायण का उल्लेख नहीं किया है चीनी यात्री फाहियान भी जो ४०० ५०० ई में भारतवर्ष में आया था, अयोध्या का हाल नहीं लिखता है और रामायण में दो स्थानों में (एक बालकाण्ड और एक किष्किन्धा में) यवन शब्द आया है। इन कारणों से रामायण की रचना यूनानियों के भारतवर्ष में आने के बहुत दिन पीछे हुई होगी।

मेग्रिसो का कथन है कि यूनानियों ने भारतवर्ष के केवल जलवायु उपज फल, रस्म रीति-रसम प्रदेशों, नदियों तथा पर्वतों का हाल लिखा है और कुछ नहीं[1] और फाहियान ने भी केवल बौद्धमठ बौद्धविहार भिक्षु, भाषा तथा बौद्धनियमों का वर्णन किया है।

यवन शब्द प्रयोग के विषय में ग्रोगेल कहते हैं कि पहले यह शब्द भारतवर्ष के पश्चिमस्थ प्रदेशों की जातियों के सम्बन्ध में प्रयोग होता था और पीछे यूनानियों के लिये प्रयोग होने लगा (अर्थात रामायण वाले यवन शब्द का यूनानियों से सम्बन्ध नहीं है)।

आर्थर मेकडानेल प्रोफेसर याकोबी से सहमत होकर इसे क्षेपक मानते हैं और कहते हैं कि यह क्षेपक ई० सन् के १०० वर्ष पूर्व हुआ। आप कहते हैं कि बुद्ध का नाम जो रामायण के एक स्थान में आया है वह भी क्षेपक है।[2] पालीभाषा में जो 'दशरथ जातक' पुस्तक है उस में कुछ उलट-फेर कर रामकथा लिखी गई है और उसमें लंकाकांड का १२ वाँ श्लोक पाली के ढङ्ग से पद्य में लिखा गया है। महाभारत में भी रामकथा तथा इस रामायण के कई एक श्लोक हैं। रामायण में पाटलीपुत्र का वर्णन नहीं है जो कि ई० सन् के पूर्व ३८ में (मगध के राजा) कालाशोक के समय बसाया गया और मेगास्थिनीज़ के समय

---

1 मेगास्थिनीज़ का लिखा हुआ ग्रंथ विद्यमान नहीं है। अन्य ग्रंथकारों ने उस के ग्रंथ से जो २ अंश उठा कर अपनी २ पुस्तकों में उद्धृत किया है वे ही सब श्वानबेक (Dr Schwanbeck) द्वारा संग्रहित हो कर मेगास्थिनीज़कृत भारतवृत्तान्त के नाम से प्रकाशित है।

2 क्षेपक प्रेमीगण देखें कि भविष्यत् में इस का कैसा अनिष्टकर परिणाम होता है। इन्हीं सबबों के कारण बहुत से लोग वाल्मीकीय को कपट का पता कहने पर तैयार हुये हैं।

भारतवर्ष की राजधानी हो गया था। यह सब बातें कह कर आप रामायण का समय ईस्वी सन् ५०० वर्ष पूर्व बताते हैं।[१]

प्रेशियो कहते हैं कि रामचन्द्र से सुमित्र पर्यन्त जो विक्रमादित्य के समसामयिक थे ४६ राजे हुये और प्रत्येक का औसत २४ वर्ष शासनकाल मानने से लगभग ११० वर्ष ईसा के पूर्व होता है। इन का यह भी कथन है कि रामायण का वर्णन राजतरंगिणी में आया है। कश्मीर के राजा द्वितीय दामोदर को शापवश क्रोध हो गया था और रामायणश्रवण से उस शाप का मोचन कहा गया है। द्वितीय दामोदर मिहीर गोनर्द से जिस का समय राजतरंगिणी के अनुवादक ट्रायर ने ईस्वी सन के ११८ वर्ष पूर्व स्थिर किया है, पांच पीढ़ी ऊपर थे। प्रत्येक राजा का शासनकाल २४ वर्ष मानने से इस से भी रामायण का समय लगभग ११ वर्ष ईसा के पूर्व होता है।

अमेरिका के 'नाक्षेत्र' नामक पत्र में डाक्टर आवक ने लिखा है कि रामजन्म के समय जिन जिन ग्रहों के जिन जिन राशियों में होने का रामायण में उल्लेख है वे सब ग्रह १ फरवरी को १७६१ वर्ष ई० सन् के पूर्व उन राशियों में थे। इस से प्रतीत होता है कि रामायण की रचना उसी समय के लगभग हुई होगी। अर्थात् साहब की राय में रामायण को बने कोई ३६७ वर्ष हुए।"[२]

निश्चय यह एक पुष्ट प्रमाण है। वाल्मीकि जी को हम लोग रामचन्द्र जी का समकालीन पुरुष मानते हैं। वनवास के समय सीता जी उन्हीं के आश्रम में ठहरी थीं। वहीं लवकुश का जन्म हुआ वहीं वे लोग बड़े पढ़े इत्यादि।

परन्तु जर्मनी पण्डित लासेन व हूबर तथा उनके अनुयायी कई एक देशीय महाशय भी वाल्मीकि जी को रामायण का कर्ता होना स्वीकार करना नहीं चाहते और मेकडानेल साहब लवकुश नामों को संस्कृत शब्द कुशिलव (नट वा नाटक खेलनेवाला) की व्याख्या मानते हैं और कुछ नहीं। किन्तु हम नहीं समझते कि ऐसा होने पर भी इन के व्यक्ति विशेष के नाम होने में क्या आपत्ति है।[३] कौन जाने रामायण वर्णित कुशलव नटता के कारण ही यह शब्द पीछे उक्त अर्थ में प्रयोग होने लगा हो।

वाल्मीकीय रामायण का कई भाषाओं में अनुवाद हुआ है। लड़कपन से सुनते आते हैं कि अकबर के संस्कृतज्ञ अमात्य फैजी ने भागवत वाल्मीकीय रामायण गीता तथा अन्यान्य संस्कृत ग्रंथों का फारसी भाषा में अनुवाद किया था।

हमारे द्वितीय पितृव्य पूज्यचरण मु० जगदम्बा सहाय के हाथ की १८२७ ई० की लिखी हुई भागवत की एक प्रति हमारे पुस्तकालय में है। पूज्यपिता श्री काशी सहाय को कई बार उसका आद्योपांत पाठ करते देखा है। यह अनुवाद गद्य में है।

---

१ Vide A History of Sanskrit Literature by Arthur A. Macdonell, p.306-9

२ सरस्वती भाग १४, पृष्ठ ७७१-७२।

३ Hunter Fisher Hawker Falconer इत्यादि अन्य अर्थ बोधक शब्द होते हुए भी व्यक्ति विशेष के नामों के लिये प्रयोग हुआ करते हैं।

१९०१ ई० का बरेलीनिवासी मु० रोशनलाल बरिस्टर के आज्ञानुसार प्रकाशित पद्यबद्ध गीतानुवाद भी हमारे पास है। यह अनुवाद सर्वांग है।

चौथे कायस्थ कान्फ्रेंस के समय जब हम परम प्रेमी काशीवासी स्वर्गीय पं० अम्बिकादत्त व्यास साहित्याचार्य्य के साथ सं० १९४९ में लाहौर जा रहे थे तब भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के कनिष्ठ भ्राता बाबू गोकुलचन्द से मिलने गये थे। प्रसंगवश उन्हों ने भी सीताजी की उदासीनता के वर्णन में पंजी का यह पद्य कहा था —

"तनशरा पैराहन उरियां न दीद।
चो जान अन्दर तनस्त तन जां न दीद॥"

अर्थात् परिधान वस्त्र ने सीताजी को नग्न नहीं देखा जैसे प्राण शरीर में है पर शरीर प्राण को नहीं देखता है।

'आईन अकबरी' ब्लाकमन जिल्द १ पृ० १०२ से ज्ञात होता है कि अकबर ने पहले पहल संस्कृत रामायण का गद्यानुवाद करने का भार कादिर बदायूनी को सौंपा था। उस अनुवाद की बहुत प्रशंसा हुई थी। वह पुस्तक शायद अमेरिका युक्त प्रान्त के कर्नेल हवा के संग्रह में है।

इस रामायण का आनन्द खाँ (तबुस्तुम सुरा) कृत एक दूसरा आधुनिक और अपूर्ण पद्यानुवाद है। अन्य भाग का अनुवाद नहीं पाया जाता।

ग्रीफिथ साहब ने अंगरेजी में इस का पद्यमय अनुवाद किया है। अंगरेजी गद्य में एवम् इटालियन तथा फ्रेंच भाषा में यह अनूदित हुआ है। और लयटिन भाषा में भी इस के अंशानुवाद की बात सुनी जाती है। इस का हिन्दी अनुवाद भी छपा है और मूल के साथ इस की अनेक टीकाएं भी छपी हैं।

अब आगे वाल्मीकीय तथा अध्यात्म रामायण का विषय संक्षिप्त वर्णन किया जाता है इस के पाठ से पाठकों को सहज ही ज्ञात हो जायगा कि रामचरित मानस तथा उपर्युक्त उभय रामायणों के कथाप्रसंग में कहां कहां प्रभेद है।

बालकाण्ड—वाल्मीकीय रामायण के आरंभ में नारद जी वाल्मीकिजी को रामकथा संक्षेप में सुना रहे हैं। फिर रामायणरचना का कारण कहा गया है कि एक क्रौंच पक्षी का वध होते देख कर वाल्मीकिजी का हृदय दुःख से महा चिंतित हुआ है तब ब्रह्मा ने उन के हृदय की शान्ति के निमित्त नारद से सुनी हुई रामकथा काव्यबद्ध करने को उन्हें स्वप्न में आदेश किया है। फिर सभी समाम रामकथा कही गई है। इस के अनन्तर अयोध्या नगर का वर्णन दशरथ के अश्वमेधयज्ञ का वृत्तान्त ऋष्यशृंग की कथा और उनकी सहायता से दशरथ के पुत्रेष्टियज्ञ करने का हाल कहा गया है। फिर वानरों की उत्पत्ति एवं चारो भाइयों के जन्म नामकरणादि तथा उन के विवाह की चिन्ता का हाल वर्णित हुआ है।

इस में गोस्वामी जी कृत रामायण के समान रामावतार रावणावतार तथा मदनदहन की कथाएं नहीं हैं। इस में यह लिखा हुआ है कि विश्वामित्र के संग जाते समय गंगा सरयू के

संगम पर एक आश्रम में बहुत से ऋषियों को हजारों वर्षों से तपस्या करते जानकर रामचन्द्र के उस विषय में पूछने पर विश्वामित्र ने कहा है कि यह कामाश्रम है यहाँ महादेव जी पूर्वकाल में तपस्या करते थे और जब वे अपना विवाह करके सब देवतों के संग चले जाते थे, उस काल में मन्मथ ने उन का मन मथन करना चाहा था तब शिवजी ने 'हुम' कहकर उस की ओर देखा और वह भस्म हो गया। उस स्थान से भागते हुए जहां उस की देह गिरी वह 'अंग देश'[1] कहलाता है।

अध्यात्म में नारद का ब्रह्मा से प्रश्न तब पार्वती शिव-सम्वाद है। सीता जी ने हनुमान जी से रामायण की संक्षिप्त कथा कही है। और रामचन्द्र ने आत्म-अनात्म तत्व वर्णन किया है। अनन्तर महादेव जी विस्तारपूर्वक रामकथा कहने लगे हैं। गोरूप धारण कर सब देवतों के संग क्षीरसागर के तीर जा पृथ्वी ने भगवान की स्तुति की है। दशरथ ने अपने दामाद ऋष्यशृंग की सहायता से पुत्रेष्टियज्ञ किया है और रामचन्द्रादि का अवतार हुआ है।

वाल्मीकीय रामायण के अनुसार दोनों भाइयों को साथ लेकर विदा होने पर[2] विश्वामित्र ने राम को 'बलातिबला' विद्या सिखाई है जिस से भूख प्यास का क्लेश नहीं होता। पर कामाश्रम सरयू उत्तरित गंगा के दक्षिणवन्स्थ मलद और करूष देश[3] की एवम् ताड़का और मारीच की उत्पत्ति की कथाएं कही गई हैं। मार्ग ही में ताड़कावध हुआ है। अनन्तर रामचन्द्र को नाना प्रकार का देवास्त्र प्रदान कर मुनि ने उन्हें शस्त्रसंहार-विद्या भी सिखलाई है। फिर सिद्धाश्रम[4] तथा वामन जी की कथाएं और मारीच सुबाहु आदि के संग युद्ध का हाल वर्णित है।

तब धनुर्यज्ञ देखने के लिये जनकपुर प्रस्थान की बात है। पहले दिन सांझ को लोग सोन किनारे ठहरते हैं। रात को रामचन्द्र के पूछने पर कि 'यह कौन देश है' मुनि ने कुशनाभ राजा की कथा अर्थात् निज वंशावली एवम् गंगा की उत्पत्ति सुनाई है। दूसरे दिन सोन पार हो मध्याह्नकाल में लोग गंगा किनारे पहुँच कर वहीं ठहर गये हैं। मुनि ने वहां पर गंगावतरण

---

1 अङ्ग देश को वर्तमानकाल का भागलपुर जिला बताते हैं।

2 इस पुस्तक का पृ. १५० नोट ७ देखिये।

3 यही पीछे ताड़का वन हो गया था। यह स्थान शाहाबाद में था।

4 सिद्धाश्रम को कोई २ हजारीबाग के जिले में बताते हैं। परन्तु वहाँ से मिथिला जाते समय कोई कितनाही द्रुतगामी क्यों न हो एक दिन में गंगा तट पर नहीं पहुँच सकता, और जानेवाले को सोन पार भी होना नहीं पड़ेगा यदि बेगलर साहब का यह कथन स्वीकार भी कर लिया जाय कि रामचन्द्र के समय सोन नदी डाऊदनगर से टेढ़ी होकर बक्सर के पास गंगा में मिलती थी (Archaelogical Survey of India, Vol. VIII, p 6-II) वरन् ताड़कावध के अनन्तर शाहाबाद से सिद्धाश्रम जाते समय वाल्मीकिजी लोगों को सोन पार कराते। वस्तुतः सिद्धाश्रम शाहाबाद में बक्सर से दक्षिण पूर्व की ओर कहीं था।

की उत्पत्ति बयान किया है। प्रातःकाल गंगा पार हो विशाला नगरी में पहुँचे हैं। ग्रन्थ में उस नगर का बहुत लम्बा चौड़ा वर्णन दिया हुआ है।

इस में अहिल्या के शापित होने की कथा है, परन्तु उन के शिला होने रामचन्द्र के उस शिला को पद से स्पर्श करने तथा उन के पतिलोक गमन की बातें नहीं हैं। गौतम जी ने यह शाप दिया है कि 'यह स्थान सर्वथा निर्जन हो जायगा तू सब जीवों से अदृश्य निराहार वायुभक्षण करती भस्मशायिनी हो तपस्या करती रहेगी राम के इस घोरवन में आने पर तू पवित्र होगी। रामचन्द्र के यहाँ पधारने पर अहिल्या पूर्ववत् हो गई है। रामलक्ष्मण ने उनके चरणों की वन्दना की है और उन का सत्कार स्वीकार किया है। गौतम जी भी उस समय वहाँ आ गये हैं और उन से सत्कारित तथा पूजित हो रामचन्द्रादि जनकपुर सिधारे हैं।

"वातभक्षा निराहारा तप्यन्ती भस्मशायिनी।
अदृश्या सर्वभूतानामाश्रमेऽस्मिन् वसिष्यसि॥
यदा त्वेतद्वनं घोरं रामो दशरथात्मजः।
आगमिष्यति दुर्धर्षस्तदा पूता भविष्यसि॥
विश्वामित्रवचः श्रुत्वा राघवः सह लक्ष्मणः।
विश्वामित्रं पुरस्कृत्य आश्रमं प्रविवेश ह॥
ददर्श च महाभागां तपसा द्योतितप्रभाम्।
धूमेनाभिपरीताङ्गीं दीप्तामग्निशिखामिव॥
शापस्यान्तमुपागम्य तेषां दर्शनमागता।
पाद्यमर्घ्यं तथा तीर्थं चकार सुसमाहिता॥"

'अध्यात्म में मुनि के संग आने के अनन्तर ताड़का वध, कामाश्रमवास सिद्धाश्रम में सुबाहु मारीच वध जनकपुर की ओर कूच और गंगा के इसी पार अहिल्यावाली घटना[1] और वहीं मल्लाह का रामचन्द्र का पैर धोना कहा है।

उस में गौतम ने शाप दिया है कि हे दुष्टे! तू मेरे आश्रम में रात दिन निराहार घोर तप करती हुई शिला के ऊपर स्थित हो घाम, पवन वर्षा इन को सहती हुई एकाग्रचित्त से तप करती रह। जब रामचन्द्र तेरे आश्रम की शिला के ऊपर चरण रखेंगे तब तू पाप से छूट जायगी —

"दुष्टे त्वं तिष्ठ दुर्वृत्ते शिलायामाश्रमे मम।
निराहारा दिवारात्रं तपः परममास्थिता॥
यदा तवाश्रमशिलां पादाभ्यामाक्रमिष्यति।"

---

१ इस पुस्तक का पृ० १५१ देखिये।

आश्रम में आने पर 'मैं राम हूँ' ऐसा कह कर राम ने अहिल्या को प्रणाम किया है।[1]

जनकपुर की फुलवारी की कथा इन दोनों ग्रन्थों में नहीं है। और अध्यात्म में विश्वामित्र जी के कहने पर जनक ने अपने मन्त्रियों को आज्ञा देकर पड़ा तथा रत्नादिकों से भूषित शिवधनु को ५ मनुष्यों के द्वारा मँगवाया है एवम् उसे सब राजों के सामने रामचन्द्र ने तोड़ा है।

'वाल्मीकीय' में जनकपुर पहुँचने पर मिथ पुरोहित गौतमतनय सतानन्द सहित जनक का इन लोगों का आयत स्वागत करना सतानन्द का विश्वामित्र के तप तेजादि का हाल कहना मिथ माता के शापमोचन का वृत्तान्त सुन कर प्रसन्न होना वर्णित है।

दूसरे दिन जनक जी ने राम लक्ष्मण के सहित विश्वामित्र को बुला भेजा है और मुनि को यह कहने पर कि ये दोनों बालक धनुष देखना चाहते हैं यदि दिखा दीजिये तो ये कृतार्थ हों' जनक ने कहा है 'कि महादेव जी ने यह धनुष दक्षयज्ञ के समय[2] देवतों के वध के निमित्त उठाया था परन्तु उनके विनय पर प्रसन्न हो यह धनुष देवतों ही को दे दिया था जिन लोगों ने इसे हमारे पूर्वज निमि के पुत्र देवरात को धरोहर दिया। एक बार सीता जी के इसे उठा लेने[3] से हम ने प्रण किया कि जो प्राणी इस धनुष को तोड़ेगा उसी से हम सीता का विवाह कर देंगे। देश २ के राजा आये परन्तु कोई इसे तोलने को समर्थ नहीं हुये। अतएव हम ने उन लोगों को विदा कर दिया जिस से क्रुद्ध हो कर सब लोगों ने हमारा नगर घेर कर सीता को बलात्कार लेना चाहा। वर्ष दिन पूरा होने पर दुर्ग संरक्षण का कोई उपाय न देख हम ने तपस्या द्वारा देवतों से चतुरंगिणी सेना प्राप्त की जिस के भय से वे लोग भाग गये। अच्छा हम इन लोगों को धनुष दिखला देते हैं यदि ये लोग रोदा भी चढ़ा देंगे तो हम

---

१ पद्मपुराण में शिला होने की बात देखी जाती है — पादस्पृष्टस्तस्य रामस्य पाद स्पर्शान्महाशिला। काचित्योषाऽभवत्सद्यो विस्मितं मुनिरब्रवीत्॥ शापदुष्ट्या पुरा भर्त्रा राम शक्रापराधतः। अहल्याख्या शिला जाता शतशिरी हतत्वरात्॥ त्वत्पादस्पर्शनात्सद्यो शापान्तं प्राह गौतम। तस्मादियं ते पादाब्जस्पर्शात्सुन्दराऽभवत्समो॥

रघुवंश भी ऐसा ही कहता है।

२ कूर्म पुराण में यही है। परन्तु महि काव्य में इन को यह धनुष होना लिखा है जिस से शिवजी ने त्रिपुरा का नाश किया था। — अग्निप्रदत्तं जनको धनुस्तद् देवा दिदरे त्र्यम्बकं शिवाजी। यह कथन अध्यात्म तथा भारत से मिलता है।

३ उठाने की बात कई रीति से कही जाती है—(क) सीता ने सखियों के संग खेलते समय उठा लिया, (ख) खेलते समय उनकी कोठरी में लग कर टूट गया, (ग) यह समझ कर कि धनुष की पूजा के लिये शिवजी का दूर जाना कष्ट होता है सीता जी इसे घर उठा लाई, (घ) माता के आज्ञा नहीं रहने से धनुष के स्थान का पूजा के निमित्त एक दिन सीताजी गई और उस हटा कर उन्होंने चारों ओर चौका लगा दिया।

दशरथनन्दन के साथ कन्या का विवाह कर देंगे।[1] अनन्तर आठ पहियों के छकड़े पर खींचकर ५०० वीरों ने उस धनुष को नगर के बाहर लाया है और जनक जी तथा मुनि की आज्ञा पाकर रामचन्द्र ने उस पर रोदा चढ़ा उसे तोड़ दिया है।

जनक का नहीं वरन् मुनि का लिखा पत्र अवध गया है। बारात आने पर दशरथ ही ने वशिष्ठ जी से कहलवा कर अन्य तीनों भाइयों का विवाह यहीं कराया है। विवाह हो जाने पर विश्वामित्र जी उत्तर की ओर तपस्या करने चले गये हैं। बारात लौटने पर भरत तथा शत्रुघ्न जी मामा युधाजित के संग ननिहाल गये हैं।

वाल्मीकि तथा अध्यात्म दोनों ही में बारात लौटती समय परशुराम जी ने मार्ग में आकर रामचन्द्र पर क्रोध किया है और उन्हीं से साधारण रीति से बातचीत भी हुई है। रामचन्द्र ने उन के वैष्णवी धनुष[2] पर रोदा चढ़ा कर उन से पूछा है कि कहिये, इस से आप की गति का निरोध करें या आप के तपोबल द्वारा उपार्जित लोकों का नाश कर दें? भार्गव ने कहा है कि मेरी गति का निरोध न हो हम स्वर्गसुख भोगना नहीं चाहते' और वे तब महेन्द्र पर्वत पर चले गये हैं।

अध्यात्म में दशरथ जी की रानियाँ तथा गुरुपत्नी भी बारात गई हैं। विवाहान्तर सीता की उत्पत्ति की कथा तथा रामस्तुति है। परशुराम जी निज वृत्तान्त वर्णन कर और रामचन्द्र की स्तुति कर महेन्द्रपर्वत पर गये हैं।

अयोध्याकाण्ड—रामचन्द्र के सद्गुणों के विचार से एवम् अपने शरीर में जरागम तथा स्वर्ग में ग्रह नक्षत्रादि की आकृतियाँ विकृत देखने से दशरथ ने निज मन्त्रियों की सम्मति से रामचन्द्र को युवराज बनाना स्थिर किया है एवम् उसकी तैयारियाँ होने लगी हैं। उन्हों ने सभा में रामचन्द्र से यह बात कही है और अन्तःपुर में भी बुलाकर उन से एकान्त में कहा है कि हम तुम्हें कल ही युवराज बना देने की इच्छा करते हैं जिस में भरत के आने के पूर्व ही यह कार्य सम्पन्न हो जाय, नहीं तो उन के यहां रहने पर कदाचित् कोई विघ्न खड़ा हो जाय।[3]

1 रघुवंश के अनुसार रामचन्द्र को बालक समझ जनक को उन्हें धनुष दिखलाने में हिचक हुआ था:—

'प्रातीत्य भगवन् मतङ्गजैर्यदृहस्तिरपि कर्म दुष्करम्।
तत्र नाहमनुमन्तुमुत्सहे मोघवृत्ति कलभस्य चेष्टितम्॥'

सर्ग ११ श्लोक ४२।

२ रामचन्द्र के बल की स्वयम् परीक्षा करने के लिये वैष्णवी धनुष दिया क्योंकि यह शिवधनु के समान ही कठिन था।

३ इस वाक्य से अनुमान होता है कि दशरथ ने इसी विचार से भरत जी को नाना के घर भेज दिया था। गोसाईं जी ने भी मथरा के मुख से यह बात कहलवाई है 'भरत भूप पठए ननिआरे। राम मातु मत जानब रउरे।' परन्तु भरत से राजा के भय करने का कोई कारण रामायण से विदित नहीं होता। हाँ भरत जी के मामा से हो तो हो, क्योंकि कैकेयी से इसी प्रतिज्ञा पर विवाह हुआ था कि उन के उदर का पुत्र सिंहासन पर बैठाया जायगा। परन्तु सच पूछिये तो भरत के उपस्थित नहीं रहने ही से यह सब उत्पात हुआ।

यह शुभसमाचार सुन कर कौशल्या इस कार्य की सफलता के निमित्त देवपूजन कर विष्णुध्यान में ऐसी निमग्न हुई हैं कि भाई तथा स्त्री के सहित रामचन्द्र के उन के निकट आने पर सुमित्रा के कहने से उन्हों ने नेत्र खोला है और इन लोगों को देखा है। वहां से अपने भवन में आकर दशरथ तथा वशिष्ठ जी के उपदेशानुसार रामचन्द्र जी सीता जी के सहित संयम में प्रवृत्त हुये हैं।

अध्यात्म में पहले ब्रह्मा के भेजे हुये नारद जी रामचन्द्र के पास आकर रावण वध के निमित्त निवेदन कर गये हैं। तदनन्तर युवराजपद प्रदान का विचार और उद्योग हुआ है। दुःखसूचक स्वप्न देखने अथवा नरनारि की विकल मूर्तियां दृष्टिगोचर होने की कथा उस में नहीं है। उस के अनुसार रामचन्द्र ने अपनी माता को उस समय ध्यानावस्थित देखा है जब वे वनगमन के लिये उन से विदा होने गये हैं।

रामचरितमानस तथा अध्यात्म जैसा वाल्मीकि जी ने सरस्वती द्वारा मंथरा की बुद्धि भ्रष्ट नहीं कराई है। प्रातःकाल कोठे से नगर की सजावट देख किसी दासी से पूछने पर उसे यथार्थ बात ज्ञात हुई है और तब उस ने अपनी कुटिलाई से कैकेयी का मन फेर उन्हें दो वर मांगने पर उद्यत किया है।

राजा ने कैकेयी को पहले बहुत कुछ समझाया बुझाया है, किन्तु उस का हठ देख दुःख से महा कातर हो क्रोध में यह भी कहा है कि 'मेरे मरने पर तू मेरा शरीर न छूने तथा भरत मेरी अन्त्येष्टिक्रिया नहीं करे'।[1]

जब सुमंत के संग रामचन्द्र कैकेयी के भवन में गये तब पीछे २ लक्ष्मण भी वहां गये हैं। राजा ने रामचन्द्र से कहा है कि 'मुझ स्त्रीवशीभूत को कारागार में डाल कर तुम राज्य करो'। इस पर सम्मत न होकर जब रामचन्द्र अपनी माता से विदा होने गये हैं तब उन्हों ने तथा लक्ष्मण ने इन्हें वन जाने से रोकने की बड़ी चेष्टा की है एवम् रामचन्द्र को सिंहासनारूढ़ कराने को उद्यत हो कर लक्ष्मण जी ने कहा है कि 'आप भाग्य की प्रबलता बखान रहे हैं और हम राजा को बन्दी करके एवम् भरत शत्रुघ्न तथा उन के पक्षपातियों को चाहे वे देवराज्य ही क्यों न हों रणक्षेत्र में मृत्युगामी बनाकर संसार को आज यह दिखला देंगे कि पौरुष के सामने भाग्य की क्या गिनती है'।[2] और सीता जी ने अपना प्रेम अटल पातिव्रत भावी वियोगदुःख जताते हुए यह भी कहा है कि आप हमें वन दिखाने के लिये बहुत दिनों से कह रहे हैं हम ने अपने मयके में ज्योतिषियों से भी सुना है कि हम को वन में रहना होगा अतएव हमको भी साथ लेते चलिये। और इसी वार्तालाप में उन्हों ने यह भी कहा है कि आप हमें साथ ले जाने में भय करते हैं, आप निरन्तर आकार ही में पुरुष हैं आप के तेज प्रताप की प्रशंसा व्यर्थ ही है यदि हमारे

---

१ भरत पर इतना कोप करने और उन से इतना विरक्त होने का कारण विदित नहीं होता।

२ अध्यात्म में भी ये बातें पाई जाती हैं।

पिता आप को ऐसा जानते तो आप को अपना दामाद नहीं बनाते।'[1] ऐसा कहने का अभिप्राय केवल यही था जिस में रामचन्द्र उन्हें घर न छोड़ जायें।

रामचन्द्र ने उत्तर प्रत्युत्तर द्वारा सबों को शान्त कर लक्ष्मण तथा सीता के संग वन जाना स्थिर किया है। और वरुण-प्रदत्त दो धनुष दो अभेद्य कवच तथा दो अक्षय निषंग को, जो जनक ने उन्हें दहेज में दिया था, गुरु के घर से मंगवा भेजा है एवम् अपनी सारी चीज वस्तुओं को वशिष्ठ जी के पुत्र सुयज्ञ तथा अन्य ब्राह्मणों को और मित्र के तथा अपनी माता के दास दासियों को बांट दिया है। उनके आदेश से सीताजी ने भी अपना भूषणादि सुयज्ञ[2] की स्त्री को दे दिया है और तब लोग दशरथ जी से विदा होने गये हैं।

उस समय उस स्थान में वशिष्ठ जी, सब रानियां तथा नगरनिवासीवृन्द भी इकट्ठे हुए हैं। सुमंत्र ने कैकेयी का आक्षेप विचारते हुए उनकी माता के हठी तथा कुटिल स्वभाव की भी बातें कही हैं। जब कैकेयी ने मुनिवस्त्र लाकर तीनों आदमियों को दिया है उस समय वशिष्ठ जी ने भी बहुत क्रुद्ध होकर कहा है कि सीता को क्यों मुनिपट दिया जाता है? वर तो इन के बारे में नहीं है।[3] अन्य नर नारियों ने भी धिक्कारा है। फिर कौशल्या तथा सुमित्रा ने सीता तथा लक्ष्मण को उपदेश दिया है।

अन्ततः जानकी जी वस्त्राभूषण धारण कर और १४ गहनों को लेकर एवम् रामचन्द्र तथा लक्ष्मण जी पूर्वोक्त कवच, अस्त्र शस्त्र कुदाल पिटारी इत्यादि लेकर रथारूढ़ हो वन को रवाने हुए हैं। पुरजन, रानीगण तथा राजा उन के पीछे दौड़े हैं। सुमंत्र के समझाने बुझाने से स्त्रियां घर की ओर लौट गई हैं। दशरथ कैकेयी पर कठिन कोप करते उन्हें अपना शरीर स्पर्श करने का निषेध करते हैं एवम् कौशल्या के भवन में चले जाते हैं। नगरनिवासी लोग रामचन्द्र के पीछे २ तमसा नदी[4] तक गये हैं।

कुछ रात रहते ही रामचन्द्र उनके यहां से रथ भगा देते हैं और वेदश्रुति[5] गोमती स्यन्दिका[6] नदी पार होने पर शृङ्गवेरपुर में निषाद से भेंट होती है। प्रातःकाल गंगा पार होने पर भरद्वाजऋषि का दर्शन होता है। वे इनलोगों को आश्रम ही में रखना चाहते हैं परन्तु यह स्थान अयोध्या के निकटवर्ती होने के कारण रामचन्द्र के प्रस्ताव अस्वीकार करने पर उन्होंने चित्रकूटवास की सम्मति दी है एवम् कुछ दूर जाकर चित्रकूट का मार्ग स्वयम् दिखा

१ हमारी समझ में इस प्रकरण का वर्णन गोस्वामी जी ने अच्छा किया है। इन्होंने वार्तालाप में सब पात्रों के गौरव की रक्षा की है।

२ अध्यात्म में वशिष्ठ की स्त्री लिखा है। नया एक ही घर में, मिला दो चाहे सास को चाहे पतोह को।

३ अध्यात्म में यह बात है। परन्तु लक्ष्मण के विषय में भी वशिष्ठ जी ने यही बात क्यों नहीं कही?

४ वर्तमान टौंस।

५ वर्तमान वेगुसा।

६ वर्तमान सई।

किया है तथा उसका पूरा सामान भी कर दिया है उन्हीं के कहने के अनुसार बांस का बेड़ा बनाकर तथा यमुना पार उतर कर इन लोगों ने वाल्मीकि जी का दर्शन किया है। लक्ष्मण ने लकड़ी काट कर कुटी का निर्माण किया है और एक मृग मार कर तथा यज्ञ करके कुटी-प्रवेश किया गया है। अध्यात्म के अनुसार कुटी बनाने में वाल्मीकि जी के शिष्यों ने भी सहायता की है। यह बात बहुत सम्भव है।

वाल्मीकीय में केवट के पैर धोने भरद्वाज के शिष्यों का रास्ता दिखाने, निषाद के संग आने तथा यमुना पार होने पर एक तपस्वी के इन लोगों के साथ हो जाने की बातें कहीं नहीं हैं और न वाल्मीकि ने विविध भांति का रामचन्द्र के रहने का ठौर ही बताया है। सीता जी ने गंगा तथा यमुना दोनों ही की प्रार्थना की है कि पति तथा देवर के साथ कुशल लौटने पर मांस और मदिरा से पूजा करूँगी।' यमुना पार श्यामवट की प्रदक्षिणा कर उस की भी प्रार्थना की है।[1]

अध्यात्म में शृंगवेरपुर में लक्ष्मण का निषाद प्रति ज्ञानोपदेश केवल गंगाजी की भक्ति, और वाल्मीकि जी का रामचन्द्र के लिये भिन्न २ निवासस्थान बताना तथा भिन्न इतिहास वर्णन करना लिखा है।

निषाद के पास तीन दिन ठहर कर सुमंत का अयोध्या लौट आना, पुरवासियों की उदासी, राजा की व्याकुलता, कौशल्या का खेद, सुमंत का कथा वर्णन। छठे दिन वाल्मीकि में दशरथ का स्वर्गवास, भरत जी का ननिहाल[2] से बुलाया जाना और आने के समय रास्ते में प्रचुर पदार्थ हाथी घोड़ा, कुत्ता आदि पाना, अवध आने पर सब वृत्तान्त जानने से भिन्न माता को धिक्कारना तथा कौशल्या दर्शन इत्यादि।

राजा के देहसंस्कार के अनन्तर एक दिन कई दासियों के संग मंथरा को आभूषणों से भूषित देख दरबान उसे शत्रुघ्न के पास पकड़ लाता है। वे उसे पीटने लगते हैं कैकेयी उसे छोड़ाने आती है। शत्रुघ्न ने उन्हें भी भलीतरह फटकारा है अन्ततः भरतजी ने उसकी रिहाई करा दी है।

---

१ रामायण में जानकी जी के इन मन्नितों का भार उतारने के लिये देवस्थि आदि की पूजा करने का हाल कहीं नहीं लिखा हुआ है।

२ कई २ गिरिव्रज अर्थात् बिहार प्रदेशान्तर्गत वर्तमान 'राजगृह' को भरत जी का ननिहाल बताते हैं। यह सर्वथा भूल है। वाल्मीकीय रामायण में स्पष्ट कहा है कि अयोध्या से पश्चिम और चल कर हस्तिनापुर हाते और थोड़ी देर गिरिव्रज में ठहरा कर दूत लोग वहां से फिर तीन दिन में ननिहाल गये। (अ० सर्ग ६८ श्लोक ११ १२ २१)। उत्तरकाण्ड के सर्ग १०१ से भी इन का ननिहाल पश्चिम ही प्रान्त में सिन्ध नदी की ओर होना सिद्ध होता है। और गिरिव्रज के नाम के कभी दो स्थान नहीं हो सकते? टाड साहब ने गृह तथा महल इन दोनों शब्दों को एक अर्थबोधक मान कर वर्तमान राजमहल को राजगृह होना बताया है।

भरत जी के वन जाने के समय बहुत से शिल्पकार रास्ता दुरुस्त करने को आगे भेज गये हैं। भरत जी के शृङ्गबेरपुर पहुँचने पर निषाद ५०० नावों पर सौ २ कैवर्तक तथा सौ २ वीरों को बिठा घाटों को रुकवा कर मांस, मछली शहद आदि लिये स्वयम् भरत जी से मिलने आता है और उन से स्पष्ट पूछा है कि आप किस मनसा से ससैन्य रामचन्द्र के पास आ रहे हैं।

प्रयाग में भरद्वाज ने अपने तपोबल से ऋद्धि सिद्धि को आज्ञा दे भरत जी की पहुनाई करने के लिये अल्पकाल में अद्भुत सामग्रियां प्रस्तुत कराई हैं। अप्सराओं को भी नाचरङ्ग के लिये वहां बुलवा लिया है।

भरतजी के रामचन्द्र के निकट पहुँचने के थोड़ी ही देर पहले लक्ष्मण जी ने एक मृग मार कर उसका मांस रांधा है और उसी समय एक काक आकर सीताजी को बहुत पीड़ित किया है। इस काककथा को लोग क्षेपक बताते हैं परन्तु सुन्दरकाण्ड में सीता जी ने भी इस कौवा की बात हनुमान जी से कही है। यदि क्षेपक है तो दोनों स्थानों का वर्णन। यहां पर और भी बहुत सी बातें क्षेपक प्रतीत होती हैं। हमारी समझ में तो बाल में तथा राज्याभिषेक की बाद वाली बहुत सी कथाएं भी क्षेपक हैं।

इस में लक्ष्मणक्षोभ तथा भरतकूप की कथाएं नहीं हैं। हां रामचन्द्र के लौटने पर सम्मत नहीं होने से भरत जी कुशासन बिछा कर प्राण परित्याग करने पर अवश्य उद्यत हुये हैं।

भरत जी के लौट जाने पर चित्रकूट के मुनिलोग रामचन्द्र से कुछ भय मान उस वन को त्याग वहां से अन्यत्र जाने लगे हैं तब रामचन्द्र ही स्वयम् वहां से चल दिये हैं। चलते समय अत्रिमुनि का दर्शन हुआ है। उन की स्त्री अनसूया जी ने जानकी जी को पातिव्रत धर्म का उपदेश दिया है और दो दिव्यमाला श्रेष्ठ वस्त्राभूषण पहिनाकर तथा अन के अङ्गों में रागादि लेपन कर उन्हें अपनी कुटी से बिदा किया है।

अध्यात्म के अनुसार जब अवधवासीगण रामचन्द्र को बन्धु तथा स्त्री सहित दशरथ के महल की ओर पांव २ जाते देख खेदित हुये हैं उस समय वामदेव ने उन के प्रमथ: विष्णु, तथा शक्ति राय के अवतार होने एवम् रामचन्द्र के आठ पूर्वावतारों का हाल वर्णन किया है। और चित्रकूट में भरत के प्राण परित्याग करने के लिये उद्यत होने पर रामचन्द्र के संकेतानुसार वशिष्ठ जी ने एकान्त में रामचन्द्र के विष्णु के अवतार होने का हाल भरत को बताया है और कैकेयी ने भी एकान्त में अपना अपराध क्षमा करा कर भक्ति का वरदान लिया है। अनसूया ने दो कुंडल तथा दो दिव्यभूषण पहनाया है।

आरण्यकाण्ड—इस रामायण में अत्रिमुनि से भेंट अयोध्याकाण्ड के अन्त में हुई है और जयन्त ने चित्रकूट में सीता जी की छाती में चोंच तथा अंगुष्ठ मार कर उन्हें व्यस्त किया है।

दंडकवन के मुनियों के आश्रमों की शोभा मुनिगणमिलन, वनदर्शन विराधवध, शरभंगमुनिदर्शन और उन का शरीरत्याग मुनियों का इकट्ठा हो कर राक्षसों के वध के लिये

रामचन्द्र से प्रार्थना करनी एवम् उन का आश्वासन देना, फिर सुतीक्ष्ण की भेंट, ये सब बातें कथित हैं। शरभंग मुनि तथा सुतीक्ष्णमुनि से भेंट होने पर उन लोगों ने स्तुतिवन्दना नहीं की है। वरन् शरभंग मुनि ने कहा है कि 'हम ने अपने तपबल से ब्रह्मलोकादि जीत लिये हैं और इन्द्र हमें ब्रह्मलोक ले जाने को आये थे। हम अपने तपबल से जीते हुये सब लोक आप को दे देते हैं।' इस के उत्तर में रामचन्द्र ने कहा है कि यदि आप कहें तो आप के जीते हुये लोकों का हम नहीं छुआ दें। सुतीक्ष्ण से भी इसी प्रकार की बातचीत हुई है।

सीताजी ने शरभंगी मुनि की कथा कह कर दंडकवन में जाने तथा राक्षसों को वध करने से रामचन्द्र को निषेध किया है और रामचन्द्र ने उन्हें समझाया है। यहीं पर मार्कण्डेय ऋषि कृत 'पञ्चाप्सर' तथा इल्वल-वातापी की भी कथाएं वर्णित हैं।

भेंट होने पर अगस्त जी ने वैष्णवचाप, बाण तथा दो अक्षयबाण वाला निषङ्ग रामचन्द्र को प्रदान किया है और गीध ने जीवों की उत्पत्ति की लम्बी चौड़ी कथा सुनाई है।

पंचवटी में सूपनखा अपने सहज रूप में रामचन्द्र के पास आई है। कवि ने रामचन्द्र तथा उस के रूप में अच्छी असमता दिखलाई है। उस समय दोनों भाइयों में अच्छी दिल्लगी भी हुई है। रामचन्द्र ने कहा है कि 'लक्ष्मण से विवाह करो तो 'मेरुसूर्यप्रभा' जैसी शोभा होगी' और लक्ष्मण ने कहा है कि 'रामचन्द्र से विवाह करने में दोनों प्राणियों का रङ्ग में रङ्ग मिल जायगा।'

सूपनखा के विरूपा किये जाने पर खर ने पहले केवल १४ राक्षसों को भेजा है और उन के मारे जाने पर तुमुल युद्ध हुआ है।

अकम्पन के मुख से पहले खरदूषणादि के वध का वृत्तान्त सुनकर रावण मारीच के पास गया है और उस के समझाने से ज्योंही लौट कर घर आया है त्योंही सूर्पनखा वहां पहुंच कर उसे धिक्कारने लगी है और सीता को छीनने कहती है। तब फिर मारीच के पास जाकर रावण ने उसे मृग बनने पर उद्यत किया है। उस के मृग बन कर आने पर लक्ष्मण ने कह दिया है कि यह स्वयं मारीच है मृग नहीं है।

सीता जी ने बहुत कटुवचन कह कर लक्ष्मण को रामचन्द्र के पास भेजा है और वे यह कह कर चले हैं कि 'तुम्हारा विनाशकाल उपस्थित हुआ है इसी से ऐसी बातें मुख से निकाल रही हो।' इस में सीता के अग्नि प्रवेश तथा लक्ष्मण के रेखा खींचने की बातें नहीं हैं।

रावण के यतिरूप धारण कर आने पर सीता जी ने उसे कुशासन पर बिठाया है, वार्तालाप किया है और उसका असली अभिप्राय जानने पर उसे घोर धिक्कार देने लगी है।

जटायु को घायल करते तथा रास्ता भर जानकी द्वारा धिक्कारित होते, रावण ने पहले अपने महल में ले जा कर उन्हें अपना सारा वैभव दिखलाया है, प्रेमनिवेदन किया है और घोर तिरस्कृत होने पर एक वर्ष का समय दे कर उन्हें अशोक वाटिका में ८ राक्षसियों के पहरे में रखा है। यहां इन्द्र ब्रह्मा का दिया हुआ हव्य खिला गये हैं। सीता जी रास्ते में आभूषण गिराती गई हैं।

प्रियाविरह से व्याकुल भाई के संग जानकी को वन में खोजते समय रामचन्द्र को कबन्ध से भेंट हुई है एवम् उसी खोज के समय लक्ष्मण ने अयोमुखी एक दूसरी राक्षसी की भी नाक कान तथा कुच काट लिया है।[1]

फिर कबन्ध वध उस का निज वृत्तान्त वर्णन पम्पासर तथा सुग्रीव की कथा कह कर एवम् पम्पासर दिखा कर शबरी के निज शरीर त्याग करने की बातें लिखी हैं। पम्पासर में नारदागमन नहीं हुआ है। परन्तु उस सर का शोभा-वर्णन देखा जाता है।

अध्यात्म में पहले अत्रिमुनि के कई शिष्यों ने इन लोगों को एक नौका पर बिठा कर एक नदी पार किया है। तब विराधवध शरभङ्गमुनि का दर्शन एवम् उन का शरीरत्याग हुआ है। वनभ्रमण करते समय हड्डियों का ढेर देख उस के सम्बन्ध में रामचन्द्र के मुनियों से पूछने पर उन लोगों ने कहा है कि जो ऋषिलोग समाधि धर्म्म को त्याग कर विषयों में प्रवृत्त हुये थे उन्हें राक्षसों ने मार कर खा डाला है और ये सब उन की हड्डियां हैं, 'राक्षसैर्भक्षितानीश प्रमत्तानां समाधित। अन्तरायं मुनीनां ते पश्यंतो ऽनुचरन्तिति हि। तब रामचन्द्र ने राक्षसवध की प्रतिज्ञा की है। परन्तु धर्म्मभ्रष्ट विषयरत मुनियों के मारने में राक्षसों ने क्या अपराध किया?

इस के अनन्तर सुतीक्ष्ण भेंट, उन का रामचन्द्र की स्तुति करनी तथा वर पाना और अग्निबिन्दुमुनि का वर्णन है। फिर अगस्त्य जी के आश्रम में जाने पर उन्हों ने अपने शिष्यों तथा अन्य मुनियों के सामने रामचन्द्र का यथार्थ (ईश्वर) रूप वर्णन किया है। जटायु कबन्ध तथा शबरी ने भी रामचन्द्र की स्तुति की है। उसी से सीता जी का समाचार तथा पम्पासर का हाल ज्ञात हुआ है। पंचवटी में वास के समय रामचन्द्र ने लक्ष्मण को ज्ञान-भक्ति आदि का उपदेश दिया है।

किष्किन्धाकाण्ड—पम्पासर के तीर पर रामचन्द्र उस की शोभा वर्णन करते २ विलाप करने लगे हैं और लक्ष्मण जी ने उन्हें बहुत समझाया और साहस दिलाया है। ऋष्यमूक के निकट हनुमान जी भिक्षुक के रूप में रामचन्द्र से मिले हैं। बाण से बेधित होने पर बालि ने व्यंग की बातें बहुत कही हैं स्तुति नहीं की है और उस ने अङ्गद को सुग्रीव को सौंपा है, रामचन्द्र को नहीं।

वर्षावर्णन विशद है परन्तु गोस्वामी जी के ढंग से नहीं है। सीता जी के खोजने के समय अङ्गद ने एक राक्षस को रावण समझ वध कर दिया है वाल्मीकीय रामायण में सीता के खोजने के लिये चारो ओर वानरों[2] के भेजे जाने तथा उन लोगों के खोजने का हाल सविस्तर वर्णित है।

---

१ इन के साथ ऐसे बर्ताव का कोई कारण नहीं दीखता। यह कथा क्षेपक बोध होती है क्योंकि ये लोग अकारण आततायिक नहीं थे।

२ सुग्रीव अङ्गद हनुमान तथा जाम्बवान प्रभृति क्या सचमुच बानर ही थे? रामायण पाठ से तो ऐसा ही प्रतीत होता है परन्तु लोग कहते हैं कि ये एक जाति के वनपर्वतवासी मनुष्य ही थे। जिस जाति की ध्वजा पर बन्दर का चिन्ह था वह बानर जाति कहलाती थी जिस की ध्वजा पर रीछ का चिन्ह था वह रीछ कहलाती थी। जैसे

वानरों के बिल में प्रवेश करने तथा वहां से बहिर्गमन होने की कथा है, परन्तु बिल-निवासिनी (हेमा की सखी) स्वयम्प्रभा के भी राम के निकट जा कर स्तुति करने और वहां से उस के बदरिकाश्रम में जाने की बातें नहीं हैं। (यह कथा अध्यात्म में देखी जाती है)। इसी हेमा पर मय नामक मायावी दानव आसक्त था इन्द्र ने उसे वज्र से मार डाला और ब्रह्मा ने उस का यह स्वर्णमय वन और घर हेमा को दे दिया था।

सम्पाती से निशाकर मुनि की कथा तथा अपने पुत्र सुपार्श्व से रावण के जानकी जी को ले जाने का जो हाल सुना था, उस वाले वानरों को सुनाई है। और लंका जाने के लिये हनुमान जी कूद कर महेन्द्र पर्वत पर चढ़े हैं।

अध्यात्म में हनुमान जी वटु के ही रूप में पहले दोनों भाइयों से मिले हैं। सुग्रीव के राज प्राप्त होने पर रामचन्द्र ने लक्ष्मण को क्रियामार्ग का उपदेश किया है। लक्ष्मण जी के कोप करने पर हनुमान तारा अंगद सुग्रीव आदि सभों ने उन से विनय प्रार्थना की है। मंत्रियों के सहित उपस्थित हो कर सुग्रीव ने रामचन्द्र को वानर वीरों का नाम तथा उन का बल पराक्रम संक्षेप में वर्णन किया है।

सुन्दरकाण्ड—महेन्द्रपर्वत से प्रस्थान कर हनुमान जी के आकाशमार्ग से समुद्र पार हो लम्बपर्वत पर पहुंचने तथा लंकिनी वध तक की सब घटनाएं प्रायः वेही हैं जिनका वर्णन रामचरितमानस में पाया जाता है।

उस पार लंका का विभव देख हनुमान जी को कार्य सिद्ध होने में सन्देह हुआ है और वे मन ही मन कहने लगे हैं कि अङ्गद, नल, जाम्बवान, द्विविद, सुग्रीव इत्यादि वे ही क्यों, इन वानरों के सिवाय दूसरे का यहां प्रवेश करना भी दुष्कर है। अनेक संकल्प विकल्प के अनन्तर उन देवों तथा राम लक्ष्मण, जानकी सुग्रीव आदि को नमस्कार कर वे जानकी की खोज में प्रवृत्त हुवे हैं। उन को खोजते वे रावण के रनिवास में जहां वह अनन्त कमनीय कामिनियों के संग विराज रहा था पहुंच गये हैं। इसी मध्य में कवि ने रावण के गृह आदि अशोकवाटिका तथा निशाचरियों का सौन्दर्य वर्णन किया है। जब हनुमान जी वृक्ष पर बैठे सीता जी का दर्शन कर रहे थे तभी प्रातः में कुछ रात रहते कतिपय ललनाओं के संग रावण वहां पहुंच कर जानकी जी को अपने वश में लाने के लिये उन्हें धमकाने और फुसलाने लगा है और उस के संग की धान्यमालिनी ललनाओं ने संकेत द्वारा सीता को बताया है कि आप निर्भय होकर फटकारिये; यह बिना आप की इच्छा के आप के संग बलात्कार नहीं कर सकता।

दो मास का अवसर देकर उस के वहां से चले जाने पर, राक्षसियों का धमकाना फुसलाना क्लेश देने पर उद्यत होना त्रिजटा का समझाना; हनुमान का सीता से वार्तालाप और उस के मध्य चित्रकूट के काक (जयंत) की कथा एवम् चूड़ामणि देने का हाल कहा गया है।

आजकल अंग्रेज़ों की ध्वजा पर सिंह का तथा रूसी जाति की ध्वजा पर रीछ का चित्र होने से उन देशों के वीरों को British lions और Russian bears कहते हैं। वैसे ही राम रावण कथा में भी वानरचिन्हांकित ध्वजा मुकुट धारी जाति वानरवंशीय कही गई है।

सीता जी के अशोकवाटिका में रहने का पता विभीषण ने नहीं बताया है और न उन से इन्हें भेंट हुई है। हां! रावण की सभा में उन्हों ने हनुमान को अवश्य देखा है। विभीषण की पुत्री कला ने उन के तथा अविन्ध्या मंत्री मेधावी के रावण को समझाने का हाल सीता जी को सुनाया है।

प्रहस्तपुत्र, जम्बुमाली ७ मंत्री पुत्र विरूपाक्ष यूपाक्ष प्रघस भासकरण आदि वीरों का ससैन्य वध करने के अनन्तर हनुमान ने अक्षकुमार का युद्धक्षेत्र में वध किया है। फिर ब्रह्मास्त्र में बँधाकर रावणसभा में जाने पर उन्हें उससे बातचीत हुई है।

आग लगाने पर हनुमान को भारी सोच हुआ है कि जिस की खोज के लिये समुद्र फांद कर हम यहां आये अब वे भी अशोकवाटिका में जलकर भस्म हो गईं अब हम रामचन्द्र को अब क्या समाचार कहेंगे।

अनन्तर लंका से लौट कर मधुवन में वानरों का फल खाना तथा हनुमान का लंका का वृत्तान्त वर्णन करना है।

अध्यात्म के अनुसार लंकापुरी की देवी ने सीता के अशोक वाटिका में रहने का पता हनुमान को बताया है और वे खोजते २ वहां पहुंचे हैं। (इसमें भी विभीषण से भेंट नहीं लिखी है)। इन के वहां पहुंचने पर पिछली पहर रात में रावण यह स्वप्न देख कर कि एक वानर पेड़ के पत्तों में छिप कर जानकी से बातें कर रहा है स्त्रियों के साथ वहां गया है और उसने सीता को बहुत त्रास दिखाया है।

रावण की सभा में जाने पर हनुमान जी ने निज वृत्तान्त कहते समय रावण को विष्णु-भक्ति का उपदेश दिया है, और किष्किन्धा लौट आने पर सीता जी का समाचार रामचन्द्र को सुनाया है तथा लंकादहन का भी हाल कहा है।

युद्धकाण्ड —लंका का वृत्तान्त सुनकर समुद्र पार होना दुष्कर जान रामचन्द्र का सोच करना हनुमान का समझाना फिर ससैन्य सागर किनारे पहुंचना; सागर छविवर्णन। इधर हनुमान जी के चले जाने पर रावण का मंत्रियों के संग विचार मित्रों की खुशामदी बातें विभीषण का समझाना। फिर सार्वजनिक सभा; नगर की रक्षा का प्रबन्ध सीता के अपहरण का हाल सुनाकर रावण का सबों से राय पूछनी कुम्भकर्ण का रामचन्द्र का पराक्रम तथा महिमा वर्णन कर पीछे युद्ध करने की प्रतिज्ञा करनी; विभीषण तथा प्रहस्त का मेघनाद् को धिक्कारना और समझाना। रावण के कठोर कटु वाक्य कहने से विभीषण का उसे त्याग कर चार मंत्रियों के संग रामचन्द्र के पास आना, और सम्मुख होने पर उन का यह कहना कि हमारा जीवन सुख तथा राज्यप्राप्ति सब आप ही के आधीन है एवम् रावण का बलाबल वर्णन कर उसके निधन तथा लंकाविध्वंस में सहायता देने की प्रतिज्ञा करनी और तब उन का लंकेश बनाया जाना।

विभीषण के परामर्श एवम् लक्ष्मण तथा सुग्रीव के अनुमोदन से समुद्र से मार्ग मांगना समुद्र पर कोप सेतुबन्धन। रावण का भेजा शुक का सुग्रीव और रामचन्द्र में भेद कराने के लिये आना पकड़ा जाना, छिड़ाइ जाना। फिर शुक और सारण का वानर के भेष में आना

विभीषण का उन्हें पकड़ कर राम के पास लाना और छुटकारा पाकर उन का रावण से सब सेना का हाल कहना उन लोगों के संग रावण का गढ़ पर चढ़कर वानरी सेना देखना उनलोगों का रावण से मुख्य २ यूथपतियों का नामादि वर्णन करना और उन के उत्तम उपदेश देने से उन लोगों का सभा में नाना नाना यत्न किया जाना फिर रावण का शार्दूल के संग दूतों को भेजना उनका पकड़ाना, छूटना और आकर रावण से सब हाल कहना।

अध्यात्म में संक्षेप यही सब बातें हैं। और सेतुबन्धन के पश्चात् रामेश्वरस्थापन का हाल लिखा है। वाल्मीकि जी ने इस का स्पष्ट वर्णन नहीं किया है। लंका से लौटते समय पुष्पक विमान पर चढ़े राम ने जानकी जी को मार्गस्थ सब वस्तुओं को दिखाते समय कहा है कि 'इस ने यहां महादेव की स्थापना की है। और अध्यात्म में शुक का पूर्व वृत्तान्त कथन एवं वानरी सेना देखने के लिये रावण का मंत्रियों के संग गढ़ पर चढ़ना और रामचन्द्र का छत्र का कलशादि ध्वंस करना लिखा है।

मंत्रियों से मंत्रणा मायारचित रामचन्द्र का सिर भुजा शर चाप सीताजी को दिखाना उनका विलाप और सरमा का समझाना इन लोगों और रावण की माता का तथा माल्यवान का सीता को लौटा देने का परामर्श।

रावण का गढ़ के चारों द्वारों पर सेना नियुक्त करना रामचन्द्र का लक्ष्मण प्रभृति के संग सुवेल शिखर पर चढ़ना लंकादि वर्णन दूर से रावण को देख सुग्रीव का झपट कर उस के निकट पहुंच जाना उस के संग द्वन्द्व युद्ध उस का मुकुट गिरा देना, दोनों का नाली में लुढ़कना (ये सब बातें सर्वथा नूतन प्रतीत होती हैं) फिर अंगद का दूत बनाया जाना रावण से थोड़ा वार्तालाप चार राक्षसों का उन्हें बांधने पर उद्यत होने से उन चारों के लिये उनका थप्पड़ मार कर गढ़ के शिखर पर पद प्रहार से उसका एक अंश ढाह देना एवम् उन के वहां से कूदते समय उन राक्षसों का भसित होकर भूतल में गिर पड़ना।

युद्ध आरम्भ होने पर कुछ काल मार काट के अनन्तर उभय पक्षों के प्रधान २ योद्धाओं में द्वन्द्व युद्ध होने लगा है। मेघनाद अन्तर्धान हो सब वीरों को मूर्छित कर राम लक्ष्मण को नागफांस से बांध पिता के पास हर्षित चला गया है। तब रावण की आज्ञा से त्रिजटा पुष्पक विमान पर चढ़ा कर सीता जी को रणक्षेत्र में मूर्छित भाइयों को दिखाने के लिये ले गई है उन्हें देख सीता विलाप करती हैं और त्रिजटा उन्हें समझाती है। फिर गरुड़ आकर नागफांस काटते हैं। (अध्यात्म के अनुसार इस समय हनुमान द्वारा क्षीर सागर से द्रोणपर्वत मंगाया गया है।)

इस समाचार के पाने पर रावण के भिजाये धूम्राक्ष वज्रदंष्ट्र और अकम्पन का क्रमशः सारी सेना लेकर आना और निज विक्रम प्रदर्शन के पश्चात उन लोगों का हनुमान और अंगद के हाथ से निहत होना।

फिर सेनाध्यक्ष प्रहस्त का नरान्तक कुम्भ हनु महानाद समुन्नत योद्धागण तथा बलिष्ठ सेना के सहित आना और तुमुल युद्ध के अनन्तर सेनापति नील के द्वारा तथा अन्य चार योद्धाओं का क्रमशः द्विविद तार, जाम्बवान और दुर्मुख के हाथ से वीरगति को प्राप्त होना। (इन चारों का वर्णन अध्यात्म में नहीं है।)

अनन्तर स्वयम् युद्ध कर के रावण ने लक्ष्मण को घायल किया है। कुछ देर के बाद बिना उद्योग के होश में आये हैं। रावण भी रामचन्द्र से पराजित होकर लंका में चला गया है। अध्यात्म में इस अवसर पर भी क्षीर सागर से द्रोणपर्वत आया है और सुषेण ने औषधि प्रयोग किया है। यहीं पर कालनेमि की भी कथा है।

तब कुम्भकर्ण का जगाया जाना उस का रावण को उपदेश देना फिर युद्धक्षेत्र में आकर सब वीरों को अभिभूत करना सुग्रीव द्वारा उस की नाक कान काटा जाना जब कि वह इन्हें काँख में दाबे लंका जा रहा था एवम् लक्ष्मण के द्वारा अपना कवच कटने पर उस का लक्ष्मण के बल की प्रशंसा करते राम से युद्ध करने की इच्छा प्रगट करना और अंत में उन्हीं के हाथ से निहत होना। (अध्यात्म में इसी के पीछे नारदजी ने स्तुति की है।)

फिर त्रिशिरा अतिकाय देवान्तक नरान्तक महोदर तथा महापार्श्व का एक संग सेना लेकर युद्ध करने आना और क्रमशः हनुमान लक्ष्मण अंगद नील तथा ऋषभ के हाथ से मारा जाना।

मेघनाद का निकुम्भिला में हवनादि कर के रणक्षेत्र में अन्तर्धान होकर राम लक्ष्मण एवम् सब प्रधान वानर वीरों को बाण तथा ब्रह्मास्त्र से व्यथित और मूर्छित करना। जाम्बवान के कहने से हनुमान का रात ही में हिमालय से संजीवनीबूटीवाला पर्वत लाना एवम् सबों का मूर्छा विगत तथा चंगा होना।

सुग्रीव की सम्मति से उसी रात को वानरों का लंका में आग लगाना फिर कुम्भ और निकुम्भ का कुमार शोणिताक्ष प्रजंघ कम्पन तथा भारी सेना के साथ आकर युद्ध करना एवम् सुग्रीव हनुमान मयन्द द्विविद के द्वारा एवम् प्रजंघ और कंपन का अंगद द्वारा वध। फिर मकराक्ष का रामचन्द्र के हाथ से निहत होना।

मेघनाद का फिर हवन कर के युद्ध करना और इसी समय माया की सीता को रथ पर लाकर हनुमानादि के सम्मुख खड्ग से उन्हें दो टुकड़ा कर देना इस पर रामचन्द्र का विलाप करना और विभीषण का समझाना।

मेघनाद का फिर यज्ञ में प्रवृत्त होना लक्ष्मणजी का वानरी सेना तथा विभीषण के सहित जाकर यज्ञ विध्वंस करना मेघनाद का विभीषण को धिक्कारना और लक्ष्मण जी के संग तीन दिन तीन रात तुमुल युद्ध कर वीरगति को प्राप्त होना। (अध्यात्म में नारदस्तुति के पश्चात ही मेघनाद के इस युद्ध का वर्णन है। और मेघनाद के संग रामचन्द्र के स्वयम् युद्ध करने को उद्यत होने पर उस का वध लक्ष्मण जी द्वारा पूर्व ही से निश्चित रहने एवम् लक्ष्मण जी के अग्नि बाण की कथा कही गई है।)

फिर रावण का खड्ग लेकर जानकी जी के वध के लिये दौड़ना और सुपार्श्वजी से रोका जाना शेष सेना का राम से युद्ध करना राक्षसियों का विलाप करना तथा शूर्पणखा की निन्दा करनी। तब महापार्श्व महोदर तथा विरूपाक्ष का युद्ध करना और पहले दूसरे का सुग्रीव से एवम् तीसरे का अंगद के हाथ से प्राण विसर्जन करना। यह युद्ध प्रकरण या तो

प्रेरक है या लंका में एक ही नाम के कई योद्धा थे। क्योंकि ४१वें सर्ग में लक्ष्मण द्वारा विरुपाक्ष का एवम् ७ वें सर्ग में नील और ऋषभ के हाथ से वध का हाल कहा जा चुका है।

रावण के संग युद्ध करते समय विभीषण की रक्षा करने में लक्ष्मण रावण के शक्ति-प्रहार से मूर्छित हुये हैं। और राम से पीड़ित होकर रावण भगा बताया गया है। सुषेण[1] की सम्मति से हनुमान फिर महोदय शिखर लाये हैं और लक्ष्मण जी चंगा हुये हैं।

तब तीन दिन तक रोमहर्षण तथा विपुल संग्राम कर रावण वीर गति को प्राप्त हुआ है। इसी समय इन्द्र ने अपना रथ सारथी मातलि कवच तथा शक्ति रामचन्द्र के पास भेजा है। उस के वीरगति प्रयाण के अनन्तर मन्दोदरी प्रभृति तथा विभीषण के विलाप और उस के देह संस्कार का हाल कहा गया है। फिर देवागमन विभीषण का राज्याभिषेक सीता का अग्नि में प्रवेश कर अपने सतीत्व-संरक्षण की परीक्षा देनी दशरथ का पुत्रों तथा पुत्रवधू से मिलना रामचन्द्र के अनुरोध से इन्द्र के यह कहने पर कि 'मृत वानर भालु भी उठें' उन सबों का भी उठना। इस में अमृत वृष्टि की बात नहीं है।

फिर पुष्पक पर चढ़ कर सब लोगों का लंका से प्रस्थान जानकी जी को विमान पर से मार्गस्थ वस्तुओं को दिखाते किष्किन्धा से तारा आदि वानरों की स्त्रियों को लेते रामचन्द्र भरद्वाज के आश्रम में पहुंचे हैं। यहीं सब लोग उतर गये हैं और राह में निषाद को खबर देते नन्दीग्राम में हनुमान जी ने भरत जी को रामागमन का शुभ समाचार बताया है जिसे सुन कर भरत जी उन्हें एक लाख गऊ, १०० गांव तथा कुण्डलादि भूषणों से भूषित सुन्दर सुशील १६ कन्यायें भार्या बनाये जाने के लिये देने को तैयार हुये हैं।

अनन्तर भरतमिलाप नगर प्रवेश पुष्पक का कुबेर के पास भेजा जाना रामचन्द्र का राज्याभिषेक वानरादि की विदाई भरतजी का युवराज बनाया जाना और समय २ पर अश्वमेधादि यज्ञ होना कहा गया है। तब रामराज्य का आनन्दमय सुख विमल वर्णित है। यह सुख अवर्णित है। यह उपमा रहित होकर केवल उपमेय मात्र से इस संसार में विदित है। हनुमन्नाटक में भी रामचन्द्र के उज्ज्वल सुयश के विषय में कहा है :— 'महाराज श्रीमन् जगति यशसा ते धवलिते। पयःपारावारं परमपुरुषोऽयं मृगयते॥ कपर्दी कैलासं कुलिशभृदिभं स्वं धरित्र्यां। कलानाथं राहुः कमलभवनो हंसमधुना॥' रामायण की कथा वस्तुतः यहीं समाप्त हुई है। उत्तरकाण्ड के केवल स्नानादि के स्थान सीता वनवास तथा अश्वमेध प्रकरण ही को रामकथा से सम्बन्ध है। अन्य कथायें व्यर्थ की कथायें हैं और निस्सन्देह पीछे जोड़ी गई हैं।

अध्यात्म में भी प्रायः यही सब बातें हैं। उस में हनुमान जी हिमालय में तप करने चले गये हैं। वाल्मीकीय में यह बात उत्तर काण्ड में कही गई है।

उत्तरकाण्ड—श्रीरामचन्द्र के राजसिंहासन पर विराजमान होने पर अगस्त्य प्रभृति ऋषिगण चारों ओर से मिलने आये हैं। उन लोगों ने रामविजय की बड़ाई करते मेघनाद की भी बड़ाई की है। रामचन्द्र के यह पूछने पर कि 'सब राक्षसों से अधिक उसी की

---

१ वाल्मीकीय में सुषेण को लंका का वैद्य नहीं लिखा है, वरन् वे सेना के सर्वांग (वैद्य) प्रतीत होते हैं और अंगद के नाना थे।

क्यों प्रशंसा की जाती है अगस्त्य जी ने पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा से लेकर राक्षसों की उत्पत्ति की लम्बी चौड़ी कथा कहते रावण और उस की बहन भाइयों के जन्म तप वरदान विवाहादि का हाल वर्णन किया है और मंदोदरी के संग रावण के विवाह के सम्बन्ध में कहा है कि मय उस कन्या को लिये घूम रहा था। रावण के पूछने पर उस ने कहा कि देवतों ने हेमा नाम की अप्सरा को मुझे दे दिया था, दस हज़ार वर्ष तक मैं उस के साथ प्रेमासक्त रहा। अब वह देव लोक में चली गई है। उस के विरह से कातर मैं १४ वर्ष तक स्वर्णमयी इस स्वर्णमय पुरी में रहा। अब इस कन्या के विवाह के लिये इस वन में आया हूँ। यह कन्या हेमा के गर्भ से है।

यह वृत्तान्त किष्किन्धाकाण्ड की विलबिलवासिनी की कही हुई बातों से नहीं मिलता। उस में मय का इन्द्र से मारा जाना एवम् हेमा का जीवित रहना कहा गया है। इस पुस्तक का पृ० १४० देखिये और वाल्मीकीय किष्किन्धा काण्ड सर्ग ५१ से स० का० सर्ग १२ का मिलान कीजिये। वाल्मीकि जी भांग नहीं खाये हुये थे कि एक ही ग्रन्थ में एक ही कथा को दो रीतियों से लिखते। इन में से एक अवश्य क्षेपक है।

अनन्तर अपने ज्येष्ठ विमातृ भ्राता धनपति कुबेर से रावण का युद्ध करना और उन का पुष्पक विमान छीन लाना नन्दीश्वर का मुख देख कर हँसने से उनके शाप से ग्रस्त होना[1] कैलाश उठाने का यत्न करना और महादेव जी के अंगूठे से दबाव न्याय जाने से पीड़ित हो हज़ार वर्ष तक भोलानाथ की स्तुति करते रहने पर रावण का उन से वरदान तथा चन्द्रहास खड्ग पाना कुशध्वज की कन्या वेदवती के बलात्कर्षण से उस का शाप लगना यज्ञविध्वंस के भय से मरुत राजा का एवम् अनेक अन्य राजों का अपनी २ पराजय स्वीकार करना अयोध्या के राजा अनरण्य का युद्ध में निहत करना और उन से शापित होना नारद के उपदेश से यमराज के संग घन घोर युद्ध (इसी के अन्तर्गत यमपुरी का भी दृश्य दिखलाया गया है) नाग लोगों को वश करना निवात कवच दैत्यों से युद्ध और कालकेय दैत्यों के संग युद्ध में सूपनखा के पति का वध कर देना वरुण के लड़कों से युद्ध फिर अश्मनगर में बलि के दर्शन का वृत्तान्त सूर्य पराजय चन्द्रलोक गमन और पर्वत मुनि से वहां का वृत्तान्त जानना मान्धाता से पराजित होना चन्द्रमा पर शस्त्र उठाने से ब्रह्मा का रावण को निवारण करना और एक मंत्र बताना कपिलदेव से तमाचा खाकर पृथ्वी पर गिरना एवम् एक महात्मा के दर्शन से अचेत गिर पड़ना— ये सब बातें वर्णित हैं। किन्तु अश्मनगर से लेकर जितनी बातें कही गई हैं वे सब क्षेपक मानी जाती हैं।

---

1 रावण को कई शाप हुए थे। उसके पिता विश्रवा ने शाप दिया था, नन्दीश्वर का शाप था कि वानरों से तेरे वंश का नाश होगा वेदवती का शाप था कि मैं जानकी होकर तेरा नाश कराऊंगी, अनरण्य ने कहा था कि रघु के वंशधर उस का नाश करेंगे, पतिव्रता स्त्रियों ने कहा था कि स्त्रीकारण ही से उस का सत्यनाश होगा; कुबेर के पुत्र नलकूबर ने शाप दिया था कि स्त्री के साथ बलात्कार करने से उस का कपाल सात टुकड़े हो जायगा। इसी भय से उसे जानकी जी के साथ बलात् करने का साहस नहीं होता था।

फिर सती स्त्रियों को हरण करने से उन का शाप देना, रावण के लंका में लौट आने पर सूर्पनखा का निज पति के लिए विलाप करना और उस के मौसेरे भाई खर आदि के संग उस का दंडक में रहने के लिये भेजा जाना, मौसेरी बहन कुम्भीनसी के हर ले जाने वाले मधु राक्षस से लड़ने के लिये रावण का मधुपुरी जाना और बहन की प्रार्थना से उस से मिताई कर इन्द्रलोक में जा इन्द्र से युद्ध ठानना और तुमुल संग्राम के अनन्तर मेघनाद का इन्द्र को पकड़ कर लंका में ले जाना और ब्रह्मा का उन्हें छुड़ा लाना कहा गया है। इसी प्रकरण में अहल्या के उपाख्यान का भी उल्लेख है।

फिर सहस्रार्जुन के रावण को युद्ध में पकड़ लेने और बालि के उसे कांख में दाबे पर आने का हाल तथा हनुमानजी के जन्मपराक्रम का वर्णन है। तब पांच अध्यायों में बालि और सुग्रीव की उत्पत्ति, हरि-हर वर्णन, श्वेतद्वीप में स्त्रियों से रावण का पकड़ा जाना, एक बूढ़ी अबला का उसे लेकर आकाश में उड़ना और उस के हाथ से छूट कर उस के समुद्र में गिरने की कथाएं हैं जो क्षेपक कही जाती हैं।

तदनन्तर जनकराज, मामा युधाजित, काशीराज एवम् अन्य १ राजों की (जिन्हें भरतजी ने सीताहरण का समाचार सुन कर सहायता के निमित्त बुला भेजा था) तथा सुग्रीव विभीषण हनुमानादि की बिदाई की बातें हैं। यहां वानरों की बिदाई दो बार कही गई है। चलते समय हनुमान जी ने प्रार्थना की है कि जब तक रामकथा गाई जावे तब तक हमारा प्राण हमारे शरीर को परित्याग नहीं करे; अप्सरा नित्य हमें यह चरित्र सुनाया करें, इसी से आप के दर्शन की उत्कंठा तृप्त करेंगे।'

फिर अशोकवन में मधुपान रासनृत्य और भावरत्न का वर्णन है। तब लोकापवाद के कारण सीता जी का त्याग, उन का वाल्मीकि आश्रम में ठहरना, रामचन्द्र को शोकाक्रान्त देख लक्ष्मण जी का उन्हें समझाना, रामचन्द्र का भी नृग, निमिराज तथा ययाति के शापादि का वृत्तान्त लक्ष्मण को सुनाना एवम् श्वान और भिक्षुक तथा गिद्ध और उलूक के झगड़ों के न्याय की कथाएं हैं।

तब ऋषियों की प्रार्थना पर रामचन्द्र की आज्ञा से शत्रुघ्न जी ने मथुरा में जाकर लवणासुर का वध कर वहां अपना राज्य संस्थापन किया है। इसी यात्रा में जिस रात्रि को वे वाल्मीकि आश्रम में ठहरे थे लव कुश का जन्म हुआ था।

फिर एक तपस्वी शूद्र के वध द्वारा एक वृद्ध ब्राह्मण के मृतबालक को पुनर्जीवित कर रामचन्द्र अगस्त्य मुनि के दर्शन को गये हैं। उन्होंने इन को एक स्वर्णाभरण दिया है और उस का वृत्तान्त पूछने पर कहा है कि 'विदर्भदेश का राजा श्वेत अपनी तपस्या द्वारा ब्रह्मलोक प्राप्त करने पर भी अन्नादि दान नहीं करने से अपना मांस आप भक्षण करने का दुःख भोगता था और उससे उद्धार पाने की पूजा में उस ने मुझे यह आभूषण दिया है। मुनि ने दंडदेश के राजा दण्ड के निज गुरु शुक्राचार्य की कन्या का सतीत्व नष्ट करने से उस का सर्वनाश और उसके देश के अरण्य हो जाने का हाल भी कहा है।

फिर रामचन्द्र का यज्ञ करने का विचार देख लक्ष्मणजी ने अश्वमेध का माहात्म्य वर्णन में इन्द्र द्वारा वृत्रासुर के वध की कथा और रामचन्द्र ने वाल्मीकि वंश के राजा इल की कथा कही है, जिसने शापवश एक मास स्त्री और एक मास पुरुष रहकर एक वर्ष व्यतीत किया था।

नैमिषारण्य में यज्ञारम्भ होने पर वाल्मीकि जी की आज्ञा से लवकुश ऋषिबालक के भेष में आकर रामायण गान करने लगे हैं। उत्तरकाण्ड की कथा सुनने से यह बात ज्ञात होने पर कि ये दोनों बालक गायक सीताजी के पुत्र हैं रामचन्द्र ने वाल्मीकि जी तथा सीताजी को सभा में बुलवा भेजा है। उस सार्वजनिक सभा में मुनि ने सीता जी के शुद्धाचार की साक्षी दी है। रामचन्द्र ने भी कहा है कि 'हम इन्हें पूर्व ही से सती समझते हैं केवल लोक निन्दा के भय से हमने इन्हें परित्याग किया था। और जानकी जी ने कहा है कि यदि मैं संसार में सिवाय पतिदेव के और किसी को नहीं जानती हूँ तो पृथ्वी फट जाय और मैं उस में प्रवेश कर जाऊँ। इतना कहते ही पृथ्वी फट गई है और शेषनाग के फण पर पृथ्वी माता सिंहासनारूढ़ बाहर निकल सीता जी को गोद में ले पाताल चली गई हैं।'[1] इस घटना से रामचन्द्र महा शोकित और कुपित हुये हैं। और ब्रह्मा ने उन्हें समझा बुझा कर शान्त किया है।

फिर कालपुरुष का आगमन रामाज्ञा से लक्ष्मणजी का सरयूतट पर योगाभ्यास से शरीर त्याग करना एवम् कुछ दिन पीछे रामचन्द्र का शेष दोनों भाइयों मातायों तथा प्रजावर्ग के सहित निजधाम (साकेत) सिधारना है।

इस घटना के पूर्व ही रामचन्द्र ने अपने दोनों पुत्रों को भारतवर्ष के भिन्न २ प्रान्तों का राजा बना दिया था।

अध्यात्म में संक्षेप्त यही सब बातें हैं, परन्तु उस में रामगीता तथा रामचन्द्र को कौशल्या का उपदेश करना अधिक है और रावणादि के जन्म, कर्म तथा बालि सुग्रीव की जन्मकथा के अतिरिक्त कोई अन्य उपाख्यान नहीं है।

'रामचरित मानस' का उत्तरकाण्ड इन दोनों ग्रन्थों के उत्तरकाण्ड से सर्वथा भिन्न है।

---

१ रघुवंश में रामायण का अनुकरण है। परंतु पद्म पुराण में लिखा है कि लवकुश के गान से यह जान कर कि ये हम के पुत्र थे रामचन्द्र सीताजी से मिलने के लिये फिर व्याकुल हो गये और लक्ष्मण द्वारा वे फिर लाई गई और सुखानन्द से राज्य करने लगीं। कुछ हेर फेर करके भवभूति ने भी 'उत्तररामचरित' में यही कहा है।

उपसंहार (क)

११ शुरो मासिम स १६६९ के पंचनामे की प्रतिलिपि।

श्रीजानकीवल्लभो विजयते।
द्विश्शरं नाभिसन्धत्ते द्विस्स्थापयति नाश्रितान्।
द्विर्ददाति न चार्थिभ्यो रामो द्विर्नैव भाषते॥
तुलसी जान्यो दसरथ हि धरमु न सत्य समान।
रामु तजो जेहि लागि बिनु राम परिहरे प्रान॥
धर्मो जयति नाधर्मस्सत्यं जयति नानृतम्।
क्षमा जयति न क्रोधो विष्णुर्जयति नासुर॥

अल्लाह अकबर

चूं आनन्द राम बिन टोडर बिन देवराय व कन्हाई बिन रामभद्र बिन टोडर मज़कूर दर हुज़ूर आमदह क़रार दादन्द के दर मवाज़ी मतरूके तफ़्सील-मा दर हिन्दवी मज़कूर अस्त बा मसावात बतराज़ी आन नसीन क़रार दादेम व एक सद पचास बिगहा ज़मीन। ज़्यादा क़िस्मत मोताबिक़ दर दर मौज़े मदनी आनन्द राम मज़कूर व कन्हाई बिन रामभद्र मज़कूर तजवीज़ मसूदह बरी माने राज़ी गुश्ता एतराफ़ सहीह शरई नमूदन्द लिहाज़ा बतौर मुहर करदह शुद।

इस के आगे क़ाज़ी का मुहर दस्तख़त जिसमें की तफ़सील और गवाही आदि है। फ़ार्सी का अनुवाद – आनन्द राम बेटा टोडर बेटा देवराय और कन्हाई बेटा रामभद्र बेटा टोडर मज़कूर हुज़ूर में आकर इक़रार किया कि आपस की रज़ामंदी से हमलोगों ने तर्के को जिसकी तफ़सील हिन्दी में है आधा २ क़रार दिया और मौज़े भदैनी में १५० बीघा ज़मीन अपने आधे आध हिस्सा से अधिक तजवीज़ करके और इस बात पर राज़ी होकर इक़रार सही किया, इसलिये मुहर किया गया।

नोट—परन्तु इस पंचनामे में गोसाईं जी का नाम कहीं नहीं देखा जाता। नाग विकास प्र स प्रकाशित तथा का ना प्र सभा द्वारा प्रकाशित रामायणों में भी पंचनामे की प्रतिलिपि को देख लीजिये।

उपसंहार (ख)

शिवपुर शिलालेख

प्रस्पर्धिक्षितिपालकाननमु ~ ने कृतिका
मुद्राङ्कमकल्पप्रतापतपनप्रोद्भासिताशामुखे ।
कोपोशेऽकबरे प्रशासति महीं यस्मिन् नृपालावलि—
स्पृगनमौलिमरीचिवीचिकचिरो दच्चम् पादम्भोरुहे ॥१॥
यद्राज्यैकधुरन्धरस्य वसुधा साम्राज्यदीक्षागुरो
श्रीमद्भूरडनवंशमण्डनमणे श्रीटोडरक्ष्मापते ।
धर्म्मौघैकविधौ समाश्रितमनरावतीऽचीकर—
द्वापी पायडममयरूपे ~ ब्रनो गोविन्ददास सुधी ॥२॥
ऋतुनिगमरसात्मसम्मित (१६४६) वत्सरेशे
सुकृतिकृतिविहितैषी टोडरक्षोणिपाल ।
विहितविविधपूर्तोऽचीकरद्वाप्यापी
विमलसलिलसारा बद्धसोपानपंक्तिम् ॥३॥

पुस्तक मतप्रभेद चक्र उपसंहार (ग)

[इस चक्र को दूसरे खण्ड के दूसरे परिच्छेद का अंश समझिये]

रामचरितमानस (रामायण) से लेकर 'रामललानहछू' तक की समालोचना इस ग्रंथ में विस्तारपूर्वक की गई है। इन १२ ग्रंथों को प्रायः सभी लोग प्राचीनकाल से गोसाईं जी कृत होना मानते आते हैं और सब लेखकों ने इनके नामों का उल्लेख किया है। परन्तु इन में से कई एक के विषय में अब बहुत से लोगों को सन्देह होने लगा है। आगे के चक्र में उन पुस्तकों के नाम दिये जाते हैं जिन्हें लोग इधर गोसाईंजीकृत होना कहने लगे हैं।

उपर्युक्त चक्र

नाम ग्रंथकर्ता या ग्रंथ	सतसई	हनुमानबाहुक	संकटमोचन	रामललानहछू	बरवै रामायण	हनुमानचालीसा	छन्दावली	रोला रामायण	झूलना रामायण	कुंडलिया रामायण	कड़खा रामायण	वैराग्यसंदीपनी	मानस[illegible]	रामछटा	[illegible]
१ पं रामगुलाम द्विवेदी		•		•	•		•		•		•			•	•
२ पं शेषदत्त (कमोरा)	स				•				•				•		•
३ इनके गुरु के शिष्य छेदीराम	स					म			•	◦			स		•
४ शिव सिंह सरोज	स	स	स	स	स		स	स	स	स	स				
५ भक्तमाल हरिभक्ति प्रकाशिका		स	स	स	स			स	स		म	स		•	
६ मङ्कस्ताइम	•	स	•	स	◦		•	स	स	स					
७ का० ना० प्र० सभावाली रामायण	स	स	स	स	स		स	स	स	स	स			•	
८ इंडियन एन्टीक्वेरी (ग्रियर्सन सा०)	म	स	म	स	स			स	स	स	स	•	•		
९ पं ज्वाला प्रसाद	स	स	स	स	स	•	स	स	स	स	स		•		
१० पं रामेश्वर भट्ट	स	स	स	स	•		•	म	स	स	स	•		स	•
११ उर्दू भक्तमाल—तुलसी राम मिरजापुरी		स		स	•			स	स	•	स			•	•
१२ ग्राउस साहब	स	स		स	•			स	प	•	स	•	•	•	•
१३ सुमन पत्र	स	स		स	•		स	•	•	•	•	•	•	•	स

आगे का पृ देखिये

नोट (क)—'स' यह सूचित करता है कि इन लोगों ने इन पुस्तकों के नाम अपने ग्रंथों और लेखों में दिये हैं।

नोट (ख) डा० ना० प्र० सभा की खोज वाली पुस्तकों के नाम जो इस पुस्तक के पृ० ३३१ में दिये गये हैं, इस चक्र में नहीं हैं।

कोई 'कवितावली' का अंश मान कोई एक पृथक ग्रंथ मानकर प्राय सब किसी ने 'हनुमानबाहुक' को गोसाईं जी कृत होना माना है।

२ इन्होंने 'सतसई' पर टीका लिखी है।

३ इन्होंने दोहावली का नाम देकर सतसई का नाम दिया है।

४, ५ इन ग्रंथों में 'रामाज्ञा' का नाम नहीं है।

७ इन में के ग्रंथ गोसाईं जी कृत होना स्पष्ट रूप से माने नहीं गये हैं।

८ इन्हें इन ग्रंथों के गोसाईं जी कृत होने में सन्देह है।

१२. इन्हें 'सतसई' को छोड़ अन्य पाँचों पुस्तकों एवम् जानकीमंगल और पार्वती मंगल में भी सन्देह है और बरवै आदि छः प्राचीन पुस्तकों का इन्होंने नाम तक नहीं दिया है।

नोट (क)—'† यह सूचित करता है कि इन लोगों ने इन पुस्तकों के नाम अपने ग्रंथों और लेखों में दिये हैं।

नोट (ख) का० ना० प्र० सभा की खोज वाली पुस्तकों के नाम जो इस पुस्तक के पृ० १६१ में दिये गये हैं, इस चक्र में नहीं हैं।

१. 'कवितावली' का अंश मान कर कोई एक पृथक ग्रंथ न कहकर प्रायः सब किसी ने 'हनुमानबाहुक' को गोसाईं जी कृत होना माना है।

२. इन्होंने 'सतसई' पर टीका लिखी है।

३. इन्होंने 'दोहावली' का नाम देकर 'सतसई' का नाम दिया है।

५, ६. इन ग्रंथों में 'रामाज्ञा' का नाम नहीं है।

७. इस में ये ग्रंथ गोसाईं जी कृत होना स्पष्ट रूप से माने नहीं गये हैं।

८. इन्हें इन ग्रंथों के गोसाईं जी कृत होने में सन्देह है।

१२. इन्हें सतसई को छोड़ अन्य पाँचों पुस्तकों एवम् जानकीमंगल और पार्वती मंगल में भी सन्देह है और बरवै आदि आठ प्राचीन पुस्तकों का इन्होंने नाम तक नहीं दिया है।